Barcode - 5990010044605

Title - Braj Bhasha Soor Kosh Part-4

Subject - LANGUAGE. LINGUISTICS. LITERATURE

Author - Deendayal Gupta

Language - hindi

Pages - 202

Publication Year - 0

Creator - Fast DLI Downloader

https://github.com/cancerian0684/dli-downloader

Barcode EAN.UCC-13



## वजापा स्र-क्रीश

चतुर्थ खंड )

## निदेशक

डॉ॰ दीनदयालु गुप्त, एम॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰, डी॰ लिट्॰, प्रोफेसर तथा मध्यक्ष हिंदी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

## संपादक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए० प्राध्यापक, हिंदी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय



## प्रकाश्क लखनऊ विश्वविद्यालय

चोथे खंड की शब्द-संख्या—१८३४ चारों खंडों की शब्द-संख्या—२१४४७

मूल्य—डाकव्ययसहित ४) स्थायी प्राहकों से इ

वि.—जलानेवाला। उ.—महापतित कुल तारन, एक नाम ऋघ जारन, दारुन दुख बिसरावन— १०-२५१।

जारनहार—संज्ञा पुं. [ हिं. जलाना+हार (प्रत्य.)] जलाने-वाला। उ.—मीठे बचन सुहाये बोलत श्रंतर जारन हार—२७८७।

जारना—कि. स. [हिं. जलाना ] जलाना । जारा—संज्ञा पुं. [हिं. जाला ] जाला ।

जारि—कि. स. [हिं. जलाना] जलाकर, नष्ट करके। उ.—हरि की सरन महँ तू त्राउ। काम-क्रोध-विषाद-तृष्ना, सकल जारि बहाउ—१-३१४।

जारिगी—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यभिचारिणी स्त्री। जारी—वि. [ग्र.] (१) बहता हुग्रा, प्रवाहयुक्त। (२) चलता हुग्रा, प्रचलित।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) भरबेरी । (२) एक मुहर्रमी गीत जो प्रायः स्त्रियाँ गाती हैं।

संज्ञा स्त्री. [सं. जार+ई (प्रत्य.)] व्यभिचार ।
क्रि. स. [हिं. जलाना] जला दी, जलायी। उ.—
(क) भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिनतें कछु न सरी। लै
देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी— १-७१।
(ख) तब वियोग सोक तौ उपज्यौ काम देह तनु
जारी—२७६२।

वि.—जलायी या सताई हुई। उ.—बिट बाहर गृह गृह प्रति दुरि जाति श्रावित बिकल मदन की जारी—२२६६।

जारुथी—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] एक प्राचीन नगरी। जारुधि—संज्ञा पुं. [ सं. ] एक पर्वत। जारूथ, जारूथ्य—संज्ञा पुं. [ सं. जारूथ्य ] वह अश्वमेध जिसमें तिगुनी दक्षिणा ली जाय।

जारे—कि. स. [हिं. जलाना ] जलाये, दग्ध किये। उ.—चल तन चपल रहत थिरके रथ बिरहिन के तनु जारे—२८६२।

जारै—िक. स. [हिं. जलाना ] जलाता है, भरमता है, नष्ट करता है। उ.—ग्रंतकाल जो नाम उचारै। सो सब ग्रपने पापिन जारै—६-४। जारोब—संशा स्त्री. [फा.] फाडू, बुहारी।

जारों—कि, स. [हिं. जलाना ] जलाता हूँ, नष्ट करता हूँ। उ.—सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र सुदरसन जारों—१-२७२।

जारों—कि, स. [हिं. जलाना] जलाती है, पीड़ित करती है। उ.—तृष्ना-तिड़त चमिक छनहीं-छन, श्रहिनिस यह तन जारों—१-२०६।

जार्यक—संज्ञा पुं. [सं. जार्यक ] एक मृग।

जारयों—िक, स. [हिं. जलाना] (१) जलाया। उ.— ज्वाला प्रीति प्रगट सन्मुख हठि, ज्यों पतंग तन जारयों—१-१०२। (२) पीड़ित किया, दुख दिया। उ.—हिरनाकुस प्रहलाद भक्त कों बहुत सासना जारयों—१-१०६।

जालंधर-संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) एक ऋषि। (२) एक दैत्य। जालंधरी विद्या—संज्ञा स्त्री. [ सं. जालंधर=एक दैत्य] माया, जादू।

जाल—संशा पुं. [सं.] तार या सूत का बुना हुआ पट जो मछलियों, चिड़ियों आदि को फँसाने के काम में आता है। उ.—मेल्यो जाल काल जब खेंच्यो, भयो मीन-जल-हायो—१-६७।

मुहा.—जाल डालना (फेंकना)—मछलियों श्रादि को फँसाने के लिए जल में जाल डालना। जाल फैलाना (विछाना)—पक्षियों को फँसाने के लिए जाल लगाना।

- (२) किसी को फँसाने की युक्ति या तदबीर।
  मुहा.—जाल फैलाना (बिछाना)—किसी को
  फँसाने या वश में करने का उपाय करना।
- (३) मकड़ी का जाला। (४) समूह। उ.—(क) बल मोहन बन ते बने त्रावत लीने गैया जाल—२३७१। (ख) कुटिल त्रालक बिना बपन के मनौ त्राल-सिसु-जाल—१०-२३४। (ग) भागे जंजाल जाल—१०-२०५। (४) इंद्रजाल, जादू। (६) भरोखा। (७) ग्राभमान। (८) क्षार, खार। (६) कदम का पेड़। (१०) एक तोप। (११) फूल की कली।

संज्ञा पुं. [ अ. जश्रल ] घोखा देने का उपाय। जालक—संज्ञा पुं [ सं. ] (१) जाल। (२) कली। (३) समूह। (४) भरोखा। (४) मोतियों का एक आभूषण। (६) केला। (७) घोसला। (८) ग्रिभमान। जालजीवी—संशा पुं. [सं. ] सछ ग्रा, धीवर। जालदार—वि. [सं. जाल+फ़ा. दार] छेददार। जालना—कि. स. [हिं. जलाना] जलाना। जालपाद—संशा पुं. [सं. ] (१) हस। (२) वह पक्षी

जिसके पैर की उँगलियों पर जालदार भिल्ली हो।
जालप्राया—संज्ञा स्त्री. [सं.] कवच, जिरहबस्तर।
जालरंध्र—संज्ञा पुं. [सं.] भरोखा।
जालव—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो बलबल का पुत्र था

श्रीर श्रीबलदेव जी द्वारा मारा गया था।
जालसाज—संज्ञा पुं. [ श्र. जत्र्यल+फ़ा. साज़ ] जालिया।
जालसाजी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. जालसाज ] दगाबाजी।
जाला—संज्ञा पुं. [ सं. जाल ] (१) समूह। उ.—कंबुकंठ,
भुज नैन बिसाला। कर केयूर कंचन नगजाला—
६२५। (२) मकड़ी का जाल। (३) श्रांख का
एक रोग। (४) सूत या सन का जाल। (५)
बड़ा बरतन।

जालाच् — संज्ञा पुं. [ सं. ] गवाक्ष, भरोखा। जालिक — संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) जाल बुननेवाला। (२) जाल से पशु-पक्षियों को फँसाने वाला। (३) मदारी, जादूगर। (४) मकड़ी।

जालिका—संशा स्त्री. [सं.] (१) पाश, फंदा, जाल। (२) जाली। (३) विद्यवा स्त्री। (४) कवच। (४)

मकड़ी।(६) लोहा।(७) समूह।
जालिनी—संशा स्त्री.[सं.](१) तरोई।(२) चित्रशाला।
जालिम—वि.[ग्र. ज़ालिम] ग्रत्याचारी।
जालिया—वि.[हिं, जाल—फरेब+इया (प्रत्य.)] छलीकपटी, धोलेबाज, दगाबाज, फरेबी।

संज्ञा पुं. [हं. जाल+इया (प्रत्य.)] धोवर।
जाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तरोई। (२) परवल।
संज्ञा स्त्री. [हं. जाल] (१) छोटे-छोटे छेदों का
समूह। (२) महीन छेद काढ़ने-बनाने का काम।
(३) महीन छेददार कपड़ा। (४) कच्चे स्राम की
गुठली के उपर का तंतु-समूह।
वि. [ त्र्या जन्नली, बनावटी।

वि. [हिं. जलाना ] जलायी हुई । उ.—स्रदास
प्रभु तब न मुई हम जिवहिं बिरह की जाली—३२२८।
जालीदार—वि. [हिं. जाली + दार ] जिसमें जाली हो ।
जालम—वि. [सं. ] (१) नीच । (२) मूर्ख ।
जालमक—वि. [सं. ] गुरु ग्रादि का हेषी ।
जालय—संज्ञा पुं. [सं. ] शिव, महादेव ।
जाव—कि. स. [हिं. जाना ] जाग्रो । उ.—स्र स्याम
बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भाई पोइसि—१-३३३ ।
जावक—संज्ञा पुं. [सं. यावक ] पैरों में लगाने का
ग्रलता । उ.—कहिहैं न चरनन देन जावक गुहन
बेनी फूल—२७५६ ।

जावत—ग्रव्य. [सं. यावत् ] (१) सब, सारा। (२) जब तक। (३) जहाँ तक।

जावदेक—श्रव्य., वि. [सं. यावत्+एक] जितनी भी. जो कुछ भी। उ.—घर बाहर ते बोलि लेहु सब जावदेक ब्रजबाल—३२७४।

जावन—संशा पुं. [हिं. जामन ]दही जमाने का जामन।
उ.—(क) नई दोहिनी पोंछि पखारी धरि निधूम
खीर पर तायौ। तामं मिलि मिस्रित मिस्री करि
है कपूर पुट जावन नायौ। (ख) कोउ दिध मैं
जावन पय फेरै—ए. ३३८ (७५)।

जावित्री—संशा स्त्री, [सं, जातिपत्री] जायफल का ऊपरी सुगंधित छिलका।

जावे—कि, श्र. [हिं, जाना] जाता है।

पु.—मिटि जावे—नष्ट हो जाता है। उ.—
बहुरौ ताहि बुढ़ापा श्रावै। इंद्री-सिक सकल मिटि
जावे—३-१३।

कि. स. [सं. जनन ] उत्पन्न करे, पैदा करे, जने।
उ.—(क) धनि जननी जो सुभटिहं जावै। भीर
परें रिपु को दल दिल-मिल, कोतुक करि दिखरावै—
६-१५२। (ख) मातु कहै कन्या कुल को दुख जिन
कोऊ जग जावै—१२२३।

जाषक—संशा पुं, [सं.] पीला चंदन।
जाषनी, जाषिनी—संशा स्त्री, [सं.यिद्यणी] (१) यक्ष की
स्त्री, यक्षिणी। (२) कुबेर-पत्नी।
जासु, जासू—वि. [हं, जो] जिसका।

जासूस—संज्ञा पुं. [ अ. ] भेदिया, गुप्तचर । जासूसी—संशा स्त्री. [हिं. जासूस ] जासूस का काम। जासों—सर्व. [हं. जा+सों (प्रत्य.)] जिससे । उ.— घर की नारि बहुत हित जासौं, रहति सदा सँग लागी--१-७६। जास्पति—संशा पुं. [ सं. ] जँवाई, दामाद । जाहक—संज्ञा पुं. [ सं. ] विछौना, बिस्तर। जाहर, जाहिर—वि. [ श्र. ज़ाहिर ] (१) जो छिपा न हो, खुला हुम्रा। (२) विदित, जाना हुम्रा। जाहि—कि. श्र. [हिं. जाना ] जा, जाग्रो। उ.—करि हियाव, यह सौंज लादि के, हिर कें पुर लें जाहि -- १-३१०। वि. [हिं. जा+हि] जिसको। जाहिरा-कि. वि. [ श्र. ज़िहरा ] प्रकट रूप से। जाहिरी -- वि. श्रि. ज़ाहिरा ] जाहिर, प्रकट । जाहिल-वि. [ श्र. ] (१) मूर्व । (२) ग्रपढ़ । जाहीं — कि. श्र. [हिं. जाना] (१) जाते हें, जाना होता है। उ.—स्रदास हरि भजी गर्ब तिज, बिमुख अगति कों जाहीं--- २-३३। (२) बीतते हैं, (दिन आदि) व्य-तीत होते हैं। उ.—नेम-धर्म हीं मैं दिन जाहीं—७६६। प्र.—रीभि जाहीं—प्रसन्न हो जाते हैं। उ.— कबहुँ कियें भिक्त हूँ के न ये री भिहीं, कबहुँ कियें . बैर के रीिक जाहीं—८-८। जाही-संश स्त्री, [सं. जाति ] (१) चमेली की जाति का एक सुगंधित फूल । उ.—जाही जूही सेवती करना कनित्रारी-१८२३।(२) एक तरह की श्रातिशबाजी। जाह्—कि. श्र. [हिं. जाना ] जाश्रो। उ.—मिथ्या तन को मोह बिसार। जाहु रही भावे गृह-बार---३-१३। जाहुगे-कि. श्र. [हिं. जाना ] जाग्रोगे, प्रस्थान करोगे। उ. -- नंद बबा की बात सुनौ हरि। मोहिं छाँ डि जो कहूँ जाहुगे, ल्याउँगी तुमकौं धरि-१०-६८१। जाह्नवी—संशा स्त्री. [सं.] जह्नु से उत्पन्न गंगा। जिंद्—संशा पुं. [ श्र. ] भूत, प्रेत, जिन । जिंद्गानी, जिंद्गी—संशा स्त्री, [फा.] (१) जीवन। (२) जीवन-काल, ग्रायु। महा.—जिंदगी के दिन पूरे करना (भरना)—(१) कष्ट से जीवन बिताना। (२) मरने के समीप होना।

जिंदा-वि. [ फ़ा. ] जो जीवित या जीता हो। जिंदा दिल—वि. [ फ़ा. ] खुशमिजाज, हँसोड़। जिंवाइ-कि. स. [हिं जिमाना ] खाना खिला कर, जिमाकर। उ.—मेघनाद ब्रह्मा-बर पायौ। श्राहुति श्रागिनि जिंवाइ सँतोषी, निकस्यौ रथ बहु रतन बनायौ-- ६-१४१। जिंवाना-कि. स. [हिं. जिमाना ] भोजन कराना। जिंवावति—कि. स. [ हिं. जिमाना ] खिलाती है, भोजन कराती है। उ.—सरस बसन तन पोंछि गई लैं, षटरस की ज्यौनार जिंबावति—५१४। जिंवावै—कि. स. [हिं. जिमाना ] खिलाता है, भोजन कराता है, भोग लगाता है। उ.—इच्छा करि मैं बाह्मन न्यौत्यौ, ताकौं स्याम खिमावै। वह अपने ठाकुरहिं जिंवावै, तू ऐसें उठि धावै-१०-२४६। जिंस-संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) प्रकार, किस्म, तरह। (२) चीज, वस्तु । (३) सामान । (४) ग्रन्न, ग्रनाज । जिञ्चन—संशा पुं. [सं. जीवन, हिं. जीना] जीना, जीवित रहना । उ.—काल-ग्रगिनि सबही जग जारत। तुम कैसैं कैं जित्रन बिचारत-१-२८४। जिञ्चाना—कि. स. [हिं. जिलाना ] जीवित करना। जिआवत-कि. स. [हिं. जिलाना ] जीवित करता है, जिलाता है। उ.—सखी री चातक मोहिं जिल्लावत— रूप्र जिउ—संशा पुं. [ हिं. जीव ] जीव-जंतु, प्राणी। जिउका—संज्ञा स्त्री. [ सं. जीविका ] रोजी, जीविका । जिडिकया—संज्ञा पुं. [हिं. जीविका, जिडका] (१) जीविका पैदा करनेवाले। (२) कठिनता से प्राप्त वस्तुओं का व्यापार करनेवाले पहाड़ी लोग 🞼 जिडितया—संशा स्त्री. [सं. जिता या जीमृत ] स्नाश्विन कृष्ण या शुक्ल पक्ष की ग्रष्टमी के दिन पुत्रवती स्त्रियों द्वारा किया जानेवाला एक व्रत। जिडलेवा — वि. [हिं. जीव+लेना ] बहुत कष्टदायी।

जिए-कि. स. [हिं. जीना ] जीता है, जीवित रहता है।

जिएं - कि. स. [हिं. जीना ] जीवित रहने (से) न

जिए--४-१२।

उ.—नैन दरस देखन कौ दिए। मूढ़ देखि परनारी-

मरन (से)। उ.—स्रजदास बिमुख जो हिर तें, कहा भयौ जुग कोटि जिऐं—१-८१।

जिकिर, जिक्र—संशा पुं. [ श्रा. ज़िक्र ] चर्चा, प्रसंग। जिगर—संशा पुं. [ फ़ा. ] (१) कलेजा। (२) चित, मन।

(३) साहस, हिम्मत । (४) सार भाग, गूदा ।

(४) पुत्र।

जिगरा—संज्ञा पुं. [हिं. जिगर ] हिम्मत, साहस। जिगरी—वि. [फा. ] (१) भीतरी, दिली। (२) बहुत घनिष्ट।

जिगिन—संज्ञा स्त्री. [सं. जिंगिनी] एक जंगली पड़। जिंगीषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जय या विजय पाने की इच्छा। (२) उद्यम।

जिच, जिच — संशा स्त्री. [फ़ा. ज़िच ] (१) विवशता, लाचारी। (२) कोई मार्ग, चारा या उपाय न होना, गतिरोध।

वि.—विवश, लाचार, तंग, मजबूर।
जिजिया—संशा स्त्री. [हिं. जीजी] बहन, भगिनी।
संशा पुं. [फ़ा. जिज़ेंथ] जिजया कर।

जिज्ञासा—संशास्त्री. [सं.] (१) नयी बात जानने या जानकारी प्राप्त करने की इच्छा। (२) पूछतांछ। जिज्ञासु, जिज्ञासू—वि. [सं.] (१) जानकारी प्राप्त करने या नयी बात जानने का इच्छु क। (२) खोजी।

जिज्ञास्य—वि. [सं. ] जो जानने योग्य हो।

जिठाई—संशा स्त्री. [हिं. जेठ] बड़ाई, जेठापन। जिठानी—संशा स्त्री. [हिं. जेठ] जेठ की पत्नी।

जिठेरो-संज्ञा पुं. [हिं. जेठ, जेठा ] बड़ा दुलारा पुत्र। उ.—देखियत नहिं भवन माँभ, जैसोइ तन तैसि साँभि, छल सौं कछु करत फिरत महिर की जिठेरो-१०-२७६।

जित—िक, वि. [ सं. यत्र ] जिधर, जिस भ्रोर। उ.— जित जित मन श्रर्जुन को तितिहिं रथ चलायो-१-२३। महा.—जित - तित—इधर - उधर, यहाँ वहाँ, जिधर-तिधर। उ.—नाम श्रधार नहीं श्रवलोकत जित-तित गोता खात—१-१७५।

संज्ञा पुं. [ सं. ] जीत ,विजय । वि. [ सं. ] (१) जो जीत लिया गया हो । (२) जीतनेवाला । उं.—इंद्रि - जित हों कहा यत हुतौ—८-१०।

जितक—वि. [हिं. जितना ] जितने (संख्या या परि-माणवाचक) । उ.—मेरी तेह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं—१-१५१।

जितना—वि. [हं, जिस+तना (प्रत्य.)] जिस मात्रा या परिणाम का।

कि, वि,—जिस मात्रा या परिमाण में। जितलोक—वि, [सं,] पुण्यों के कारण स्वर्गादि उच्चलोक प्राप्त करनेवाला।

जितवना—कि. स. [ सं. ज्ञात ] प्रकट करना।
जितवाना—कि. स. [ हिं, जिताना ] जीतने देना।
जितवार, जितवैया—वि. [ हिं, जीतना ] जीतनेवाला।
जिताई—संज्ञा स्त्री. [ हिं, जीत ] जीत, विजय।
कि. स. [ हिं, जीतना ] जीतने दिया।

जिताए—कि.स. [हिं, जितना ] जीतने में समर्थ किया, विजयो बनाया। उ.—पांडव पाँच भजे प्रभु चरनिन रनहिं जिताए हैं जदुराई—१-२४।

जितात्मा—िव. [ सं. जितात्मन् ] जितेंद्रिय। जिताना—िक. स. [ हिं. 'जीतना' का प्रे. ] जीतने में समर्थ करना, जीतने देना।

जितार—वि. [सं. जित्वर] (१) जीतनेवाला। (२) जो जीत सके। (३) भारी वजन या भार का। जितारि—वि. [सं.] जितेंद्रिय।

संशा पुं.—गौतम बुद्ध का एक नाम।

जिताबै—कि. स. [हिं. जिताना ] जिता दे, विजयी करा दे। उ.—तौ हम कछु न बसाइ पार्थ, जौ श्रीपति तोहिं जिताबै—१-२७५।

जिताष्टमी—संशा स्त्री. [सं.] ग्राध्विन कृष्ण या शुक्ल प्रष्टमी को पुत्रवती स्त्रियों का एक वत ।

जिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीत, विजय।

जितिक—वि. [हि. जितना ] जितने (संख्या.)। उ.— जितिक बोल बोल्यो तुम आगों, राम प्रताप तुम्हारें। सूरदास प्रभु की सों साँचै, जन करि पैज पुकारै— ६-१०७।

जिती—कि. श्र. [हिं. जीतना ] जीती, विजयी हुई।

डे.—खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हार रघुपति जिती जनक की—६-२५।

वि. [हिं. जिस ] जितनो। उ.—(क) हुतीं जिती जग में श्रधमाई सो मैं सबै करी—१-१३०। (ख) सुनहु कृपानिधि, जिती कृपा तुम या काली पै कीन्ही—५७०।

जितेंद्रिय—िव. [सं.] (१) जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। (२) समान वृत्तिवाला, शांत।

जिते—िव. [हं. जितना ] जितने (संख्या-सूचक)। उ.—(क) जानत जदुनाथ, जिते जन निज भुज-स्रम-सुख पायौ—१-१५। (ख) पाप-मारग जिते सबै कीन्हें तिते—१-१९०।

जिते—कि. स. [हं. जीतना ] जीते, विजयी हो।

उ.—हिर कृपा करें जिहिं, जिते सोई—८-१०।

कि. वि. [सं. यत्र, प्रा. यत्त ] जिस ग्रोर।
जितेया—वि, [हं. जीतना ] जीतनेवाला, विजयी।
जितो, जितो—वि. [हं. जिस ] जिस परिमाण का।
उ.—ग्रानि देहं ग्रपने घर तें हम, चाहति जितो
जसोवे—३४७।

जित्—िवि. [सं.] जीतनेवाला, जेता, विजयी। जित्य—संशा पुं. [सं.] बड़ा हल। जित्वर—िव. [सं.] जीतनेवाला, विजयी। जिद्—संशा स्त्री. [श्र. ज़िद् ] (१) हठ। (२) वैर।

मुहा.—जिद पर आना (पकड़ना)—हठ करना। जिदियाना—कि. आ. [हिं, जिद] हठ करना। जिह—संशा स्त्री. [हिं, जिद] हठ, प्रड़। जिदी—वि. [हिं, जिद] (१) हठी, ग्रड़नेवाला।

(२) दूसरे की बात न माननेवाला, दुराग्रही।
जिधर—क्रि. वि. [हिं. जिस+धर (प्रत्य.)] जिस श्रोर।
जिधर-तिधर—(१) इधर-इधर। (२) बेठिकाने।
जिन—सर्व. ['जिस' का बहु. ] जिन्होंने, जिसने।
उ.—सब करत्ति कैकई कैं सिर, जिन यह दुख उपजायौ—६-५०।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) सूर्य। (३) बुद्धदेव। (४) जैनों के तीर्थंकर। संज्ञा पुं. [श्र्य.] भूत-प्रेत, जिन। श्रव्य. [हिं, जिन ] नहीं, मत। उं.—जिन कोड काहू के बस होइ—२८११। जिनको—सर्व. [हिं. जिन+को (प्रत्य.)] जिनका। जिना—संशा पुं [श्र. जिना] व्यभिचार। जिनि—श्रव्य. [सं. जिन ] नहीं, मत, न (निषेधात्मक)। उ.—(क) स्रदास श्रापुहिं समुभावे, लोग बुरो जिनि मानो—१-६३। (ख) द्वारे खड़े रहे हैं कबके जिनि रेगर्ब करे जिय भारी—२५८६।

जिनिस—संज्ञा स्त्री, [फ़ा, जिंस] ग्रनाज, सामान।
जिन्ह—सर्व. [हिं. जिन] 'जिस' का बहुवचन।
जिन्ना—संज्ञा स्त्री. [सं. जिह्वा] जीभ, जबान।
जिभला—वि. [हिं. जीभ+ला (प्रत्य.)] चटोरा, चट्टू।
जिभ्या—संज्ञा स्त्री. [सं. जिह्वा] जीभ, जबान।
जिमाना—कि. स. [हिं. जीमना] भोजन कराना।
जिमि—कि. वि. [हिं. जिस+इमि] जैसे, ज्यों।
जिम्मा—संज्ञा पुं. [ग्रा.] (१) भारप्रहण, उत्तरदायित्व, प्रतिज्ञा, जवाबदेही। (२) देखरेख, संरक्षा।

जिस्में संशा पुं. [ श्र. जिस्सा ] ऋण-स्वरूप रकम होना, देना ठहरना। उ. मोहरिल पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीत। जिस्में उनके, माँगें मोतें, यह तो बड़ी श्रनीति—१-१४३।

मुहा.—िकसी के जिम्मे करना—(१) काम सौंपना।(२) देखरेख में रखना। िकसी के जिम्मे रुपया त्राना (निकलना, होना)—िकसी के ऊपर ऋण होना। िकसी के जिम्मे रुपया डालना—िकसी के ऊपर ऋण ठहराना।

जिम्मावार, जिम्मेदार, जिम्मेवार—वि. [हिं. जिम्मा] जो किसी बात का जिम्मा ले चुका हो। जिम्मावारी, जिम्मेदारी, जिम्मेवारी—वि. [हिं. जिम्मा]

(१) जवाबदेही । (२) सुपुर्दगी, संरक्षा ।
जिय—संज्ञा पुं. [सं. जीव] (१) मन, चित्त, जी। उ.—
(क) ऐसी को करी श्रम् भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय घरी लाजैं—१-५। (ख) ये जिय जानि के श्रंघ भव त्रास तें सूर कामी कुटिल सरन श्रायौं—
१-५। (ग) कहा मल्ल चान्र कुबलिया, श्रब जिय त्रास नहीं तिन नैकी—२५५८। (२) जीव, प्राणी।

उ.—(क) हारि-जीति नाहिं जिय कें हाथ—६-५।
(ख) एकनि कों जिय-बलि दे पूजे—१-१७७।
(ग) मैं कीन्हीं बहु जिय की हानि—४-१२। (३)
संकल्प, विचार, इच्छा।

मुहा.—जिय में खुभना (गड़ना)—(१) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (२) चित्त में बराबर ध्यान बना रहना। जिय में खुभी—चित्त में बराबर ध्यान बना रहता है। उ.—साधव-मूरित जिय में खुभी। जिय दीन्ह—ध्यान लगाया। उ.—पाइँ धोइ मंदिर पग धारे प्रभु-पूजा जिय दीन्ह—१०-२६०।

जियत—िक. स. [हिं. जीना ] (१) जीता है। (२) जीते जी, जीवित रहते हुए। उ.—स्रदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊँ—१-२७०। (३) पलते हैं। उ.—िकतने ऋहिर जियत मेरें घर—१०-३३ जियतो—संज्ञा पुं. [सं. जीव, हिं. जी ] मन, चित्त, जी। उ.—स्र स्याम गिरिधर, धराधर हलधर, यह छिब

सदा थिर, रही मेरें जिथती—३७३।
जियत—संशा पुं, [सं, जीवन] जिंदगी, जीवन।
जियरा—संशा पुं, [हिं, जीव] जी, हृदय।
जियरी—संशा पुं, [हिं, जीव] जीव।
जियाजंतु—संशा पुं, [हिं, जीवजंतु] पशु-पक्षी।
जियाजंतु—संशा स्त्री, [हिं, जीवजंतु] पशु-पक्षी।
जियादती—संशा स्त्री, [हिं, ज्यादती] (१) ग्रधिकता,
बहुतायत। (२) ग्रन्याय, ग्रत्याचार।

जियादा—वि. [हिं. ज्यादा ] ग्रधिक, ज्यादा । जियान—संज्ञा पुं. [ श्र. ज़ियान ] घाटा, हानि । जियाना—कि. स. [हिं. जिलाना ] (१) जीवित करना,

जिलाना। (२) पालन-पोषण करना, पालना। जियाफत—संज्ञा स्त्री. [ श्रा. जियाफत ] दावत। जियारत—संज्ञा स्त्री. [ श्रा. ज़ियारत ] तीर्थ-दर्शन।

मुहा.—जियारत लगना—दर्शकों की भीड़ होना। जियारती—वि. [हिं. जियारत] तीर्थ-यात्री, दर्शक। जियारी—संशा स्त्री. [हिं. जीना] (१) जीवन, जिंदगी। (२) जीवका। (३) दृढ़ता, साहस।

जियावन—वि. [हिं. जिलाना] जिलानेवाली, जीवित करने की । उ.—कृष्ण-सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायी—२-३२। जियावहि—कि. स. [हिं. जिलाना ] जिला ले, जीवन-दान दे, जीवित कर दे। उ.—ऐसी गुनी नहीं त्रिभुवन कहुँ, हम जानित हैं नीकें। स्राइ जाइ ती तुरत जियावहि, नैंकु छुवत उठैं जीके—७४६।

जिये—कि. स. [हिं. जीना] जीवित रहे। उ.—सूरदास कों श्रोर बड़ी सुख जूठिन खाइ जिये—१-१७१। संज्ञा पुं.सिव.—जी में, मन में। उ.—स्यामसुंदर कमलनयन बसो मेरे जिये—३१२६।

जिये—कि. त्र. [हिं. जीना] जीवित रहे, जिये। उ.—सूर जिये तौ जग जस पावे, मरि सुरलोक सिधावे—६-१५१।

जियो, जियों—िक. स. [हं. जीना ] जिया, जीवित हो गया। उ.—(क) जिहिं तन हरि भजिबों न कियो। सो तन सूकर-स्वान-मीन ज्यों इहिं सुख कहा जियों—२-१६। (ख) बिसरि गई सब रोष हरष मन पुनि फिरि मदन जियों री—१६८६।

संशा पुं.—जीना, जीवित रहना। उ.—इहिं बिधि विकल सकल पुरबासी, नाहिंन चहत जियौ-६४४। जिरगा—संशा पुं. [फ़ा. जिर्ग:] (१) भुंड। (२) मंडली। जिरह—संशा स्त्री. [ ऋ. जुरह] (१) हुज्जत, वाद-विवाद।

(२) पूँछतांछ, छानबीन ।

संज्ञा स्त्री, [फ़ा, ज़िरह] कवच।
जिरही—वि, [हि, जिरह] जो कवच पहने हो।
जिराद्यत, जिरायत—संज्ञा स्त्री, [ग्रा, ज़िराग्रत] खेती।
जिला—संज्ञा स्त्री, [ग्रा, विमक दमक।

संशा पुं. [ श्र. ज़िला ] प्रांत का विभाग।
जिलाट—संशा पुं. [ सं. ] एक प्राचीन बाजा।
जिलाना—कि. स. [ हिं. जीना ] (१) जिंदा या जीवित करना। (२) पालना, पोसना। (३) मरने से बचाना।
जिलाह—संशा पुं. [ श्र. जल्लाद ] ग्रत्याचारी।

जिल्द्—संज्ञा स्त्री. [ श्र. ] (१) खाल। (२) ऊपर का चमड़ा। (३) दफ्ती। (४) एक पुस्तक। (४) पुस्तक का एक भाग।

जिल्लत—संशा स्त्री. [ श्र. ज़िल्लत ] (१) श्रनादर, श्रपमान । (२) दुर्गति, दुर्वशा ।

मुहा. - जिल्लत उठाना (पाना)-भ्रपमानित होना ।

जिव—संज्ञा पुं. [सं. जीव ] जीव, प्राणी, जीवधारी।
उ.—जिव की कियों कळू निहं होइ—ह-१७३।
जिवन—संज्ञा पुं. [सं. जीवन ] जीवन, प्राणाधार,
परम प्रिय। उ.—मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके
भुज मोहिं बँधे दिखाए—१०-३७०।
जिवाँना—कि. स. [हिं. जिमाना ] भोजन कराना।
जिवाइ—कि. स. [हिं. जिलाना ] जीवत करके।
जिवाई—कि. स. [हिं. जिलाना ] जिला लेना, जीवत
कर लेना। उ.—सुक श्रमुर कों लेत जिवाई—ह-२७३।
जिवाऊँ—कि. स. [हिं. जिलाना ] जिलाऊँ, जीवनदान
दूँ। उ.—रतन चौदह तहाँ तें प्रगट होहिं तब,
श्रमुर कों मुरा, तुम्हें श्रमुत प्याऊँ। जीतिही
तब श्रमुर महा बलवंत कों, मरें निहं देवता यो
जिवाऊँ—द-६।

जिवाए—कि. स. [हिं. जिलाना] जीवित कर दिये। उ.—मृतक भए सब सखा जिवाए, बिष-जल जाइ पियौ—१ ३८।

जिवाजिव—संज्ञा पुं. [सं.] चकोर पक्षी।
जिवाना—कि. स. [हिं. जिलाना] जीवित करना।
जिवायौ—कि. स. [हिं. जिलाना] जिलाया, जीवित किया। उ.—कृष्ण सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ—२-३२।

जिवावतिं—कि. स. [ .हिं. जिमाना ] जिमाती हैं, खिलाती हैं, भोजन कराती हैं। उ.—बल-मोहन दोउ करत बियारी। प्रेम सहित दोउ सुतनि जिवावति, रोहिनि ग्रम जमुमति महतारी—१०-२२८।

जिल्गु—िव. [ सं. ] जीतनेवाला, विजयी । संज्ञा पुं.— (१) विष्णु । (२) इंद्र । (३) ग्रर्जुन । (४) सूर्य । (५) वस्तु ।

जिस—िति. [ सं. य:, यस् ] 'जो' का विभिक्त-सिहत विशेष्य के साथ प्रयुक्त रूप।

सर्व.—'जो' का विभक्ति लगने के पूर्व रूप।
जिस्म, जिस्म—संशा पुं. [फ़ा. जिस्म] शरीर।
जिह—संशा स्त्री. [फ़ा. ज़द, सं. ज्या] धनुष की डोरी।
सर्व. [हिं. जिस ] जिस। उ.—जिहके प्रीति
निरंतर मन मैं सो मन क्यों समुभावै—३४४१।

जिहन—संशा पुं. [ श्र. जिहन ] समक, बुद्धि।

मुहा.—जिहन खुलना—बुद्धि बढ़ना। जिहन

लड़ना—बुद्धि का काम करना। जिहन लड़ाना—
बुद्धि दौड़ाना।

जिहाज—संज्ञा पुं. [हं. जहाज ] जलयान, जहाज ।
जिहाद—संज्ञा पुं. [ग्र.] धर्म-युद्ध ।
जिहालत—संज्ञा स्त्री. [ग्र. जहालत ] मूर्वता ।
जिहासा—संज्ञा स्त्री. [सं.] त्याग की इच्छा ।
जिहासु—वि. [सं.] त्याग का इच्छक ।
जिहिं, जिहि—सर्व. [हं. जिस ] जिसे, जिसको । उ.—
साँची निस्चय प्रेम को जिहि रे मिले गोपाल—३४४३ ।
जिहीर्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] लेने या हरने की इच्छा ।
जिहीर्ष्य—वि. [सं.] लेने या हरने का इच्छुक ।
जिह्या—वि. [सं.] (१) वक्र । (२) दुष्ट । (३) खिन्न ।

संज्ञा पुं.—(१) एक फूल। (२) म्रधर्म।
(३) दुष्टता।

जिह्यग, जिह्यगामी—िव. [सं.] (१) टेढ़ी चालवाला।
(२) धीमी चालवाला। (३) कुटिल, कपटी।
संज्ञा पुं.—साँप, सर्प, भुजंग।
जिह्यता संज्ञा की [सं] (१) नेक्सार । (२) कीनालन

जिह्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टेढ़ापन। (२) धीमापन। (३) कुटिलता, कपट। जिह्यित—वि. [सं.] (१) टेढ़ा। (२) चिकत। जिह्यीकृत—वि. [सं.] टेढ़ा किया हुआ।

जिह्नाशृत—ाव. [स.] टढ़ा किया हुग्रा।
जिह्नाल—वि. [सं.] चटोरा, चट्टू, जिभला।
जिह्ना—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीभ।
जिह्नाग्र—संज्ञा पुं. [सं.] जीभ की नोक, टूँड़।
जिह्नाग्र्ल—संज्ञा पुं. [सं.] जीभ का पिछला स्थान।
जिह्नाग्र्लीय—वि. [सं.] जिह्नाग्र्ल से संबंधित।

संशा पुं.— वह वर्ण (जैसे क, ख) जिसका उच्चारण जिह्नामूल से होता है। जिह्ना—संशा स्त्री. [सं.] जीभी। जींगन—सशा पुं. [सं. जुंगण ]जृगनूँ, खद्योत। जी—संशा पुं. [सं. जीव] (१) मन, चिता। उ.—मोहिं छाँड़ि तुम श्रीर उधारे, मिटे सूल क्यों जी कौ—१-१३८। (२) हिम्मत। (३) संकल्प, विचार। मुहा,—जी श्रच्छा होना—स्वस्थ होना। जी

श्राना—प्रेम होता। जी उकताना (उचटना)—मन ् न लगना, तिबयत घबराना। जी उठना—(१) मन न लगना। (२) जीवित हो जाना। जी उठाना—(१) विरक्त होना। (२) इच्छा करना। जी उड़ जाना (उड़ना)—घबराहट होना। जी उदास होना— खिन्न या उदास होना। जी उलट जाना (उलटना)---(१) होश न रहना। (२) विरक्त होना। जी करना-(१) साहस करना। (२) इच्छा होना। जी कौंपना— डरना। जी का बुखार (गुबार) निकालना—क्रोध या दुख से बकना-भकना। जी का बोभ हलका करना--खटका मिटाकर चिंता दूर करना। जी की श्रमान माँगना—प्राण दान की प्रतिज्ञा कराना। जी का आ लगना—प्राण संकट में पड़ना। जी की निकालना— (१) इच्छा पूरी करना (२) क्रोध या दुख से बकना-भकना। जी की जी में रह जाना (रहना)—इच्छा पूरी न हो सकना। जी की पड़ना—प्राण बचाना कठिन हो जाना। जी का—साहसी, हिम्मती। जी के पीछे (पैंडे) पड़ना—बहुत परेशान करना, सताना, कष्ट देना। जी के पैड़े परयो है-जी के पीछे पड़ा है, बहुत सताता या कष्ट देता है। उ.—गोकुल के ग्वैंड़े एक सावरो सो ढोटा माई ऋँ खियन के पैंड़े पैठि जी के पैंड़े परयौ है— ८७२। जी को जी समभना—दूसरे को भी श्रपने समान श्रादमी समभना, दूसरे से मनुष्यता का व्यवहार करना। जी (को) मारना—(१) इच्छास्रों को रोकना। (२) संतोष करना। जी को लगना—(१) वेदना या सहानुभूति होना।(२) प्रियथा भला लगना।(३) चिंता होना। जी को न लगाना—विशेष चिंता न करना । जी खटकना—(१) संदेह या चिंता होना। (२) जी हिचिकचाना । जी खद्दा करना—्घृणा या विरिक्ति उत्पन्न करना, चित्त हट जाना, घृणा होना। जी खपाना—(१) मन लगाकर परिश्रम से काम करना । (२) बहुत कष्ट सहना। जी खुलना—संकोच या हिचक न रहना। जी खोल कर—(१) बिना संकोच या हिचक के, बेधड़क। (२) मनमाना। (३) उत्साह के साथ । जी गँवाना—जान खोना। जी गिरना—

(१) सुस्ती या श्रालस्य छाना। (२) हल्का ज्वर होना। जी घबराना—(१) मन व्याकुल होना। (२) मन न लगना। जी चलना—(१) इच्छा होना। (२) चित्त विचलित होना। (३) मोहित होना। जी चला—(१) वीर। (२) दानी (३) रसिक। जी चलाना—(१) इच्छा करना । (२) चित्त विचलित करना। (३) हिम्मत बाँधना। जी चाहना— इच्छा होना। जी चाहे—यदि इच्छा हो। जी चुराना (छुपाना) — किसी काम से भागना या टाल-टूल करना। जी छूटना—(१) साहस या उत्साह में कमी होना। (२) थकावट या भ्रालस्य भ्राना। (३) किसी भगड़े से पीछा छुटना। जी छोटा करना—(१) निरुत्साहित या उदास होना। (२) कंजूसी करना। जी छोड़ना—(१) प्राण त्यागना । (२) हिम्मत हारना। जी छोड़कर भागना—इस तरह भागना कि कहीं साँस लेने के लिए भी न रकना। जी जलना—(१) गुस्सा या भुँभलाहट लगना, कुढ़ना। (२) डाह या ईर्ष्या होना। जी जलाना—(१) कुढ़ाना, चिढ़ाना। (१) सताना, दुखी करना। (३) ईर्णा या डाह पदा करना। जी जानता है (होगा)-जो कुछ या जैसा कुछ किया या सहा वह कहा नहीं जा सकता। जी जान एक करना (लड़ाना)—(१) खूब मन लगाना। (२) कड़ा परिश्रम करना। जी जानै—जो कुछ सहा या किया है, मेरा जी ही जानता है। उ.—ऐसी कै ब्यापी हों मनमथ मेरो जी जानै माई स्याम स्याम कहि रैनि जपति—१६५६। जी-जान से जुटना (लगना)—(१) खूब मन लगाना, ध्यान के काम करना। (२) कड़ी मेहनत करना। किसी को जी-जान से लगना—(१) किसी को बरा-बर काम या बात की चिंता रहना और उसके लिए प्रयत्न करना। (२) स्वार्थ श्रदकने के कारण किसी काम या बात को पूरा करने का शक्ति भर प्रयत्न करना। जी टूट जाना (टूटना)—निरुत्साह या निराशा होना । जी टँगा रहना (होना)—चित्त चितित रहना। जी टटोलना—मन की इच्छा जानने-परखने की कोशिश करना, मन की थाह लेना।

जी ठंडा होना—(१) चित्त शांत या संतुष्ट होना। (२) इच्छापूर्ति से प्रसन्नता होना। जी उक्तना— (१) चित्त स्थिर होना। (२) हिम्मत बँधना। जी डालना—(१) जीवित करना । (२) मरने से बचाना। (३) प्रेम करना। (४) निराश, उदास या निरुत्साहित होना । जी डूबना—(१) मूछित होना । (२) घबराहट होना। (३) निराज्ञा होना। जी ढहा जाना—(१) मूर्छा सी ग्राना।(२) उदासी होना। जी तपना—कोध चढ़ना। जी तरसना— (१) बहुत इच्छा होना। (२) किसी के लिए ग्रधीर या दुखी होना। जी दहलना—बहुत भय लगना। जी दान-प्राण का दान या रक्षा। जी दार-साहसी, हिम्मती। जी दुखना—कष्ट या दुख होना। जी दुखाना—दुख देना, सताना। जी देना—(१) मरना। (२) बहुत प्रेम करना। जी दौड़ना—(१) बड़ी चाह होना। (२) जी भटकना। जी घँसा जाना— (१) मूर्छा-सी श्राना। (२) उदास होना। जी धङ्कना—(१) भय के कारण घबराहट होना। (२) साहस या हिम्मत न बँधना। जी धकधक करना (होना)—डर से घबराहट होना। जी निकलना— (१) मृत्यु होना। (२) डर लगना। (३) बहुत कष्ट होना। जी निढाल होना—(१) जी बहुत घबराना। (२) उदासी या खिन्नना होना। जी पक जाना (पकना)—कोई श्रिय बात देखते-सुनते चित्त बहुत दुखी या खिन्न हो जाना। जी पड़ना—(१) शरीर में प्राण पड़ना। (२)मरे हुए में जान सी ग्राना, निरुत्सा-हित में उत्साह भर जाना। जी पकड़ लेना—कलेजा थामना। जी पकड़ा जाना—संदेह या खुटका पैदा होना। जी पर आ बनना—अचानक ही कोई ऐसा संकट श्राना कि प्राण बचाना कठिन हो जाय। जी पर खेलना—(१) प्राण संकट में डालना। (२) प्राण की चिंता न करके बड़े साहस का काम करना। जी पानी करना—(१) प्राण लेने-देने की स्थित पैदा करना। (२) कठोर चित्त को कोमल कर देना। जी पानी होना-कठोर चित्त का कोमल हो जाना। जी पिघलना—कठोर चित में दया या प्रेम का संचार होना। जी पीछे पड़ना—दुख म्रादि भूलकर मन बहलना। जी फट जाना—(१) पहले सा प्रेम न रहना, प्रेम में ग्रंतर पड़ जाना। (२) उत्साह भंग होना। जी फिर जाना पहले सा प्रेम न रहकर विरक्ति या श्ररुचि उत्पन्न होना । जी फिसलना — (१) मन मोहित होना। (२) पाने की इच्छा या लालसा उत्पन्न होना। जी फीका होना—चित हट जाना, विरक्ति होना। जी बँटना—(१) दुख ग्रादि भुलाने के लिए मन का बहलकर दूसरी भ्रोर लगना। (२) ध्यान स्थिर न रहना, मन उचटना। (३) केवल एक के प्रति प्रेम न रह जाना। जी बंद होना—विरक्ति होना। जी वढ़ना—(१) उत्साहित होना। (२) हिम्मत ग्राना। जी बढ़ाना—(१) उत्साहित करना । (२) हिम्मत बँधाना। जी बहलना—(१) आनंद या अनोरंजन होना। (२) दुख-चिंता भूल कर किसी अन्य बात या काम में चित्त लगना। जी बहलाना—(१) म्रानंद या मनोरंजन करना। (२) दुख-चिंता भुलाने के लिए दूसरे काम में मन लगाना। जी बिखरना-(१) चित्त ठिकाने न होना। (२) मूर्छा होना। जी बिगड़ना—(१) जी मचलाना। (२) धिन मालूम होना। (३) ग्रस्वस्थ होना। जी बुरा करना—क करना। (किसी की त्योर से ) जी बुरा करना-किसी के प्रति घुणा, कोध या अरुचि होना। (दूसरे का) जी बुरा करना—दूसरे के मन में घृणा, क्रोध या श्ररुचि पैदा करना। जी बुरा होना—(१) जी मचलाना।(२) घिन या अरुचि होना। (३) ग्रस्वस्थ होना। जी बैंठ जाना (बठना)-(१) चित ठिकाने न होना। (२) मर्छा ग्राना। (३) उदास या खिन्न होना। जी भटकना—(१) घबराहट होना, मन उड़ा-उड़ा फिरना। (२) बहुत चिंता लगना, बड़ी लालसा होना। जी भिटकना—धिन लगना। जी भर त्राना—चित्त में दुख या दया उमड़ना, रोमांच होना । जी भरकर-जितना जी चाहे उतना, मनमाना। जी भरना — (कि. भ्र.) (१) संतुष्ट होना, मन भर जाना। (२) इच्छा पूरी होना। (३) रुचि या इच्छा के अनुकूल काम होना । (कि. स.)

(१) खटका या संदेह मिटाना । (२) दिलजमई करना । जी भरभरा उठना—वित्त में दुख या दया उमड़ना, रोमांच होना। जी भारी करना—चित्त खिन्न या दुली करना। जी भारी होना—(१) चित्त उदास होना। (२) तिबयत ठीक न होना। जी भुरभुराना— मोहित होना, लुभाना । जी मचलना (मतलाना)— (१) वमन या कै सी होने लगना। (२) घिन होना। जी मर जाना (मरना)—(१) चित्त उदास होना। (२) उत्साह या उसंग न रहना। जी मलमलाना— (१) श्रफसोस या पछताना होना। (२) स्नेह को प्रकट करने का भ्रवसर न पाने के कारण पछताना होना। जी मारना—(१) उमंग या उत्साह को दबाना। (२) संतोष करना। (किसी से) जी मिलना—(१) समान प्रकृति के कारण विचार, कार्य श्रीर भाव एक से होना। (२) स्नेह होना। जी में ब्राना—(१) विचार उठना। (२) इच्छा या इरादा होना । जी में घर करना—(१) बराबर ध्यान बना रहना। (२) मन में बसना। जी में खुभना (गड़ना, चुभना)—(१) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (२) बराबर ध्यान बना रहना। जी में जलना--(१) मन ही मन कुढ़ना या भुँभलाना। (२) डाह या ईध्या होना । जी में जी त्र्याना—चिंता या घबराहट दूर होना, भय या श्राशंका मिट जाना। जी में जी डालना—(१) चिंता या घबराहट दूर करना। (२) विश्वास दिलाना; दिलजमई कराना। जी में डालना—सोचना, बिचारना। जी में धरना— (१) ख्याल करना, ध्यान बनाये रहना। (२) नाराज होना; बुरा मानना। जी में पैठना (बैठना)—(१) मन में जम जाना। (२) बराबर ध्यान में बना रहना। (३) मन में निश्चित या दृढ़ होना। जी में रखना—(१) ध्यान रखना। (२) बुरा मानना। (३) बात गुप्त रखना, प्रकट न करना। (किसी का जी रखना—(१) मन को रख लेना, इच्छा पूरी कर देना। (२) प्रसन्न या संतुष्ट करना। जी रकना— (१) जी घबराना। (२) जी में संकोच होना। जी लगना—(१) मन का किसी काम में रम जाना।

(२) मन बहलना। (३) प्रेम होना। जी लगाना— किसी से प्रेम करना। जी लगा रहना (होना)— चित्त में ध्यान या ख्याल बना होना। किसी से जी ाना—प्रेम करना । जी लड़ाना—(१) प्राण जाने की चिंता न करके किसी काम में जुटना। (२) सारा ध्यान लगा देना। जी लरजना—भय या आशंका होना। जी ललचाना—(१) कुछ पाने की लालसा या इच्छा होना। (२) मन मोहित होना। जी ललचाना—(क्र. थ्र.) (१) लोभ होना। (२) मोह होना। (क्रि.स.) (१) एक दूसरे के मन में लोभ पैदा करना। (२) दूसरे का मन लुभाना या मोहित करना । जी लुटना—मन मुग्ध होना । जी लुभाना— (िक. ग्र.) मन मोहित होना। (िक. स.) चित्त ध्राकर्षित करना, मन मोहित करना। जी लूटना— मन मोहित करना। जी लेना—(१) जी चाहना, चाह होना। (२) मन की थाह लेना, मन की इच्छा जानने-परखने की कोशिश करना। (दूसरे का जी लेना)—मार डालना। जी लोटना—मन छटपटाना। जी सन (सन्न, सुन्न) होना—भय-भ्राशंका से जी घबरा जाना। जी सनसनाना (साय साय होना)-भय-श्राशंका से शरीर स्तब्ध होना। जी से-खूब ध्यान लगाकर। जी से उतर जाना—स्नेह, श्रद्धा या श्रादर न रह जाना, विरक्ति या उदासीनता होना। जी से जाना—जान खो बैठना। जी से जी मिलना— (१) भावों, विचारों श्रौर श्रादर्शों में समानता होना । (२) परस्पर प्रीति होना । जी हट जाना (हटना)— इच्छा या चाह न रहना, विरक्ति हो जाना। जी हवा होना—मृत्यु होना। जी हवा हो जाना—भय-श्राशंका से घबरा जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना (लेना)—(१) प्रसन्न या संतुष्ट रखना। (२) सांत्वना या धीरज दिये रहना। जी हारना— (१) घबरा जाना। (२) हिम्मत या साहस छोड़ना। जी हिलना—(१) भय से हृदय काँपना। (२) दया से चित्त उद्विग्न होना।

श्रव्य. [सं. जित्, प्रा. जिव=विजय श्रथवा सं. (श्री) युक्त, प्रा. जुक, हिं. जू ] (१) एक सम्मान

सूचक शब्द । (२) किसी बड़े के कथन या संबोधन के उत्तर में प्रति- संबोधन-रूप में कहा जानेवाला शब्द । जीश्र—संज्ञा पुं. [सं. जीव ] (१) मन । (२) हिम्मत । संज्ञा पुं. [सं. जीव ] जीव, प्राणी । जीश्रन—संज्ञा पुं. [सं. जीव ] जीव, प्राणी । जीगन—संज्ञा पुं. [सं. जीव ] जीव, प्राणी । जीगन—संज्ञा पुं. [हिं. जुगनूँ ] जुगनूँ । जीगा—संज्ञा पुं. [हिं. जुगनूँ ] जुगनूँ । जीजा, जीजतु—िक. श्र. [हिं. जीना ] जीता है, जीवत रहता है, जीवन के दिन बिताना है । उ.— (क) चिरंजीव रही सूर नंद-सुत जीजत मुख चितए—३१३१ । (ख) सूर स्थाम बिहरत ब्रज भीतर जीजतु है मुख चाहे—३०६७ । (ग) निसि दिन जीततु है या ब्रज में देखि मनोहर रूप—३२२३ ।

जीजा—संशा पुं. [हिं. जीजी] बड़ी बहन का पति। जीजियति—कि. श्र. [हिं. जीना] जीवित रहती है, जीवन के दिन बिताती है। उ.—दामिनि की दमकिन, बूँदिन की भमकिन, सेज की तलफ कैंसे जिजियति माई है—२८२७।

जीजी—संशा स्त्री. [ सं. देवी, हिं. दीदी ] बड़ी बहन। जीजूराना—संशा पुं. [ देश. ] एक चिड़िया।

जीजै—िक. श्र. [हिं जीना] (१) जीवन के दिन बिताइए, जीवित रहिए। उ.—सुरदास गिरिधर-जस गाइ-गाइ जीजै—१-७२। (२) जीवित है, जीवन के दिन बिताती है। उ.—सूर स्थाम प्रीतम बिनु राधे सोचि सोचि त्रिय जीजै—२८६४।

जीट—संज्ञा स्त्री. [फा. ज़ीट ] डींग।

जीत—संज्ञा स्त्री. [ सं. जिति, वैदिक जीति ] (१) जय, विजय। (२) सफलता। (३) लाभ, फायदा।

संशा स्त्री. [ देश. जीति ] जीति नामक लता। जीतना—िक. स. [ हिं. जीत+ना (प्रत्य.) ] (१) विपक्षी को हराना, विजय प्राप्त करना। (२) सफलता पाना। जीता—िव. [ हिं. जीना ] (१) जो मरा न हो, जीवत। मुहा.—जीता-जागता—जीवित श्रीर सचेत, भला चंगा। जीता लहू—ताजा खून।

(२) नाप या तोल से कुछ ज्यादा ।

क्रि. स, [हिं. जीतना ] विजय प्राप्त की। जीति—क्रि. स, [हिं. जीतना ] (१) युद्ध में विपक्षी को परास्त करके, युद्ध में विजय पाकर। (२) किसी कार्य में विपक्षी को हरा कर। (३) विजय। उ.— जीति भक्त श्रपनें की—१-२७२।

संशा स्त्री. [देश.] एक लता जिसके रेशों से धनुष की डोरी बनायी जाती है।

जीती—कि. स. [हिं. जीतना ] जीत ली, विजय प्राप्त की। उ.—खरभर परी, दियों उन पेंड़ो, जीती पहिली रारि—६-१०४।

क्रि. थ्र.—विजयी हुई। उ.—जीती जीती हैं रन बंसी—१६८८।

कि. श्र. [हिं. जीना ] जीवित श्रौर सचेत (है)।

मुहा.—जीती जागती—जीवित श्रौर सचेत,
भली चंगी। जीती मक्खी निगतना—(१) जान-बूभ
कर श्रन्याय, बुराई या बेइमानी करना। (२) जान-बूभकर श्रन्याय, बुराई या बेइमानी में शामिल होना।
जीते—कि. स. [हिं. जीतना ] जीत सके, विजयी हुए।
उ.—चौपरि जगत मड़े जुग कि । गुन पाँसे, क्रम

श्रंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते—१-६०। कि. श्र. [हिं. जीना] जीवित रहे।

मुहा—जीते जी—(१) जीवित रहते हुए, बने रहते। (२) जीवन भर। जीते जी मर जाना (मरना)—किसी भारी विपित या हानि से जीवन का रस या श्रानंद नष्ट हो जाना, जीवन नष्ट होना। जीते रहो—बड़ों का श्राशीर्वाद, जीवित रहो।

जीतें—कि. स. [हिं. जीतना ] जीतने से, विजयी होने से, सफलता पाने पर । उ.—जीतें जीति भक्त अपनें कें, हारें हारि विचारों—१-२७२।

जीतै—कि. स. [हिं. जीतना ] विजयी हो, जीत जाय। उ.—भगवती कहा तिनकों सुनाई। जुद्ध जीते सो मोहिं बरै श्राई—८-११।

जीतो—कि. स. [हिं. जीना] जीवित रहता। उ.— रसना-स्वाद-सिथिल, लंपट ह्वे, श्रघटित भोजन करतो। यह ब्योहार लिखाइ, रात-दिन, पुनि जीतो, पुनि मरतो—१-२०३। जीत्यो—क्रि.स. [हिं. जीतना] युद्ध में जीता, शत्रु को हराया। उ.—गहि सारंग, रन रावन जीत्यो. लंक विभीषन फिरी दुहाई—१-२४।

जीन—संज्ञा पुं. [ फ़ा. ज़ीन ] घोड़े की काठी।
वि. [ सं. जीर्गा ] (१) पुराना, जर्जर। (२) वृद्ध।
जीनत—संज्ञा स्त्री. [ फ़ा. ज़ीनत ] (१) शोभा, सुंदरता।

(२) शृंगार, सजावट।

जीना—िक, स. [सं. जीवन ] (१) जिंदा रहना, न मरना। (२) जीवन के दिन बिताना, जिंदगी काटना। मुहा,—जब तक जीना तब तक सीना—जीविका के लिए जीवन भर प्रयत्न करना या हाथ पैर मारना; जिंदगी भर रोजी कमाने के लिए कुछ न कुछ काम-धंधा करना।

(३) सुली, संतुष्ट या प्रसन्न होना।
मुहा.—श्रपनी खुशी जीना—(इतना स्वार्थी होना
कि) केवल श्रपने को सुली देखकर ही संतुष्ट होना।
संज्ञा पुं. [फा. ज़ीन: ] पक्की सीढ़ी।

जीभ—संशा स्त्री. [सं. जिह्न, प्रा. जिल्म] रसना, जिह्ना। मुहा. - जीम करना - बहुत बढ़ कर बोलना। जीभ खोलना-मुँह से शब्द निकालना । जीभ चलना-(१) कुछ चटपटी चीज खाने की इच्छा होना। (२) बहुत जल्दी-जल्दी बोलना। (३) उचित-प्रमुचित का ध्यान न रखते हुए बकते जाना। जीभ थोड़ी करना-(१) चटोरापन कम करना। (२) बकवाद कम करना, ज्यादा न बोलना। जीभ न करही थोरी—बकवाद कम नहीं करती, बहुत बके जाती है। उ.—मेरी गोपाल तनक सो कहा करि जानै दिध की चोरी। हाथ नचावति आवति ग्वालिन जीभ न करही थोरी। जीभ निकालना—(१) जीभ मुँह से बाहर करना। (२) जीभ खींचना या उलाइना। जीभ पकड़ना—बोलने न देना। जीभ पिराना—बकवाद करने की इच्छा होना। जीभ पिरावति—बकवाद करने या बकने की इच्छा होती है। उ .-- काहे को जीभ पिरावति—३०८१। जीभ बंद करना—बोलने न देना। जीभ बंद होना—चुप रहना। जीभ बढ़ाना-चटोरपन की आदत होना। जीभ लड़ाना-

बहुत बातें या बकवाद करना, बहुत बोलना। जीभ लड़ावति—बेसमभे-बूभे बातें करती हुई। उ.—सुवा पढ़ावति, जीभ लड़ावति, ताहि विमान पठायौ— १-१८८। जरा जीभ हिलाना—मुँह से कुछ कहना, दो-एक शब्द बोलना। जीभ के नीचे जीभ होना— एक बार कही हुई बात बदल देना, प्रपनी बात पर दुढ़ न रहना।

(२) जीभ के श्राकार की कोई चीज।
मुहा.—कलम की जीभ—कलम का नुकीला भाग।
जीभी—संशा स्त्री. [हिं. जीभ] (१) जीभ साफ करने
की लचीली बस्तु। (२) छोटी जीभ।

जीमना—क्रि. स. [सं. जेमन ] भोजन करना। जीमृत—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) पर्वत। (२) बावल। (३) इंद्र। (४) जीविका देनेवाला। (४) एक ऋषि।

(६) एक मल्ल जो भीम द्वारा मारा गया था।
जीमृत्रमुक्ता—संज्ञा पुं. [सं.] बादल से बरसनेवाला एक
किल्पत मोती जिसे किसी ने ग्राज तक नहीं देखा।
जीमृतवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) ज्ञालिवाहन राजा का पुत्र जिसकी पूजा पुत्र की कामनावाली स्त्रियाँ करती हैं। (३) जीमृतकेतु राजा का
पुत्र जो नागानंद नाटक का नायक है।

जीमृहवाही—संज्ञा पुं. [सं. जीमृहवाहिन् ] धुष्रां, धूम। जीय—संज्ञा पुं. [हिं. जी ] मन, चित्त, जी।

मुहा.—जीय धरे—(१) ध्यान दे, परवाह करे। (२) मन में बुरा माने, श्रसंतुष्ट हो। उ.—माधी जू, जो जन तें बिगरे। तड कृपाल करनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरे—१-११७

संज्ञा पुं. [सं. जीव] जीव, प्राणी।
जीयट—संज्ञा पुं. [हिं. जीवट] साहस, हिम्मत।
जीयति—कि. स. स्त्री. [हिं. जीना] जीवित है, जीती
है। उ.—जिय जिय सोच करत मारुत-सुत, जीयित
न मेरें जान। के वह भाजि सिंधु मैं दूबी, के उहिं
तज्यो परान—६-७५।

संज्ञा स्त्री.—जीवन, जिंदगी। जीयदान—संज्ञा पुं. [सं. जीव = प्राण + दान] प्राणदान, जीवनदान। उ.—बालक-काज धर्म उनि

छाँड़ी राय न ऐसी कीजें हो। तुम मानी बसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो। जीयन—संज्ञा पृं. [सं. जीवन, हिं. जीना] जीवन, जीना, जीवित रहना। उ.—धुग तव जन्म, जीयन धुग तेरी, कही कपट-मुख बाता—६-४६। जीर—संशा पुं. [सं.] (१) जीरा। (२) फूल की केसर या जीरा। (३) तलवार। वि.—तेज या जल्दी चलनेवाला। संशा पुं. [ फ़ा. जिरह ] जिरह, कवच। वि. [ सं. जीर्गा ] पुराना, जर्जर, नष्ट । जीरई-कि. श्र. [हिं. जीरना ] फटती है। जीरक-संशा पुं. [सं.] (१) जीरा। (२) फूल-केसर। जीरण, जीरन-वि. [ सं. जीर्ण ] पुराना, फटा-पुराना। उ-(क) जीरन पट, कुपीन तन धारि । चल्यौ सुरसरी सीस उधारि—१-३४१। (ख) निरपत पटे कटुक त्राति जीरन चाहत मम उर लेख्यी--३००४। संशा पुं. [ सं. ] (१) जीरा। (२) फल-केसर। जीरणता, जीरनता, जीरनताई—संशा स्त्री. [ सं. जीर्णता ] (१) बुढ़ापा, बूढ़ापन। (२) पुरानापन। जीरना-कि. श्र. [सं. जीर्ग ] (१) पुराना होना। (२) मुरकाना, कुम्हलाना। (३) फटना। (४) नष्ट होना। जीरा—संशा पुं, [ सं. जीरक, फ़ा. ज़ीर: (१) एक पौधा जिसमें सौंफ की तरह के फूल लगते हैं। (२) जीरे को तरह के महीन बीज। (३) फूलों का केसर। जीरी—संशा पुं. [हिं. जीरा] एक तरह का धान। जीर्गा—वि. [सं.] (१) बहुत बुड्ढा। (२) बहुत दिनों का। (३) फटा-पुराना श्रौर कमजोर। यौ, -- जीर्ण-शीर्ण-फटा-पुराना, टूटा-फुटा। (४) पेट में अच्छी तरह पचा हुआ। संशा पुं.--(१) जोरा। (२) फूल-केसर। जीर्णता—संज्ञा स्त्री, [सं, ] (१) बुढ़ापा। (२) पुरानापन। जीर्गा—वि. स्त्री. [ सं. ] वृद्धा, बुढ़िया।

जीर्गोद्धार—संज्ञा पुं. [ सं. जीर्गं+उद्धार ] (१) टूटी

का पुनः सुधार या उद्धार।

फूटी चीजों की मरम्मत। (२) मृत संस्थाओं ग्रादि

जील—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ज़ीर] (१) धीमा या मध्यम स्वर। (२) बायां तबला। जीला—वि. [सं. भिल्ली] (१) पतला। (२) महीन। जीलानी—संज्ञा पुं. [ अर.] एक तरह का लाल रंग। जीवंत—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) प्राण । (२) स्रोषध। वि. — जीता-जागता, जीवित ग्रौर सचेत। जीवंतिका, जीवंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता। जीव-संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) आतमा, जीवातमा । (२) प्राण, जीवनतत्व, जीव। उ.—(क) निसि-निसि ही रिषि लिए सहस-दल दुरबासा पग धारयी। ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उबारयौ-१-१०६। (ख) रुद्र अपमान कियौ सती तब जीव दियौ-४-६। (३) प्राणी, जीवधारी। यौ,-जीव-जंतु-(१) जानवर। (२) कीड़े-मकोड़े। (४) जीवन। (४) विष्णु। (६) वृहस्पति। संशा पूं. [हिं. जी ] जी, मन। उ.—मेरे जीव ऐसी त्रावत भइ---२७६२। जीवक—संशा पुं. [ सं. ] (१) प्राणधारी, जीव । उ.— जब कही पवन-सुत बंधु-बात । तब उठी सभा सब हरषगात । ज्यौं पावस-ऋतु धन-प्रथम-धोर । जल जीवक, दादर रटत मोर—६-१६६। (२) संवेरा। (३) सेवक। (४) व्याज या सूद खानेवाला। (५) एफ जड़ी या बूटी। जीवट—संशा स्त्री. [ सं. जीवथ ] साहस, हिम्मत । जीवत-कि. स. [हिं, जीना ] जीवित रहता है। जीवति—वि. [हिं, जीना] जीवित रहते हुए, जीते जी। उ. - जो पे पतिव्रता व्रत तेर, जीवति बिछुरी काइ--६-७७। संज्ञा स्त्री, -- जीविका, रोजी। जीवथ-संज्ञा पुं, [सं.](१) प्राण।(२) मेघ।(३) मोर। वि,—(१) धर्मात्मा। (२) दीर्घ श्रायुवाला।

संज्ञा स्त्री.—जीविका, रोजी।
जीवथ—संज्ञा पुं. [सं.](१) प्राण।(२) मेघ।(३) मोर।
वि,—(१) धर्मात्मा। (२) दीर्घ प्रायुवाला।
जीवद—संज्ञा पुं. [सं.](१) जीवनदाता।(२) वैद्य।
जीवदान—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणदान, प्राणरक्षा। उ.—
दोष इन कियो मोहिं छमा प्रभु की जिए भद्र करि
सीस जीवदान दीयौ।
जीवधन—संज्ञा पुं. [सं.](१) जीव या पशु-रूप धन,

पशु-धन । (२) जीवनधन, बहुत प्रिय। जीवधानी—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] जीव-श्राधार, पृथ्वी । जीवधारी-संज्ञा पुं. [ सं. ] जंतु, प्राणी, जानवर। जीवन—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) जीवित रहने की श्रवस्था, जिंदगी। (२) जीवित रहने का भाव। (३) प्राण या जीवन का सहारा। (४) प्राणाधार, परम प्रिय। उ.—येई हैं सब ब्रज के जीवन सुख पावहिं लिएें नाम-३६७। (५) जीविका। (६) जल। (७) वायु। ं (८) पुत्र । जीवनचरित, जीवनचरित्र—संज्ञा पुं. [सं. जीवनचरित ] (१) जीवन का वृत्तांत। (२) जीवनी। जीवनधन—संशा पुं. [ सं. ] (१) सबसे प्रिय वस्तु या व्यक्ति। (२) बहुत प्रिय, प्राणाधार। जीवनधर—वि. [ हिं. जीवन + धारण ] जीवनदायक। जीवनद्—वि. [ हिं. जीवन+द ] जीवनदायक । जीवनकर—वि. [हिं, जीवन+कर ] जीवनदायक। जीवनबूटी—संशा स्त्री. [ सं. जीवन + हिं. बूटी ] सँजीवनी बूटी। जीवनमूरि—संशा स्त्री. [सं. जीवन+मूल ] (१) ग्रत्यंत प्रिय वस्तु, प्राणिप्रय । उ.—िखन मुँदरी, खिनहीं हनुमत सौं, कहति बिसूरि-बिसूरि। कहि मुद्रिके, कहाँ तें छाँड़े मेरे जीवनमूरि—६ ८३ । (२) संजीवनी बूटी। जीवनवृत्त, जीवनवृत्तांत--संशा पुं. [ सं. ] जीवन चरित। जीवनवृत्ति—संशा स्त्री. [ सं. ] जीविका, रोजी। जीवनहर-वि. [ हिं. जीवन+हरना ] जीवननाशक। जीवनहारि—वि. [हिं, जीवन+हार ] जीवित रहने की इच्छा या कामना रखनेवाली। उ.—परति धाइ जमुना-सलिल, गहि आनितं व्रजनारि। नैंकु रही सब मरहिंगी, को है जीवनहारि-५८। जीवनहेतु—संज्ञा पुं. [ सं. ] जीवन-साधन, जीविका। जीवना -- क्रि. ग्र. [हिं. जीना ] जीवित रहना। जीवनावास—संशा पुं. [सं. जीवन+त्र्यावास ] शरीर। जीवनि—संशा पुं. [ सं. जीवन ] जीवन की, जीवित रहने की । उ, --- जीवनि-स्रास प्रवल श्रुति लेखी । साच्छात सो तुममें देखी-१-२८४।

संज्ञा स्त्री. [ सं. जीवनी ] (१) संजीवनी बूटी। (२) जिलानेवाली वस्तु । (३) प्राणप्रिय वस्तु । जीवनी—संज्ञा, स्त्री, [सं. जीवन+ई (प्रत्य,)] जीवन-वृत्त या वृत्तांत, जीवनचरित। जीवनीय—वि, [ सं. ] (१) जीवनप्रद। (२) व्यवहार या बरतने योग्य। संशा पुं,—(१) जल। (२) दूध। जीवनोपाय—संशा पुं. [ सं. जीवन+उपाय ] जीवका । जीवनोषध—सं. स्त्री. [सं. जीवन+श्रोषध] वह दवा जो मरते हुए को भी जिला सके, संजीवनी श्रीषध। जीवन्मुक्त—वि. [सं.] जो जीवन-काल में ही श्रात्म-ज्ञान द्वारा सांसारिक माया या बंधन से छूट जाय। जीवन्मृत-वि. [सं.] जो जीते जी मरे के समान हो। जीवपति—संशा पुं, [सं, जीव+पति ] धर्मराज। संज्ञा स्त्री, [सं,] सुहागिनी स्त्री। जीवप्रभा-संज्ञा स्त्री. [सं.] ग्रात्मा । जीवबंद, जीवबंधु—संज्ञा पुं. [देश.] गुलदुपहरिया। जीवयोनि—संज्ञा स्त्री [ सं. ] जीव-जंतु, प्राणी। जीवरा—संशा पुं. [ हिं. जीव ] जीव, प्राण। जीवरि, जीवरी—संज्ञा पुं. [सं. जीव या जीवन] जीवन या प्राण-धारण करने की शक्ति। उ, बीज मन माली मदन चुर आलबाल बयौ। प्रेम-पय सींच्यौ पहिल ही सुभग जीवरिंदयौ--३३०७। जीवलोक—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी, मृत्युलोक । जीववृति—संशा स्त्री. [सं. ] (१) जीव का गुण या व्यापार। (२) पशु पालने का व्यवसाय। जीवसू—वि. [सं.] जिसकी संतान जीवित हो।

जीवलोक—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी, मृत्युलोक ।
जीववृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीव का गुण या
व्यापार । (२) पशु पालने का व्यवसाय ।
जीवस्—िवं. [सं.] जिसकी संतान जीवित हो ।
जीवस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] हृदय जहाँ जीव रहता है ।
जीवहत्या, जीविहेंसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीवों का
वध । (२) जीवों का वध करने से लगनेवाला पाप ।
जीवहु—िक. स. [हिं. जीना] जीवित रहो, जियौ । उ.
—(क) जुग जुग जीवहु कान्ह, सबिन मन भावन रे
—१०-२८। (ख) स्रदास प्रभु जीवहु जुगजुग—४१८।
जीवांतक—संज्ञा पुं [सं. जीव+श्रंत+क=करनेवाला]
(१) जीवहिंसक। (२) व्याध, बहेलिया। (३) काल।
जीवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीधी रेखा, ज्या। (२)

चनुष की डोरी। (३) भूमि (४) जीविका। (५) जीवन।

जीवाजून—संज्ञा पुं. [ सं. जीवयोनि ] जीव-जंतु। जीवागु—संज्ञा पुं. [ सं. ] प्राण-युक्त श्रणु जो श्रनेक रोग फैलाते हैं।

जीवात्मा—संशा पुं. [सं.] प्राणी की चेतन-वृत्ति या जीवन का कारण-रूप तत्व, जीव, श्रात्मा।

जीबाधार—संशा पुं. [सं.] (१) हृदय जो स्रात्मा का स्राक्षय स्थान है। (२) जीवन का हेतु या स्राधार। जीवानुज—संशा पुं. [सं.] गर्गाचार्य जो बृहस्पति के वंशज या उनके स्रनुज माने जाते हैं।

जीवावहु—कि. स. [हि. जिलाना] जिला लेना, जीवित कर लेना। उ.—जब तुम निकसि उदर तें त्रावहु। या विद्या करि मोहिं जीवावहु—६-१७३।

जीवावे—कि. स. [हिं. जिलाना ] जिला ले, जीवित कर ले। उ.—मृतक सुरिन को फेरि जीवावे—६-१७३। जीवावो—कि. स. [हिं. जिलाना ] जिला लो, जीवित कर लो। उ.—मृतक सुरिन को तुमहुँ जीवावो—६-१७३।

जीविका—संशा स्त्री. [सं.] भरण-पोषण का साधन, वृत्ति, रोजी। उ.—मेरी सकल जीविका यामैं रघु पित मुक्त न कीजै। सूरजदास चढ़ों प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै—६-४१।

मृहा.—जीविका लगना—रोजी का ठिकाना होना। जीविका लगाना—रोजी का ठिकाना करना। जीवित—वि. [सं.] जीता हुन्ना, जिंदा। उ.—जीवित रहिही को लों भू पर—१-२८४।

संज्ञा पुं. - जीवन, प्राणधारण ।

जीवितेश—संज्ञा पुं. [ सं. जीवित = जीवन + ईश ]

(१) प्राणाधार, प्राणनाथ। (२) यम। (३) इंद्र।

(४) सूर्य। (४) इड़ा-पिंगला नाड़ी।

जीवी—वि. [सं. जीविन् ] (१) जीवित रहनेवाला, जीने-वाला। (२) जीविका या रोजी करनेवाला।

जीवेश—संज्ञा पुं. [ सं. जीव + ईश ] परमात्मा। जीवें—क्रि. श्र. [ हिं. जीना ] जीवित रहें। उ.—कहाँ विनय करि सुनु रिषिराइ। दोउ जीवें सो करौ

उपाइ--१७३।

जीवै—िक. त्रा. [हिं, जीना] जीवित रहे, जिये। उ.—जीवै तो सुख बिलसै जग मैं, कीरति लोकिन गावै—६-१५२।

जीवो—संज्ञा स्त्री. [हिं. जीना ] जीवित रहना। उ.— लोचन चातक जीवो नहिं चाहत—२७७१।

जीवोपाधि—संशा स्त्री. [सं. जीव + उपाधि ] स्वप्त, सुष्पित ग्रीर जाग्रत ग्रवस्थाएँ।

जीवों—कि. श्र. [हिं.जीना] जीवित रहूँ। उ.—जब लौं हों जीवों जीवन भर, सदा नाम तव जिपहों—६-१६४। जीवों—कि. श्र. [हिं. जीना] जीवित रहो।

जीह, जीही—संशा स्त्री. [हिं. जीभ ] जिह्ना, जीभ, जबान।

जीहो-कि. स. [हिं. जीना] जीवित रहोगे, जियोगे। उ.—धिक धिक नंदिहं कहा, और कितने दिन जीहो-458।

जुंबिश, जुंबिस—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. जुंबिश ] गिति। जु—सर्व. [हिं. जो ] जो। उ.—जौ हरि-व्रत निज उर न धरेगो। तो को श्रम त्राता जु श्रपुन करि, कर कुठावँ पकरेगो—१-७५।

कि. वि.—यदि, भ्रगर।

वि.—नो।

संज्ञा पुं. [हिं.जू] बड़े लोगों के लिए एक संबोधन या श्रादरसूचक शब्द ।

जुत्राती—संशा स्त्री. [ सं. युवती ] युवती । जुत्राँ—संशा पुं. [ सं. यूका, प्रा. जूत्रा ] सिर का जूँ। जुत्राँरी—संशा स्त्री. [ हिं. जुत्राँ ] छोटी जूँ। संशा स्त्री. [ हिं. जवार ] एक मोटा ग्रनाज।

जुत्र्या—संज्ञा पुं. [सं. युज = जोड़ना] (१) गाड़ी की लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है। (२) चक्की की मूठा जिसे पकड़कर उसे चलाते हैं।

संज्ञा पुं. [सं. द्यूत, प्रा. जूत] कौड़ी या ताश का वह खेल जिसमें हारनेवाले से कुछ धन जीतनेवाले को मिलता है, द्यूत। उ.—(क) कौरव-पासा कपट बनाए। धर्म-पुत्र कौं जुत्रा खिलाए—१-२४६। (ख) त्राछो गात त्र्यकारथ गारथौ। करी न प्रीति कमल-लोचन सौं जनम जुत्रा ज्यों हारथौ-१-१०१।
जुत्राचोर-संज्ञा पुं. [हिं. जुत्रा+चोर](१) वह जो
जीतकर खिसक जाय। (२) ठग, वंचक।
जुत्राचोरी-संज्ञा स्त्री. [हिं. जुत्रा+चोरी] ठगी।
जुत्रानी-संज्ञा स्त्री. [हिं. जवानी] युवावस्था।
जुत्रार-संज्ञा स्त्री. [हिं. जवार] एक मोटा ग्रनाज।
संज्ञा स्त्री.-समुद्र का ज्वार।

संज्ञा पुं. [हं. जुत्रा ] जुत्रा खेलनेवाला। उ.— कहो नंद कहाँ छाँड़े कुमार। । चितवत नंद ठगे से ठाढ़े मानो हारयो हेम जुत्रार—२६७१। जुत्रारभाटा—संज्ञा पुं. [हं. ज्वार+माटा ] ज्वार भाटा। जुत्रारी संज्ञा पुं. [हं. जुत्रा ] जुवा खेलनेवाला। उ.—त्र्यधोमुख रहति उरध नहिं चितवत ज्यों गथ हारे थिकत जुत्रारी—३४२५।

जुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्ति] (१) उपाय, ढंग। उ.— जोगन जुक्ति ध्यान निहं पूजा बिरध भऐं पछितात— २-२२। (२) कौज्ञल, चातुरी। (३) चाल, रीति, प्रथा। (४) न्याय, नीति। (४) अनुमान। (६) हेतु, कारण, उपपत्ति।

जुग—संज्ञा पुं. [सं. युग] (१) पुराणानुसार समय का बहुत बड़ा परिमाण। ये संख्या में चार माने गये हैं, यथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर श्रीर कलियुग। उ.—चौपरि जगत मड़े जुग बीते—१-६०।

मुहा.—जुगजुग—चिरकाल तक, बहुत समय तक। उ.—जुगजुग बिरद यहै चिल त्र्यायो भक्ति-हाथ बिकानौ—१-११।

(२) जोड़ा, दल, दो । उ.—श्रद्भुत राम नाम के श्रंक । धर्म-श्रॅंकुर के पावन दें दल मुक्ति-वधू ताटंक । मुनिमन-हंस पच्छ जुग जाकें बल उड़ि ऊरध जात—१-६० ।

मुहा.—जुग टूटना—(१) गुट्ट या दल का तितर-बितर हो जाना। (२) गुट्ट या दल में एका या मेल न रहना। जुग फूटना—दो साथियों में एक का न रहना।

(३) चौसर में दो गोटियों का एक ही घर में होना। (२) पुरुत, पीढ़ी। जुगजुगाना—कि. ग्र. [हिं. जगना—प्रज्वित होना]
(१) दिमदिमाना। (२) कुछ-कुछ उन्नति करना।
जुगत, जुगति—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्ति] (१) युक्ति,
विधान, उपाय। (२) व्यवहार-कुञ्चलता। (३)
चमत्कारपूर्ण उक्ति।
जुगती—वि. [हिं. जुगत] (१) युक्ति या तरकीब

लड़ानेवाला। (२) चतुर, चालाक।
संज्ञा स्त्री,—(१) युक्ति, तरकीब। (२) चतुरता।
जुगनी, जुगनू—संज्ञा पुं. [हिं. जुगजुगाना] (१) एक
कीड़ा जिसका पिछला भाग चमकता है, खद्योत,
पटबीजना। (२) एक गहना।

जुगम—िव. [सं. युगम ] दो, जोड़ा, युग। जुगल—िव. [सं. युगल] वे जो एक साथ दो हों, युगम, जोड़ा। उ.—ग्रंधकार-ग्रज्ञान हरन कों रिव-सिस जुगल-प्रकास—१-६०।

जुगवना—क्रि. स. [सं. योग+त्रवना (प्रत्य.)] (१)
एकत्र या संचित करना, जोड़ना। (२) सुरक्षित रखना।
जुगवनि—वि. [हं. जुग] दो। उ.—द्रुमबङ्खी पर
दीप जुगवनि जननि त्र्यनल त्रिय जारिहे—सा. उ. ४।

जुगाद्री—िव. [सं. युगांतरीय ] बहुत पुराना।
जुगाना—िक. स. [हिं. जुगवना] इकट्ठा करना।
जुगालना—िक. त्र. [सं. ] पागुर करना।
जुगाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. जुगालना ] पागुर।
जुगुत—संज्ञा स्त्री. [हिं. जुगत ] युक्ति, उपाय।
जुगुप्सक—िव. [सं. ] दूसरे की निदा करनेवाला।
जुगुप्सन—संज्ञा पुं. [सं. ] पर-निदा, बुराई।
जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री. [-सं. ] (१) निदा। (२) घृणा।
जुगुप्सा—वे. [सं. ] (१) निदित। (२) घृणित।
जुगुप्सू—िव. [सं. ] बुराई करनेवाला।
जुगुप्सू—िव. [सं. ] बुराई करनेवाला।

जुगुल—िव. [सं. युगल ] दो, दोनों। उ.—(क) मुख की रासि जुगुल मुख ऊपर सूरदास बिल जात— सा. उ. ६। (ख) जुगुल कपाट बिदारि बाट करि लतिन जुही सँधियोंरी—१०-५२।

जुगै—िक, स. [हिं. जुगवना ] (१) जमा या संचित करके। (१) कोशिश करके। उ.—नभ तें निकट स्थानि राखी है जलपुट जरान जुगै—१०-१६५।

शा पुं, [हिं, जुग] युग, जुग। महा.—जुगै जुग—ग्रनेक जुग। उ.—(क) केतिक संख जुगै जुग बीते मानव असुर अहेरो-- ६-१३२। (ख) हरि की भिक्त जुगै जुग बिरधै—२-२।

जुजीठल—संज्ञा पुं. [ सं. युधिष्ठिर ] राजा युधिष्ठिर । जुज्म-संज्ञा स्त्री. [ सं. युद्ध, पाः जुज्म ] लडाई-भगड़ा। जुमवाना-कि. स. [हिं. जुमाना] (१) लड़ने की प्रेरणा देना, लड़ाना। (२) लड़ाकर मरवा डालना।

जुमाऊ—वि. [ हिं. जुज्म, जूम + श्राऊ प्रत्य ) ] (१) युद्ध-संबंधी। (२) युद्ध के लिए उत्साहित करनेवाला। जुमार—वि. [ हिं. जुज्म + त्रार (प्रत्य.) ] वीर-बांकुरा। जुट—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्त, प्रा. जुत ] (१) जोड़ी।

(२) समूह। (३) गुट्ट, दल। (४) मेल का साथी। (५) जोड़ का ग्रादमी।

जुटना-कि. य. [सं. युक्त, प्रा. जुत्त + ना (प्रत्य.) या सं. जुड = बाँधना ] (१) जुड़ना, संबद्ध होना। (२) सटना, लगना। (३) लिपटना, चिमटना। (४) इकट्ठा होना, (४) कार्य में जोग देना। (६) तत्पर होना। (७) एकमत होना।

जुटली—वि. [ सं. जूट ] जूड़ेवाला, जटाधारी, बालों की लंबी लटवाला। उ.—सखी री, नंद-नंदन देखु। धूरि धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेसु— 20-200 1

जुटाना - कि. स. [हिं. जुटना ] (१) दो वस्तुम्रों को जोड़ना। (२) मिलाना, सटाना। (३) इकट्ठा करना। जुटाव — संशा पूं. [हिं. जुटना ] (१) जुटने की िश्या या भाव। (२) जमाव, भीड़, जमावड़ा।

जुटिका—संशा स्त्री. [ सं. ] (१) शिखा, चोटी । (२) लट, गुच्छा, जूड़ी। (३) कपूर।

जुट्टी—संशा स्त्री. [हिं. जुटना] (१) घास-पत्ती का पूला। (२) गड्डी। (३) एक पकवान।

जुठरावत-कि. स. [हिं. जूठा ] जूठा करते हैं। चलाते हैं। उ.—नंद लै लै हरि-मुख जुठरावत— जुड़ाई—५४६। 80-581

जुठायौ-कि. स. [हिं, जठा, जुठारना ] जूठाकर दिया, उच्छिष्ट दिया। उ.—नैन उघारि बिप्र जो देखे, खात कन्हैया देख न पायौ। देखौ आइ जसोदा, सुत-कृति, सिद्ध पाक इहिं स्त्राइ जुठायौ--१०-२४८। जुठनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठ, जूठन ] किसी के आगे का बचा हुन्रा भोजन, जूठन। उ.—भोजन करि नँद अचमन लीन्ही, माँगत सूर जुठनियाँ--१०-२३८। जुठारना—कि. स. [हिं. जूठा] (१) खाने-पोने की चीज मुँह से लगाकर या कुछ खाकर ग्रपवित्र कर देना। (२) किसी वस्तु को स्वयं भोग कर दूसरे के अयोग्य कर देना।

जुिंहारा, जुिंहारे—संज्ञा पुं. बहु. [ हिं. जूठा + हारा, जुठिहारा (एक वचन)] जुठा खानेवाले। उ.— तुम साकट, वै भगत-भागवत, राग-द्रेष तैं न्यारे। सूरदास प्रभु नंदनंदन कहैं, हम ग्वालिन जुठिहारे— 8-2821

जुड़ना-कि. ग्र. [हिं. जुटना या सं. जुड़ = बाँधना ] (१) दो वस्तुन्त्रों का संबद्ध या संयुक्त होना। (२) इकट्ठा होना। (३) किसी काम में योग देने को प्रस्तुत होना । (४) मिलना, प्राप्त होना । (४) गाड़ी में पशु जुतना ।

जुड़वाँ—वि. [हि. जुड़ना] जुड़े हुए, एक साथ पैदा होनेवाले, जुड़वाँ (बच्चे) ।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोड़ना ] जोड़ने की किया, भाव या मजदूरी।

जुड़वाना — कि. स. [हिं. जूड़] (१) ठंडा या शीतल करना। (२) शांत, सुखी या संतुष्ट करना।

क्रि. स. [हिं. जोड़वाना] जोड़ने में प्रवृत्त करना, जुड़ाई - कि. अ. [हिं. जुड़ाना ] सरदी खा गयीं, जड़ा गयीं। उ.-- ब्रज-ललना कहयौ नीर जुड़ाई। श्रति त्रातुर है तट कों धाई—७६६।

वि.—जुड़ी, मिली या सटी हुई। जुड़ाई—क्रि. ग्र. [हिं, जुड़ाना] शांत या सुखी करना, ठंडा या शीतल करना। उ.—( माखन) श्राति मुहा.—मुख जुठरावत—जरा-सा खिलाते हैं, कोमल तुम्हरे मुख लायक, तुम जेंवहु मेरे नैन

वि,—जड़ायी हुई, सरदी खाई हुई। उ,—हम

ठाढ़ी जल माहिं गुसाई खरी जुड़ाई नीर की—३३०३।. जुड़ाना—कि. श्र. [हिं, जुड़] (१) ठंडा या कीतल होना। (२) प्रसन्न या सुखी होना।

कि. स. (१) शीतल करना। (२) संतुष्ट करना।
कि. स. [हिं, जोड़ना] जोड़ने का काम कराना।
जुड़ाने—कि. श्र. [हिं, जुड़ाना] ठंडे या शीतल हुए, प्रसन्न
हुए। उ.—श्रॅंचवत तब नयन जुड़ाने—१०-१८३।
जडावत—कि. श्र. [हिं जडाना] सख-संतोष देता है.

जुड़ावत—िक, श्र. [हिं. जुड़ाना] सुख-संतोष देता है, श्रांति मिलती है। उ.—ठाढ़ी श्रांजिर जसोदा श्रापनें, हिरिहं लिए चंदा दिखरावत। रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखों धों भिर नैन जुड़ावत—१०-१८८। जुड़ावन—िव. [हिं. जुड़ाना] सुखी-संतुष्ट करनेवाले।

उ.—मोतें को हो अनाथ, दरसन तें भयी सनाथ, देखत नैन जुड़ावन—१०-२५१।

जुड़ावना—क्रि. स. [हिं. जुड़ाना ] (१) ठंडा या शीतल करना। (२) शांत, सुखी या प्रसन्न करना।

क्रि. श्र.—(१) ठंडा होना। (२) तृप्त होना। जुड़ावाँ—वि. [हिं. जुड़ना] जुड़े हुए, जुड़वाँ।

जुत—वि. [सं. युक्त ] युक्त, सिह्त । उ.—(क) हरि कह्यो, राज न करत धर्मसुत । कहत हते मैं भ्रात तात-जुत—१-२६१ । (ख) छठऐं सुक्र तुला के सिन जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं—१०-८६ ।

जुतना—कि, श्र. [हिं. युक्त, प्रा. जुत्त ] (१) बैल-घोड़े का गाड़ी में लगना। (२) किसी काम में तत्पर होना। (३) लड़ना, गुथना, जुटना। (४) जमीन, खेत श्रादि का जोता जाना।

जुतवाना कि. स. [हिं. जोतना] (१) जुमीन जुताना। (२) गाड़ी में बैल-घोड़ा बँधवाना।

जुताई—संशा स्त्री. [हिं. जोताई] जोतने की किया, रीति या मजदूरी, जोताई।

जुताना—िक. स. [हिं. जोतना] (१) जमीन जोतने में लगाना। (२) गाड़ी में घोड़ा-बेल नथवाना। (३) जबरदस्ती काम में लगाना।

जुतियाना—िक. स. [हिं. जूता+इयाना (प्रत्य.)] (१) जूता मारना । (२) निरादर या अपमान करना । जुतियोत्र्यल—संशा स्त्री. [हिं. जूता ] जूतों की मार ।

जुत्थ—संज्ञा पुं. [सं. यूथ] (१) समूह। (२) सेना।
जुद्गा—िव. [फ़ा.] (१) अलग। (२) भिन्न।
जुद्गाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] वियोग, विछोह।
जुद्गी—िव. स्त्री. [हं. जुदा] (१) अलग। (२) भिन्न।
जुद्ध, जुध—संज्ञा पुं. [सं. युद्ध] लड़ाई, संग्राम, रण।
उ.—(क) कोटि छ्यानवे नृप-सेना सब जरासंघ वँघ स्त्रोरे। ऐसें जन परितज्ञा राखत, जुद्ध प्रगट करि जोरे
—१-३१। (ख) बहुरों क्रोधवंत जुध चह्यों। सहसबाहु तब ताकों गह्यों—६-१३।

जुधिष्ठिर—संज्ञा पुं. [सं. युधिष्ठिर] राजा पांडु के क्षेत्रज पुत्र जो उनकी पत्नी कुंती के गर्भ से धर्म द्वारा उत्पन्न थे। पाँचों भाइयों में ये सबसे बड़े थे। परम सत्यवादी श्रौर धर्म परायण होने के कारण ये धर्मराज कहलाते थे।

जुन्हरी, जुन्हार—संशा स्त्री. [सं. यवनाल ] ज्वार ग्रन्न । जुन्हाई, जुन्हेया—संशा स्त्री. [सं. यवनाल ] ज्वार ग्रन्न । जुन्हाई, जुन्हेया—संशा स्त्री. [सं. ज्योत्स्ना, प्रा. जोन्हा ] (१) चाँदनी, चंद्रिका । (२) चंद्र, चंद्रमा ।

जुपना—कि. श्र. [हिं. जुड़ना] (दीपक का) बुक्तना। जुबराज—संज्ञा पुं. [सं. युवराज] बड़ा राजकुमार जो राज्य का श्रधिकारी हो।

जुबाद—संशा पुं.—एक तरह की कस्तूरी।
जुबान—संशा स्त्री. [हिं, जबान] जीभ, जबान।
जुबानी—वि. [हिं, जबानी] जबानी।
जुमला—वि. [फा.] सब कुछ, सबके सब।
संशा पुं.—वाक्य, सार्थक वाक्य।

जुमा, जुम्मा—संज्ञा पुं. [ श्र. ] शुक्रवार (दिन)। जुमिल—संज्ञा पुं.—एक तरह का घोड़ा। जुमुकना—क्रि. श्र. [ सं. यमक ] (१) पास, निकट या समीप श्रा जाना। (२) इकट्ठा या एकत्र होना।

जुमेरात—संशा स्त्री. [ ग्र. ] गुरुवार (दिन)।
जुर—संशा पुं. [ सं. ज्वर ] ज्वर, ताप, बुखार। उ.—
(क) सुत-तनया-बिनोत-विनोद-रस, इहिं जुर-जरिन जरायो—१-१५४। (ख) बिन देखे की जथा बिरहिनी ग्राति जुर जरित न जाित छुई—१४३३।
जुरश्रत—संशा स्त्री. [ फ़ा. ] साहस, हिम्मत।

जुरमुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्वर या जूर्ति+हिं. भरभराना ]

(१) हरारत। (२) ज्वर के कारण कॅपकॅपी।
जुरना—िक, अ. [हं. जुड़ना] सटना, जुड़ना।
जुरवाना, जुरमाना—संशा पुं. [हं. जुरमाना] धन दंड।
जुरा—संशा स्त्री. [हं. जरा] (१) बुढ़ापा। (२) मौत।
जुराइ, जुराय—िक. स. [हं. जुड़ाना] जुड़ाकर, (एक
में) बँधवा कर। उ.—(क) अछत-दूब दल बँधाइ,
लालन की गँठि जुराइ, इहै मोहिं लाहौ नैनिन
दिखरावौ—१०-६५। (ख) राधा मोहन गाँठि
जुराय—२४५४ (६)।

जुराना—कि. श्र. [हिं. जुड़ाना] शीतल या ठंडा होना। जुरावी—कि. स. [हिं. जुड़ाना] जुड़वाग्रो, बँधवाग्रो। उ.—सूर स्थाम छिब निहारति. तन-मन जुवित जनवारति, श्रितिहीं सुख धारित, बरष-गाँ जुरावी—१०-६५।

जुरि—कि. स. [हिं. जुड़ना] जुड़कर, एकत्र होकर। उ.—श्राज बधाई नंद कें माई। ब्रज की नारि सकल जुरि श्राई—१०-३२।

जुरीं—िक. श्र. [हिं. जुड़ना ] जुड़ीं, इकट्ठा हुईं। उ.—(क) षटरस सहस जुरी सुकुमारी—७६६। (ख) जुरी ब्रजसुंदरी दसन छिब कुंदरी काम तनु दुंदरी करनहारी—१२६०।

जुरी—संशा स्त्री. [ सं जूर्ति=ज्वर ] हरारत।

क्रि. श्र. स्त्री. [ हिं. जुड़ना ] एकत्र हुई, इकट्टा
हुई। उ.—भोग-समग्री जुरी श्रपार। विचरन
लागे सुख-संसार—३-१३।

जुरे—िक. अ. [हिं. जुड़ना] एकत्र हुए, इकट्ठा हुए। उ.—(क) माखन खात चले उठि खेलन, सखा जुरे सब साथ—१०-३१२। (ख) बहुत जुरे ब्रजबासी लोग—६२२। (ग) दुहुँ दिसि सुभट बाँके बिकट अति जुरे—१० उ. १। (घ) जुरे मनुज नहिं पार —सारा. २३०।

जुर्म—संश पुं. [अ.] अपराध। जुर्रा—संश पुं. [फा.] नर बाज (पक्षी)। जुर्राब—संश स्त्री. [तु.] मोजा। जुर्राब—कि. अ. [हिं. जुटना=जुड़ना] जुड़ा, एकत्र हुआ, इकट्ठा हुआ। उ.—कटक अगिनित जुरग्री, लंक खरभर परथी, सूर को तेज धर-धूरि ढाँप्यी— ६-१०६।

जुल—संशा पुं. [ सं. छल ] धोखा, भाँसा, बुत्ता। जुलना—कि. स. [ हिं. जुड़ना ] (१) सम्मिलित होना।

(२) मिलना, भेंट करना।
जुलबाज — वि. [हिं, जुल+फ़ा, बाज़ ] छली, धूर्त।
जुलबाजी — संशा स्त्री. [हिं. जुलबाज ] छल, धूर्नता।
जुलम — संशा पुं. [हिं. जुलम ] ग्रत्याचार।
जुलाई — वि. — हीन, तुच्छ। उ. — प्रभु जूहों तो महा
त्राधमीं। घाती कुटिल ढीठ त्राति कोधी कपटी
कुमति जुलाई — १-१८६।

जुलाब, जुल्लाब—संज्ञा पुं. [ श्रा. जुल्लाब ] रेचन, दस्त । जुलाहा—संज्ञा पुं. [ फ़ा. जौलाह ] (१) कपड़ा बिनने या बुनने वाला। (२) पानी का एक कीड़ा। (३) एक बरसाती कीड़ा।

जुलुफ, जुल्फ, जुल्फी—संश स्त्री. [फ़ा, जुल्फ़] सिर के बाल जो पीछे की श्रोर लटकते हैं, पट्टे, कुल्ले। जुलुम, जुल्म—संशा पुं. [श्रा, जुल्म] श्रत्याचार, श्रनीति। मृहा.—जुल्म टूटना-श्राफत श्राना। जुल्म ढाना—(१) श्रत्याचार करना। (२) श्रद्भुत काम करना।

जुल्स—संशा पुं. [ श्र. ] धूम-धाम की सवारी।
जुलोक—संशा पुं. [ सं. द्युलोक ] सुरलोक, बैकुंठ।
जुवक—संशा पुं. [ सं. युवक ] नौजवान, युवक।
जुवति, जुवती—संशा स्त्री. [ सं. युवती ] (१) युवती,
नयी उम्र की स्त्री। उ.—षोड़स जुिक, जुवित चित्त
षोड़स, षोड़स बरस निहारै—१-६०। (२) पत्नी।
उ.—पतिव्रता जालंधर-जुवती, सो पतिव्रत तैं
टारी—१-१०४।

जुवराज—संशा पुं. [सं. युवराज ] युवराज । जुवाँ—संशा स्त्री. [सं. यूका, हिं. जाँ ] जाँ नामक स्वेदज कीड़ा । उ.—बालापन दुख बहु बिधि पावै । """। कबहूँ जुवाँ देहिं दुख भारी । तिनकों सो नहिं सकै निवारी—३-१३ ।

जुवा—संज्ञा पुं. [सं. द्यूत, पा. जूत] जुन्ना, द्यत। उ.—श्राछौ गात श्रकारथ गारयौ। करी न प्रीति

क्मल-लोचन सों, जनम जुवा ज्यों हारयों—१-१०१। संज्ञा स्त्री. [सं. युवा] युवावस्था, योवनावस्था। उ.—बालापन खेलत ही खोयो, जुवा बिषय-रस मातें—१-११८।

जुवान—संज्ञा पुं. [हिं. जवान ] नवयुवक।
जुवानी—संज्ञा पुं. [हिं, जवानी ] युवावस्था।
जवार. जवारि—संज्ञा स्त्री [हिं ज्वार ] ज्वार ना

जुवार, जुवारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ज्वार ] ज्वार नामक ग्रन्न । उ.—सूर हंस स्वाति-सुत धोखें कबहुँक खात ज्वारि—२१४६ ।

जुवारि, जुवारी—संशा पुं. [हिं. जुत्रारी ] जुग्रारी । जुस्तजू—संशा स्त्री. [फा. ] तलाश, खोज। जुहाना—कि. स. [सं. यूथ, प्रा. जूह+त्राना (प्रत्य.)]

(१) इकट्ठा करसा। (२) जोड़ना, संचित करना।
जुहार, जुहारा, जुहारी, जुहारी—संज्ञा स्त्री. [सं.
त्रवहार=युद्ध रुकना, हिं. जुहार ] प्रणाम, प्रभिवादन। उ.—(क) सूर त्र्याकासबानी भई तब तहँ,
यहै बैदेहि है, करु जुहारा—६-७६। (ख) देखि
सरूप सकल कृष्नाकृति कीनी चरन-जुहारो—८-१४।
जुहारना—कि. स. [हिं. जुहार ] (१) प्रणाम या प्रभिवादन करना। (२) सहायता माँगना, प्रहसान लेना।
जुहावना—कि. स. [हिं. जुहाना ] जोड़ना, संचित करना।
जुहावना—कि. स. [हिं. जुहाना ] राधा की एक सखी का
नाम। उ.—कहि राधा किन हार चुरायौ। """।
सुमना बहुला चंपा जुहिला ज्ञाना भाना भाउ-१५८०।
जुही—संज्ञा स्त्री. [सं. यूथी, हिं. जुही ] एक पौधा जिसके

जुहू—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) एक यज्ञ पात्र। (२) पूर्व दिशा। जुहोता—संज्ञा पुं. [ सं. जुहुवत् ] यज्ञ में श्राहुति देनेवाला। जुँ—संज्ञा स्त्री. [ सं. यूका ] एक छोटा स्वदेज कीड़ा।

फूल सफेद होते हैं।

मुहा.—कानों पर जूँ रेंगना—परवाह न करना, सतर्क न होना। जूँ की चाल—बहुत सुस्त चाल। जूँठ—वि. [वि. जूठा] लाया हुग्रा, जूठा। जूँठन—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठन] जूठा किया हुग्रा पदार्थ, लाने से बचा हुग्रा शेष श्रम। उ.—छाँक खाय जूँठन ग्वालिनकों कछु मन में नहि मान्यों—सारा. ७५०।

जूँठे—वि. बहु. [हिं. जुठा] जो जूठे हों, उच्छिष्ट। उ.—खाटे फल तिज मीठे ल्याई। जूँठे भए सो सहज सहज सहाई—६-६७।

जूँदन—संज्ञा पुं. [देश.] बंदर।

जूँ मुहाँ — वि. [हिं. जूँ + मुँह] जो देखने म सीधा पर भीतर से बड़ा धूर्त श्रौर कपटी हो।

जू—श्रव्य. [सं. (श्री) युक्त ] (१) श्रादरसूचक शब्द जो प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम के साथ लगाया जाता है; यह ब्रज, बुंदेलखंड श्रीर राजपूताने में विशेष प्रचलित है, जी। उ.—बकी कपट करि मारन श्राई सो हरिजू बैकुंठ पठाई—१-३। (२) संबोधन का एक प्रत्युत्तर।

अव्य. [देश.] एक निरर्थक शब्द।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरस्वती । (२) वायुमंडल । जूत्रा—संज्ञा पुं. [सं. युग] (१) हल ग्रादि में नथे बेलों के कंधे पर बंधी लकड़ी । उ.—काम-क्रोध दोड बेल बली मिलि, रस-तामस सब कीन्ही । ग्राति कुबुद्धि मन हाँकनहारे, माया-जूत्रा दीन्ही—-१-१८५। (२) चक्की फिराने की लकड़ी ।

संज्ञा पुं. [सं. द्यूत, प्रा. जूत्रा] धन की हार-जीत का खेल, द्यूत।

जूजू—संज्ञा पुं. [ अनु. ] हाऊ, हउथा।
जूभ — संज्ञा स्त्री. [ सं. युद्ध, प्रा. जुज्भ ] युद्ध।
जूभत—कि. थ्र. [ हिं. जूभना ] (१) लड़ना। (२)
लड़कर मर जाना। उ. असी सहस किंकर-दल
तेहिके, दौरे मोहिं निहारि। तुव प्रताप तिनकों छिन

भीतर जूमत लगी न बार—६-१०४।

जूमना—कि. श्र. [सं. युद्ध, हिं. जूभा] (१) लड़ना। (२) लड़कर मरना, युद्ध में प्राण त्यागना।

जूमि—कि. श्र. [हिं, जूमना] युद्ध में लड़ते-लड़ते मरना। उ.—सेवक जूमि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर श्रावै—६-१५४।

जूमे—कि. श्र. [हिं. जूमना] जूमते या लड़ते रहे। उ.—सहस बरस लौं जल में जूमे कियौ दनुज सहार—सारा. ४६।

जूट—संशा पुं. [ सं. ] (१) जटा की गाँठ। (२) लट,

जटा। (३) शिव की जटा। (४) पटसन।
जूटना—िक. स. [हिं. जोड़ना ] जोड़ना, मिलाना।
कि. त्रा.—(१) जुड़ना, एकत्र होना। (२) फँसना।
जूटि—संशा स्त्री. [हिं. जोड़ी ] जोड़ी।
जूठ—संशा स्त्री. [हिं. जूठ] जूठन, उच्छिष्ट भोजन।
उ.—श्रवकी बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछू
उपाइ। भटकत फिरयौ स्वान की नाई नैकुँ जूठ
कें चाइ—१-१५५।

वि.—खाकर श्रपवित्र किया हुग्रा, जूठा।
जूठन, जूठिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठा] (१) खाकर
श्रपवित्र किया हुग्रा सामान।(२) खाने से बचा
भोजन। उ.—(क) इहाँ रहहु जहँ जूठिन पावहु
ब्रजवासिनि कें ऐनु—४६१। (ख) जूठिन माँगि
सूर जन लीन्हों। बाँटि प्रसाद सबनि कों
दीन्हो—३६६।

जूठा, जूठो, जूठो—वि. [ सं. जुष्ठ, प्रा. जुठठ, हिं. जूठा ] (१) किसी के खाने से बचा हुग्रा, किसी का खाया हुग्रा, उच्छिष्ट । उ.—ग्वालिन कर तैं कौर छुड़ावत । जूठो लेत सबनि के मुख को, ग्रपनें मुख ले नावत—४६८।

मुहा.—मीठे के लालच से जूठा खाना— किसी लोभ या लाभ की ग्राशा से अनुचित काम करने को तैयार होना। जूठो खइए मीठे कारन—लाभ की ग्राशा से अनुचित काम करना। उ.—नैनन दसा करी यह मेरी। त्रापुन भए जाइ हिर चेरे मोहिं करत हैं चेरी। जूठो खइए मीठे कारन त्रापुहिं खात लड़ावत। त्रीर जाइ सो कौन न फेको, देखन तौ निहं पावत—पृ. ३३१।

(२) जिसका स्पर्श मुँह या जूठे पदार्थ-पात्र श्रादि से हुग्रा हो ।

मुहा. — जूठे हाथ से कुत्ता न मारना — बहुत ज्यादा कंजूस होना।

(३) व्यवहार या भोग किया हुग्रा।
संशा स्त्री.—खाने से बचा हुग्रा भोजन, जूठन।
जूठी—वि. स्त्री. [हिं. जूठा] खायी हुई चीज।
जूड़—वि. [हिं, जाड़ा] ठंडा, शीतल।

जूड़ा—संशा पुं. [सं. जूट] (१) स्त्री के सिर के बालों की गाँठ। साधु की जटा की गाँठ। (२) चोटी, कलगी। (३) पगड़ी का पिछला भाग। जूड़ी—संशा स्त्री. [हं. जूड़ या जाड़ा] जाड़ा लगकर चढ़नेवाला जवर या बुखार।

संज्ञा स्त्री. [ हिं. जुड़ना ] गड्डी। जूत, जूता—संशा पुं. [ सं. युक्त, प्रा. जुत्त ] पनही, उपानह। मुहा. - जूता उठाना - (१) जूता मारने को तैयार होना । (२) होन सेवा करना। (३) खुशामद करना। जूता उछलना ( चलना ) मारपीट या · भगड़ा होना। जूता खाना—(१) जूतों की मार खाना । (२) भली-बुरी बातें सुनकर श्रपमानित होना। जूता गाँठना—नीच काम करना। जूता चाटना-खुशामद करना। जूता जड़ना (देना, मारना, लगाना)—(१) जूता मारना। (२) जली-कटी, मुँहतोड़, चुभती हुई या श्रपमान करनेवाली बात करना। जूता पड़ना (लगना)—(१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँहतोड़ जवाब मिलना। (३) हानि होना। जूता बरसना (बैठना) - जूते की मार पड़ना। जुते का श्रादमी—मार खाकर या फटकार सुनकर ही ठीक काम करनेवाला।

जूताखोर, जूतीखोर—िव. [हिं. जूता + फा ख़ोर] (१) जो जूते पड़ने पर ठीक रहे। (२) निर्लज्ज, बेह्या। जूति—संज्ञा पुं. [सं.] वेग, तेजी। जूतियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. जूती] (१) स्त्रियों के जूते। (२) छोटे-हल्के जूते।

मुहा,—जूतियाँ उठाना—(१) नीच सेवा करना।
(२) खुशामद करना। जूतियाँ खाना—(१) जूतों से
पिटना। (२) भली-बुरी सुनना। (३) श्रपमानित
होना। जूतियाँ गाँठना—नीच काम करना। जूतियाँ
चटकाते फिरना—(१) निर्धनता के मारे घूमना।
(२) बेकार मारे-मारे घूमना। जूतियाँ पड़ना—(१)
जूतों की मार पड़ना। (२) श्रपमानित होना। जूतियाँ
दबाकर भागना—चुपचाप चले जाना, खिसकना।
जूतियाँ मारना (लगाना)—(१) जूते मारना। (२)
कड़ी बात कहना। (३) श्रपमानित करना। जूतियाँ

सोधी करना—(१) तुच्छ सेवा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

जूती—संज्ञा स्त्री, [हिं, जूता] (१) स्त्री का जूता। (२) स्त्रोटा-हलका जूता।

मुहा.—जूती की नोक पर मारना—कुछ न समभना, कुछ परवाह न करना। जूती की नोक से—बला से, सींगे से, कुछ परवाह नहीं। जूती के बराबर—बहुत हीन या तुच्छ। जूती के बराबर होना—बहुत तुच्छ होना। जूती चाटना—बहुत खुशामद करना। जूती देना—जूता मारना। जूती पर जूती चढ़ना—कहीं यात्रा का शकुन होना। जूती पर मारना—परवाह न करना। जूती पर रखकर राटी देना—ग्रपमान के साथ खिलाना-पिलाना। जूती से—कुछ परवाह नहीं।

जूतीखोर—वि. [हं. जूती + फ़ा. ख़ोर] (१) जो मार या ताड़ना से ही ठीक रहे। (२) निर्लज्ज, बेहया। जूतीछुपाई—संज्ञा स्त्रो. [हं. जूती + छुपाना] (१) विवाह में वर के जूते छिपाने की रसम। (२) इस रसम का नेग।

जूतीपैजार—संश स्त्री. [हिं, जूती + फ़ा, पैजार ] (१) मार-पीट, धौल-धप्पा। (२) लड़ाई-भगड़ा।

जूथ—संज्ञा पुं. [सं. यूथ ] समूह। उ.—(क) नरक-कूपिन जाइ जमपुर परयौ बार श्रानेक । थके किंकर-जूथ जम के, टरत टारें न नेक—१-१०६। (ख) जो बिनता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-बिभव घनरौ। सबै समपी सूर स्थाम कों, यह साँचौ मत मेरौ—१-२६६।

ज्रथकर—संज्ञा स्त्री. [ देश. ] एक तरह का फूल।
ज्रथिनि—संज्ञा पुं. [ सं. यूथ+हिं. नि (प्रत्य.) ] समूह
या अंड पर। उ.—ज्यों कंदर तें निकसि सिंह,
भुकि, गज-ज्रथनि पर धाए—१-२७४।

जूथपति—संज्ञा पुं. [ सं. यूथपति ] सेनानायक, सेना-पति । उ.—जाके दल सुग्रीव सुमंत्री, प्रबल जूथपति भारी—६-११५ ।

जूथिका—संज्ञा स्त्री. [ देश. ] एक तरह का फूल। जून—संज्ञा पुं. [ सं. द्युवन्=सूर्य ] समय, बेला, काल। उ.—गो-सुत गोठ बँधन सब लागे, गा-दोहन की जन टरी—४०४।

ेसंज्ञा पुं. [ सं. जूर्ग्=एक तृग्ग ] तिनका। वि. [ हिं. जीर्ग् ] पुराना, घिसा-घिसाया।

जूना—संशा पुं. [सं. जूर्ण=तिनका] (१) घास-फूस की बटी हुई रस्सी। (२) घास-फूस या बाँधों का लच्छा या पूला जो बरतत माँजने के काम श्राता है।

जूप—संशा पुं. [सं. द्यूत, प्रा. जूत्र या जूव ] (१) जुग्रा, द्यूत। (२) विवाह की एक रीति जिसमें वर-बधू परस्पर जुग्रा खेलते हैं। उ.—खेलत जूप सकल जुवितिन में, हारे रघुपित, जिती जनक की—६-२५।

संशा पुं. [सं. यूप] (१) यज्ञ का बिल-पशु बांधने का खभ्भा। (२) खंभा, यूप। उ.—प्रति प्रति गृह तोरन भ्वजा धूप। सब तजे कलस अरु कदिल जूप। जूमना—िक. अ. [ अ. जमा ] इकट्ठा होना, जुड़ना। जूर, जूरु—संशा पुं. [हिं. जुरना ] जोड़, संचय। जूरना—िक. स. [हिं. जोड़ना ] जोड़ना। जूरा—संशा पुं. [हिं. जुड़ा ] सित्रयों की चोटी।

जूरी—संशा स्त्री. [हिं. जुरना] (१) छोटा पूला, जुट्टी। (२) नये कल्ले। (३) एक पकवान। (४) एक पौधा। जूर्गि—संशा स्त्री. [सं.] (१) वेग। (२) देह। (३) कोध। वि.—(१) तेज। (२) गला हुग्रा। (३) स्तुति

या प्रशंसा करने में कुशल।

जूवें—संशा पुं. सिव, [सं. द्यूत, पा. जूत, हिं. जुआ ] जुए में, द्यूत में। उ.—दूतिन कह्यो बड़ी यह पापी। इन तौ पाप किए हैं धापी। बिप्र जन्म इन जूवें हारथी। काहे तें तुम हमें निवारथी—६-४।

जूर्ति—संशास्त्री. [सं.] ज्वर, बुखार। जूष, जूस—संशा पुं. [सं. जूष] (१) भोल। (२) उबाली हुई दाल का पानी।

मुहा. — जूस देना — उबली दाल का पानी देना।
संशा पुं. [फ़ा, जुफ्त। सं. युक्त] सम संख्या।
जूह—संशा पुं. [सं. यूथ, प्रा. जूह] भुंड, समूह।
जूहर—संशा पुं. [फ़ा, जौहर] राजपूत स्त्रियों का युद्धसंकट में चिता में जीवित जल जाना।

जूही—संज्ञा स्त्री. [ सं. यूथी ] एक पौधा। संज्ञा स्त्री. [ सं. यूक ] जुई नामक कीड़ा। जुंभ—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) जँभाई। (२) श्रालस्य। जुंभक—वि. [ सं. ] जँभाई लेनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) एम रुद्र-गण।(२) एक ग्रिभमंत्रित श्रस्त्र जो शत्रुश्रों को शिथल कर देता था। ताड़का-संहार के पश्चात् विश्वामित्र ने श्रग्नि से प्राप्त यह श्रस्त्र श्रीराम को दिया था।

जृंभण—संज्ञा पुं. [सं.] जँभाने की किया। जृंभमान—वि. [सं.] (१) जँभाई लेता हुपा। (२) सुस्त, श्रालसी, शिथिल (३) प्रकाशमान।

जुंभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जँभाई। (२) एक शक्ति। जुंभिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्रालस्य। (२) जँभाई। जुंभित—वि, [सं.] (१) चेष्टित। (२) स्फुटित।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) रंभा। (२) स्त्रियों की इच्छा। जोंइ—कि. अ. [हिं. जेवना] जीमकर, भोजन करके। उ.—जेंवत अति रुचि पावहीं, परसित माता हेत। जोंइ उठि अँचमन लियो, दुहुँ कर बीरा देत-४३७।

जेंगना—संशा पुं. [हिं. जुगनूँ ] जुगनूँ । जेंगरा—संशा पुं. [देश.] ग्रनाज के शेष डंठल । जेना—कि. स. [हिं. जेंवना ] भोजन करना ।

जेंवत—क्रि. स. [हिं. जेंवना] भोजन करते हैं, खाते हैं। उ.—(क) ले ले अधर-परस किर जेंवत, देखत फूल्यो मात हियों—१०-१६८। (ख) सुठि सरस जलेबी बोरी। जिहिं जेंवत रुचि नहिं थोरी—१०-१८३। (ग) जेंवत कान्ह नंद इकठौरे—१०-२४४। (घ) जेंवत अति रुचि पावहीं, परसिन माता हेत—४३७।

जेंवन—संशा पुं. [हिं. जीमना] (१) भोज, ज्योनार।
(२) भोजन करना। (३) रसोई, भोजन। उ.—
(क) टेरत बड़ी बार भई मोकों, निहं पावत घनस्याम तमालिहं। तिध जेंवन तिरात, नंद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह तत्कालिहं—१०-२३६। (ख) जेंवन करन चली जब भीतर—५६५।

क्रि. स.—जीमना, खाना, भोजन करना । प्र.—जेंवन लागे—खाने लगे। उ.—बैठे संग नंद

बाबा के चारों भैया जेंवन लागे—सारा. १८५ ।
जेंवना—कि. स. [सं. जेमन ] भोजन करना ।
संशा पुं.—खाने का पदार्थ, भोजन ।
जेंवनार—संशा स्त्री. [हिं. जेवनार ] भोज, दावत ।
जेंवरि—संशा स्त्री. [हिं. जेवरी ] रस्सी । उ.—प्रेत-प्रेत तेरी नाम परयी, जब जेंवरि बाँधि निकारयी—१-३३६। जेंवहु—कि. स. [हिं. जेंवना ] जीमो, भोजन करो, खाम्रो । उ.—(क) लुचुई लपसी, सद्य जैंलेबी, सोइ जेंवहु जो लगे पियारी—१०-२२७। (ख) बेसन मिले सरस मैदा सीं, त्राति कोमल पूरी है भारी । जेंवहु स्थाम मोहिं सुख दीजे, तातें करी तुम्हें ये प्यारी—१०-२४१।

जेंवाना—कि. स. [हिं, जेंबना] भोजन कराना। जेंवावत—कि. स. [हिं, जिमाना] भोजन कराते हैं। उ.—मधु मेवा पकवान मिठाई श्रपने हाथ जेंवावत— सारा.—१६५।

जेंबो-कि. स. [हिं. जीमना] जीमो, भोजन करो। उ.-फेनी, सेव, श्रॅंदरसे प्यारे। ले श्रावों जेंबो मेरे बारे-३६६]।

जे—सर्व. [सं. ये] संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' का बहु-वचन, जो लोग। उ.—सूरदास भगवंत भजत जे, तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची—१-१८।

जेइ, जेउ, जेऊ—सर्व. [हिं. जो ] (१) जो, जो लोग।
उ.—श्रहो नाथ जेइ जेइ सरन श्राए तेइ तेइ भए
पावन—१०-२५१।(२) जो भी।

जेठ—संज्ञा स्त्री. [सं. यूथ] (१) समूह। (२) तह, गड्डी। (३) गोद, कोरा। (४) बर्तनों का ढेर। संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठ] (१) बैसाख के बाद का महीना। (२) पति का बड़ा भाई।

वि.—(१) बड़ा, भ्रयज। (२) श्रेष्ठ।

जेठरी—िव. [हं. जेठ] बड़ा, ग्रग्रज। जेठरैयत—संशा पुं. [हं. जेठ+ग्र. रैयत] मुखिया। जेठवा—संशा पुं. [हं. जेठ] जेठ मास की कपास। जेठा—िव. [सं. ज्येष्ठ] ग्रग्रज, बड़ा। जेठाई—संशा स्त्री. [हं. जेठ] बड़प्पन, जेठापन। जेठानी—संशा स्त्री. [हं. जेठ] जेठ की स्त्री। जेठी—िव. [हिं. जेठ+ई (प्रत्य.)] जेठ-मास संबंधी।
संज्ञा स्त्री.—जेठ मास में तैयार कपास।
संज्ञा स्त्री. [हिं. जेठ = बड़ा] बड़ी लड़की।
उ.—जमुना जस की रासि चहूँ जग जम-जेठी जग की महतारी—१० उ. ४२।
जेठुश्चा—िव. [हिं. जेठी] जेठ मास संबंधी।
जेठीत, जेठीता—संज्ञा पुं. [हिं. जेठ+पूत] जेठ-जेठानी का पुत्री।

जेठोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेठोता] जेठ की पुत्री। जेतक—वि. [हिं. जेते] जितने (संख्यावाचक)। उ.— जेतक सस्त्र सो किए प्रहार। सो किर लिए श्रसुर श्राहार—६-५।

जेतवार, जेतवारु—वि. [हिं. जीत+वार] विजयी। जेतव्य—वि. [सं.] जो जीता जा सके। जेता—वि. [सं. जेतृ] जीतनेवाला, विजयी। संज्ञा पं—विष्णु।

वि. [हिं. जितना] जितना, जिस कदर।
जेतार—िव. [हिं. जेता] विजय पानेवाला।
जेतिक—िक. वि. [सं. य:] जितना, जिस मात्रा में,
जिस संख्या में। उ.—जेतिक ऋषम उधारे प्रभु दुम,
तिनकी गिति मैं नापी—१-१४०।

जेती—वि.स्त्री. [हिं. जेते ] जितनी (संख्यावाचक)। उ.—चौदह सहस किन्नरी जेती, सब दासी हैं तेरी—६-७६।

मुहा.—जेती की तेती—जैसी की तैसी, पूर्ववत्, बिना लाभ या वृद्धि के। उ.—प्रभु जू, यों कीन्ही हम खेती। बंजर भूमि, गाउँ हर जोते, श्रक जेती की तेती—१-१८५।

जेते—िव. [सं. यः, यस्] जितने। उ.—इिं विधि इिं डहके सबै, जल-थल-नभ जिय जेते (हो)—१-४४। जेतो, जेतो—िक. वि. [सं. यः, यस्] जितना, जिस कदर। उ.—(क) कोड कहें देहें दाम, नृपित जेतो धन चाहें—५८६। (स) हमें तुम्हें श्रंतर है जेतो जानत हैं बनवारी—३६३८।

जेना—कि. स. [हिं. जेंवना] भोजन करना, खाना। जेन्य—वि. [सं, ] (१) ऊँचे वंश में उत्पन्न। (२) जो

बनावटी न हो, सच्चा, श्रमला। जेन्यावसु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) श्रग्नि। जेब—संज्ञा पुं. [फ़ा.] खीसा, खरीता। संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ज़ेब] शोभा, सुंदरता। जेबदार—वि. [फ़ा ज़ेब+दार] सुंदर। जेबी—वि. [हं. जेब] (१) जो जेब में श्रा सके। (२) बहुत छोटा।

जेमन—संशा पुं. [सं.] भोजन का कार्य। जेय—वि. [सं.] जो जीता जा सके। जेर—संशा स्त्री. [देश,] (१) गर्भगत बालक की आंवल या भिल्ली। (२) एक पेड़।

वि. [फ़ा, ज़ेर] (१) परास्त, पराजित । उ.— मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राख्यौ धनुष उतारि— १६८४। (२) दिक, परेशान, सताया हुआ।

जेरना—िक, स. [हिं, ज़र] तंग या पीड़ित करना। जेरपाई—संशा स्त्री. [फ़ा.] स्त्री की जूती। जेरबार—िव. [फ़ा. ज़रबार] (१) तंग, दुखी, परेशान।

(२) जिसकी बहुत हानि हो गयी हो।
जेरबारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेरबार] (१) तंगी, कष्ट,
परेशानी, हैरानी। (२) हानि, क्षति।
जेरि, जेरिया, जेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेर] नवजात शिशु
की श्रांवल।

संज्ञा स्त्री.—(१) ग्वालों या चरवाहों की साथ रहनेवाली लाठी। उ.—(क) उतिहं सखी कर जेरी लीन्हे गारी देहिं सकुच तोरी की। इतिहं सखा कर बाँस लिये बिच मारु मची कोरा कोरी की—२४०५। (ख) इति लिए कनक लकुटिया नागरि उत जेरी घरे ग्वार—२४३७। (२) खेती का एक ग्रौजार। जेल—संज्ञा पुं. [फ़ा. ज़ेर] (१) जंजाल, भंभट, बंधन।

(२) बंदीगृह। जेवड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेवरी] रस्सी। जेवन—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेवना] भोजन, रसोई। उ.— देखहु जाइ कहा जेवन कियो रोहिनि तुरत पठाई—५११।

जेवना — कि. स. [हिं, जीमना] भोजन करना, खाना। जेवनार — संज्ञा स्त्री, [हिं, जेवना] (१) रसोई, भोजन।

उ.—(क) भूबी भया आज मरी बारी। ""।
पहिलेहिं रोहिनि सौं किह राख्यो, तुरत करहु
जेवनार—१०-३६५। (ख) रोहिनि करि जेवनार, स्याम-बलराम बुलाए—४३७। (२) सहभोज, दावत।
[—संज्ञा पुं. [फ़ा. जेवर] गहना, आभूषण।

जेवर—संज्ञा पुं. [फा. जेवर] गहना, आभूषण। संज्ञा पुं. [देश.] जघी नामक पक्षी। संज्ञा स्त्री. [हिं. जेवरी] रस्सी।

जेवरा—संज्ञा पुं. [हिं. ज्योरा] फसल तैयार होने पर नाई, चमार ग्रादि को दिया जानेवाला श्रनाज। जेवरी—मंजा स्त्री [सं जीवा] रस्त्री। र — मो द्वि

जेवरी—संशा स्त्री. [सं. जीवा ] रस्सी । उ.—सो हरि प्रेम जेवरी बाँघ्यो जननि साँट लै डाँटै ।

जेवहु—कि. स. [हिं. जेवना] भोजन करो। उ.— कहाँ माखन रोटी कहाँ जमुमति जेबहु कहि कहि प्रेम—२९१५।

जेष्ठ—संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठ] (१) जेठ का महीना। (२) पति का बड़ा भाई, जेठ।

वि.—(१) भ्रग्नज, जेठा, बड़ा। (२) श्रेष्ठ। जेष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्येष्ठा] (१) एक नक्षत्र। (२) बीच की जँगली। (३) गंगा। (४) भ्रलक्ष्मी। वि.—(१) बड़ी, जेठी। (२) श्रेष्ठ (स्त्री)।

जेह—संज्ञा स्त्री. [फा. ज़िह। सं. ज्या] (१) धनुष की डोरी, ज्या, चिल्ला। (२) दीवार के निचले भाग का मोटा पलस्तर।

जेहड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. जेट+घट] तले-ऊपर रखे हुए पानी के कई घड़े।

जेहन—संशा पुं. [ श्र. ज़े हन ] बुद्धि, धारणाशिकत । जेहर, जेहिरि, जेहिरी—संशा स्त्री.—पैर का पाजेब नामक धुँबरूदार गहना । उ.—(क) पग जेहिरि बिछियन की भमकिन चलत परस्पर बाजत । (ख) पग जेहिरि जंजीरिन जकरथी । (ग) पगिन जेहिरि लाल लहँगा श्रंग पचरंग सारि—ए. ३४४ (२६) । (ध) जुगल जंध जेहिरि जराव की राजित परम उदार ।

जेहल—संशा स्त्री. [फ़ा. जहल ] हठ, जिद। जेहली—िव. [हं. जेलह] हठी, जिद्दी। जेहि—सर्व. [सं. यस ] जिसको, जिसका, जिसकी।

उ. - जेहिं माया बिरंचि सिव मोहें, वहै बानि करि चीन्हौ-१०-४। जै—ग्रव्य. [हिं, जिन ] मत, नहीं, न। जैता-संशा पूं. [सं. जयंती ] जैत का पेड़ । जै—संशा स्त्रो. [सं. जय] जय। उ.—जै जै रघुनाथ कहत, बंधन सब टूटे—६-६७। वि. [ सं. यावत् , प्रा. जाव ] जितने । जैऐ-कि. अ. [हिं. जाना ] जाइए, गमन की जिए। उ.—गुरु-पितु गृह बिनु बोलेहु जैऐ—४-५। जैकरी—संज्ञा पुं. [हिं. जयकरी ] चौपाई नामक छंद। जैकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. जयकार ] जय-घोषणा। जैगीषव्य-संज्ञा पुं. [सं. ] एक योगज्ञास्त्रज्ञ मुनि। जैजैकार—संज्ञा स्त्री. [सं. जयजयकार] जयजयकार, 'जय हो', 'जय हो' कहना। उ.—जैजैकार, दसौं दिसि भयौ । असुर देह तिज, हरि-पुर गयौ--७-२। जैजैवंती—संशा स्त्री, [सं, जयजयवंती ] एक रागिनी। जैढक-संज्ञा पुं. [ सं. जय + ढका ] बड़ा ढोल । जैत-संज्ञा स्त्री. [सं. जयति ] विजय, जीत । संशा पुं. [ श्र. ] जैतून नामक वृक्ष । संशा पुं. [ सं. जयंती ] एक पेड़। जैतपत्र—संशा पुं. [ सं. जयति + पत्र ] विजय पत्र । जैतवार—संज्ञा पुं. [ हिं. जैत+वार ] विजयी, विजेता । जैतश्री—संज्ञा स्त्री. [ सं. जयतिश्री ] एक रागिनी। जैति—अव्य. [सं. जयति ] जय हो। उ.—मनौ बेद बंदीजन सूत-बृंद मागध-गन, बिरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे-१०-२०५।

जैती — संशा स्त्री. [सं. जयंतिका] एक तरह की घास।
जैत्न — संशा पुं. [श्र.] एक सदाबहार पेड़।
जैत्र — संशा पुं. [सं] (१) विजधी। (२) पारा।
जैत्री — संशा स्त्री. [सं.] जैत का पेड़।
जैत — संशा पुं. [सं.] (१) भारत का एक प्रसिद्ध धर्म।
(२) जैन धर्म का श्रनुयायी, जैनी।

जैनी—संशा पुं. [हिं. जैन] जैन मतावलंबी। उ.—जा परसें जीतें जम सेनी, जमन, कपालिक जैनी—६-११। जैनु—संशा पुं. [हिं. जेंबना] भोजन, श्रहार। उ.—इहाँ रही जह जुठिन पावे ब्रजवासी के जैनु।

जैपत्र—संज्ञा पुं. [हिं. जयपत्र ] विजयपत्र । जैबे—क्रि. श्र. [हिं. जाना ] जाना में । उ.—बोलत नंद बार बार मुख देखें तुव कुमार गाइन भई बड़ी बार बृंदाबन जैबे—२३२०।

जैबें—कि. श्र. [हिं. जाना] जाने के लिए, गमन के हेतु, प्रस्थान करने को। उ.—पग दिए तीरथ जैबें काज। तिन सौं चिल नित करें श्रकाज—४-१२।

जैबो, जैबो—कि. श्र. [हिं. जाना ] जायँ, प्रस्थान करें। उ.—बनत नहीं जमुना को ऐबो । सुंदर स्थाम घाट पर ठाढ़े, कही कौन बिधि जेबो—७७९।

जैसंगल—संज्ञा पुं. [सं. जयमंगल] (१) एक वृक्ष। (२) राजा की सवारी का हाथी।

जैमाल, जैमाला—संज्ञा स्त्री, [हिं, जयमाला] (१) विजयमाल । (२) वधू द्वारा वर को पहनायी गयी माला, जयमाला।

जैमिनि—संज्ञा पुं. [सं.] व्यास जी के एक शिष्य। जैयतु—कि. श्र. [हिं. जाना] जाग्रोगे, जाते हो। उ.—रोक्यो भवन-द्वार ब्रज-सुंदरि, नूपुर मूँदि श्रचा-नक ही के। श्रब कैसें जैयतु श्रपनें बल, भाजन भाँजि, दूध-दिध पी कै—१००२८७।

जैयद्—िव [ श्र. जदे = दादा ] (१) बहुत । (२) बहुत धनी।

जैयहु—िक . श्र. [हिं. जाना] जाना, प्रस्थान करना। उ.—खेलहु जाइ घोष के भीतर, दूर कहूँ जिन जैयहु बारे—४२३।

जैया—िक. स. [हिं. जनन ] उत्पन्न किया, जन्म दिया, जाया। उ.—िकतिक बात यह बका बिदारथी, धनि जसुमित जिनि जैया—४२८।

कि. श्र. [हिं. जाना ] जाता हूँ।

प्र.—बिल जैया—बिल जाता हूँ, निछावर होता हूँ। उ.—स्रदास तिन प्रभु चरनिन की, बिल बिल में बिल जैया—१०-१३१। दिन जैया—दिन जाते या बीतते हैं। उ.—भले बुरे को मात-पिता तन हरषत ही दिन जैया—११४०।

जैये—कि. श्र. [हिं. जाना] जाइए, प्रस्थान कीजिए। उ,—(क) जज्ञदान करि सुरपुर जैये। तहाँ जाइ क सुख बहु पैये—१-२६०। (ख) गौतम रूप बिना जो जैये। ताके साप श्राग्न सौं तैये—६-८।

जैल—संशा पुं. [ श्र. ] (१) दामन । (२) निचला भाग या स्थान । (३) पंक्ति, समूह । (४) इलाका । जैव—वि. [ सं. ] जीव-संबंधी ।

जैसा—वि. [सं. यादृश, प्रा. जारिस, पैशा. जद्दसो ]
(१) जिस प्रकार (रूप, रंग, ग्राकार या गुण) का।
मुहा.—जैसा करना वैसा भरना, जैसा बोना वैसा
काटना—जैसा उचित ग्रनुचित कम होगा, वैसा हो
उचित-ग्रनुचित फल मिलेगा। जैसा चाहिए—जैसा
उचित या ठीक हो।

(२) जितना, जिस परिमाण या मात्रा का । (३) समान, बराबर, सदृश।

कि. वि.—जितना, जिस परिमाण या मात्रा में।
जैसी—वि. स्त्री, [हिं, पुं. जैसा] जिस प्रकार को।
जैसे, जैसें, जैसों, जैसों—वि. [हिं. जैसा] जिस प्रकार का।
मुहा,—जैसे का तैसा— ज्यों का त्यों, जैसा था
वैसे ही। जैसे को तैसा—(१) जो जैसा हो उसके
साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) एक ही
व्यवहार या स्वभाव का।

क्रि. वि.—जिस प्रकार या ढंग से।

मुहा.—जैसे जैसे—ज्यों-ज्यों। जैसे तैसे—बहुत

यत्न करके, बड़ी कठिनता से। उ.—(क) कछु दिन
जैसें तैसें खोऊँ दूरि करों पुनि डर कौ—७३८।
(ख) ठाढ़ी ही जैसें-तैसें भुकि परी धरिनि तिहिं
ऐन—७४६। जैसे बने (हो)—जिस तरह हो सके।
जैसोइ—वि. [हिं. जैसा+ही (प्रत्य.)] जैसा ही,
जैसा भी।

मुहा.—जैसोइ बोइये तैसोइलुनिए—जैसा उचित-श्रनुचित कर्म करोगे, वैसा ही उचित-श्रनुचित फल मिलेगा। उ.—जैसोइ बोइये, तैसोइ लुनिए, कर्मन भोग श्रभागे—१-६१।

जैहें—िक, श्र. बहु. [हिं. जाना ] जायँगे। उ.—ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात भिर जैहें—१-८६। जैहें—िक. श्र. एक. [हिं. जाना ] जायगा। उ.—जा दिन मन पंछी उड़ जैहे—१-८६।

जैहों—कि. श्र. [ हिं. जाना ] जाऊँगा। उ.—लिछमन, सिया समेत सूर की, सब सुख सहित श्राजीध्या जैहों— ६-१५७।

जैहों—कि. श्र. [हिं. जाना] जाग्रोगे। उ.—जज्ञ कियें गंध्रबपुर जैहों—६-२।

जों—कि. वि. [हिं. ज्यों ] ज्यों, जैसे, जिस भाँति। जोंक—संज्ञा स्त्री. [सं. जलौका ] (१) पानी का एक कीड़ा। (२) वह व्यक्ति जो काम निकालने के लिए हर समय पीछे पड़ा रहे। (३) चीनी साफ करने का छनना।

जोंकी—संशा स्त्री. [हिं. जोंक] (१) जोंक पेट में पहुँच जाने से होनेवाली जलन या पीड़ा। (२) तख्ते जोड़ने का काँटा। (३) पानी का एक लाल कीड़ा। जों तों—कि. वि. [हिं. ज्यों त्यों] ज्यों-त्यों।

जा ता—।क. १व. [१६. ज्या त्या ] ज्या-त्या ।

मुहा.—जों तों करके—बड़ी मुसीबत से ।
जोंदरा, जोंधरा—संज्ञा पुं. [सं. जूर्ण ] बड़ी ज्वार ।
जोंदरी, जोंधरी—संज्ञा स्त्री. [सं. जूर्ण] छोटी ज्वार ।
जोंधया—संज्ञा स्त्री. [हं. जुन्हैया ] चांदनी, चंद्रिका ।
जो—सर्व. [सं. य: ] एक संबंध-वाचक सर्वनाम । उ.—
जो जानें सो पावै—१-२ ।

श्रव्य. [सं. यद् ] यदि, श्रगर । उ.—श्रब जिनि गहर करो हो मोहन जो चाहत हो ज्यायौ—३४८० । जोश्रना—कि. स. [हिं. जोवना ] (१) देखना, निहारना । (२) ढूँढ़ना, तलाश करना ।

जोइ—संशा स्त्री. [सं. जाया ] पत्नी, भार्या। उ.— बिरथ श्ररु बिभाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।

सर्व. [हिं, जो ] जो (संबंधवाचक)।

मुहा.—जोइ-सोइ-यह वह, इधर उधर की । उ.— जोइ सोइ मुखिहं कहत मरन निज न जाने—९-९७।

क्रि. स. [हं. जोवना] (१) देखकर। उ.—हिर ज्र, तुमतें कहा न होइ १ बोलै गुंग, पंगु गिरि लंधे श्रह श्रावे श्रंधो जग जोइ—१-६५। (ख) भयो सोच नृप-चित यह जोइ—१-२८६। (२) ध्यान देकर, विचार करके। (२) ताहि कञ्ज यह बहुत नाहीं हृदय देखो जोइ—२६४२।

जोइतो-कि. स. [हिं. जोवना ] देखकर, प्रतीक्षा करके। मुहा.—मग जोइतो—प्रतीक्षा करते-करते, रास्ता देखते-देखते। उ.—सुन री सखी सँदेस दुर्लभ भए नैन थके मग जोइतो—१० उ. ८७। जोइसी—संज्ञा पुं. [ सं. ज्योतिषी ] ज्योतिषी । जोई-कि. स. [हिं. जोवना ] (१) देखने लगे, निहारने लगे। उ.—उमा कौं छाँड़ि श्रम् डारि मृग चर्म कौं, प्र.—ग्रावै जोई—देख ग्रावे। उ.—बोलै ग्रॅंग पंगु गिरि लंघे अरु आवे अंधा जग जोई। जोउ-सर्व. [हं. जो ] ( संबंधवाचक ) जो । जोऊ-सर्व, सवि. [हिं. जो + ऊ] जो ही, जो भी। जोए-कि. स. [हिं. जोहना ] देखे, निहारे। मुहा.--मुख जोए--मुँह ताका । उ.--तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वे बिषयिन के मुख जोए-१-५२। जोक—संज्ञा स्त्री. [ हिं. जोंक ] जोंक नामक कीड़ा। जोख—संशा स्त्री, [हिं, जोखना ] तौल, वजन। जोखता—संज्ञा स्त्री. [सं. योषिता ] स्त्री, लुगाई। जोखना-कि. स. [ सं. जुष = जाँचना ] तौलना।

जोक—संशा स्त्री. [हिं. जोंक ] जोंक नामक कीड़ा।
जोख—संशा स्त्री. [हिं. जोंखना ] तौल, वजन।
जोखता—संशा स्त्री. [सं. योषिता ] स्त्री, लुगाई।
जोखना—कि. स. [सं. जुष = जाँचना ] तौलना।
जोखम, जोखिम—संशा स्त्री. [हिं. भाक, भोको, जोंखों](१)ग्रनिष्ट या विपत्ति की ग्राशंका या संभावना।
मुहा.—जोखिम उठाना (में पड़ना, सहना)—
ऐसा काम करना जिसमें विपत्ति या ग्रनिष्ट की ग्राशंका हो। जान जोंखिम होना—(१) जान मुसीबत में फँसना। (२) प्राण जाने का भय होना।

(२) धन-संपत्ति या जेवर ग्रादि जिनकें कारण विपत्ति ग्राने की संभावना हो।

जोखा—संज्ञा पुं. [हिं. जोखना] लेखा, हिसाब। संज्ञा स्त्री. [सं. योषा] पत्नी, लुगाई, भाषा। जोखाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोखना] तौलने का काम, भाव या मजदूरी।

जोखिउँ—संज्ञा स्त्री. [हं. जोखिम ] संकट, विपत्ति । जोखिता—संज्ञा स्त्री. [सं. योषिता ] स्त्री, ग्रौरत । संज्ञा पुं. [हं. जोगी ] योगी या जोगीपन । जोखिम—संज्ञा स्त्री. [हं. भोंका ] (१) संकट, विपत्ति । (२) संकट या विपत्ति का कारण । जोखुत्रा, जोखुवा—संज्ञा पुं. [हिं. जोखना + उत्रा (प्रत्य.)] तौलनेवाला, वजन करनेवाला।

जोखों, जोखों—संशा स्त्री. [हिं. जोखिम ] जोखिम। जोगंधर—संशा पुं. [सं. योगंधर ] शत्र के श्रसत्र से बचने की एक युक्ति।

जोग—संज्ञा पुं. [सं. योग] (१) शुभ काल, शुभ घड़ी।
उ.—हरषीं सखी-सहेलरी हो, ग्रानँद भयो सुभ
जोग—१०-४०। (२) चित्त को एकाग्र करके ईश्वर
में लीन करने का विधान, चित्त की वृत्ति का निरोध।
उ.—ग्राये जोग देन ग्रबलिन को सुरिभि-कंठ बृष
जोत—३३६४।

श्रव्य. [ सं. योग्य ] को, के निकट।

वि.—(१) उपयुक्त। (२) योग्य, समर्थ। उ.—
(क) पाँच बरस श्ररु कञ्चक दिननि को, कब भयो
चोरी जोग—१०-२९२। (ख) कत्रहिं गुपाल
कंचुकी फारी कब भए ऐसे जोग—७७४।(३)श्रेष्ठ।
जोग-जुगुति—संज्ञा स्त्री. [सं. योग+युक्ति] योग की
किया, योग-विधान। उ.—(क) जोग-जुगुति बिसरी
सबै, काम-क्रोध-मद जागे (हो)—१-४४।(ख) जोग-

जुगुति केहि काज हमारे जदिष महा सुखखानि। जोगड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. जोग+ड़ा (प्रत्य.)] बना हुग्रा, पाखंडी या धूर्त जोगी।

जोगता—संज्ञा स्त्री. [सं. योगयता ] योग्यता । जोगन, जोगनिया—संज्ञा स्त्री. [सं. योगिनी ] (१) योग-साधनेवाली, तपस्विनी (२) रण-पिशाचिनी । जोगमाया—संज्ञा स्त्री. [सं. योगमाया ] (१) भगवती जो विष्णु की माया है। (२) वह कन्या जो यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी श्रौर जिसे कंस ने मार हाला था। विश्वास है कि वह भगवती का ही रूप थो। उ.—पहुँचे जाइ महर-मंदिर मैं, मनहिं न संका कीनी। देखी परी जोगमाया, बसुदेव गोद करि लीनी—१०-४।

जोगवना—कि. स. [सं. योग+त्रवना (प्रत्य.)] (१) किसी वस्तु को सम्हालकर या सावधानी से रखना। (२) इकट्ठा या एकत्र करना। (३) श्रादर करना। (४) जाने देना, कुछ ख्याल न करना। (४) पूरा करना।

जोगसाधन—संज्ञा पुं. [सं. योगसाधन ] तपस्यो। जोगानल—संज्ञा स्त्री. [सं. योगानल ] योगबल से उत्पन्न की हुई श्राग।

जोगिंद—संज्ञा पुं. [सं. योगींद्र] (१) योगीराज। (२) शिव, महादेव।

जोगिन, जोगिनि, जोगिनियाँ, जोगिनी—संग्र स्त्री.
[सं. योगिनी] (१) योगिनी, तपस्विनी। उ.—
(क) के रघुनाथ तज्यो पन अपनौ, जोगिनि दसा
गही—६-६१। (ख) भूमि अति डगमगी जोगिनी
सुनि जगी, सहसफल सेस कौ सीस काँप्यौं—६-१६०।
(२) योगी की स्त्री। (३) रण-पिशाचिनी। (४)
पिशाचिनी। (४) एक पौधा।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) लाल ज्वार । (२) एक धान ।

जोगिया—िव [हिं. जोगी] (१) योगी या जोगी से संबंधित। (२) गेरू के रंग में रँगा हुआ, गेरुआ। जोगींद्र—संज्ञा पुं. [सं. योगींद्र] (१) बड़ा योगी। (२) शिव, महादेव।

जोगी—संशा पुं. [सं. योगी] (१) वह जो योग करता हो, योगी। (२) एक तरह के भिक्षुक।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं. [ हिं. योगी+ड़ा (प्रत्य.) ] (१) एक गाना । (२) गानेवाला जोगी । (३) गानेवाले जोगियों की मंडली ।

जोगीस्वर, जोगेस्वर—संशा पुं. [सं. योगी, योग+ईश्वर]
(१) योग का ग्रधिकारी, योग का ज्ञाता, सिद्ध योगी।
उ.—तासौं सुत निन्यान के भए। भरतादिक सब
हरि-रँग रए। तिनमैं नव नथ-खँड-ग्राधिकारी।
नव जोगेस्वर ब्रह्म-बिचारी—५-२। (२) श्रीकृष्ण।
(३) महादेव, शिव।

जोगोटा—िव. [हं. जोगी ] योगी।
जोग्य—िव. [सं. योग्य ] (१) समर्थ। (२) लायक।
जोजन—संज्ञा पुं. [सं. योजन ] (१) दूरी की एक नाप
जो किसी के मत से दो कोस, किसी के मत से
चार कोस और किसी के मत से ग्राठ कोस की
होती है। (२) बहुत श्रधिक समय।

जोजनगंधा—संशास्त्री. [सं. योजनगंधा ] व्यासजी की

मेन गिर शांतनु की पत्नी सरस्वती। अपनी कौमा वस्था में ही पराशर मुनि की कामना पूरी न पर सरस्वती के शरीर से आनेवाली मत्स्यांध दूर हो गयी और सुगंध निकलने लगी। इसी से इसका नाम गंधवती या योजनगंधा पड़ा। उ.— जोजनगंधा काया करी।

जोट—संज्ञा पुं. [सं. योटक] (१) जोड़ा, जोड़ी। उ.—हंस के से जोट दोऊ असुर कियो निपात—२६२३। (२) साथी।

वि.—बराबरी का, मेल या टक्कर का।
जोटिन संज्ञा पुं. [सं. योटक] जोड़ा, युग। उ.—देखि
माई हिर जू की लोटिन। यह छिबि निरिष्त रही
नेंदरानी, श्राँसुवा ढिर दिर परत करोटिन। परसत
श्रानन मनु रिब-कुंडल, श्रंबुज स्रवत सीप-सुत
जोटिन —१०-१८७।

जोड़ा - संज्ञा पुं. [ सं. योटक ] (१) जोड़ा, बराबर की जोड़ी। उ.—(क) श्रीदामा गिह फेंट कहा, हम-तुम इक जोटा। कहा भयो जो नंद बड़े, तुम तिनकें ढोटा—५८६। (ख) एइ बसुदेव के दोउ ढोटा। गौर स्याम नट नील पीत पट कलहंसन के जोटा—२५८०। (२) टाट का दोहरा थंला।

जोटिंग-संज्ञा पुं. [ सं. ] शिव, महादेव ।

जोटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोट] (१) जोड़ी, युग्मक। उ.—(क) सूरज चिरजीवी दोड भैया, हरि-हलधर की जोटी—१०-१७५। (ख) सूरदास प्रभु जीवहु जुग जुग हरि हलधर की जोटी—४१८। (ग) नैन बिसाल, बदन त्र्यति सुंदर, देखत नीकी, छोटी। सूर महरि सबिता सौं बिनवित, भली स्थाम की जोटी—७०२। (२) बराबर या जोड़ का साथी। जोड़—संज्ञा पुं. [सं. योग] (१) जोड़ने की किया। (२) योग का फल। (३) स्थान जहां टुकड़े टांके या सिये गये हों।

मुहा.—जोड़ उखड़ना—(१) जोड़ ढीला हो जाना।(२) संबंध में कुछ भेद पड़ जाना।

(४) दुकड़ा जो जोड़ा जाय। (५) योग का चिह्न। (६) शरीर के दो श्रंगों का मिलन-स्थान, गाँठ।

मुहा.—जोड़ उखड़ना—शरीर के जोड़ों की हड्डी भटके ग्रादि से हट जाना। जोड़ बैठना—हटी हुई हड्डी का ग्रपने स्थान पर ग्राना।

(७) मेल, मिलाप। (८) बराबरी, टक्कर। (६) एक ही तरह की दो चीजें, जोड़ा।

मुहा.—जोड़ बाँधना—कुश्ती के लिए बराबर के पहलवान छाँटना। (२) चौपड़ में दो गोटों को एक घर में रखना।

(१०) एक ही से स्वभाव-गुणवाला। (११) पूरी पोशाक। (१२) किसी वस्तु के कुल ग्रावश्यक ग्रंग। (१३) जोड़ा। (१४) जोड़ने की किया या भाव। (१५) छल, दाँव।

यौ.—जोड़-तोड़—(१) युक्ति, उपाय, तरकीब।
(२) दाँव-पेच, छल-कपट।

जोड़ती—संशा स्त्री, [हिं, जोड़ + ती (प्रत्य.)] योग, जोड़।

जोड़न—संज्ञा स्त्री. [हं. जोड़ ] दही का जामन।
जोड़ना—कि. स. [हं. जोड़ + बाँधना, या सं. युक्त,
प्रा. जुह ] (१) दो चीजों को सो या चिपकाकर
एक करना।(२) टूटी चीज को मिलाकर एक
करना।(३) इकट्ठा करना।(४) स्थापित करना।
(५) योगफल निकालना।(६) वर्णन करना।(७)
जलाना, बलाना।(८) संबंध स्थापित करना।
(६) गाड़ी में पशु जोतना।

जोड़ला, जोड़वाँ—वि. [हिं. जोड़ा+ला, वाँ (प्रत्य.)] साथ जन्मे दो या ग्रधिक बच्चे, यमज।

जोड़वाई—संश स्त्री. [हिं. जुड़वाना] जुड़वाने की किया, भाव या मजदूरी।

जोड़वाना—कि. स. [हिं. जुड़ाना ] जोड़ने में लगाना। जोड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. जोड़ना ] (१) एक सी दो चीजें।

(२) दोनों पैरों के जूते । (३) एक साथ पहने ज़ाने-वाले कपड़े।

यौ. - जोड़ा-जामा - पूरी पोशाक।

(४) स्त्री-पुरुष । (४) नर-मादा (पशु-पक्षी)। (६) जोड़ ।

जोड़ाई—संशा स्त्री. [हिं. जोड़ना+स्त्राई (प्रत्य.)] (१)

की इने की किया, भाव या मजदूरी। (२) दीवार की चुनाई।

जोड़ी—संशा स्त्री. [हिं. जोड़ा] (१) एक सी दो चीजें। यौ.—जोड़ीदार—बराबर का, जोड़वाला।

(२) एक साथ पहने जानेवाले कपड़े। (३) स्त्रीपुरुष। (४) नर-मादा (पशु-पक्षी)। (५) दो घोड़ों
या बैलों की गाड़ी। (६) दो मुगदर। (७) मँजीरा,
ताल। (८) समान गुण-धर्मवाला व्यक्ति, जोड़।

जोत—संज्ञा स्त्री, [हिं, जोतना] (१) गाड़ी में जोते जानेवाले पशुग्रों के गले की रस्सी या तस्मा। (२) तराजू की डोरी जिसमें पल्ले लटकते हैं। (३) एक श्रसामी द्वारा जोती जानेवाली भूमि।

संज्ञा स्त्री, [सं. ज्योति] (१) प्रकाश। (२) लौ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. जोतना] जोतने योग्य भूमि।
जोतत—कि. स. [हिं. जोतना] जोतते (समय), जोतता
है, जोतने में। उ.—लादत, जोतत लकुट बाजिहै,
तब कहँ मूड़ दुरैहों—१-३३०।

जोतदार—संज्ञा पुं. [हिं. जोत+दार ] जोतने-बोने के लिए भूमि पानेवाला श्रसामी।

जोतना कि. स. [सं. योजन या युक्त, प्रा. जुतभना ]

(१) गाड़ी-कोल्हू भ्रादि चलाने के लिए पशु बाँधना।

(२) पशु बाँधकर चलाने के लिए गाड़ी तैयार करना। (३) किसी को जबरदस्ती कोई काम करने में लगाना। (४) हल चलाना।

जोतनी—संशा स्त्री. [हिं. जोत या जोतना ] जुते हुए जानवर के गले के निचले भाग में बँधी रस्सी।

जोतसी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी] ज्योतिषी। जोता—संज्ञा पुं. [हिं. जोतना] (१) जोतनी। (२) करघे की डोरी। (३) धरन। (४) खेती करने या हल जोतनेवाला।

जोताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोतना+त्र्याई (प्रत्य.)] जोतने का काम, भाव या मजदूरी।

जोति—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योति] (१) प्रकाश, द्युति, कांति। (२) देवी-देवता के सामने का दीपक। (३) ग्राग, लौ, लपट। उ.—िनरिख पतंग बानि निहं छाँड़त, जदिप जोति तनु तावत—१-२१०।

संज्ञा स्त्री. [ हिं. जोतना ] बोने योग्य भूमि ।
जोतिख—संज्ञा स्त्री. [ सं. ज्योतिष ] ज्योतिष विद्याः।
जोतिखी—संज्ञा पुं. [ सं. ज्योतिषी ] ज्योतिषी ।
जोतिलंग—संज्ञा पुं. [ सं. ज्योतिर्षिंग ] शिव ।
जोतिष, जोतिस—संज्ञा पुं. [ सं. ज्योतिष ] ज्योतिष विद्या जिससे अंतिरक्ष में स्थित ग्रहों, नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गित, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है । उ.—(क) धिन सो दिन, धिन सो घरी (हो), धिन सो जोतिष-जाग—१०-४०। (ख) लगन सोधि सब जोतिष गनिक, चाहति तुमहिं सुनायौ—१०-८६ ।
जोतिषटोम—संज्ञा पुं. [ सं. ज्योतिष्टोम ] एक यज्ञ।

जोतिषटोम—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिष्टोम] एक यज्ञ।
जोतिषी, जोतिसी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी] ज्योतिष
विद्या जाननेवाला व्यक्ति, ज्योतिषी। उ.—(नंद जू)
श्रादि जोतिषी तुम्हरे घर की, पुत्र-जन्म सुनि
श्रायी—१०-८६।

जोतिहा—संशा पुं. [हिं. जोतना ] जोतने-बोनेवाला। जोती—संश स्त्री. [सं. ज्योति ] (१) लौ। (२) प्रकाश। संशा स्त्री. [सं. जोति ] देवी-देवता की जोत। संशा स्त्री. (१) रास, लगाम। (२) तराजू की डोरी।

जोते—क्रि. स. [हिं. जोतना ] जोतते हैं, जोता। उ.— प्रभु जू, यों कीन्ही हम खेती। बंजर भूमि गाउँ हर जोते, श्रक् जेती की तेती—१-१८५।

जोत्स्ना—संशा स्त्री, [सं. ज्योत्स्ना ] चाँवनी । जोधन—संशा स्त्री, [सं. योग+धन ] बंल के जुए में ऊपर-नीचे बँधी रस्सी ।

संज्ञा पुं. बहु. [हिं. योद्धा ] योद्धाग्रों ने या में। जोध, जोधा, जोधार—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोधन ] जुग्राठे की रस्सी।

संशा पुं. [हिं. योद्धा] युद्ध करनेवाला, भट, वीर । उ.—(क) मानी हार बिमुख दुरजोधन जाके जोधा हे सौ भाई—१-२४। (ख) प्रगट कपाट बड़े दीने हैं, बहु जोधा रखवारे। (ग) सूर प्रमु सिंह ध्विन करत जोधा सकल जहाँ तहँ करन लागे लराई। (घ) मन हठ परथौ कमंध जोधा लौं हारेउ नाहीं जीति—३२३७। जोन, जोनि—संशा स्त्री. [सं. योनि] प्राणियों के विभाग,

जातियाँ या वर्ग जिनकी संख्या चौरासी लाख कही गई है।

जोना—कि. स. [हिं. जोहना ] देखना, निहारना। जोनरी, जोन्हरी, जोन्हार—संज्ञा स्त्री. [देश.] ज्वार। जोन्ह, जोन्हइया जोन्हाई—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योत्स्ना]

(१) चाँदनी, चाँद्रिका जुन्हाई। (२) चाँद, चंद्रमा। जोप—संज्ञा पुं. [सं. यूप] यज्ञ का बलि पशु बाँधने का खंभा।

जोपे—प्रत्य. [हिं. जो+पर] (१) यदि । (२) यद्यपि । जोफ—संज्ञा पुं. [ग्र. जोफ़] (१) बुढ़ापा। (२) सुस्ती। जोबन—संज्ञा पुं. [सं. यौवन] (१) युवापन, यौवन, युवा होने का भाव। उ.—(क) धन-जोबन-ग्रभिमान श्रल्प जल कहें कूर श्रापनी बोरी—१-३०३। (ख) त जोबन-मद तें यह कीन्हो—६-१७४।

मुहा.—जोबन लूटना—यौवन का आनंद लेना।
(२) युवावस्था। उ.—बालापन खेलत ही खोयौ,
जोबन जोरत दाम—१-५७। (३) युवक। (४)
युवावस्था का रूप, सुंदरता।

मुहा—जोबन उतरना (खसना, ढलना) - युवा-वस्था समाप्त होना। जोबन खसै—युवावस्था समाप्त हो। उ.—तन-मन-धन जोबन खसै (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५। जोबन चढ़ना—यृवावस्था की सुंदरता स्राना।

(४) कुच, स्तन। (६) रौनक, बहार, सजावट। (७) एक फूल।

जोबना—क्रि. स. [हिं. जोवना] (१) देखना, निहारना। (२) ढूँढ़ना, तलाश करना।

संज्ञा पुं. [हिं. यौवन ] (१) यौवन । (२) युवा-वस्था । (३) रूप, सुंदरता । (४) कुच, स्तन ।

जोम—संज्ञा पुं. [ श्र. ] (१) उमंग, चाव, उत्साह। (२) जोश, श्रावेश। (३) श्रहंकार, श्रिभमान।

जोय—संज्ञा स्त्री. [सं. जाया ] पत्नी, जोरू।
सर्व पुं. [हिं. जो ] जो, जिस।
क्रि. स. [हिं. जोवना ] देखकर।

जोयना—कि. स. [हिं. जोवना] (१) देखना, निहारना। (२) ढूँढ़ना, तलाश करना। कि. स. [हिं. जोति ] जलाना, बलाना।
जोयसी—संज्ञा पुं. [हिं. ज्योतिषी ] ज्योतिषी।
जोर—संज्ञा पुं. [फ़ा. ज़ोर ] (१) बल, शक्ति, ताकत।
उ.—िबना जोर अपनी जाँघन के कैसे सुख कियी
चाहत—२२६१।

मुहा.—जोर करना—(१) बल या ताकत लगाना।
(२) कोशिश करना। करि जोर—बल का प्रयोग करके। उ.—केस गहत कलेस पाऊँ करि दुसासन जोर—१-२५३। जोर टूटना—(१) बल घट जाना।
(२) प्रभाव कम होना। जोर डालना (देना)—(१)
(शरीर श्रादि का) बोभ या भार लादना। (२) बल या ताकत लगाना। (३) सिफारिश पहुँचाना। (किसी बात पर) जोर देना—बहुत श्रावश्यक या जरूरी बताकर ध्यान दिलाना। (किसी बात के लिए) जोर देना—किसी बात के लिए हठ, जिद या श्राग्रह से करना। जोर देकर कहना—बहुत दृढ़ता या श्राग्रह से कहना। जोर मारना (लगाना)—(१) बल या ताकत का प्रयोग करना। (२) बहुत कोशिश करना। यौ.—जोर-जुलुम (जुल्म)—श्रत्याचार।

(२) प्रबलता, ग्रधिकता, बढ़ती, तेजी। उ.—रोर के जोर तें सोर घरनी कियो चल्यो द्विज द्वारका-द्वार ठाड़ो—१०५।

मुहा.—जोर पकड़ना (बाँधना, में श्राना)— (१) प्रबल या तेज होना। (२) सहसा वृद्धि या उन्नति होना। जोर करना (मारना)—तेजी दिखलाना। जोरों पर होना—(१) प्रबल या तेज होना। (२) उन्नति या वृद्धि पर होना। (३) प्रभाव बढ़ा-चढ़ा या श्रिधक होना।

(३) वश, भ्रधिकार, काबू।

मुहा.—जोर डालना—ग्रिधिकार के साथ ग्राग्रह करना, प्रभावशाली व्यक्ति के द्वारा दबाव डालना, सिफारिश पहुँचाना।

(४) वेग, ग्रावेश, भोंक, उत्तेजना। मुहा,—जोर (जोरों) पर—वेग से, तेजी से।

(४) भरोसा, ग्रासरा, सहारा। मुहा.—(किसी मोहरे पर)जोर देना (पहुँचाना)- (शत ंज के खेल में) सहायता के लिए दूसरा मोहरा रखना या चलना। (मोहरे का) जोर पर होना— सहायता के लिए दूसरा मोहरा होना। किसी के जोर पर कूदना—दूसरे के बल या भरोसे पर तेजी दिखाना या काम करना। बेजोर—श्रसहाय, निर्बल, निराश्रय।

(६) परिश्रम, मेहनत। (७) कसरत, व्यायाम।
वि.—प्रबल, तेज, बढ़ा-बढ़ा, सशकत। उ.—(क)
गृह-दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला श्राति
जोर—१-४६। (ख) कान्ह हलधर बीर दोऊ, भुजा
बल श्राति जोर—१०-२४४।

संशा पुं. [हिं. जोड़] (१) शरीर के श्रंगों का संधि-स्थान, जोड़। (२) वह स्थान 'जहाँ दो दुकड़े जोड़े गये हों। उ.—जरासंघ को जोर उधारयो, फारि कियो दे फाँको — १-११३।

वि.—बराबरी के, जोड़ के, समान। उ.—देख सिल चारि चंद इक जोर—१९१९।

संशा पुं. [हिं. जोड़ा] (१) जोड़ा, युग्म । उ.— चंद्र-मुख पर बैठे सुभग जोर चकोर—ए. ३४२ (१८)। (२) जोड़े, समूह। उ.—देत छिब श्रिति गिरत उर पर श्रंबु-कन के जोर—३५८।

क्रि. स. [हिं. जोड़ना] (१) जोड़कर, मिलाकर।
मुहा.—कर जोर—हाथ जोड़कर, विनय के साथ,
नम्रतापूर्वक। उ.—ब्रज घर समभ लेहु महरैटी, कहत
सूर कर जोर—१०-३२३।

(२) इकट्ठा करके, एकत्र करके । उ.—तब हरि जाय संग हलधर ले सब यादव दल जोरि-सारा. ७०१। जोरई—संशा स्त्री. [हिं. जोड़ ] (१) एक ही में बंधे दो लंबे बाँस। (२) एक हरा कीड़ा।

कि. स. [हिं. जोड़ना] जोड़ता है।
जोरत—िक. स. [हिं. जोड़ना] (१) एकत्र करते हुए,
संग्रह करने में, जोड़ते रहने में। उ.—बालापन
खेलत हीं खोयो, जोबन जोरत दाम—१-५७। (२)
इकट्ठा या संग्रह करता है। उ.—फूले फूले फूल
जोरत—२४५४ (१)। (३) संबंध स्थापित करता
है। उ.—िबमुखनि सौं रित जोरत दिन-प्रति,साधुनि
सौं न कबहुँ पहिचानी—१-१४६।

जोरति—क्रि. स. [हिं, जोड़ना] संबंध स्थापित करती है। उ,—सूर स्थाम को केतिक बात यह जननी जोरति नात—१००२।

जोरदार—वि. [फ़ा, ज़ोर + दार ] (१) बली, सबल। (२) शक्ति, प्रभाव या श्रसर से युक्त। (३) जोरदार।

जोरन—संशा पुं. [हिं. जोड़न] दही का जामन। जोरना—कि. स. [हिं. जोड़ना] जोड़ना।

कि. स. [हिं. जोतना ] गाड़ी में जोतना।
जोरशोर—संशा पुं. [फ़ा. ज़ोर + शोर ] बहुत जोर।
जोरहि—कि. स. [हिं. जोड़ना ] प्रलग-प्रलग टुकड़ों को एक ही में जोड़ दे। उ.—देति श्रक्षीस जरा देवी को राहु-केतु किनि जोरहि—२८६२।

जोरहु—कि. स. [हिं. जोड़ना] मिलाग्रो, (एक-दूसरे से) सटाग्रो।

मुहा-कर जोरहु-हाथ जोड़ो, बिनती या प्रार्थना करो। उ.—सूर स्थाम देविन कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात—१०-२६१।

जोरा—संग्रा पुं. [हिं. जोड़ा] (१) दो समान पदार्थ। (२) स्त्री-पुरुष। (३) नर-मादा। (४) जूते का जोड़ा। संग्रा पुं. [हिं. जोर] (१) बल। (२) ग्रधिकार। क्रि. स. [हिं. जोड़ना] लगाया, सटाया।

जोराजोरी—संज्ञा स्त्री. [ फ़ा. ज़ोर ] जबरदस्ती ।

क्रि. वि.—बलपूर्वक, जबरदस्ती करके ।
जोरावर—वि. [ फ़ा. ज़ोरावर ] ताकतवर, जबरदस्त ।
जोरावरी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. जोरावर ] जबरदस्ती ।
जोरि—िक. स. [ हिं. जोड़ना ] (१) जोड़ कर, मिलाकर,
सटाकर । ड.—(क) जोरि ग्रंजिल मिले, छोरि
तंदुल लए, इंद्र के बिभव तें ग्रिधिक बाढ़ो—१-५ ।
(ख) मुख मुख जोरि बत्यावही सिसुताई ठानै—
१०-७२। (ग)मुख मुख जोरि श्रिलंगन दीन्हो-१२१६।
मुहा.—कर (हाथ) जोरि—हाथ जोड़कर, विनय
पूर्वक । ड.—(क) महाराज रच्चीर धीर कों हाथ

पूर्वक। उ.—(क) महाराज रघुबीर धीर कौं हाथ जोरि सिर नायौ—६-१५६। (ख) जानि मैं यह नहीं कीन्हों जोरि कहों दोउ हाथ—४८५।

(२) इकट्ठा करके, एकत्र करके । उ.—(क) तुम जिन डरपौ मेरी माता राम जोरि दल ल्यायौ—६प्य । (ख) राम किप जोरि ल्यायौ—६-१३५। (ग)

श्रब हलधर उलटहु काहे तुम धावहु ग्वालन जोरि—
२४४६। (३) बचाकर, संचित करके। उ.—बहुत
भाँति मेवा सब मेरे घटरस ब्यंजन न्यारे। सबै जोरि
राखित हित तुम्हरें में जानित तुम बानि—
४६४। (४) लादकर। उ.—श्रौर बहुत काँवरि
दिध-माखन श्रहिरिन काँधे जोरि—४८३। (४)
गढ़कर, बनाकर, (पदों की) योजना करके।
उ.—उरहन ले जुवती सब श्रावित मूँठी बितयाँ
जोरि—८६८।

जोरिय—िक. स. [हिं, जोड़ना] जुड़वा लीजिए।
जोरी—िक. स. भूत. [हिं. जोड़ना] (१) जोड़ी, संग्रह
की, एकत्र की, संचित की। उ.—(क) हरि, हीं
ऐसी ग्रमल कमायी। साबिक जमा हुती जो जोरी,
मिनजालिक तल ल्यायी—१-१४३। (ख) सिर पर
धरि न चलेगों कोऊ जतनि करि माया जोरी—
१-३०३। (२) संबंध स्थापित किया। उ.—(ग)
कहा लाइ तैं हरि सौ तोरी? हरि सौ तोरि कोन
सौं जोरी—१-३०३। (ख) बरबस ही इन गही
मूढ़ता प्रीति जाय चंचल सों जोरी—ए.३२८। (इ)
ग्रब हरि कौन सौं रित जोरी—२८६३।

संशा स्त्री. [फा. जोरी] (१) जोड़ी, हमजोली, साथी। उ.—(क) गौर-स्याम जोरी बनी—१० ११६। (ख) बिधिना जोरी भली बनाई—७६१। (ग) ए ब्रहीर बह दासी पुर की बिधिना जोरी भली मिलाई—२६७६। (घ) बारक हमं दिखात्र्रों ब्रामने बालपने की जोरी—१० उ. ११५। (ङ) सीता जू को बर यह चिहये है जोरी सुकुमार—सारा. २११। (२) प्रतिद्वंदी, प्रतिपक्षी। उ.—तब कह्यों मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात। मोरि जोरी है श्रिदामा हाथ मारे जात—१०-२१३।

संशा स्त्री. [फा. ज़ोर] जोरावरी, जबरदस्ती। उ.—जोरी मारि भजत उतही को जात जमुन के तीर—४३४।

वि.—[हिं. जोरी] मत्त, प्रमत, मतवाली।

जोरो—८५८। (ख) चमकति चलै बदन मटकावं ऐसी जोबन जोरी—१६२१।

जोरू—संशा स्त्री. [हिं. जोड़ा ] पत्नी, घरवाली। यौ.—जोरू-जाता—घर-बार, बीबी-बच्चे।

जोरे—िक. स. [हं. जोड़ना] जोड़कर, मिलाकर।
मुहा.—कर जोरे—हाथ जोड़कर, ग्रत्यंत नम्रतापूर्वक। उ.—(क) कर जोरे प्रहलाद जो बिनवै,
बिनय सुनौ श्रासरन-सरनाई—७-४। (ख) श्रष्टि सिद्धि
नवनिधि कर जोरे—४८८।

जोरें—िक. स. [हिं. जोड़ना] मिलाते हैं, सटाते हैं।
महा.—कर (हाथ) जोरें—हाथ जोड़ते हैं, बहुत
विनय के साथ। उ.—ताहि जमहूँ रहें हाथ जोरें—
१-२२२।

जोरें—कि. स. [हिं. जोड़ना] (१) योगफल निकालता है, मीजान लगाता है। उ.—मुजितम जोरे ध्यान कुझ को, हिर सों तहँ ले राखें—१-१४२। (२) मिलाती है, सटाती है।

मुहा.—नैन जोरै—नेत्र मिलाती है, देखती है। उ.—निरिष्वि श्रापनो रूप श्रापुही बिबस भई सूर परछाँह को नैन जोरै—ए. ३१६।

(२) संग्रह करता है। उ.—लंपट, धूत, पूत, दमरी की, कोड़ी कोड़ी जोरे—१-१८६। (३) बांधती है। उ.—भुज गिह रजु ऊखल सो जोरे—३४४। (४) संबंध स्थापित करती है। उ.—सूरदास यह रिसक ग्वालिनी नेह नवल सँग जोरे—१०-३२१। जोरो, जोरो—िक. स. [हि. जोड़ना] (संबंध) स्थापित करो।

जोरयों—िक. स. [हिं. जोड़ना] (१) एकत्र किया, संग्रह किया, जोड़ा, इकट्ठा किया। उ.—ि जिहिं-जिहिं जोनि जन्म धारयों, बहु जोरयों ग्रघ को भार—१-६८। (२) (टुकड़ा) जोड़ा, सटाया, मिलाकर एक किया। उ.—जरा जरासंघ की संघि जोरयों हुत्यों भीम ता संघि को चीर डारयों—१० उ. ५१।

मुहा,—चित जोरयौ—मन रमाया । उ.— सूरदास प्रभु सों चित जोरयौ—१२०१।

(३) ऋमशः स्थापित किया, ऋम-ऋम से एकत्र

किया। उ.—जब मुख गए समाइ, श्रमुर तब चाब सकोरथो। श्रंधकार इमि भयो मनहुँ निसि बादल जोरथो— ४३१।

जोल—संज्ञा. पुं. [हिं, जाल ] भुंड, समूह। उ.—कहा करों बारिज मुख ऊपर बिथके षटपद जोल। जोलहा, जोलाहा—संज्ञा पुं. [हिं. जुलाहा ] जुलाहा। जोलाहल—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्वाला ] ग्राग, ग्रानि। जोली—संज्ञा स्त्री. [हें. जोड़ी ] जोड़, जोड़ी।

संज्ञा स्त्री. [हं. भोली] (१) किरमिच का जहाजी बिस्तर। (२) रस्सी की गाँठ।

जोलो—संशा पुं. [हिं. भोल ] श्रंतर । उ.—कैंधौं तुम पावन प्रभु नाहीं के कछु मौपे जोलो ।

जोवत—कि. स. [हिं. जोहना, जोवना] देखता है, ताकता है। उ.—(क) बोवत बबुर, दाख फल जोवत—१-६१। (ख) बैठी तहँ ग्राहिनारि, डरी बालक कों जोवत—५८९।

जोवित—िक. स. [हिं. जोवना ] आसरा देखती है, रास्ता देखती है। उ.—सूरस्याम मग जोवित जननी, श्राइ गए सुनि बचन रसालिहिं—१०-२३६।

जोवना—क्रि. स. [हिं. जोहना] (१) देखना, ताकना।

(२) ढूँढ़ना, तलाशना। (३) रास्ता देखना।
जोवारी—संशा स्त्री. [देश.] एक तरह की मैना।
जोवे—िक्र. स. [हिं. जोवना] जोहता (है), देखता
(है)। उ.—(क) पुत्र-कलत्र देखि सब रोवे। राजा
तिनकी त्र्योर न जोवे—१-३४१। (ख) हरि पथ
जोवे छिन छिन रोवे—३४४२।

जोश—संशा पुं. [ फ़ा. ] (१) उफान, उबाल।
मुहा,—जोश खाना—खौलना। जोश देना—
उबालना।

(२) ग्रावेश, मनोवेग।
मुहा,—जोश में श्राना—ग्रावेश में ग्राना।
खून का जोश—वंशज या संबंधी के लिए प्रेमावेग।

यौ.—जोश-खरोश—ग्रधिक ग्रावेश। जोशन—संज्ञा पुं. [फा.] (१) भुजा का एक गहना।

जाशन—संशी पु. [ फ़ा. ] (१) भुजा का एक गहना (२) जिरह बकतर, कवच।

जोशाँदा—संशा पुं. [फ़ा.] काढ़ा, क्वाथ।

जोशी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषी ] ज्योतिषी । जोशीला—वि. [फ़ा. ] जोश+ईला (प्रत्य.) ] स्रोजपूर्ण । जोष—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) प्रेम, स्रनुराग । (२) सुख, स्रानंद । (३) सेवा ।

संशास्त्री. [हिं. जोख ] तौल, वजन।
जोषक—संशा पुं. [सं.] सेवक।
जोषण—संशा पुं. [सं.] (१) प्रेम। (२) सेवा।
जोषा, जोषिता—संशास्त्री [सं.] नारी, स्त्री।
जोषी—संशा पुं. [सं. ज्योतिषी] गुजराती,
महाराष्ट्री ग्रौर पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति।
(२) ज्योतिषी, गणक।

जोस—संशा पुं. [सं. जोश] (१) उफान। (२) ग्रावेग। जोह—कि. त्रा. [हिं. जोहना] देख, ताक या निहार (रहा है)। उ.—माइ जसुदा देखि तोकों, करित कितनों छोह। सुनत हिर की बात प्यारी, रही मुख-तन जोह—७०७।

संशा स्त्री.—(१) खोज, तलाश । (२) इंतजार, परीक्षा । (३) नजर, दृष्टि या दयादृष्टि ।

जोहड़—संशा पुं. [देश.] कच्चा तालाब।
जोहत—कि. स. [हिं. जोहना] राह देखते हैं, प्रतीक्षा
करते हैं। उ.—जश माहिं तुम पसु जे मारे। ते सब
ठाड़े सस्त्रनि धारे। जोहत हैं वे पंथ तिहारो। त्रब तुम त्रपनो श्रापु सँभारो—४-१२।

जोहन—संज्ञा स्त्री. [हं. जोहना] (१) देखने या जोहने की किया। उ.—सघन कला तर तर मन मोहन। दिच्छिन चरन चरन पर दीन्हे तनु त्रिभंग मृदु जोहन। (२) तलाश, खोज। (३) प्रतीक्षा, इंतजार।

क्रि. स.—प्रतीक्षा करना, राह देखना। उ.— बैठि एकांत ज हन लगे पंथ सिव, मोहनी रूप कब दै दिखाई——८-१०।

जोहना—क्रि. स. [सं. जुषण=सेवन] (१) देखना, निहारना। (२) खोजना, तलाश करना। (३) इंतजार या प्रतीक्षा करना।

जोहर—संश स्त्री. [ देश. ] छोटा तालाब। जोहार—संश स्त्री. [ सं. जुषण्—सेवन ] प्रणाम, वंदन।

कि. श्र .— प्रणाम या ग्रभिवादन करता है। उ.— मनसिज भवन जोहार ऋहो हरि होरी है--२४४८। जोहारना-कि. श्र. [हिं. जोहार ] प्रणाम करना। जोहारि, जोहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जोहार ] प्रणाम, वंदन, श्रभिवादन । उ.—इक इक बान भेज्यौ सकल नुपन पै मानों सब साथ कीन्हें जोहारी-१० उ.४६। जोहि, जोही-कि. स. [सं. जोहना ] देखकर। जोहै-कि. स. [हिं. जोहना ] देखता है, ताकता है, निहारता है। उ.—सिस-गन गारि रच्यो विधि श्रानन, बाँके नैननि जोहै--१०-१५८। जोह्यी-कि. स. [हिं. जोहना ] देखा, निहारा । उ.-उमाहूँ देखि पुनि ताहि मोहित भई, तासु सम रूप जौं—श्रव्य. [ सं. यदि ] जो, यदि । क्रि. वि. - ज्यों, जैसे। जौकना—कि. स. [ अनु. भाँव ] डाँटना, डपटना । जौंची-संज्ञा स्त्री. [देश.] फसल का एक रोग। जौरा भौरा—संज्ञा पुं. [हिं. मुँइधर, मुँइहर ] गुप्त तह-खांना जिसमें खजाना भ्रादि हो। संज्ञा पूं. [हिं. जोड़ा+भौरा ] दो बच्चों की जोड़ी। जौरे-कि. वि. [ फ़ा. जवार ] निकट, पास। जो-श्रव्य. [सं. यद् ] यदि, ग्रगर। उ.-जॉनक पें

जाँचक कह जाँचै, तौ जाँचै तौ रसना हारी— १-३४।

क्रि. वि. -- जब।

यों.—जी लीं, जी लिश, जी लिह-जब तक। संशा पुं. [ सं. यव ] (१) एक अनाज। (२) एक

पौधा। (३) एक तौल जो ६ राई के बराबर होती है। जीक—संज्ञा पुं. [ तु. जूक ] (१) भुंड । (२) सेना । जीकेराई, जीकेराव—संशा स्त्री. [हिं. जी + केराव ] मटर मिला हुआ जौ।

जीख—संज्ञा पं. [तु. जूक] भुंड, जत्था, समूह, गोल।

(२) फौज। (३) पक्षियों की श्रेणी। जीगढ़वा-संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का धान। जीचनी—संशा स्त्रा. [हिं. जी+चना ] चना मिला जी। जोजा-संशा स्त्री [ अ. जौज: ] पत्नी, घरवाली।

जौतुक-संज्ञा पुं. [ सं. यौतुक ] दहेज, जहेज। जौधिक-संज्ञा पुं. [ सं. ] तलवार का एक हाथ। जीन-संशा पुं. [सं. यवन ] स्लेच्छ, यवन ।

सर्व, सं. यः जो, जिसे। उ.—वर मैं गथ नहिं भजन तिहारी, जीन दियें में छूटों-- १-१८५ । वि.—(१) जो। उ.—जौन ठौर मोहिं स्राज्ञा होई। ताही ठौर रहीं में जोइ--१-२६०। (२) जैसा, जिस प्रकार का । उ.—कही जात न सखी मोपै मिले जौन सनेह—पृ. ३१६।

जीनाल—संज्ञा स्त्री. [सं. यव+नाल ] रबी का खेत। जीन्ह-संज्ञा स्त्री, [सं, ज्योत्स्ना ] चाँदनी, चंद्रिका। जीपे-अव्य. [हिं. जो+पर ] यदि, श्रगर। जीवति—संज्ञा स्त्री. [ सं. युवती ] युवती । जौबन—संशा पुं. [सं. यौवन ] युवा होने का भाव, यौवन । उ.—(क) जौबन-रूप-राज-धन धरती जानि जलद की छाहीं--- २-२३। (ख) धन जीवन आभि-मान ऋलप जल कहैं कूर ऋापुनी बौरी।

जीम—संशा पुं. [ हिं. जोम ] उमंग, जोश, उत्साह। जौरा—संज्ञा पुं. [हिं. जूरा ] नाई भ्रादि को साल भर की सेवा के बदले में दिया जानेवाला ग्रन ।

संशा पुं. [ हिं. ज्या + वर ] बड़ा रस्सा। जीलाऊ-संशा स्त्री. [हिं. जीलाय ] रुपए में बारह पैसे का भाग या हिस्सा।

जौलाय-वि. [देश.] बारह। जीलों--- अन्य. [हिं. जी+लों (प्रत्य.)] जब तक, जिस समय तक । उ. -- आमिष-रिधर-अस्थ अँग जौलों, तौलों कोमल चाम-१-७६।

जौशन—संज्ञा पुं. [ हिं. जोशन ] भुजा का एक गहना। जौहर—संज्ञा पुं. [ फ़ा. गौहर का आ. रूप ] (१) रतन ।

(२) सार, तत्व। (३) हथियार की स्रोप या चमक। (४) विशेषता, उत्तमता, खूबी।

मुहा. - जौहर खुलना - (१) गुण या खूबी प्रकट होना । (२) भेद या रहस्य खुलना । जौहर खोलना—(१) विशेषता प्रकट करना। (२) रहस्य खोलना ।

संशा पुं. [हिं. जीव+हर] (१) युद्ध के संकट-

काल में राजपूत-वीरांगनाओं का धर्म-रक्षा के लिए जलती आग में कूदकर प्राण देने की प्रथा।

मुहा,—जौहर होना—धर्म-रक्षा के लिए जल मरना।(२) प्राणत्याग, श्रात्महत्या।(३) वह चिता जो जौहर के लिए प्रस्तुत स्त्रियों के लिए बनायी जाती है।

जौहरी—संशा पुं. [ फ़ा. ] (१) जवाहरात बचनेवाला। (२) जवाहरात का पारखी। (३) गुण का पारखी।

(४) गुण का ग्राहक या आदर करनेवाला।

श्च-संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) ज्ञान, बोध। (२) ब्रह्मा। (३) निर्विकार ब्रह्म। (४) बुध ग्रह। (४) मंगल ग्रह।

(६) ज् श्रीर ज से बना संयुक्त ग्रक्षर । प्रत्य.—जाननेवाला, ज्ञाता, ज्ञानी ।

श्चित—िव. [सं.] (१) जाना हुआ। (२) मारा हुआ। (३) तुष्ट किया हुआ। (४) तेज किया हुआ। (५) प्रशंसित।

ज्ञप्त—वि. [सं. ] जाना हुआ।

इति—संशा स्त्री, [सं.] (१) जानकारी, (२) बुद्धि।

(३) मारना । (४) तुष्टि । (४) जलाना । (६) स्तुति । ज्ञवार-—संज्ञा पुं. [सं.] बुधवार ।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री [ सं. ] जानकारी।

ज्ञात-वि. [ सं. ] जाना हुआ, विदित ।

ज्ञातनंदन—संज्ञा पुं. [ सं. ] जैन-तीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञात योवना—संज्ञा स्त्री. [सं. ] वह किशोरी नायिका जिसे अपनी युवावस्था का ज्ञान हो गया हो।

ज्ञातव्य-वि. [सं.] जो जाना जा सके, जो जानने योग्य हो, ज्ञेय, बोधगम्य।

ज्ञाता—िव. [सं. जातृ] (१) जाननेवाला, जानकर। (२) ज्ञानी, तत्वदर्शी। उ.—ब्याध-गीध-गिनका-गज इनमैं को ज्ञाता—१-१२३।

ज्ञाति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य, भाई, बंधु-बांधव। उ.—(क) हँसि हँसि दौरि मिले श्रंक भरि हम तुम एके ज्ञाति—१०-३६ (ख) श्रापु गये नँद सकल महर घर ले श्राए सब ज्ञाति—१०८६। (२) जाति। श्रहिर जाति

श्रोछी मित कीन्ही । श्रपनी ज्ञाति प्रकट करि दीन्ही—१०२४।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं. [ सं. ] जैनतीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं. [ सं. ] जानकारी, ज्ञान । ज्ञात्री—संज्ञा स्त्री. [ हिं. ज्ञाता ] जाननेवाली । ज्ञान—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) बोध, जानकारी ।

मुहा.—ज्ञान छाँटना—योग्यता या जानकारी दिखाने के लिए लंबी-चौड़ी बातें करना।

(२) तत्वत्रोध, ग्रात्मबोध, सम्यक्बोध। (३) ध्यान, विचार। उ.—(क) ऐसे दुख सौं मरन सुख मन किर देखी ज्ञान—५८१। (ख) ग्राइ गए दिन ग्रबहिं नेरें, करत मन यह ज्ञान—८१४।

ज्ञानकांड—संशा पुं. [ सं. ] वेद का एक विभाग जिसमें ब्रह्म ग्रादि गहन विषयों की चर्चा है।

ज्ञानवृत—वि. [सं.] जान-बूभ कर किया हुग्रा।
ज्ञानगम्य—वि. [सं.] जो जाना जा सके।
ज्ञानगोचर—वि. [सं.] जो ज्ञानद्रियां जान सकें।
ज्ञानतः—कि. वि. [सं.] जान-बूभ कर।
ज्ञानदम्बदेह—संज्ञा पुं. [सं.] ज्ञानी संन्यासी।
ज्ञानदम्बदेह संज्ञा पुं. [सं. ज्ञानदातृ] गुरु।
ज्ञाननमनि—वि. [सं. ज्ञानी मिण्ण] ज्ञानियों में श्रेष्ठ।

उ.—शाननमनि, विद्यामनि, गुनमिन चतुरनमनि, चतुराई—२१७६।

ज्ञानमद—संज्ञा पु. [सं.] ज्ञानी होने का गर्छ। ज्ञानमुद्रा—संज्ञा पुं. [सं.] राम-पूजा की एक रीति। ज्ञानयज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म-जीव-ज्ञान। ज्ञानयोग—संज्ञा पुं. [सं.] ज्ञान-प्राप्तिद्वारा मोक्ष साधन।

उ.—एक ज्ञान योग बिस्तरे। ब्रह्म जान सब सों हित करे।

ज्ञानवान, ज्ञानवान—वि. [सं.] ज्ञानी। ज्ञानवृद्ध—वि. [सं.] ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा।

ज्ञानसाधन—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न । (२) इंद्रियां जो ज्ञान-प्राप्ति में सहायक हों।

ज्ञानाकर—संशा पुं. [सं. शान+त्राकर=लान ] बुद्ध।

इानावरण—संशा पुं. [सं. शान-श्रावरण] (१) ज्ञान-प्राप्ति की बाबा। (२) ज्ञान-लाभ में बाधक पाप। इानासन—संशा पुं. [सं.] ज्ञान का एक ग्रासन। ज्ञानियनि—वि. बहु. [सं. शानी] जो ग्रात्मज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी हों। उ.—तपसियनि देखि कह्यो, क्रोध इनमें बहुत, शानियनि में न श्राचार पेखों— ८-८। ज्ञानी—वि. [सं. शानिन] (१) जानकार, जिसे ज्ञान हो, ज्ञानवान् (२) श्रात्मज्ञानी।

इतियाँ जिनसे विषयों का बोध होता है—दर्शनेंद्रिय, श्रवणेंद्रिय, प्राणेंद्रिय, रसना भ्रीर स्पर्शेंन्द्रिय जिनके ग्राधार कमश. श्रांख, कान, नाक, जीभ भ्रीर त्वचा है। उ.—इक मन ग्रक शानेंद्री पाँच। नर कों सदा नचावें नाच—५-४।

ज्ञाने—संशा पुं. सिव. [सं. ज्ञान ] ज्ञान को। उ.—(क) मरन श्रवस्था कों नृप जाने। तो हू धरें न मन में ज्ञान—४-१२। (ख) तो तिज्ञ सगुन साँवरी मूरित कत उपदेसे ज्ञाने—३४०४

ज्ञापक—ि [सं.] सूचक, जतानेवाला, व्यंजक।
ज्ञापन—संज्ञा पुं, [सं.] जताने का कार्य।
ज्ञापित—ि [सं.] जताया या बताया हुम्रा।
ज्ञोय—ि [सं.] (१) जिसका जानना उपयोगी या म्रावश्यक हो। (२) जो जाना जा सके।

ज्या—संशा स्त्री. [सं.] (१) धनुष की डोरी। (२) रेखा जो चाप के एक सिरे से दूसरे तक खीची जाय। (३) पृथ्वी। (४) माता।

ज्याइ—कि. सं. [हिं. जिलाना] जीवित करके।
प्र.—ज्याइ लीन्ही—जीवित कर लिया। उ.—
सूर प्रभु तोहिं ज्याइ लीन्ही कही कुँवरि सौं मात
—७६०।

ज्याई—कि. स. [हिं. जिलाना ] जिला दी, जीवित कर दी, जान डाल दी। उ.—महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई। एक बिटिनियाँ कारें खाई, ताकों स्याम तुरत हीं ज्याई—७५४।

ज्याए—कि. स. [हिं. जिलाना] (१) जिलाने से, जीवित रखने से। उ.—तिहिं न करत चित श्राधम श्राजहुँ लों, जीवत जाके ज्याए—१-३२०। (२) जीवत किये। .—सीस श्रज राखि के दच्छ ज्याए-४-६। ज्यादती—संज्ञा स्त्री. [फा. ज्यादती] (१) श्रिषकारी, बहुतायत। (२) श्रनीति, श्रत्याचार। ज्यादा—वि. [फा. ज्यादा] बहुत, श्रिषक। ज्यान—संज्ञा पुं. [फा. ज़ियान] हानि, घाटा, नुकसान। ज्याना—कि. स. [हिं. जिलाना] जीवित करना। ज्यापत—संज्ञा स्त्री. [श्र. जियाफत] (१) दावत, भोज, सहभोज। (२) मेहमानी, श्रातिथ्य। ज्यामिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] रेखागणित। ज्यायी—कि. स. [हिं. जिलाना] जिलाना, जीवित रखना, जी डालना। उ.—(क) जो सूरज प्रभु ज्यायी चाहत, तौ ताको श्रव देहु दिखाई—७४८। (ख) श्रव जिन गहर करो हो मोहन जो चाहत हो ज्यायी—३४८०। ज्यादना, ज्यावना—कि. स. [हिं. जिलाना] जीवित करना। ज्यावह—कि. स. [हिं. जिलाना] जीवित वो, जिला दो.

ज्यारना, ज्यावना-क्रि. स. [हिं. जिलाना] जीवित करना। ज्यावहु—क्रि. स. [हिं. जिलाना] जीवन दो, जिला दो, जीवित करो। उ.—सूर स्याम मेरी बड़ी गारुड़ी, राधा ज्यावहु जाई—७५६।

ज्यूँ—श्रव्य. [हिं. ज्यों] ज्यों, जैसे। ज्येष्ठ—िव. [सं.] (१) बड़ा, जेठा (२) बूढ़ा। संज्ञा पुं.—(१) जेठ का महीना। (२) वह वर्ष जिसमें बृहस्पति का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ा या श्रेष्ठ होने का भाव। ज्येष्ठां बु—संज्ञा पुं. [सं.] चावल का घोवन। ज्येष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्रठारहवाँ नक्षत्र। (२) पत्नी जो पित को सबसे प्रिय हो। (३) छिपकली। (४) बीच की जँगली। (४) गंगा। (६) ग्रलक्ष्मी देवी।

वि. स्त्री—बड़ी, श्रेष्ठ । ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठ+त्राश्रम ] गृहस्थाश्रम । ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं. [सं. ज्येष्ठाश्रमिन् ] गृहस्थ, गृही । ज्येष्ठी—संज्ञा स्त्री. [सं. ] छिपकली, पल्ली ।

ज्यों—कि. वि. [सं. य:+इव] (१) की तरह, के ढंग से, जैसे, के रूप से। उ.—करी न प्रीति स्याम सों जनम जुम्रा ज्यों हार्यौ—१-१०१।

मुहा. ज्यों त्यों (१) किसी न किसी तरह

बड़े संभट या बखेड़ के साथ। (२) ग्रहिच के साथ, ग्रानिच्छा से। (३) जिस तरह हो सके वैसे, किसी भी उपाय से। उ.—ज्यों त्यों कीन्हो चाहें भोग—११-३। ज्यों त्यों करके—(१) किसी भी उपाय से। (२) बड़ी कठिनाई से। ज्यों का त्यों—(१) जैसा था वैसे ही। (२) जैसा था, वैसा (उसी तरह का) ही। (२) जिस क्षण, जैसे हो।

मुहा,—ज्यों-ज्यों—जिस कम से, जैसे जैसे।
ज्योति:शास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] ज्योतिष।
ज्योति—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्योतिस ] (१) प्रकाश, उजाला, कांति, द्युति। उ.— क) बिकसति ज्योति ऋवर-विच, मानौ बिधु मैं बिज्जु उज्यारी—१०-६१। (ख) कहा करौं जू सनेह न छूटे रूप-ज्योति गयी तातै—
३४२६। (२) लपक, लौ।

मुहा,—ज्योति जगना—(१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवी-देवता का दीपक जलना।

(३) ग्रिग्नि। (४) सूर्य। (५) नक्षत्र। (६) ग्राँख की पुतली का मध्यिंबदु जो दृष्टि का मुख्य साधन है,

(७) विष्णु । (६) परमात्मा का एक नाम । ज्योतिक—संज्ञा पुं. [हिं. ज्योतिषी ] ज्योतिषी । उ.— बार-बार ज्योतिक सों घरी बूिक ग्रावै । ज्योतित—वि० [सं० ज्योति ] चमकता हुग्रा । ज्योतिरांग, ज्योतिरांग, च्योतिरांग, च्योतिरांग, ज्योतिरांग, ज्यो

ज्योतिर्लिंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महादेव, शिव । (२) शिव के बारह लिंग जिनके नाम ग्रौर स्थान इस प्रकार हैं—सोमनाथ (सौराष्ट्र), मिल्लका-र्जुन (श्रीशैल), महाकाल (उज्जियनी), श्रोंकार (नर्भदा-तट), केदार (हिमालय), भीमशंकर (डािकनी), विश्वेश्वर (काशी), ज्यंबक (गोमती तट), वैद्यनाथ, (चिता-भूमि), नागेश्वर (द्वारका), रामेश्वर (सेतुबंध) ग्रौर घृष्णेश्वर (शिवालय)।

ज्योतिर्लोक— संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्रुवलोक जहाँ ध्रुव स्थित हैं। (२) इस लोक के स्वामी परमेश्वर या विष्णु। ज्योतिर्विद—संज्ञा पुं. [सं.] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री [सं.] दुर्गा।
ज्योतिर्हस्ता—संज्ञा स्त्री [सं.] दुर्गा।
ज्योतिरचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्र और राज्ञि-मंडल।
ज्योतिष—संज्ञा पुं. [सं] (१) वह विद्या जिससे प्रहों-नक्षत्रों की दूरो, गित और शुभ-श्रशुभ फल श्रादि का निश्चय किया जाता है। (२) शत्रु के चलाये हुए श्रस्त्र की रोक।

ज्योतिषिक—िव. [सं.] ज्योतिष-संबंधी।
संज्ञा पुं.—ज्योतिष का ग्रध्ययन करनेवाला।
ज्योतिषी—संज्ञा पुं. [सं. ज्योतिषिन्]ज्योतिष जाननेवाला।
ज्योतिष्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रह-नक्षत्र समूह। (२)
वित्रक वृक्ष। (३) मेरु पर्वत की एक चोटी।
ज्योतिष्टोम—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का यज्ञ।
ज्योतिष्टोम—संज्ञा पुं. [सं.] ग्राकाञ्च।
ज्योतिष्पुंज—संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्र-समूह।
ज्योतिष्पुंज—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) एक
नदी। (३) एक वैदिक छंद। (४) एंक प्राचीन बाजा।

ज्योतिष्मान—वि, [सं, ] प्रकाशपूर्ण।
संज्ञा पुं.—(१) सूर्य। (२) एक पर्वत।
ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री, [सं, ] (१) चाँवनी। (२) चाँवनी
रात। (३) सफेव फूल की तोरई। (४) सौंफ।

ज्योत्स्नाप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] चकोर।
ज्योत्स्नावृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] वीवट, वीपाधार।
ज्योत्स्नावृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] वीवट, वीपाधार।
ज्योत्स्नका, ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँवनी रात।
ज्योनार—संज्ञा स्त्री. [सं. जॅमन] (१) भोजन, रसोई,

पक्का खाना। (२) सहभोज, दावत। ज्योरा, ज्योरा—संज्ञा पुं. [हिं. जीविका] फसल तयार होने पर नाई-धोबी आबि को दिया जानेवाला अन्न। ज्योरी—संज्ञा स्त्री. [सं. जीवा] रस्सी, डोरी।

ज्योहत—संज्ञा पुं. [सं. जीव + हत] भ्रात्महत्या, जौहर। उ.—भई ब्याकुल सबें हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत ज्योहत बिचारयो।

ज्योहर—संज्ञा पुं. [हिं. जौहर] राजपूत स्त्रियों का युद्ध-संकट-काल में धर्म-रक्षार्थ श्राग में जलना, जौहर। ज्यों—क्रि. वि. [हिं. ज्यों] (१) जिस प्रकार, जैसे, जिस ढंग से। उ,—(क) ज्यों गूँगें मीठे फल की रस अंतरगत हीं भावे—१-२। (ख) करी न प्रीति स्यामसंदर सौं जन्म जुआ ज्यों हारथी।

मुहा.—ज्यों त्यों—किसी भी प्रकार, ढंग या रीति से। उ.—ज्यों त्यों की इहिनाम उच्चरे। निरचय करि सो तरे पै तरे—६-४।

(२) जिस क्षण, जैसे ही।

संशा स्त्री,—तरह, प्रकार, रोति । उ.—उनमत को ज्यौं बिचरन लागे—५-२।

ज्यो — ऋव्य. [ सं. यदि ] जो।

संज्ञा पुं. [सं. जीव] जीव, प्राणी। उ.—तन माया ज्यो ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरो— १-२२०।

संज्ञा पुं. [सं. जी] (१) प्राण । उ.—कागासुर श्रावत निहं जान्यो । सुनी कहत ज्यो लेइ परान्यो — ३६१। (२) जी, मन, चित्त । इ.—तब तें मेरी ज्यो न रहि सकत—६७१।

ज्योतिषिक—संज्ञा पुं. [सं.] ज्योतिषी।
ज्योनार—संज्ञा स्त्री. [सं. जेंमन=खाना] (१) पक्का
भोजन, रसोई, उ.—(क) नंदघरिन ब्रज-बधू बुलाई,
जे सब अपनी पाँति। कोउ ज्योनार करित, कोउ
घृत-पक, षट्रस के बहु भाँति—१०-८६। (ख)
सरस बसन तन पोंछि गई लै, षट रस की ज्योनार
जिंवावित—५१४। (२) सहभोज, दावत।

ज्वर—संशा पुं. [सं.] ताप, बुखार।
ज्वरघ्न—संशा पुं [सं.] (१) गुड़ च (२) बथुग्रा।
ज्वरता—संशा स्त्री. [हिं. ज्वर] ताप, ज्वाला। उ.—
मनहुँ बिरह की ज्वरता लिंग लियो नेम प्रेम सिवसिस सहस घट—३४६५।

ज्वरराज—संशा पुं. [सं.] ज्वर की एक ग्रौषध। ज्वरांकुश—संशा पुं. [सं.] (१) एक ग्रौषध। (२) एक घास।

ज्वरांतक—संशा पुं. [सं.] चिरायता। ग्रमलतास। ज्वरा—संशा स्त्री. [सं. जरा] मौत, मृत्यु। ज्वरात्त —िव. [सं.] ज्वर से दुखी या पीड़ित। ज्वरित, ज्वरी—िव. [हं. ज्वर] जिसे ज्वर हो। ज्वरी—संशा पुं. [हं. जुरी] नर बाज (पक्षी)।

ज्वलंत—वि. [सं.] (१) जलता हुग्रा, प्रकाशमान ।
(२) प्रकाश में ग्राया हुग्रा, ग्रत्यंत स्पष्ट ।
ज्वल—संशा पुं. [सं.] (१) ग्रिन । (२) प्रकाश ।
ज्वलका—संशा फी. [सं.] ग्राग की लपट ।
ज्वलन—संशा पुं. [सं.] (१) जलन, दाह । (२) ग्राग,
ग्रिन । (३) लपट, ज्वाला । (४) चित्रक वृक्ष ।
ज्विलित—वि. [सं.] (१) जला हुग्रा। (२) चमकीला ।
ज्वान—वि. [हं. जवान ] युवक, जवान ।
ज्वाना—संशा स्त्री. [फा. जवानी ] यौवन, तरुणाई, युवा-वस्था । उ.—बालपनी गए, ज्वानी ग्रावै । बृद्ध भए
मूरख पछितावै—७-२ ।

ज्वाब—संज्ञा पुं. [हिं. जनाव] जवाब, उत्तर। उ.— (क) ज्वाब देति न हमिंह नागरि रही बदन निहारि— ८७६। (ख) दीन्हो ज्वाब दई को चैही देखी री यह कहा जँजाल—१११२।

ज्वार—संशा स्त्री. [सं. यवनाल, यवाकार या जूर्ण] (१) एक मोटा-प्रनाज। (२) समुद्री तरंगों का चढ़ाव। ज्वारभाटा—संशा पुं. [हिं. ज्वार+भाटा] समुद्री लहरों का चढ़ार-उतार या बढ़ना-घटना।

ज्वारि, ज्वारी—संज्ञा पुं. [हिं. जुत्रारी ] जुत्रा खेलने-वाला। उ.—चुगुल ज्वारि निर्देय त्रपराधो, भूठौ, खोटौ-खूटा—१-१८६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ज्वार] ज्वर नामक श्रानाज। उ.—स्रदास मुकताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनही—३०१३।

ज्वाल—संज्ञा पुं. [सं.] अग्निशिखा, ली, लपट। उ.— (क) बिनु जान अहिराज बिष ज्वाल बरसै—५५२। (ख) धरिन आकास लों ज्वाल-माला प्रबल घेरि चहुँपास ब्रजबास आयौ—५६७।

ज्वालक—ि [सं.] जलानेवाला।
ज्वालमाली—संज्ञा पुं. [सं. ज्वालमालिन्] सूर्य।
ज्वाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ग्राग्निशिखा, दीपशिखा,
लपट। उ.—गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत
ज्वाला ग्राति जोर—१—४६। (२) गरमी, ताप,
जलन। (३) विष ग्रादि की गरमी का ताप। उ.—
काल-ब्याल, रज-तम-विष-ज्वाला कत जङ्ग जंवु

जरत-१-५५। (४) तक्षक की पुत्री-जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था।

संशा पुं.—एक देश । उ.—भूप प्रथीराज दीनौ तिन्हे ज्वाला देस—सा. ११८ ।

ज्वालाजिह्न—संशा पुं. [ सं. ] ग्राग, ग्राग्न । ज्वालादेवी—संशा स्त्री. [ सं. ] एक देवी । ज्वालामाजिनी—संशा स्त्री. [सं.] एक देवी।
ज्वालामुखी—वि. [सं.] जिसके मुख से ज्वाला निकले।
ज्वालामुखीपर्वत—संशा पुं. [सं.] एक पर्वत जिससे
समय समय पर धुआँ, राख, पिघले पदार्थ आदि
निकलते हैं।
ज्वेना—कि. स. [हिं. जोहना] देखना, निहारना।

升

भ—देवनागरी वर्णमाला का नवाँ ग्रौर चवर्ग का चौथा व्यंजन। यह स्पर्श वर्ण है ग्रौर इसका उच्चारण-स्थान तालु है।

भं—संज्ञा पुं. [ अनु. ] (१) धातु-खंडों के टकराने से होनेवाला शब्द। (२) हथियार टकराने का शब्द।

भंकना—संज्ञा पुं. [हिं. भीखना ] खीजना। भंकाड़—संज्ञा पुं. [हिं. भीखाड़ ] (१) ठूँठ या पत्तेरहित

काड़—त्रश पु. िह. काडाड़ ] (१) ठूठ या पत्तराह पौधे। (२) काठ की बेकार चीजों का ढेर।

भंकार—संशा स्त्री. [हं. भनकार] (१) भनभन की ध्वित, भनभन शब्द, भनकार। उ. — घर-घर गोपी दह्यी बिलोवें, कर-कंकन-भंकार—४०८। (२)

भींगुर ध्रादि के बोलने का भनभन शब्द। (३) भनभन शब्द होने का भाव।

भंकारना—क्रि. स. [ सं. भंकार ] भनभन शब्द करना। क्रि. श्र.—भनभन शब्द होना।

भँकियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँकना] भरोखा, जाली। संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँकी] (श्रल्पार्थक) भाँकी।

भंकृत—वि. [सं.] जिसमें भनकार हुई हो। भंकृति—संशा स्त्री. [सं. भंकृत] भनकार।

भँकोर, भँकोरा—संज्ञा पुं. [हिं. भकोर ] (१) हवा का

भोंका या हिलोर। (२) भटका,धक्का।
भाँकोरना, भकोलना—क्रि. श्र. [हिं. भकोरना] (१)

स्वा का भोंका या हिलोर श्राना। (२) भटका या धक्का लगना।

भँकोलना, भँकोला—संज्ञा पुं. [हिं. भकोर] (१) हवा का भोंका या हिलोर। (२) भोंका, भटका। वि.—(वह पलँग, खटोला श्रादि) जिसकी बुनावट बहुत ढीली हो।

भँखत—कि. श्र. [हिं. खीजना] भुँभताते हैं, भगड़ते हैं, खीभते हैं, भीखते हैं, । उ. —क्रीइत प्रात समय दोड बीर। माखन माँगत, बात न मानत, भँखत जसोदा-जननी तीर—१०-१६१।

भँखित—िक. श्र. [हिं, खीजना ] खीजती या भीखती है। उ.—सूरज प्रभु श्रावत हैं, हलधर को नहिं लखत भँखित कहित तो होते संगदोऊ—३०५६। भँखना—िक. श्र. [हिं. भीखना] भुँभलाना, भीखना। भंखाट, भंखाड़—संज्ञा पुं. [हिं. भाइ का श्रनु.] (१) धनी भाड़ी। (२) डाल-शाखा-रहित ठूँठ। (३) काठ की बेकार चीजों का समृह।

भंखे - कि. श्र. [हिं. भंखना ] डरे, भयभीत हुए। उ. - तीन लोक डर जाके कंपे तुम हनुमान न भंखे।

माँगरा—संशा पुं. [ देश. ] एक तरह का बाँस।
माँगा—संशा पुं. [ हिं. भगा ] (१) ढीला-ढाला कुरता।
उ.—भाँगा पगा श्रक्त पाग पिछौरी ढाढ़िन को
पहिरायौ—सारा. ४०८। (२) बच्चों का ढीला
ढाला कुरता।

भाँगिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँगुली ] ढीला कुरता।
भाँगुत्र्या—संज्ञा पुं. [देश.] एक गहने की चूड़ी।
भाँगुला—संज्ञा पुं. [हिं. भगा ] ढीला कुरता।
भाँगुली, भाँगुली, भाँगुलिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. भगा का ख्राली, भाँगुली, भाँगुलिया संज्ञा स्त्री. [हिं. भगा का ख्रालपा.] (१) बच्चों के पहनने का ढीला-ढाला कुरता। उ.—(क) स्थाम बरन पर भाँगुलिया पीत

सीस कुलहिया चौतनियाँ—१०-१३२। (ख) तन भँगुली, सिर लाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर-पाइ—१०-८६। (ग) कुलही चित्र-बिचित्र भँगूली। निरिष्व जसोदा-रोहिनि फूली—१०-११७। (घ) नील निलन तनु पीत भँगुलिया घनदामिनि चुति पेखत—सारा. १६६।

भंभ-संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँभ ] भाँभ नामक बाजा। भंभट-संज्ञा पुं. [ त्र्रानु. ] भगड़ा, बखेड़ा। भाँभनाना-क्रि. त्र्रा. [ त्र्रानु. ] भनभन शब्द होना।

क्रि. स.—भनभन का शब्द उत्पन्न करना।
भंभर—संज्ञा पुं. [हिं. भज्भर] मिट्टी का एक पात्र।
भँभरा—संज्ञा पुं. [त्रानु.] मिट्टी का जालीदार ढक्कन।
वि.—छोटे छोटे छेदवाला, भीना।

भँभरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भरभर से अनु.] (१) जाली। (२) जालीवार खिड़की। (३) दमचूल्हे की जाली। (४) छानने की चलनी। (४) कपड़े पर बनायी हुई जाली।

वि. स्त्री.—जिसमें बहुत से छोटे-छोटे छेद हों।
मॅंभरीदार—वि. [हिं. मॅंभरी+फ़ा. दार] जालीदार।
मंभा—संशा पुं. [सं.] (१) तेज श्रांधी श्रीर वर्षा। (२)
श्रांधी, श्रंधड़। (३) हल्की वर्ष। (४) भांभा।
वि.—प्रचंड, तेज।

भंभानिल—संशा पुं. [ सं. भंभा+श्रिनिल ] (१) श्रांधी, श्रंधड़ । (२) जोर का पानी श्रीर श्रांधी।

मंभार—संशा पुं. [सं. मंभा ] ग्राग की लपट जिसमें से एक श्रव्यक्त ध्विन के साथ धुग्रा ग्रीर चिनगारियाँ निकलती हैं। उ.—श्रित श्रिगिनि भार, भंभार, धुंधार करि, उचिट श्रंगार मंभार छायौ—५६६। मंभावात—संशा पुं. [सं. मंभा+वात=हवा] (१) ग्रांधी,

भ्रंधड़ । (२) तेज भ्रांधी श्रीर पानी । भंभी—संज्ञा स्त्री. [देश.](१) फूटी कौड़ी । (२) दलाली का धन, भज्भी ।

भँभोड़ना, भँभोरना—कि. स. [ सं. भर्भन, हिं. भँभो-इना ] वेग या भटके से हिलाना, भक्भोरना। भँभोटी,भँभोटी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. भिंभोटी ] एक राग। भंड—संज्ञा पुं. [ सं. जट ] मूंडन के पहले के बाल। भंडा—संज्ञा पुं. [ सं. जयंत ] (१) ध्वजा, पताका। मुहा,—भंडा खड़ा करना—(१) भंडे से सैनिकों को संकेत करना।(२) किसी स्थान पर अधिकार जताना।(३) आडंबर करना। भंडा गाड़ना—(फहराना)—किसी स्थान पर अधिकार जताना। भंडा तले (भंडे के नीचे) आना—पक्ष में एकत्र होना। भंडा (भंडे) तले की दोस्ती—मामूली जान-पहचान। भंभा (भंडे) पर चढ़ना—बदनाम होना। भंडा (भंडे) पर चढ़ना—बदनाम करना।

(२) ज्वार-बाजरे स्रादि का ऊपरी नर-फूल। मंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मंडा] रंगबिरंगे कपड़े-कागज का छोटा मंडा।

भंडीदार—वि. [हिं, भंडी+फ़ा, दार] जिसमें भंडी हों। भँडूलना, भँडूला—वि. [हिं, भंड+ऊला (प्रत्य.)](१) जिसके सिर पर मूँडन के पहले के बाल हों। (२) जो (बाल) मूँडन के पहले के हों। (३) सघन, घनी पत्तीवाला।

संशा पुं.—(१) वह बालक जिसका मूँडन न हुग्रा हो।(२) बाल जो मूँडेन गये हों।(३) सघन वृक्ष। भाँडूले—वि. [हिं. भाँडूला] मूँडन-संस्कार के पहले का, गर्भ का। उ.—उर बघनहाँ, कंठ कठलां, भाँडूले बार,बेनी लटकन मिस-बुंदा-मिन-मनहार-१०-१५१।

भंप—संशा पुं. [सं.] उछाल, कुदान, फँदान।

मुहा.—भंप देना—कूदना-फाँदना। उ.—करि

श्रपनो कुल नास बहिन सो श्रागिन भंप दे श्राई।

संशा पुं. [देश.] घोड़े के गले का एक गहना।

भँपकना—कि. श्र. [हिं. भपकना](१) पलक गिरना।

(२) भपकी लेना। (३) भपटना।(४) डरना।

(४) पंखे स्रादि से हवा करना।

भँपकी संशा स्त्री. [हिं. भएकी ] (१) हलकी नींद।

(२) श्राँख भपकने की किया। (३) घोखा, चकमा। भँपताल—संशा पुं. [हिं. भपताल ] ताल का एक भेद। मंपति—कि. श्र. [हिं. भँपना ] उछलती-क्दती या लपकती है। उ,—जबहिं भंपति तबहिं कंपति बिहँसि लगति उरोज—२४५७।

भँपना—कि. श्र. [सं. भंप] (१) छिपना, ग्राड़ सें होना। (२) उछलना-कूदना, लपकना-भपकना। (३)

एक दम से टूट पड़ना। (४) भेपना, लिजत होना। मॅंपरिया, मॅंपरी—संशा स्त्री. [हिं, भाँपना ] पालकी ढकने की खोली, गिलाफ, ओहार। भँपाई-कि. ग्र. [हिं. भपाना ] अपका दिये, भूँदे, बंद किये। उ.—खेलत तुम निसि अधिक गई, सुत नैनिन नींद भँपाई--१०-२४२। भँपाक—संज्ञा पुं. [सं. ] बंदर। भंपान-संज्ञा पुं. [ सं. भंप ] खटोली की सवारी। मंपित—वि. [ सं. कंप ] ढका या छिपा हुआ। भूपोला—संज्ञा पुं. [हिं. भाषा + श्रोला ] छोटा भाबा। भँव-संज्ञा पं. [देश.] गुच्छा, भव्बा। भँवकार—वि. [हिं. भाँवला ] कुछ काले रंग का। भँवयो-कि. स. [हिं. भँवाना ] घटाया, कम किया। उ.—ज्ञान को स्रिभिमान किए मोको हिर पठयो। मेरोई भजन थापि माया सुख कँवयो। मेंबरना, भेंबराना-कि. य. [हिं. भाँवर ] (१) कुछ काला पड़ना। (२) कुम्हलाना, मुरभाना, सूखना। भेंबा—संज्ञा पुं. [हिं. भाँवाँ] मैल छ्टाने का भाँवा। भँवाना-क्रि. श्र. [हिं. भाँवा] (१) कुछ काला पड़ना। (२) श्राग का संद या कम हो जाना। (३) घट जाना। (४) मुरकाना, कुम्हलाना। (४) आँवें से रगड़कर मेल का छुड़ाया जाना। कि. स.—(१) कुछ काला कर देना। (२) आग की तेजी कम करना। (३) कम करना, घटाना। (४) कुम्हला देना, मुरका देना। (५) भाँवें से रगड़कर मैल छुटाना। (६) भाँवे से रगड़वाना। भँसना-कि. स. [ अनु. ] (१) सिर या तलुए में जिकना पदार्थ रगड़ना। (२) धन ऐंठ लेना। भा—संशा पुं. [ सं. ] (१) श्रांधी-पानी । (२) बृहस्पति । (३) ध्वनि, शब्द, गूँज। (४) तेज हवा। भइं, भई, भई—संशा स्त्री. [हं. भाँई] ग्रांख के ग्रागे श्रॅंधेरा, तिरिमराहट। उ.—सूरदास स्वामी के बिछुरे

लागे प्रेम भई—२७७३।

भक-संशास्त्री. [ श्रनु. ] धुन, सनक।

भाउत्रा, भाउवा—संज्ञा पुं. [हिं. भावा ] खाँचा, भाषा।

संज्ञा स्त्री. [हिं, भख] भीखने की किया या भाव।

वि.—चमकीला, बहुत साफ । संज्ञा पुं. [ सं. भाष ] (१) सछली। (२) सकर। भक्केतु—संज्ञा पं. [हिं. भषकेतु ] कामदेव। भक्तभक—संशा स्त्रो. [ अनु. ] (१) व्यर्थ की कहा-सुनी, हुज्जत, तकरार (२) बकवाद, विवाद। भक्भका-वि. [हिं. भक (अनु.)] चमकदार। भक्भकाहट-संशा स्त्री. [हिं. भक (श्रनु.)] चमक। भकमेलना—क्रि. स. [ श्रनु. ] भोंका या भटका देना। मक्रमोर—संशा पुं. [ अनु. ] (१) भोंका या भटका। (२) हिलने-डोलने या चंचल होने की किया या भाव। उ.—-सूरदास बलि वलि या छुबि की श्रालकन की भक्कोर-२३१२। वि.—(१) भोंकेदार, तेज। उ.—क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना पवन त्राति भक्तभोर। नाहिं चितवन देत सुत-तिय नाम-नौका ऋोर--१-६६। (२) चंचल, हिलता-डोलता। उ.—त्रास तें त्राति चपल गोलक,

भक्रभोर—३५८।
भक्रभोरत—कि. श्र. [हिं. भक्रभोरना] भोका खाता
है, हिलता-डुलता है। उ.—(क) मैया री मैं चंद
लहोंगो। यह तो भल्मलात भक्रभोरत, कैसें के जु
लहोंगो—१०-१६४। (ख) इत-उत श्रंग पुरत भक्र
भोरत, श्रॅंगिया बनी कुचिन सीं माढ़ी—१०-३००।
कि. स.—भोंका या भटका देता है। उ.—काहे
कों भक्रभोरत नोखे, चलहु न देउँ बताइ—६८२।
भक्रभोरतिं—कि. स. स्त्री. बहु. [हिं. भक्रभोरना] भोंका
या भटका देती है। उ.—जाको नेति-नेति खुति गावत
ध्यावत पुर-पुनि ध्यान धरे। स्रदास तिहिंकों ब्रजबनिता भक्रभोरतिं उर श्रंक भरे—१०-८८।
भक्रभोरिति—कि. स. स्त्री. [हिं. भक्रभोरना] भटका

सजल सोभित छोर। मीन मानौ बेधि बंसी, करत जल

जुबती भक्भोरति उर श्रंक भरे। (ख) यह ऐसेहि भक्भोरति मोको पायौ नीके दाँउ—१६१३। भक्भोरना—क्रि. स. [हिं. भोंका] भोंका-भटका देना। भक्भोरा—संशा पुं. [श्रनु.] भोंका, भटका, घका। भक्भोरि—क्रि. स. [हिं. भक्भोरना] भटका देकर,

देती या भँकोरती है। उ.—सूरदास तिनकी ब्रज-

भोंका देकर, जोर से हिलाकर। उ.—नाक मूँ दि, जल सींचि जबहिं जननी कहि टेरथी। बार-बार भक्कोरि, नैंकु हलधर-तन हेरथी—५८९।

भक्तभोरयो—कि. स. [हिं. भक्तभोरना] भोंका, भटका या धक्का दिया। उ.—अज भरि घरि श्रॅकवारि बाँह गहि के भक्भोरयो—१०२६।

भक्तभोलना—िक. स. [हिं. भक्तभोलना] ऋटका देना।
कि. श्र.—हिलना-डुलना, ऋटका या धक्का सहना।
भक्तभोले—िक. श्र. [हिं. भक्तभोरना] हिलती डुलती है,
काँपती है। उ.—पकरयो चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलखि
बदन भर डोलें। जैसें राहु नीच दिग श्राऐं, चंद्रकिरन भक्तभोले—१-२५६।

भकड़—संज्ञा पुं. [हिं. भक्कड़ ] ग्रांधी, ग्रंघड़, तूफान। भकड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश. ] दूध दुहने का पात्र। भकति—कि. त्रा. [हिं. भीखना ] खीजती या कुढ़ती रहती है। उ.—ऊघी कुलिस भई यह छाती। मेरो मन रिसक लग्यो नँदलालिहं भकित रहित दिन राती—४२६६।

भकना—िक. श्र. [श्रन.] (१) व्यर्थ की बातें कहना।
(२) भुँभलाना, खीजना। (३) कोघ में बकना।
भकर—संशा पुं. [हिं. भकड़ ] ग्रांधी, ग्रंधड़, तूफान।
भका—िव. [हिं. भक ] चमकीला बहुत साफ।
भकाभक—िव. [श्रन.] साफ ग्रीर चमकीला।
भिकाभक—िक. श्र. [हिं. भकना] बकभक कर, खीभ कर, भुँभला कर, बेकार समभ कर। उ.—हिर की नाम, दाम खोटे लों, भिक्भिक डारि दयौ—१-६४।
भक्तराना—िक. श्र. [हिं. भकोरा] भूमना।

मकोर, भकोरा, भकोरो—संज्ञा पुं. [ अनु. भोंका ] (१) ह्वा का भोंका या हिलकोरा। उ.— (क) चारु लोचन हाँसि बिलोकिन देखि के चित भोर। मोहनी मोहन लगावत लटिक मुद्धुट भकोर—१३३५। (ख) नील पीत सित अरुन ध्वजा चल सीर समीर भकोर। (२) भटका, धक्का, लहर, भोंका, छींटा। उ.—(क) जगमग रहो जराइ को टीको छिवि को उठत भकोरो हो—२२४३। (ख) गोपी ग्वाल गाइ ब्रज राख्यो नेकुन आई बूँद भकोर—६६८।

भकोरत—िक, त्र. [ त्रनु. ] ( हवा का ) भोंका देता या नारता है। उ.—चहुँ दिसि पवन भकोरत घोरत मेघ वटा गँभीर।

भकोरना—कि. य. [ यनु. ] हवा का भोंका मारना। भकोल—संज्ञा पुं [ हिं. भकोर ] हवा का भोंका या हिलकोरा। उ.—नील पीत सित ग्रहन ध्वजा चल सीर समीर भकोल।

भक्क—वि. [ अनु. ] खूब साफ और चमकीला। संशा स्त्री. [ हिं. ] धुन, सनक, लहर।

भक्कड़—संज्ञा पुं. [ अनु, ] आँधी, अंधड़, तूफान।
वि. [ हिं. भक्की ] (१) बकवादी। (२) सनकी।
भक्का—संज्ञा पुं. [ अनु. ] हवा का भ्रोंका, भक्कड़, श्रांधी।
भक्की—वि. [ अनु. ] (१) बकवादी। (२) सनकी।
भक्का—कि. अ. [ हिं. भींखना ] खीजना, कुढ़ना।
भख—संज्ञा स्त्री. [ हिं. भींखना ] भीखने का भाव।

मुहा,—भत्व मारना—(१) बेकार समय खराब करना।(२) श्रपनी दशा बिगाड़ना।(३) लाचार होकर कुढ़ना। भत्व मारि—लाचार होकर, विवश होकर, श्रछताते-पछताते। उ.—सूर श्रपनो श्रंस पावै, जाहिं घर भत्व मारि—११३५।

भखकेतु—संज्ञा पुं. [सं. अप्रकेतु ] कामदेव।
भखत—कि. ग्रा. [हिं. भीखना] दुखी होता या खीजता है,
भीखता ह। उ.—(क) बाबा नंद भखत किहिं कारन,
यह किह मया मोह ग्रम्भाइ। सूरदास-प्रभु मातु-पिता
को, तुरतिहं दुख डारयो बिसराइ—५३१।

भखना—कि. श्र. [हिं. भीखना] भुँभलाना, भीखना।
भखनिकेत—संज्ञा पुं. [सं. भषिनकेत] कामदेव।
भखराज—संज्ञा पुं. [सं. भषराज] मगर, मकर।
भखलगन, भखलगन—संज्ञा पुं. [सं. भषलगन] मीनलगन।
भखिश्राँ, भखियाँ, भखी—संज्ञा स्त्री. [सं. भष] मछली,
मीन। उ.—श्रावत बन तें साँभ देखो में गायन
माँभ काहू को ढोटा री एक सीस मोर पखियाँ।
श्रातसी कुसुम जैसे चंचल दीरघ नैन मानो रसभरी
जो लरित जुगल मिखिश्राँ—२३६६।

भगड़ना—कि. श्र. [हिं. भक्भक से श्रनु.] (१) हुज्जत, तकरार या तेज वाद-विवाद करना। (२) लड़ाई-

भगड़ा करना।

भगाड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. भकभक से श्रनु. ] (१) हुज्जत, तकरार, तेज वाद-विवाद। (२) लड़ाई,मारपीट।

भगड़ाल्—वि. [हिं. भगड़ा+त्र्रालू (प्रत्य.)] (१) हुज्जती, बकवादी । (२) लड़ाई-भगड़े में लगा रहने या रुचि लेनेवाला।

भगड़ी—संशा स्त्री. [हिं. भगड़ा ] (१) भगड़ा करने-वाली। (२) श्रपने नेग या हक के लिए भगड़नेवाली। भगर—संशा पुं. [देश.] एक चिड़िया।

कि. श्र. [हिं. भगड़ना] भगड़ा करते हैं, भगड़ना करते हैं, लड़ते-भगड़ते हैं, वाद-विवाद करते हैं। उ.—(क) खेलत-खात गिरावहीं, भगरत दोड भाई—१०-१६२। (ख) श्रापुनि हारि सखनि सौं भगरत यह कहि दियौ पठाइ—१०-२१४। (ग) ब्रज की ढीठी गुवारि, हार की बेचनहारि, सकुचे न देत गारि भगरत हूँ—१०-२६५। (घ) नितहीं भगरत हैं मनमोहन, देखि प्रेम-रस-चाखी—७७४।

भगरना—िक. श्र. [हिं. भगड़ना] भगड़ा करना, लड़ना।
भगरा—संज्ञा पुं. [हिं. भगड़ा] हुज्जत, लड़ाई।
भगराऊ—िव. [हिं. भगड़ालू] भगड़ा करनेवाला।
भगरि—िक. श्र. [हिं. भगड़ा] भगड़ा करके, लड़भगड़कर, वाद-विवाद करके। उ.—एक दूध-फल,
एक भगरि चवेना लेत, निज निज कामरि के
श्रासननि कीने—४६७।

भगरिनि, भगरी—संज्ञा स्त्री, [हिं. भगड़ी] (१) भगड़ने-लड़नेवाली। (२) प्रपने नेग के लिए भगड़नेवाली। उ.—(क) बहुत दिननि की त्र्यासा लागी, भगरिनि भगरी कीनौ—१०-१५। (ख) भगरिनि तैं हौं बहुत खिमाई। कंचन-हार दिऐ नहि मानति, तुहीं त्र्रमोखी दाई—१०-१६। (ग) जसुमित लटकित पाइ परे। तेरी भली मनेहों भगरिनि, तू मित मनिहं डरै—१०-१७।

भगरू—वि. [हिं. भगड़ालू ] कलहप्रिय, भगड़ा-बखेड़ा करनेवाला, लड़ाकू। उ.—लोभी, लौंद, मुकरवा, भगरू, बड़ी पढ़ेली, लूटा—१-१८६। भगरे—िक. श्र. [हं. भगड़ना] भगड़ा करे, वाद-विवाद करे, लड़े। उ.—(क) स्रदास स्वामी प्रगटे हैं, श्रीसर पै भगरे—१०-१७। (ख) कब मेरी श्रॅचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसों भगरे—१०-७६।

भगरो, भगरो—संज्ञा. पुं. [हिं. भगड़ा ] भगड़ा, वाद-विवाद, हुज्जत, तकरार । उ.—(क) बहुत दिननि की आसा लगी, भगरिनि भगरों कीनों—१०-१५ । (ख) स्याम करत माता सौं भगरों—१०-६४ ।(ग) भोरिहं नित प्रति ही उठि, मोसों करत भगरों— १०-३३६ । (घ) हमहिं तुमहिं कैसोई भगरो सूर सुजान हम गँवारी—१०३० । (ङ) दान देत की भगरों करिहों—११२४ ।

भगला, भगा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बच्चों का ढीला-ढाला कुरता। उ.—(क) नंद-उदौ सुनि आयौ हो, वृषभानु को जगा। देवे कों बड़ो महर, देत न लावे गहर, लाल की बधाई पाऊँ लाल को भगा—१०-३६। (ख) भगा पगा अरु पाग पिछोरी ढाढ़िन को पहिरायौ। (२) ढीला-ढाला बड़ा कुरता।

भगुलि, भगुलिया, भगुलिया, भगुली—संश स्त्री.
[हिं. भगा का य्रल्पा.] ढीलाढाला बच्चों का छोटा कुरता। उ.—प्रपुलित है के य्रानि, दीनी है जसोदा रानी भीनीय भगुलि तामें कंचन-तगा—१०-३६। भज्भर—संशा पुं. [ं. श्रिलंजर] मिट्टी का एक छोटा पात्र जिसमें गर्मी में पानी ठढा करते हैं।

भाजभी—संशास्त्री. [देश.] (१) फूटी कौड़ी। (२) दलाली में प्राप्त धन।

भभक—संशा स्त्री. [हं. भभकना] (१) भिभक, भड़क।
मुहा.—भभक निकलना—भय-संकोच दूर होना।
भभक निकालना—भय-संकोच दूर करना।

(२) भुँभलाहट। (३) अप्रिय गंध। (४) कुछ सनक।

भभकन—संशा स्त्री. [हिं. भभकना ] संकोच, भड़क।

भभकना—िक. अ. [अनु.] (१) भय या आशंका से

ठिठकना या भड़कना। (२) भुँभलाना। (३) चौंकना।

भभकिनि—संशा स्त्री. [हिं. भभकना ] भिभक, भड़क।

ड.—वह रस की भभकिन, वह महिमा, वह मुसु-किन वैसो संजोग।

भभकाना—क्रि. स. [हिं. भभकना का प्रे.] (१) भय या प्राशंका से बिदकाना या भड़काना। (२) विभाना। (३) चौंका देना।

भभकार—संज्ञा स्त्री, [हिं, भभकारना] डाँटने, डपटने या दुरदुराने का भाव या कार्य।

भभकारत—िक, स. [ अनु. ] अपने सामने मंद या फीका कर देता है। उ.—नख मानो चंदबान साजि कै भभकारत उर आग्यो—१६७२।

भभकारना—िक. स. [ अनु. ] (१) डाँटना-डपटना। (२) दुतकारना, दुरदुराना। (३) अपने सामने कुछ न गिनना-समभना, तुलना में मंद या हीन कर देना।

मः मांक — कि. ग्र. [हिं. भभकना (श्रन.)](१) चौंककर।

प्र. — भभिक उठे, उठ्यो — चौंक पड़ा। उ. —

(क) जसुमति मन-मन यहै त्रिचारति। भभिकि

उठ्यो सोवत हरि श्रवहीं, कञ्जु पिंड-पिंड तन-दोष

निवारति — १०-२००। (ख) जागे नंद, जसोदा

जागी, बोलि लिए हरि पास। सोवत भभिक उठे
काहे तैं, दीपक कियो प्रकास—५१७।

(२) भय-ग्राशंका से चमककर, बिदककर या भड़ककर। उ.—मिलति भुज कंठ दे रहति ग्रँग लटिक के जात दुख दूरि ह्व भभ्भिक सपने—१७४७। (३) संकृचित हुए, सकुचाये। उ.—ग्रित प्रतिपाल कियो तुम हमरो सुनत नंद जिय भभ्भिक रहे—२६४६। मभ्भक्यो—कि. ग्रा. [हिं. भभ्भकना (ग्रन्.)] चौंक पड़ा, ग्राशंकित हुग्रा। उ.—केहरी-नख निरिख हिरदे, रहीं नारि बिचारि। बाल-सिस मनु भाल तें ले उर धरयो त्रिपुरारि। देखि ग्रंग ग्रानंग भभ्भक्यो, नंद-सुत हर जान—१०-१७०।

भट-कि. वि. [सं. भटिति ] तुरंत, फौरन, तत्क्षण। मुहा,-भट से-जल्दी से, तुरंत ही।

भटकना—िक. स. [हिं. भट] (१) भटका देना, भोंका देकर हिलाना। (२) जोर से हिलाना, भोंका देना। मुहा.—भटक कर—भोंके या भटके से, तेजी से। (३) दबाव. चालाकी या छल से कोई चीज

(३) दबाव, चालाकी या छल से कोई चीज लेना, ऐंठना।

मुहा.— भटके का माल—दबाव, चालाकी या

छल से लिया हुम्रा, ऐंठा हुम्रा या चुराया हुम्रा माल। कि. त्रा.—रोग-शोक से बहुत बुबला हो जाना।

भाटका—संज्ञा पुं. [ अनु. ] (१) भोंका, धक्का। (२) धक्के का भाव। (३) एक ही वार में पशु का वध करने का ढंग। (४) रोग-शोक का आघात।

भटकारना—िक. स. [हिं. भटका ] भटका देना।
भटकि—िक. स. [हिं. भटकना ] (१) भटका या घक्का
देकर। उ.—(क) धरिन पट पटिक कर भटिक
भौंहिन मटिक श्राटिक तहाँ रीभे कन्हाई। (ख)
रिसन उठी भहराइ भटिक भुज छुवत कह पिय
सरम नाहीं—२१४२। (२) भटक कर, भिटका
खाकर। उ.—िकलिक भटिक उलटे परे देवन मुनिराई—१०-६६।

भाटकाई—कि. स. [हिं. भाटकना] भाटके से छीती। उ.—यहि लालच श्रॅंकवारि भरत हो हार तोरि चोली भाटकाई।

भटकी—िक. स. [ अनु. ] भटका दिया, फटकारी। उ.—(क) विषधर भटकी पूँछ फटिक सहसौ फन काड़ो—५८६। (ख) छोरे ते नहीं छुटित कइक बेर भटकी—१२००।

भटकें—संशा पुं. सिव. [हिं. भटका] भटके से, भटकने से। उ.—कठिन जो गाँठि परी माया की, तोरी जाति न भटकें—१-२६२।

भटक्यों—िक. स. [हिं. भटकना ] भोंका दिया, भटका, (किसी चीज को ) जोर से हिलाया। उ.—बृच्छ-जीव ऊखल ले ब्राटक्यों। ब्रागों निकसि नैंकु गहि भटक्यों—३६१।

भटपट—अव्य [ हिं. भट + पट ] तुरंत ही, फौरन,। भटाका—िक. वि. [ हिं. भड़ाका ] चटपट । भटास—संशा स्त्री. [ हिं. जड़ी ] बौछार । भटिका—संशा स्त्री. [ हिं. भाटा ] जूही । भटित—िक. वि. [ सं. ] (१) भटपट, तुरंत, तत्काल । (२) बिना समभे-बुभे ।

भट्ट—िक. वि. [हिं. भट ] तुरंत, शोघ्र, तत्काल। भड़—संशा स्त्री. [हिं. भड़ना ] वर्षा की भड़ी। भड़कना—िक. स. [हिं. भिड़कना ] (१) ग्रपमान पा श्रनादर करते हुए कुछ कहना। (२) श्रलग फेक देना।
भाड़का—संज्ञा पुं. [हिं. भाड़का ] भाड़प, मुठभेड़।
भाड़भाड़ाना—कि. स. [हिं. भाड़का ] डाँटना।
कि. स. [हिं. भाँभोड़ना ] भोंका-भाटका देना।
भाड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाइना ] (१) भाड़ने से गिरी
हुई चीज। (२) भाड़ने की किया या भाव।
भाड़ना—कि. श्र. [सं. द्वारण] (१) कण या बूँद के रूप
में गिरना। (२) बहुत श्रधिक गिरना। (३) भाड़कर
साफ किया जाना।
भाड़प—संज्ञा स्त्री. [श्रनु.](१) भगड़ा, मुठभेड़, लड़ाई।

भड़प—सज्ञा स्त्रा. [ अनु. ] (१) भगड़ा, मुठभड़, लड़ाइ। (२) क्रोध, गुस्सा, जोश, ग्रावेश। (३) ग्राग की लपट। भड़पना—िक. ग्रा. [ ग्रानु. ] (१) वेग से गिरना। (२) ग्राक्रमण करना। (३) छोपना। (४) लड़ना-भगड़ना। (४) छीनना, ऐठना।

भड़पा भड़पी—संज्ञा स्त्री. [ त्रानु. ] हाथापाई।
भड़पाना—क्रि. स. [ हिं. भड़प ] दूसरों को लड़ाना।
भड़बेरी, भड़बेरी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. भाड़+बेरी ]
जंगली बेर का पौधा या फल।

मुहा,—भड़बेरी का काँटा—भगड़ालू श्रादमी।
भड़वाना—क्रि. स. [हिं. भाड़ना का प्रे.] भाड़ने का
काम दूसरे से कराना, भाड़ने में लगाना।
भड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाड़ना] भाड़ने की क्रिया,
भाव या मजदूरी।

भड़ाक, भड़ाका—संज्ञा पुं. [ ग्रानु. ] भड़प, मुठभेड़ ।

क्रि. वि.—जल्दी से, चटपट, तुरंत ।
भड़ाभड़ — क्रि. वि. [ ग्रानु. ] लगातार, जल्दी-जल्दी ।
भड़ी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. भड़ना ] (१) कणों या बूँदों के
बराबर गिरने की क्रिया । (२) छोटी बूँदों की वर्षा ।

(३) लगातार वर्षा । (४) बिना रुके बहुत सी बातें
कहे या बकते जाना ।

भन—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] धातुखंड बजने की ध्वनि। भनक—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] भनकार का शब्द। भनकना—क्रि. श्र. [ श्रनु. ] (१) भनकारना, भनभनाना।

(२) क्रोध से हाथ पैर पटकना। (३) चिड़चिड़ाना। भनकमनक—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] गहनों की भनकार। भनकार—संशा स्त्री. [ हिं. भंकार ] भनभन की ध्विन, गहनों की अतक । उ.—(क) किंकिनी किंट कुनित कंकन कर चुरी भनकार—१७२६ । (ख) छीन लंक किंट किंकिनि बाजत श्रित भनकार—२७६२ । भनकारना—कि. स. [हिं. भनकार ] भनभन करना । कि. श्रा.—भनभन शब्द होना । भनकारनो—कि. स. [हिं. भनकारना ] गहनों का बज-कर भनभन करना । उ.—मिनमय नूपुर कुनित कंकन किंकिनी भनकारनो—२२८० । भनकारा—संश्रा स्त्री. [सं. भंकार ] भनभन शब्द, भनकार । उ.—समदत भई श्रानाहत बानी, कंस कान-भनकारा—१०-४ । भनभन—संश्रा स्त्री. [श्रनु.] भनकार । भनभन—संश्रा स्त्री. [श्रनु.] भनकार ।

वि. [ श्रनु. ] जिससे भनभन शब्द निकले।

भनभनाना—िक, श्र. [ श्रनु. ] भनभन शब्द होना।

कि. स.—भनभन का शब्द करना।

भनभनाहट—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] भनकार।

भननन—संशा पुं. [ श्रनु. ] भनभन शब्द, भंकार।

भननाना—िक. स. [ श्रनु. ] भनभन शब्द करना।

कि. श्र.—भनभन शब्द होना।

भनस—संशा पुं. [हिं. भन ] एक प्राचीन बाजा। भनाभन—संशा स्त्री. [ अनु. ] भनभन शब्द, भंकार। कि. वि.—भनभन शब्द के साथ। अनिया—वि [हिं भीना ] बदन महीन भीना। उ

भानिया—वि. [हिं. भीना ] बहुत महीन, भीना । उ.— कनक रतन मनि जटित कटि किंकिन कलित पीत पट भनिया।

भन्नाहट—संशा स्त्री. [ त्रानु. ] भनभनाहट।
भप—िक्र. वि. [ सं. भंप=जल्दी से कूदना ] जल्दी से,
तुरंत, भटपट। उ.—खेलत खेलत जाइ कदम चिंद्र
भप जमुना-जल लीन्हो।

भपक—संज्ञा स्त्री. [हं, भपकना] (१) पलक भपकने का थोड़ा समय। (२) पलक का गिरना। (३) हलकी नींद, भपकी। (४) दार्म, भेंप।

भापकना—कि. श्र. [सं. भंप ] (१) पलक गिरना। (२) हलकी नींद या भपकी लेना। (३) भपट कर श्रागे बढ़ना। (४) ढकेलना। (४) भेंपना। (६) सहमना।

भेपका—संज्ञा पुं. [ श्रनु. ] हवा का भोंका।
भेपकाना—िक. स. [ श्रनु. ] बराबर पलके गिराना।
भेपकी—संज्ञा स्त्री. [ श्रनु. ] (१) हलकी नींद, ऊँव।
(२) श्रांख भेपकता। (३) कपड़ा जो श्रनाज श्रोसाने
में हवा करने के काम श्राता है। (४) धोखा, चकमा।
भेपकीहाँ, भेपकीहें—िव. पुं. [ हिं. भेपना ] (१) नींद
से भरा या ऊँवता हुश्रा। (२) मस्त, नज्ञो में चूर।
भेपकीहीं—िव. स्त्री. [ हिं. भेपकीहाँ ] (१) नींद-भरी,
भेपकती या ऊँवती हुई। (२) मस्त, नज्ञो में चूर।
भेपट—संज्ञा स्त्री. [ सं. भोप = जल्दी से कृदना ] भेपटने
की किया या भाव।

यौ, —लपट-क्तपट —क्तपटने की किया या भाव।

मुहा, —क्तपट लेना — तेजी से आगे बढ़कर छीनना।

क्तपटत —िकि. श्र. [हिं. क्तपटना] क्तपटती हैं, सवेग

बढ़ती है। उ. —क्तपटि क्तपटत लपट, फूल-फल चट
चटिक, फटत, लटलटिक द्रुम द्रुमनवायौ — ५६६। क्तपटना —िकि. श्र. [हिं. क्तपट] (१) तेजी या क्रोंके से

बढ़ता। (२) पकड़ने या आक्रमण के लिए टूटना।

कि. स. —क्तपट कर पकड़ या छीन लेना।

क्तपटा —िकि. श्र. [हिं. क्तपटना] लपका, दौड़ा।

क्तपटान — संज्ञा स्त्री. [हिं. क्तपटना] क्तपट।

क्तपटाना —िकि. स. [हिं. क्तपटने का प्रे.] (१) क्रपटने

में प्रवृत्त करना, दौड़ाना। (२) विपक्षी पर धावा या श्राक्रमण कराना।

क्तपटि —िकि. श्र. [हिं. क्तपटना] किसी (वस्तु या

भ्राक्रमण कराना।
भ्राटि—िक. श्र. [हिं. भ्रापटना] किसी (वस्तु या व्यक्ति की) श्रोर भोंके के साथ बढ़कर, सवेग चलकर। उ.—भ्रापटि भ्रापटत लपट, फूल-फल चट चटिक, फटत, लटलटिक द्रुम द्रुमनवायी—पृश्द्। भ्रापट्ट—संज्ञा स्त्री. [हिं, भ्रापट] भ्रापटने की किया।
भ्रापट्टा—संज्ञा पुं. [हिं, भ्रापट] तेजी से लपककर भटका या भोंका देने की किया या भाव।
भ्रापताल—संज्ञा पुं. [देश.] संगीत में एक ताल।
भ्रापति—िक. श्र. [हिं. भ्रापना] (१) भ्रापकी लेती है।
(२) भुकती है। (३) लिजत होती या भोंपती है।
भ्रापना—िक. श्र. [श्राप्ता] (१) श्रांखें भ्रापकना, पलक गिरना। (२) भुकता। (३) भोंपना, लिजत होना।

भापनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) ढकना। (२) पिटारी। संज्ञा स्त्री. [हिं. भूपना ] भूपकी, ऊँघ। भापलया—संज्ञा स्त्री [हिं. भाषाला ] छोटा भाषा। भपवाना—कि. स. [ श्रनु. ] भपाने में लगाना। भापस—संशा स्त्री. [हिं. भापसना ] (१) गुंजान होने की किया या भाव। (२) भुकी हुई डाल या शाखा। भाषसना—कि. श्र. [हिं. भाषना = ढँकना ] लता या पेड़-पौधे का खूब गुंजान या घना होकर फैलना। भाषाना—संज्ञा पुं. [हिं. भप ] ज्ञीघता, जल्दी। क्रि. वि. - जल्दी से, शीघ्र ही। भपाट-कि. वि. [हिं. भपट ] शीघ्र ही, तुरंत। भाषाटा-संज्ञा पुं. [हिं. भाषट ] (१) चपेट, आक्रमण । (२) भापट्टा, भपट। भाषाना-कि. स. [हिं. भाषना] (१) मूँदना, बंद करना, भपकाना। (२) भुकाना। भाषाच-संज्ञा पुं. [देश.] घास काटने का ग्रीजार। भाषि-कि. वि. [सं. भाष = जल्दी से गिरना, कूदना ] जल्बी से, तुरंत, भटपट। उ.—खेलत खेलत जाइ कदम चिंह, भिप जमुना-जल लीन्ही--५७६। भाषित-वि. [हिं. भपना ] (१) मुँदा हुआ, बंद। (२) जिसमें नींद भरी हो, उनींदा। (३) भेंपा हुआ। भाषिया—संज्ञा स्त्री, [देश, ] एक गहना। पिटारी। भपेट—संज्ञा स्त्री. [हिं. भपट ] भपट, वेग । भपेटना—कि. स. [ श्रनु. ] दबोचना, छोपना । भापेटा—संज्ञा पुं. [ अनु. ] (१) भापट, वेग की चपेट। (२) भूत-प्रेत की बाधा। (३) हवा का भोंका। भागोला—संशा पुं. [हिं. भाँपोला ] छोटा भाबा। भपोली—संज्ञा स्त्री, [हिं, भँपोली ] छोटी डलिया ।

भिषाता—संशा पुं. [हं. भँपाला ] छोटा भावा।
भिषाता—संशा पुं. [हं. भँपोली ] छोटो डिलया।
भिष्पान, भष्पर—संशा पुं. [श्रनु: ] भाषड़, थष्पड़।
भाष्पान —संशा पुं. [हं. भँपान ] खटोली की सवारी।
भाष्पानी—संशा पुं. [हं. भंपान ] भष्पान उठानेवाला।
भव—संशा पुं. [हं. भव्वा ] गुच्छा, फुँदना।
भवभवी—संशा स्त्री [देश.] कान का एक गहना।
भवड़ा, भवरा—वि. [हं भवरा ] बड़े बालवाला।
भवधरी—संशा स्त्री. [देश.] एक घास।
भवरीला—वि. [हं. भवड़ा+ईला (प्रत्य.)] (१) बड़ा

बिखरा-घुँघराला (बाल)। (२) ऐसे बालवाला।
भवरीली—वि. स्त्री. [हि. भवरीला] बड़े बाल वाली।
भवरेरा—वि. [हिं. भवरीला] बड़ा, बिखरा हुआ और
धुँघराला। उ.—कुंतक कुटिल छिब राजत भवरेरी।
लोचन चपल तारे रुचिर भँवरेरी।

भवा—संज्ञा पुं. [हिं. भव्वा] रेशमी या सूती फुँदना या गुच्छा। उ.—सीस फूल धरि पाटी पोंछत फुँदनि भवा निहारत।

भवार, भवारि—संशा स्त्री. [ अनु. ] भगड़ा, बखेड़ा। (क) बहुत अचगरी जिन करौ अजहूँ तजौ भवारि।

(ख) बड़े घर की बहू बेटी करित बृथा भवारि।
भिबया—संज्ञा स्त्री, श्रल्पा, [हिं. भव्वा] (१) छोटा
फुँदना या गुच्छा। (२) सोने-चाँदी की छोटी-छोटी
कटोरियाँ जिनसे गहनों का फुँदना तैयार होता है।

भजुत्रा—िव. [हं. भवरा ] बड़े बालवाला।
भजुकना—िक. श्र. [श्रन. ] भड़कना, बिदकना।
भजुके—िक. श्र. [हं. भज्कना ] भड़कते हें।
भज्ञा—संज्ञा पुं. [श्रन्त. ] (१) रेशमी-सूती तारों का
गुच्छा या फुँदना। (२) एक सी चीजों का गुच्छा।
भमक—संज्ञा स्त्री. [श्रन्त. ] (१) प्रकाश, उजेला। (२)
भमभम शब्द। (३) ठसक या नखरे की चाल।

भमकत—कि, श्र. [हिं. भमकना] गहनों की भमभम-छमछम के साथ उछलता-क्दता है। क.—कबहुँक निकट देखि बरसा रितु भूलत सुरँग हिंडोरे। रमकत भमकत जनकसुता सँग हाव-भाव चित चोरे— सारा. ३१०।

भमकना—िक. ग्र. [हिं. भमक] (१) चमकना, दमकना, प्रकाश करना। (२) छा जाना, भपकना। (३) भमभम की ध्वित होना। (४) गहनों की भनकार के साथ उछलना-कदना। (४) गहने भनकारते हुए नाचना। (६) हथियारों का चमकना ग्रौर खनकना। (७) ठसक दिखाना। (८) भमभम शब्द करना। भमकिन—संश स्त्री. [हिं. भमकना] भमभम ध्वित। उ.—(क) दामिनि की दमकिन, बूँदिन की भमकिन सेज की तलफ कैसे जीजियत माई है—२८२७। (ख) पग जेहिर बिछियन की भीमकिन चलत

परस्पर बाजते।

भमकाइ—िक. स. [हिं. भमकना ] श्राभूषण ग्रादि बजाकर ग्रीर ठसक दिखाकर। उ.—(क) सूर स्याम श्राए ढिग श्रापुन घट भरि चिल भमकाइ—८८४। (ख) ग्वारि घट सिर घरि चली भमकाइ—८८५।

भामकाई—कि. स. [हिं. भामकना] (१) गहनों की छमछमाहट की। (२) ठसक दिखायी।

भमकाना—कि. स. [हिं. भमकना] (१) चमक पैदा करना। (२) श्राभूषण भमभमाना। (३) हथियार चमकाना या खनखनाना।

भमकार, भमकारा, भमकारे—वि. [ हैं. भमभम ] भमाभम बरसने या पानी बरसानेवाला (बादल)।

भमिक—िक. श्र. [हिं. भमकना ] (१) गहनों का भमंभम शब्द या भनकार की ध्विन करके। उ.— हँसत नंद, गोपी सब बिहँसीं, भमिक चलीं सब भीतर ढुरकी—१०-१८०। (२) भपकी लेकर, (नींद ग्रादि) छाकर। उ.—श्रालस सौं कर कौर उठावत, नैनिन नींद भमिक रही भारी—१०-२२८। (३) भमभम शब्द करके। उ.—तैसिये नन्ही बूँदिन बरसतु भमिक भमिक भकोर। (४) तेजी करके, भमक दिखाकर। उ.—धमिक मारथी घाउ गुमिक हृदय रह्यों भमिक गहि केस लें चले ऐसे—२६१५।

भगभम—संशा स्त्री. [ त्रानु. ] (१) घुँघरू स्नादि का छमाछम शब्द। (२) पानी बरसने का शब्द। (२) चमक-दमक।

कि, वि.—(१) छमाछम ध्विन के साथ। (२) चमक-दमक के साथ।

वि.—जिससे खूब चमक-दमक या श्राभा हो।
भमभमाना—कि. श्र. [,श्रनु.] (१) भमभम शब्द होना।
(२) चमकना, चमचमाना।

कि. स.—(१) भमभम करना। (२) चमकाना।
भमभमाहट—संशा स्त्री. [ श्रानु.] (१) भमभम होने की
किया या भाव। (२) चमकने की किया या भाव।
भमना—कि. श्र. [ श्रनु.] भुकना, नम्न होना।
भमा—संशा पुं. [ हिं. भाँवाँ ] भाँवाँ।

भमाई-कि. श्र. [हिं. भमाना ] (नेत्रों में नींद ) छा गयी या भर गयी। उ.—खेलत तुम निसि ऋधिक गई सुत नैनन नींद कमाई।

भभाका—संज्ञा पु. [ अनु. ] (१) पानी बरसने या गहने बजने का शब्द। (२) चटक मटक, ठसक, नखरा। भमाभम-कि. वि. [ अनु.] (१) चमक-दमक के साथ।

(२) भमभम या छमछम शब्द के साथ। भमाट—संज्ञा पुं. [ अनु. ] भुरमुट।

भमाना—कि. श्र. [ श्रनु. ] (नींद से ) भपकना।

कि. श्र. [हिं. भँवाना ] (१) कुछ काला पड़ जाना। (२) घटना, कम होना। (३) कुम्हलाना। (४) भाँवे से रगड़ा जाना।

क्रि. स.—इकट्ठा या एकत्र करना।

भमी—कि. ग्र. [हिं. भमना] भुकी, नम्र हुई। उ.— मुरली स्याम के कर ऋधर-बिंब रमी। "" । महा कठिन कठोर श्राली बाँस बंस जु जमी। सूर पूरन परिस श्रीमुख नैक नाहीं ऋमी।

भमूरा—वि. [हिं. भबूरा] (१) बड़े बालवाला, भबड़ा।

(२) जो ढीले-ढाले कपड़े पहने हो । भंमेल—संशा स्त्री. [हिं. भमेला] भगड़ा, भंभट।

भमेला—संशा पं. [ अनु. भाँव भाँव ] (१) भगड़ा, बखेड़ा, संसट। (२) भीड़-भाड़, जमावड़ा, भुंड। ममेलिया—वि. [हिं, भमेला+इया (प्रत्य.)] भगड़ालू।

भर-संशास्त्री. [सं.] (१) पानी गिरने का स्थान। (२) पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह । (३) समूह, भुंड। (४) तेजी, वेग। ए.—प्रात गई नीके उठि घर तें। में बरजी कहाँ जात री प्यारी तब खीभी रिस भार तैं—७४४। (४) लगातार वर्षा, वर्षा की भड़ी। उ.—स्रदास के प्रभु सों कहियौ नैनन है भर लायौ---२८१५। (६) किसी वस्तु की लगा-तार वर्षा। उ.—सूरदास तबही तम नासै ग्यान श्रगिनि भर फूटै—२-१६। (७) श्रांच, ताप, लपट, ज्वाला। उ.—(क) सूरस्याम ऋंकम भरि लीन्हो बिरह श्रांगिनि भर तुरत बुभानी । (ख) स्याम गुन-रासि मानिनी मनाई। रह्यौ रस परस्पर मिटथौ तनु बिरह-भर भरी श्रानँद त्रिय उर न माई। (ग) नहिं

दामिनि द्रुम-दवा सैल चिंह फिरि बयारि उलटी भर धावति—३४८५। (८) ताले का खटका। भरक—संज्ञा स्त्री. [हं भलक] चमक-दमक। भरकना-कि. ग्र. [हं. भलकना] (१) चमक-दमक

होना। (२) कुछ कुछ प्रकट या श्राभासित होना।

कि. श्र. [हिं. भिड़कना ] घुड़कना, डाँटना। भरकी—संशा स्त्री. [हिं. भिड़की ] भिड़की । उ.— रोवति देखि जननि श्रकुलानी दियो तुरत नौश्रा को भरकी (घुरकी )-१०-१८०।

भरभर—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] जल बहने, बरसने या हवा चलने से होनेवाला शब्द।

भरभराति—कि. ग्र. स्त्री. [हिं. भरभराना (ग्रनु.)] भरभर शब्द करके, भरभराकर । उ. -- भरभराति भहराति लपट श्राति, देखियत नहीं उबार-५६३।

भरभराना—कि. स. [ श्रनु. ] भरभर शब्द करना। भारत-कि. अ. [हिं. भड़ना ] बहते रहते हैं, प्रवाहित रहते हैं। उ.--भरना लों ये भरत रैन दिन उपमा सकल बही।

भरना—कि. श्र. [ सं. चरण ] (१) भड़ना, बहना। (२) ऊपर से जल-धारा गिरना |

संशा पूं.—(१) बड़ा छलना या चलना। (२) बङ्गा करछल, पौना। (३) एक घास।

संशा पुं. [हिं. भर ] (१) ऊँचे स्थान से गिरने-वाला जल-प्रवाह। (२) लगातार बहनेवाली जल-धारा, सोता।

वि.—(१) जो भरता हो। (२) जिससे भरता हो। भरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. भरना] (१) भड़ने की किया या भाव (२) भड़ी हुई वस्तु ।

भरिन, भरिनी—संशा स्त्री. [हिं, भरिना ] भरिने की किया, भाव या रीति।

वि.—(१) भरनेवाला। (२) जिससे भरता हो। भरप-संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] (१) भोंका, भकोरा। (२) वेग, तेजी। (३) टेक, सहारा। (४) परदा, चिलमन। (४) लड़ाई-भगड़ा। (६) कोध, गुस्सा (७) जोश, श्रावेश। (५) श्राग की लौ या लपट।

भरपत-कि. श्र. [हं. भरपना] (१) भोंका देता है,

बौछार मारता है। उ.—बरषत गिरि भरपत ब्रज कपर—१०५४। (२) लड़ता-भगड़ता है। उ.— एते पर कबहूँ जब श्रावत भरपत लरत घनेरो। भरपना—िक. श्र. [श्रुनु.] (१) भोंका देना, बोछार मारना। (२) वेग से टूटना। (३) लड़ना-भगड़ना। भरपेटा—संशा पुं. [हिं. भपट] भपट, भपट्टा। भरबेर—संशा पुं. [हिं. भड़बेर] जंगली बेर। भरबेरी—संशा स्त्री. [हिं. भड़बेरी] जंगली बेर। भरवाना—िक. स. [हिं. भाड़ना का प्रे.] (१) भाड़ने में दूसरे को लगाना। (२) भड़वाना। भरसना—िक. श्र. [श्रुनु.] (१) श्राग या गरमी से भुलसना। (२) मुरभाना, कुम्हलाना, सूखना।

कि. स.—(१) भुलसाना। (२) मुरभा देना।
भरहरना—कि. श्र. [श्रनु.] भरभर शब्द करना।
भरहरा—वि. [हिं. भँभरा] छेददार।
भरहरात—कि. श्र. [हिं. भरहराना] हवा के भोंके से पत्तों का शब्द करना, भरभर ध्वनि करके गिरना।
उ.—भरहरात बन-पात, गिरत तरु, धरनी तरिक तराकि सुनाइ—५६४।

भरहराना—कि. श्र. [ श्रनु. ] हवा के भोंके से पतों का भर-भर शब्द करते हुए गिरना।

कि. स.—(१) भरभर शब्द सहित पत्तों ग्रादि को गिराना।(२) भाड़ना, भटकना।

भरहरि—कि. त्र. [हिं. भरहरना] भरभर शब्द करके। ड.—त्र्रजहूँ चेति मूढ़, चहुँ दिसि तें उपजी काल-त्र्रागिन भर भरहरि। सूर काल-बल-ब्याल ग्रसत है, श्रीपति सरन परत किन फरहरि—१-३१२।

भरहिल-संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया। भरा-संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का धान।

भराभर—कि. वि. [ श्रनु. ] (१) भरभर शब्द के साथ।

(२) लगातार। (३) वेग के साथ।

भराबोर—संशा पुं. [हिं. लाबोर] (१) कलाबातून का कढ़ा-बुना साड़ी या चादर का श्रंचल। (२) कारचोबी।

(३) काँटा, भाड़ी। (४) चमक। वि. [हिं. भलमल=चमक] चमकीला।

भार-संज्ञा स्त्री. [हिं. भड़ी] लगातार वर्षा, भड़ी,

बराबर पानी बरसना। उ.—करन मेघ बाने-बूँद भादौं-भरि लायौ—१-२३।

कि. श्र. [ हिं. भड़ना ] भड़कर, गिर कर। उ.—हरि विनु फूल भरी सी लागत भरि भरि परत श्रँगार—२७६८।

भारिफ—संज्ञा पुं. [हिं. भरप ] परदा, चिलमन।
भारिबो—संज्ञा पुं. [हिं. भड़ना ] गिरने या प्रवाहित
रहने की किया या भाव। उ.—प्राननाथ संगहुँते
बिह्यरे रहत न नैन-नीर की भारिबो—२८६०।

भरी—संज्ञा स्त्री. [हं, भरना] (१) भरना, सोता, स्रोत। (२) छोटे दूकानदारों से किराये या व्याज-रूप में प्राप्त धन। (३) लगातार वर्षा,वर्षा की भड़ी। उ.—कबहुँ न मिटत सदा पावस ब्रज लागी रहत भरी—३४४५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भर] ग्रांच, ताप, ज्वाला। उ.—हरि विनु फूल भरी सी लागत भरि भरि परत श्रुँगार—२७६८।

भरुत्रा—संशा पूं, [देश.] एक तरह की घास। भरे—क्रि. श्र. [हिं. भड़ना] भड़े, गिरे। उ.—ज्यों सरिता पर्वत की खोरी प्रेम पुलक सम-स्वेद भरे री— ए. ३२७।

भरें—कि. ग्रा. [हिं. भड़ना] भड़ते हैं, (मुख से वचन ग्रादि) निकलते हैं। उ.—कब दें दाँत दूध के देखों, कब तोतरें मुख बचन भरें—१०-७६।

भरोखा—संज्ञा पुं. [ अनु.भरभर + गौख ] छोटो खिड़की, मोखा, गौखा, गवाक्ष । उ.—(क) भाँकति भपति भरोखा बैठी कर मीइत ज्यो मँखियाँ— २७६६ । (ख) तहँ तहँ उभिक भरोखा भाँकति जनक नगर की नार—सारा. २०८ ।

भरोखें—संज्ञा पुं. सिव. [हिं. भरोखा] खिड़की में (पर)। उ.—चितवत हुती भरोखें ठाढ़ी, किये मिलन को साजु—८८८।

भर्भर—संशा पुं. [सं.] (१) हुड़ क नामक बाजा। (२) कलियुग। (३) बड़ा करछुल, पौना। (४) भांभ बाजा। (४) पैर का भांभ नामक गहना। भर्भरक—संशा पुं. [सं.] कलियुग।

भर्भरा—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) तारा देवी।(२) वेश्या। भर्भरी—संज्ञा पुं. [सं भर्भरिन्] शिव।

संशा स्त्री. [सं.] भाँभ नामक बाजा।
भर्भरीक—संशा पुं. [सं.] (१) देश। (२) देह।
भरयो —िकि. श्र. [हिं. भरना=भड़ना] गिरा, बहा।
उ.—करना करत सूर कोसलपति, नैनिन नीर
भरयो — ६-१४४।

भरी—संज्ञा पुं. [ देश. ] एक पक्षी। भरेया—संज्ञा पुं. [ देश. ] बया नामक पक्षी।

भल-संज्ञा पुं. [हिं. भार, सं. भल=ताप ] (१) दाह, जलन। (२) उत्कट या तीव्र इच्छा। (३) विषय-भोग की कामना। (४) क्रोध, गुस्सा। (४) समूह, भुंड।

भलक—संदा स्त्री. [सं. भिल्लिका=चमक ] (१) आहित का आभास, प्रतिबंब । उ.—(क) पीत-बसन चंदन-तिलक, मोर-मुकुट, कुंडल-भलक, स्याम-घन-सुरंग-छलक, यह छिब तन लिए—४६०। (ख) चिलत कुंडल गंड-मंडल लक लित कपोल—६२७। (७) चमक-दमक, प्रभा, द्युति।

भलकत—कि. श्र. [हिं. भलकना ] चमकता है, दमकता है, भलकता है। उ.—(क) कुंडल लोल कपोलिन भलकत, मनु दरपन मैं भाई री—१०-१३७। (ख) चंचल हग श्रंचल-पट-दुति-छिब, भलकत चहुँ दिसि भालरी—१०-१४०।

भलकदार—िव. [हैं. भलक + फ़ा. दार ] चमकीला। भलकना—िक. श्र. [सं. भिक्षिका=चमक] (१) चमकना, दमकना (२) श्राभास होना, जान पड़ना।

भलकिन—संशा स्त्री. [हं. भलक ] भलक। उ.— सिलल भलकिन रूप श्रामा देख री नँदलाल—१२५६। भलका—संशा पुं. [सं. ज्वल=जलना ] छाला, फफोला। भलकाउ—िक. स. [हं. भलकाना ] दिखाता है, दरसाता है। उ.—जोबन-मद रस श्रमृत भरे हैं रूप-रंग भलकाउ—११३३।

भलकाना—कि. स. [हिं. भलकना] (१) चमकाना-दमकाना। (२) दरसाना, दिखलाना।

भलकावत—कि. स. [हिं. भलकाना ] चमकाते हैं, विखाते या दरसाते हैं। उ.—कैसे रूप हृदय राखित हो वे तो श्रांति भलकावत री—१६३४।
भलकी—संशा स्त्री. [हिं. भतक] (१) चमक-दमक,
श्राभा। (२) छाया, भलक, प्रतिबंब।
भलभल—संशा स्त्री [हिं. भलकना] चमक-दमक।
क्रि. वि—चमक-दमक के साथ।

भलभलाना—क्रि. श्र. [श्रनु.] चमकना, चमचमाना। क्रि. स.—चमकाना, दमकाना, भलकाना।

भलभलाहट—संशा स्त्री, [ अनु, ] चमक-दमक।
भलना—िक्रि. स. [ हिं. भलभल से अनु, ] (१) किसी
चीज को हिलाकर हवा लगाना। (२) (पंखे आदि को
हिलाकर) हवा करना। (३) ढकेलना, ढेलना, धक्के
से आगे बढ़ाना।

कि. श्र.—(१) किसी चीज का इधर-उधर हिलना-डुलना। (२) शेखी बघारना, डींग हाँकना। (३) भाला जाना, टाँका लगाया जाना। (४) (वार, श्राघात श्रादि) भेला जाना।

भलमल—वि. [हिं. भलमला] (१) भिलमिलाता हुम्रा, हिलती-डुलती लौ या ज्योतिवाला। उ.—भलमल दीप समीप सौंज भिर लेकर कंचन था लिका—८०६। संज्ञा पुं. [सं. ज्वल=दीप्ति] (१) हल्का प्रकाश या उजाला। (२) श्रॅंथेरा। (३) चमक-दमक या श्राभा। उ.—मकर कंडल गंड भलमल निरित्त लिजत काम—१४००।

कि. वि.—हल्की चमक-दमक या ग्राभा के साथ।
भलमला—वि. [हिं. भलमलाना ] चमकता हुग्रा।
भलमलात—कि. ग्रा. [हिं. भलमलाना ] ग्रस्थिर ज्योति
निकलती है, प्रकाश भिलमिलाता है। उ.—मैरा री
मैं चंद लहींगी। कहा करों जलपुट भीतर की, बाहर
ब्योंकि गहोंगी। यह तो भलमलात भकभोरत, कैसें
के जुलहोंगी—१०-१६४।

भलमलाति—िक. श्र. [हिं. भलमलाना ] रहरहकर ज्योति या श्राभा चमकती है। उ.—स्याग श्रलक बिच मोती गंगा। मानहु भलमलाति सीस गंगा। भलमलाना—िक. श्र. [हिं. भलमल ] (१) रहरह कर चमकना, चमचमाना। (२) हल्की, श्रस्थिर ज्योति या लौ निकलना।

कि. स.—ज्योति या लौ का हिलना-डुलना । मलमले—वि. [हिं. भलमला ] चमकीला, चमकता हुआ। उ.—ललित कपोलिन भलमले सुंदर श्रिति निर्मल। भलरा—संज्ञा पूं. [हिं. भालर ] चौड़ी भालर । भलराना—कि. ग्र. [हिं. भालर ] फैलकर छा जाना। भलरी—संशा स्त्री. [सं.] (१) एक बाजा। (२) भाँभ। भलवाना-- कि. स. [हि. भलना ] (१) हवा करने का काम दूसरे से कराना। (२) भालने का काम कराना। भलहाया—संज्ञा पुं. [हिं. भल ] ईव्यालु, डाही। भला—संज्ञा पुं. [हिं. भड़ ] (१) हल्की या थोड़ी वर्षा। (२) भालर, बंदनवार । (३) पंखा । (४) समूह । संज्ञा स्त्री. [ सं. ] श्रातप, धूप। भलाभल-वि. [ अनु. ] खूब चमकता हुआ। भलाभली—वि. श्रिनु. ] बहुत चमकदार। ंश स्त्री,—चमकने की किया या भाव। भलाना—क्रि. स. [हिं. भलना] (१) हवा कराना। (२) भालने या टाँका देने का काम दूसरे से कराना। भलाबोर—संज्ञा पुं. [हिं. भलमल ] (१) कलबत्तू से कढ़ा श्रंचल। (२) कारचोबी। (३) एक आतिश-बाजी। (४) काँटा। (४) चमक। वि,—चमकीला, जिसमें चमक-दमक हो। भलामल-संशा स्त्री. [हिं. लमल ] चमक-दमक। वि, चमकीला, जिसमें चमक-दमक हो। भल्ल-संशा पुं. [ अनु. ] (१) एक वर्णसंकर जाति। (२) भाँड, विदूषक। (३) एक बाजा। (४) ज्वाला। संज्ञा स्त्री. यिनु. ] भल्ला होने का भाव। भलकंठ-संशा पं. [सं. ] कब्तर, परेवा। भल्लक-संज्ञा पुं. [सं.] (१) करताल। (२) मंजीरा। भल्लना-कि. श्र. [ श्रव. ] डींग हाँकना। भल्लरी—संशास्त्री. [सं. ] (१) एक बाजा। (२) भाँभ। (३) पसीना, स्वेद, पसेव। भल्ला—संज्ञा पुं. [ देश. ](१) बड़ा भौग्रा।(२)वर्षा। वि.—जिसमें बहुत पानी मिला हो, पतला। संशा पुं. [हिं. भल्लाना ] क्रोध, भुँभलाहट। वि,—(१) पागल। (२) बड़ा मूर्ख।

भल्लाना-कि. ग्र. [हिं. भल ] भुंभलाना, चिढ़ना। कि. स.—किसी को चिढ़ाना या कुढ़ाना। भाल्लिका—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) ग्रॅगोछा । (२) शरीर का मैल। (३) प्रकाश। (४) सूर्य की किरणों की तेजी। भल्ली—वि. [हिं. भलना ] बातूनी, गप्पी, डोंगिया। संज्ञा स्त्री. [ सं. ] चमड़ा-मढ़ा एक बाजा। संशा पुं. [देश.] छोटा भौश्रा या टोकरा। भवर, भवारि—संशा पुं. [हिं. भवार, भवारि (अनु.)] भगड़ा, बखेड़ा, टंटा, नटखटपन। उ.—(क) बहुत श्रवगरी जिनि करी, श्रजहूँ तजी भवारि—५८१। (ख) बरे घरन की बहू बेटी करत वृथा भवारि। भष—संशा पुं. [सं. ] (१) मीन, मछली। उ.—(क) फिरति सदन दरसन के काजे ज्यों भाष सूखे सर-२७६४। (ख) पै भाग कनक रुद्र रंगी तंत्री सुन श्राद भर भोग-सा. ११५। (२) मकर, मगर। (३) ताप, गरमी। (४) वन। (५) मीन, राशि। (६) भीखने का भाव या क्रिया। भषकत्, भषकतन—संज्ञा पुं. [सं. भषकतन ] कामदेव। भषत—कि. श्र. [हिं. भषना] भीखता या खिजलाता है। उ.—मेरे मन रसिक लग्यौ नंदलालहिं भाषत रहत दिन राती-३११६। भाषना-कि. ग्र. [हिं. भीखना] खोजना, भीखना। भषनिकेत-संज्ञा पुं. [सं.] (१) जलाशय। (२) समुद्र। भषराज-संज्ञा पुं. [सं.] मकर, मगर। भाषलग्न-संज्ञा पुं. [ सं. ] मीन लग्न । भषांक—संज्ञा पुं. [सं. भष्मश्रंक] कामदेव। भषोदरी—संशा स्त्री. [सं. ] व्यास की माता मत्स्यगंधा। भहनना—कि. श्र. [ श्रनु. ] (१) सन्नाटे में श्राना, चिकत होना। (२) रोएँ खड़े होना। (३) भनभन शब्व करना। कि. स.—(१) किसी को सन्नाटे में डालना या चिकत करना । (२) भनभन शब्द निकालना।

भहनाना—कि. स. [ अनु. ] (१) किसी को सन्नाटे में

भहनावै - कि. स. [हिं. भहनावै] भनकारते हैं, भन-

कुंभ किंकिनी मनहुँ घंट महनावै।

डालना या चौंकाना। (२) भनभन का शब्द करना।

भन का शब्द निकालते हैं। उ.—गति गयंद कुच

महरना—िक. श्र. [श्रनु.] (१) भड़न का भरभर शब्द करना। (२) (शरीर) शिथिल या ढीला पड़ना। कि. स. [हिं. भल्लाना] भिड़कना,डाँटना-इपटना। भहराइ,भहराई—िक. श्र. [हिं. भहराना] (१) भरभर शब्द करके, खड़खड़ाकर। उ.—(क) श्रापु गए जमलार्जुन-तरु-तर, परसत पात उठे भहराई—१००३०३। (ख) श्रमुर ले तरु सौं पछारथी गिरथी तरु भहराई। (२) खोजकर, भुँभला कर, भल्ला कर। (ग) रिसनि रही भहराइ के मन ही मन बाम—२१२६। (ख) रिसन उठी भहराइ भट्टिक भुज—२१४२। (ड) सबै चली भहराइ के—१०२५। (च) जो देखे ह्याँ संग बिराजत चली त्रिया भहराई—१६७६।

भहरात—कि. वि. [हिं. भहराना (अनु.)] (१) हिलता डोलता और भरभर शब्द के साथ। उ.—भहरात भहरात दवा (नल) आयौ—५६५।

कि. श्र.— भरभर शब्द करके गिरता है।
भहराना—कि. श्र. [श्रनु.] (१) भरभर शब्द करके
या खड़खड़ाकर गिरना। (२) भल्लाना, खिजलाना।
(३) हिलना-डोलना।

कि. स.—(१) भूर शब्द करते हुए गिराना।
(२) दूसरे को खिजाना। (३) हिलाना-डुलाना।
हरानी—कि. श्र िहं भहराना । (१) भल्लाकी

भहरानी—कि. श्र. [हिं. भहराना] (१) भल्लायी, खिजलायी। उ.—(क) बेसरि नाउ लेत सरमानी तब राधा भहरानी—१५३४। (ख) एक श्रभिमान हृदय करि बैठी ऐते पर भहरानी—१६४५। (ग) नागरि हँसित हँसी उर भाया तापर श्रति भहरानी। (२) भरभर शब्द करके गिरी।

भहराय कि. त्र. [हिं. भहराना] भल्लाकर।

प्र.—उठी भहराय—भुँभला उठी, भल्लाने
लगी। उ.—रिसनि उठी भहराय कहाँ। यह बस
कीन्हों मन मेरो—१९६९।

भहरि—कि. श्र. [हिं. भहरना (श्रनु.)] (१) भरभर का शब्द करके। उ.—यह सुनत तब मातु धाई, गिरे जाने भहरि—१०-६७। (२) भल्लाकर, भुभलाकर। उ.—रिसनि नारि भहरि उठी क्रोध मध्य बुड़ी---२६७४।

भहरें—िकि. श्र. [हिं. भहरना] भूंभलाते हैं, भल्लाते हैं। उ.—सुनि सजनी मैं रही श्रकेली बिरह दहेली इत गुरुजन भहरें—१६७१।

भाँइ — संज्ञा स्त्री. [सं. छाया] (१) परछाई, प्रतिबंब, छाया, श्राभा, भलक। उ.—(क) पराधीन, पर बदन निहारत, मानत मूढ़ बड़ाई। हँसैं हँसत, बिलखें बिलखत हैं, ज्यों दरपन में भाँई—१-१९५। (ख) श्रक्त श्रधरिन दसन भाँई कहों उपमा थोरि। नील पुट बिच मनौ मोती धरे बंदन बोरि—१०-२५। (ग) बेसरि के मुकता में भाँई बरन बिराजत चारि। मानौ सुरगुरु सुक्र भौम सनि चमकत चंद मभारि। (२) श्रंधकार। (३) धोखा, छल। (४) प्रतिध्वनि। (५) रक्त-विकार से चेहरे पर पड़ने वाले हल्के-हल्के धब्बे।

भाँक—संज्ञा स्त्री. [हिं, भाँकना ] भाँकने की किया। यौ.—ताक भाँक—छिपकर देखना। संज्ञा पुं,—भाँख—एक जंगली हिरन।

भाँकत—कि. श्र. [हिं. भाँकना) (१) इधर-उधर या अपर-नीचे भुककर देखता है। उ.—निरखत भुकि, भाँकत प्रतिबिंबहिं। देत परम सुत पितु श्रुक्त श्रंबहिं—१०-११७। (२) श्रोट या श्राड़ में से मुँह निकालकर देखता है। उ.—जहँ तहँ उभिक भरोखा कित जनक नगर की नारि—सारा. २०८।

भाँकति—िक, ब्रा. स्त्री. [हिं. भाँकना] ग्रोट या ग्राइ से मुँह निकाल कर देखती है। उ.—भाँकति भएटि भरोखा बैठी कर मीड़ित ज्यों मिखयाँ—२७६६।

भाँकना— कि. श्र. [सं. श्रध्यत्त, प्रा. श्रज्भक्ख=श्राँख के सामने] (१)श्रोट या श्राड़ से मुँह निकालकर देखना।

(२) इधर उघर भुक कर देखना।
भाँकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँकना ] भाँकी।
भाँकर—संज्ञा पुं. [हिं. भंखाड़ ] काठ-किवाड़।
भाँका—संज्ञा पुं. [हिं. भाँकना ] (१) जालीदार खाँचा
या भौग्रा। (२) भरोभा, खुला भाग, संधि।

कि. श्र.—श्रोट या श्राड से मुँह निकालकर देखा। भाँकि—कि. श्र. [हिं. भाँकना] श्रोट में से देखकर,

भांक कर। उ.—भाँकि-उभकि बिहँसत दोऊ सुत, प्रेम मगन भइ इकटक जाम—१०-१५७। भाँकी—संशा स्त्री. [हिं. भाँकना ] (१)भाँकने की किया या भाव, दर्शन। (२) दृश्य। (३) भरोखा। (४) कृष्ण की वर्ज की लीलाओं का चित्र-द्वारा प्रदर्शन। क्रि. श्र.—श्रोट से देखा, दर्शन किया। माँकै-कि. श्र. [हि. भाँकना] भाँकती है। उ.-ठाड़ी तन काँपैं टेरै भाँकै बार-बार श्रकुलाइ-३४४१। भाँको-संज्ञा पुं. [हिं,भाँकना ] संधि, भाँकने का स्थान या छिद्र, भरोखा। उ.—सभा-माँभ द्रौपदि-पति राखी, प्रित पानिप कुल ताको । बसन-स्रोट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्ही भाँकी--१-११३ । भावयो, भावयो – कि. श्र. [हिं. भावना ] भाका। उ.—तब रिस धरि सोई उत मुख करि भुकि भाँक्यौ उपरैना माथ--२७३६। भाषा – संज्ञा पुं. [देश.] एक जंगली हिरन। भाँखना—क्रि. श्र. [हिं. भींखना ] खीजना, भल्लाना । भाँखर—संज्ञा पुं. [हिं. भंखाङ ] (१) काठ-किवाड़, भंखाड़। (२) श्ररहर की सूखी खूँटियाँ। भाँखा—कि. ग्रा. [हिं. भाँखना ] खीजा, भल्लाया। भाँखि—कि. ग्र. [हिं. भाँखना ] खीजकर, भल्लाकर। भागला—वि. [देश.] ढीला-ढाला। भाँगा—संज्ञा पं. [हिं. भगा ] ढीला-ढाला कुरता। भाँजन-संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँभन ] पायल, पंजनी। भाँभ — संज्ञा स्त्री. [ सं. भल्लक या भनभन से अनु. ] (१) भाल नामक एक बाजा जिसका प्रयोग प्रायः घड़ियाल-शंखों श्रादि श्रन्य बाजों के साथ होता है। उ.—ताल, मृदंग, भाँभ, इंद्रिनि मिलि, बीना, बेनु बजायौ-१-२०५। (२) क्रोध, गुस्सा। (३) दुष्टता, शरारत। (४) बुरे विचार का उत्तेजित होना। (५) सूला कुग्राँ या तालाब। (६) भोग की इच्छा (७) पायल या पैंजनी नामक पैर का गहना । भाँभड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँभ ] भांभ नामक बाजा। संज्ञा स्त्री [हिं. भाँभन ] पंजनी, पायल। भाभन—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] पैर का एक तरह का

पोला कड़ा जिसके श्रंवर के छुरें बजते हैं, पायल।

भाँभर—संशा स्त्री. [ त्रानु. ] (१) भांभन (२) चलनी। वि.—(१) टूटा फूटा, पुराना । (२) छेददार । भाँभरि, भाँभरी—संशा स्त्री. [देश.] (१) भाँभ या भाल नामक बाजा। (२) भाँभन, पायल, पंजनी। भाँभा-संज्ञा पुं. [हिं. भाँभरा ] (१) एक की ड़ा। (२) घी-चीनी के साथ भूनी हुई भाँग। (३) सेव छानने या बनाने का पौना, करछुल। संशा पुं, [हिं, भाँभ ] भांभ या भाल बाजा। संशा पुं. [हिं. मंभट ] भंभट, बखेड़ा। भाँभिया-वि. [हिं. भाँभ + इया (प्रत्य.)] भाँभ या भाल नामक बाजा बजानेवाला। भाँटा-संज्ञा पुं. [हिं. भंभट ] बखेड़ा, भंभट । भाँप-संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँपना ] (१) पर्दा, चिक, ढाँकने की चीज। उ. - पूजत नाहिं सुभग स्यामल तन, जद्यपि जलधर धावत। बसन समान होत नहिं हाटक, श्रिगिनि भाँप दे श्रावत-६६५। (२) नींद, भपकी। संशा पुं. [ सं. भांप ] उछल-कृव । भाँपत-कि. स. [हिं. भाँपना ] ढकती है। उ.-नित रहत मनमन मदहि छाकी निलज कुच भौपत नहीं ---१०-३२४ | भाषना—कि. स. [सं. उत्थान, हिं. ढाँपना ] (१) ढकना, भ्रावरण में करना। (२) लजाना, भेंपना। भाँपी—संज्ञा स्त्री. [हिं, भाँपना ] (१) उकने की टोकरी। (२) मूँज की पिटारी। (३) नींव, ऊँघ, ऋपकी। भाँपो—संशा स्त्री. [देश.] (१) खंजन। (२) बुरी स्त्री। भाँप्यो, भाँप्यो-कि. स. [हिं. भाँपना ] ढका, म्रोट या श्राड़ में किया। उ.—तें जु बदन भाँप्यी भुकि श्रंचल इहै न दुख मेरे मन मान-२२१७। भाँवें भाँवें संशा स्त्री. [ त्रानु. ] बकवाद । तकरार । भावना कि. स. [हिं. भावा ] भाव से रगड़ कर हाथ-पैर का मैल छुड़ाना। भाँवर, भाँवरी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. डाबर ] नीची भूमि। वि. [सं. श्यामल ] (१) कुछ कुछ काले रंग का।

(२) मलिन। (३) मुरकाया या कुम्हलाया हुन्ना।

(४) शिथिल, सुस्त ।—उ. कबहुँ कहत ब्रजनाथ बन

गए जोवत मग भइ दृष्टि भावरी—१४४=।

भाँवली—संज्ञा स्त्री. [हिं. छाँव, छाया ] (१) भलक। (२) ग्रांख की कनखी या कोर।

मुहा, -- भगँवली देना -- श्राँख से इशारा करना। भाँवा -- संशा पुं. [ सं. भगमक ] जली हुई काली इंट जिससे रगडकर हाथ-पैर का मैल छडाते हैं।

जिससे रगड़कर हाथ-पैर का मैल छुड़ाते हैं।
भाँसना—कि. स. [हिं. भाँसा] घोखा देना, ठगना।
भाँसा—संज्ञा पुं. [िसं. श्रध्यास—मिथ्या ज्ञान, प्रा.
श्राज्भास] घीखा-घड़ी, ठगी, छल-कपट।

यौ.—काँसा-पट्टी—धोखा-धड़ी, छल-कपट।
मुहा.—काँसे में श्राना-धोखा खाना, ठग जाना।
भाँसिया, भाँसू—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + इया (प्रत्य.)]

घोलेबाज, घोलादेनेवाला, छली, कपटी।

भा—संज्ञा पुं. [ सं. उपाध्याय, प्रा. उज्मात्रो, हिं. श्रोभा ] मेथिल ब्राह्मणों की एक उपाधि।

भाई—संशा स्त्री. [हिं. भाँई] छाया, प्रतिबंब, भलक। उ.—रत्न जटित कुंडल स्वनन बर गंड कपोलिन भाई—३०३१।

भाऊ—संशा पुं. [ सं. भाबुक ] एक छोटा भाड़ जिसकी टहिनयाँ प्रायः टोकरियाँ श्रौर रिस्सियाँ बनाने के काम श्राती हैं।—उ.—मोहूँ कौं चुचकारि गयौ लै, जहाँ सघन बन भाऊ—४८१।

भाग—संज्ञा पुं, [हिं, गाज ] पानी श्रादि का फेन। भागड़—संज्ञा पुं, [हिं, भगड़ा] भगड़ा, बखेड़ा। भागना—क्रि, श्र. [हिं, भाग ] फेन निकलना।

कि, स,—फेन निकालना, भाग उत्पन्न करना।
माभ—संज्ञा स्त्री. [हिं, भाँभ ] भाँभ नामक बाजा।
भाड़—संज्ञा पुं. [सं, भाट](१) एक कटीला पेड़। (२)
ोशनी करने का एक सामान जो प्रायः शोभा के
लिए लटकाया जाता है श्रौर जिसमें शीशे के कई
गिलास होते हैं। (३) एक श्रातिशबाजी। (४) एक

समुद्री घास । (४) गुच्छा, लच्छा ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भाड़ना] (१) भाड़कर साफ करने की किया। (२) डाँट-फटकार। (३) मंत्र से भाड़ने की किया।

भाइखंड—संशा पुं. [हिं. भाड़+खंड] जंगल, वन। भाड़-भंखाड़- संशा पुं. [हिं. भाड़+भंखाड़] (१) काँटेदार भाँड़ियाँ। (२) काठ-किवाड़, बेकार चीजें। भाड़दार—वि. [हिं. भाड़+फ़ा, दार] (१) घना। (२) काँटेदार। (३) जिस पर बेल-बूंटे बने हों।

संशा पुं.—बेल-बूटेदार कसीदा या कालीत।
भाड़न—संशा स्त्री. [हिं. भाड़ना ] (१) भाड़ने से निकलने
वाला कूड़ा या घूल। (२) भाड़ने का कपड़ा, साफी।
(३) भाड़ने की किया।

भाड़ना—िक. स. [सं. च्रण] (१) भटकार-फटकार कर साफ करना। (२) भटका देकर गिराना। (३) पड़ी हुई चीज भाड़कर हटाना। (४) छल-बल से धन पाना या ऐंठना। (४) मंत्र से भूत-प्रेत-बाधा दूर करना। (६) डाँटना, फटकारना।

भाड़फूँक—संशा स्त्री. [हिं भाड़ना+फूँकना] भूत-प्रेत-बाधा दूर करने के लिए मंत्र पढ़कर फँक मारना। भाड़-बुहार—संशा स्त्री. [हिं. भाड़ना+बुहारना] सफाई। भाड़ा—संशा पुं.—[हिं. भाड़ना](१) भाड़-फूँक।(२) तलाशी।(३) सितार के तारों का एक साथ बजना। क्रि. स. [हिं. भाड़ना](१) भाड़कर साफ किया। (२) छल-बल से ऐंठ लिया।(३) मंत्र पढ़कर फूँका।

(२) छल-बल स एठ लिया। (३) मत्र पढ़कर फूका। भाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाड़] (१) छोटा भाड़। (२) छोटे-छोटे पेड़ों का समूह। (३) बालों की कूँची। भाड़ीदार—वि. [हिं. भाड़ी+फ़ा. दार] कँटीला। भाड़ —संज्ञा स्त्री. [हिं. भाड़ना] (१) कूँचा, बोहारी।

मुहा.—भाड़ देना—सफाई करना । भाड़ फिरना—सब कुछ साफ हो जाना, कुछ (धन-संपित) न रहना। भाड़ फेरना—सब कुछ मिटा देना। भाड़ मारना—(१) घृणा करना। (२) ग्रपमान करना। भाड़ से (की सींक से) भी न छूना—(१) बहुत ही घृणा करना। (२) बहुत ही तिरस्कार के साथ त्यागना।

(२) दुमदार सितारा, पुच्छल तारा, केतु।
भाड़ बरदार—संज्ञा पुं. [हिं. भाड़ + फ़ा. बरदार] (१)
वह जो भाड़ देता है। (२) चमार, भंगी।
भापड़—संज्ञा पुं. [सं. चपट] थप्पड़, तमाचा।
भावा—संज्ञा पुं. [देश. डाबर] दलदली भूमि।
भावा—संज्ञा पुं. [हिं. भाँपना] (१) टोकरा, खाँचा।

(२) टोंटीदार बरतन। (३) रोशनी करने का साड़। (४) गुच्छा।

भाबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भावा] छोटा छाबा, टोकरो।
भाम—संज्ञा पुं. [देश.] (१) भव्बा, गुच्छा। उ.—
सुंदर भुजा पीठ किट सुंदर सुंदर कनक मेखला
भाम—१४०२।(२) बड़ी कुदाल। (३) घुड़की,
डाँट।(४) छल-कपट।

भामक—संज्ञा पुं. [सं.] जली हुई इंट का भावां। भामा—संज्ञा पुं. [हिं. भूमर] (१) ग्रीजार तेज करने

को सिल्ली। (२) पैर का एक गहना।
भाँमरा—िव. [हिं. भाँवर ]गंदा, मेला, काला।
भामा—संज्ञा पुं. [सं. भामक] भाँवाँ।
भामी—संज्ञा पुं. [हिं. भाम] छली-कपटी, धूर्त।
भायँ भायँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) भन भन शब्द।

(२) सन्नाटे में १ वा का सन सन शब्द ।(३) तकरार ।

मार-वि. [सं. सर्व, प्रा. सारो, हिं. सारा ] (१) एक

मान्न, केवल । (२) सब, कुल, समस्त (३) समूह, भुंड ।

संशा स्त्री. [सं. भाला=ताप ] (१) डाह, ईध्या,
जलन । उ.—कहा कहाँ उमसौं में प्यारे, कंस करत
उमसौं कछु भार—५३०।(२) ज्वाला, लपट, ग्रांच ।
उ.—(क) ग्रीर कौन जो उमसौं बाँचे, सहस फननि
की भार—५५८। (ख) बार-बार फन घात के विष
ज्वाला की भार—५८६। (ग) श्राति श्रागिन भार
भंभार धुंधारि करि उचिट श्रंगार भंभार छायौ—

— ५६६। (३ भाल, चरपरापन।
संशा पुं. [हिं. भड़ना] भरना, पौना, करछुल।
संशा स्त्री. [हिं. बौछार], बौछार, छींटा, वर्षा
की भड़ी, पानी की बूँदें। उ.—सात दिन भरि ब्रज
पर गई नेक न भार—६७३।

भारखंड—संशा पुं, [हिं. भाड़ + खंड ] एक पहाड़ जो वैद्यनाथ से जगन्नाथपुरी तक फैला है। (२) जंगल। भारत—कि. स. [हिं. भाड़ना](१) (रज, धूल, ग्रादि) भाड़ कर, पोंछकर। उ.—भारत रज लागें मेरी श्रॅंखियिन रोग-दोष-जंजाल—१०-१३८। (२) कुछ गिराने या पाने के लिए किसी चीज को भाड़ता-फटकारता है। उ.—उनके गुन कैसे कहि श्रावै सूर

पयारहिं भारत-पृ. ३२७।

भारति—िक. स. स्त्री. [हिं. भाइना ] (धूल, गर्व आदि) भाइती है, भटकारती है, फटकारती है। उ.— (क) सूरज प्रभु जसुमित रज भारति, कहाँ भरी यह खेह—१०-१११। (ख) सूरदास प्रभु मातु जसोदा, पट लै, दुहुनि श्रंग-रज भारति—५१२।

भारत—संशा स्त्री. [हिं. भड़न ] १-) भाड़ने-पोछने का कपड़ा। (२) भाड़ी हुई घूल ग्रादि। (३) भाड़ने की किया या रोति।

भारना—िक. स. [ सं. भट ] (१) बालों में कंघी करना। (२) ग्रलग करना, छाँटना।

क्रि. स. [हिं. भाइना] (१) भाइना। (२) डाँटना। भार-फूँक—संशा स्त्री. [हिं. भाइना+फूँकना] भाइफूँक। भारा—संशा पुं. [हिं. भारना] (१) सूप। (२) भरना। भारि—संशा स्त्री. [हिं. भार] (१) डाह, ईर्ष्या। (२) ज्वाला, लपट, ग्रांच। (३) भाल, चरपरापन।

वि.—(१) केवल। (२) सब। (३) समूह। क्रि. स. [हिं. भाइना] (१) किसी चीज को साफ करने के लिए भटक या फटकार कर। (२) भाइकर, साफ करके। उ.—मुख के रेनु भारि श्रंचल सौं जसुमित श्रंग भरे—२८०३।

मुहा. -- भारि भूरि -- भाड़-फटकार कर, भाड़ने-भूड़ने से पाकर । उ. -- भारि भूरि मन तो तू ले गयौ वहुरि पयारहिं गाहत -- ३०६५ ।

(३) डालकर, फेंककर । उ.—इतनी सुनि कृपालु कोमल प्रमु दियो धनुष कर भारि—६-६५ । (४) रोग, बिष या भूत-प्रेत बाधा दूर करने के लिए मंत्र पढ़कर श्रीर फूँककर । उ.—कहूँ राधिका कारें खाई जाहू न श्रावो भारि—७५५ ।

भारी—संज्ञा स्त्री, [हिं, भरना ] एक टोंटी दार जलपात्र। उ.—(क) जमुना-जल राख्यो भारी भरि। (ख) त्रापुन भारी माँगि बिप्र के चरन पखारे। (ग) सीतल जल लियो मँगाई। भरि भारी जसुमित ल्याई—१०-१८३।

संज्ञा स्त्री. [सं. भारि ] (हाजमा ठीक रखने का) पानी जिसमें नमक, जीरा श्रादि छोड़ा गया हो। संशा स्त्री. [हिं. भाड़ी ] छोटा भाड़, भाड़ी।
वि. [हिं. भार] (१) एक मात्र। (२) सब।
कि. स. [हिं. इना] (१) भाड़कर, फट-फटाकर। उ,—उलिट पत्रन जब बावर जरियी, स्वान चल्यों क्षिर भारी—१-२२१। (२) रोग, विष, प्रेत-बाधा श्रादि दूर करने के लिए मंत्र श्रादि पढ़ा श्रीर फूँक मारो। उ.—एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारें खाई ताहि तहाँ री। कहत सुन्यों नंद को यह बारों, कछु पढ़िके तुरतिहं उहिं भारी—६६७।

भारू—संग्रा पुं. [हिं. भाड़ ] बोहारी, कूँचा। भारे—कि. स. [हिं. भाड़ना] भाड़-पोंछ कर साफ करता है। उ.—मम तन रज-पथ लागी पीत पट सों भारे—१०उ.७६।

भारयो—िक. स. [हिं. भाइना] भाइ लिया, निचोड़ सा लिया, खोंच-सा लिया। उ.—श्रित बल करि-करि काली हारयो। लपटि गयो सब श्रंग-श्रंग प्रित, निर्विष कियो सकल बल भारयो—५७४।

भाल—संशा पुं. [सं. भल्लक] भाँभ बाजा।
संशा पुं. [देश.] भालने की क्रिया या भाव।
संशा स्त्री. [सं. भाला] (१) चरपराहट, तीतापन। (२) लहर, भौज। (३) विलास की कामना।
संशा स्त्री. [हिं. भड़] पानी की लगातार भड़ी।
वि. [हिं. भार] (१) केवल। (२) सब।
(३) भुंड।

संज्ञां स्त्री.—(१) डाह, जलन। (२) ज्वाला, ग्राँच। भालड़—संज्ञा स्त्री. [सं. भहारी] (१) घड़ियाल जो बजाया जाता है। (२) भालर।

भालना — कि. स. [हिं. भाल] धातु की वस्तुग्रों में टाँका देकर जोड़ लगाना।

भालर—संशा स्त्री. [सं. भहारी] (१) शोभा के लिए लगायी जानेवाली बेल-बूटे या जालीदार चौड़ी गोट।

(२) भाला या गोट की तरह लटकती हुई चीज।

(३) किनारा, छोर। (४) भाँभ, भाल। (५) घड़ियाल जो बजाया जाता है।

भालरदार—वि. [हिं. भालर+फ़ा. दार ] जिसमें शोभा के लिए भालर या गोट लगी हो। भालरना—कि. श्रं. [हिं. भलराना ] फैलना, बढ़ना। भालरा—संज्ञा पुं. [हिं. भालर ] रुपहला हार।

संज्ञा पुं. [हिं. ताल ] चौड़ा कुआँ, कुंड, बावली।
भालिर, भालिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भालिर ] (१) किसी
चीज के किनारे या नीचे लगा या टँका हिलने या
लटकनेवाला हाशिया जो शोभा के लिए लगाया
जाता है। उ.—(क) रेसम बनाइ नव रतन पालनी,
लटकन बहुत पिरोजा-लाल। मोतिनि भालिर नाना
भाँति खिलौना रचे बिस्वकर्मा सुतहार—१०-८४।
(ख) चंचल हग अंचल-पट-दुति-छबि, भलकत
चहुँ दिसि भालिरी—१०-१४०। (२) एक बाजा।
उ.—(क) बीन मुरज उपंग मुरली भाँभ भालिर
ताल—२४१५। (ख) रंज मुरज डफ भाँभ भालिरी
यंत्र पखावज तार—२४३७।

भाला—संशा पुं. [देश.] राजपूतों की एक जाति।
भालि—संशा स्त्री. [हिं. भड़ी] पानी की भड़ी।
संशा स्त्री [सं.] कच्चे श्राम की काँजी।
भाँव भाँव—संशा स्त्री. [श्रनु.] (१) बकबक, बक-वाद। (२) तकरार. हज्जत। (३) भगडा. लडाई।

वाद। (२) तकरार, हुज्जत। (३) भगड़ा, लड़ाई। भावर—संज्ञा पुं. [हिं. भावर] दलदली भूमि। भाविर, भावरी—[हिं. भावर] शिथल, मंद, सुस्त। उ.—निसिन नींद ग्रावै दिवस न भोजन भावै

चितवत मग भइ हिष्ट भावरी—३४३२।
भावुक—संज्ञा पुं. [सं.] एक भाड़, भाऊ।
भिंग—संज्ञा स्त्री. [सं. भिंगाक] तरोई, तुरई।
भिंगवा—संज्ञा स्त्री. [सं. चिंगट] एक छोटो मछली।
भिंगाक—संज्ञा पुं. [सं.] तरोई, तुरई।
भिंगिनी, भिंगी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक जंगली वृक्ष।
भिंगिति, भिंगुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. भगा] बच्चों के पहनने का ढोला-ढाला कुरता। उ.—छोटो बदन छोटिय भिंगुली, किट किंकिनी बनाइ—१०-१३३।
भिंभिया—संज्ञा स्त्री. [अनु.] छेददार छोटा घड़ा जिसमें दिया जलाकर लड़िकयाँ कुआर मास में घमती हैं।

विया जलाकर लड़ाकया कुग्रार मास में घूमती है। भिंभी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भिल्ली, भींगुर। भिंभोटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक रागिनी जो दिन में चौथे पहर गायी जाती है। भिगड़ा—संज्ञा पुं, [हिं. भगड़ा ] भगड़ा, बखेड़ा।
भिभक—संज्ञा स्त्री. [हिं. भभक ] भभक, संकोच।
भिभक्ता—कि. य. [हिं. भभकना ] संकोच न करना।
भिभकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. भभकार ] भभक।
भिभकारना—कि. स. [हिं. भभकारना ] (१) डाँटना,
डपटना। (२) दुरदुराना। (३) प्रपने सामने
कुछ न मानना या समभना।

कि. स. [हिं. भटकना ] भटका देना।
भिभकारि—कि. स. [हिं. भिभकारना ] (१) डाँटडपट कर, बुरा-भला कहकर । उ.—नोही
ढंग तुम रहे कन्हाई सबै उठीं भिभकारि। (२)
कोध से ललकार कर। उ.—उठ्यो भिभकारि कर
ढाल खडगहिं लिये रंग रनभूमि के महल बठ्यों—
२५६३।

भिटकारना—िक. स. [हिं. भटकारना ] भटका देना।
भिड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिड़कना ] डाँट-डपट।
भिड़कना—िक. स. [अनु. ] (१) भुँभला कर डाँटना,
डपटना या घुड़कना। (२) अलग फेंक देना।
भिड़की—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिड़कना ] (१) डाँट-फटकार। (२) भड़कने की किया या भाव।
भिड़भिड़ाना—िक. अ. [अनु. ] बुरा-भला कहना।
भिड़भिड़ाना—िक. अ. [अनु. ] बुरा-भला कहना।
भिड़भिड़ान्ट—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिड़भिड़ाना ] भिड़-भिड़ाने का भाव या किया।

भिनवा—संज्ञा पुं. [ देश. ] महीन चावल का धान। वि. [हिं. भीना ] (१) महीन। (२) छेददार। भिपना—क्रि. श्र. [हिं. भोंपना ] लजाना, ज्ञरमाना। भिपाना—क्रि. स. [हिं. भोंपाना ] लज्जित करना। भिमकना—क्रि. श्र. [हिं. भमकना ] (१) चमकना।

(२) भपकना। (३) भमभम होना। (४) भनकारना। भिर—संशा स्त्री. [हिं. भिरी] (१) दराज। (२) गढ़ा। भिरकना—कि. स. [हिं. भिड़कना] (१) डाँटना-डपटना। (२) भटक कर ग्रलग फेंक देना। भिरिक—िक. स. [हिं. भिड़कना] (१) भिड़क कर, भिड़की देकर, तिरस्कार करके। उ.—(क) छरीदार

बैराग बिनोदी, भिरिक बाहिरें कीन्हे—१-४०। (ख) भिरिक के नारि, दें गारि गिरिधारि तब,

पूँछ पर लात दे ऋहि जगायो—५५२। (२) अलग फॅक कर, भटक कर। उ.—मुकुट सिर श्रीखंड सोहै निरित्व रही ब्रजनारि। कोटि सुर को दंड आमा भिरिक डारें वारि।

भिरभिर-- कि. वि. [ अनु. ] (१) भिरभिर शब्द के साथ। (२) मंद-मंद, धीरे-धीरे।

भिरिभरा—िव. [हिं. भीना ] महीन, भँभरा, भीना। भिरिभराना—िक, अ. [हिं. भिड़िभड़ाना ] भुँभलाना। भिरना—िक, अ. [हिं. भरना ] भड़ना, गिरना।

संशा पुं.—(१) पौना, करखुल।(२) छेद, सूराख। भिरा—संशा स्त्री. [हिं. भरना] श्राय, श्रामदनी। भिरी—संशा स्त्री. [हिं भरना] (१) छोटा छेद, दरज।

(२) गड्ढा जिसमें भिर भिर कर पानी भरे। (३) तुषार, पाला।

भिर्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिरी] पानी रोकने का गढ़ा। भिलाँग—संज्ञा पुं. [हिं. ढीला+श्चांग] टूटी या ढीले बांध या बुनावट वाली खाट।

संशा पुं. [हिं. भींगा] एक मछली। एक धान। भिलाना—क्रि. श्र. [हिं. भेलाना] (१) घुसना, धँसना। (२) श्रघाना। (३) लीन होना। (४) (कष्ट श्रादि) सहा या भेला जाना।

संज्ञा पुं. [सं. फिल्ली] भीगुर।

भिलम—संज्ञा स्त्री. [हिं. फिलमिला] लोहे का टोप।

भिलमा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का धान।

भिलमिल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हिलती या फल-मलाती हुई रोशनी। (२) रोशनी घटने-बढ़ने की किया। (३) एक बढ़िया मुलायम कपड़ा।

वि. - रह-रहकर भलमलाता या काँपता हुग्रा।
भिलमिला - वि. [ श्रनु. ] (१) जो गाढ़ा न हो । (२)
छेददार, भीना। (३) श्रस्थिर प्रकाशवाला। (४)
चमकता हुग्रा। (५) श्रस्पट्ट।

भिलमिलाना—कि, अ. [अनु.] (१) रह-रह कर चमकना। (२) प्रकाश या ज्योति का हिलना-डोलना। कि. स.-(१) रह-रह कर चमकाना। (२) हिलाना। भिलमिलाहट—संशास्त्रो. [अनु.] चमकाने या हिलाने दुलाने की किया या भाव।

भिलमिली—संशा स्त्री. [हिं. भिलमिल] (१) श्राड़ी-तिरछी पटरियों का ढाँचा। (२) परदा, चिलमन। (३) कान का एक गहना। भिल्ल-संज्ञा पुं. [सं.] लाल फूल का एक पौधा। भिल्लंड़—वि. [हिं. भिल्ली] भीनी बुनावट का। भिल्ला—वि. [ श्रनु. ] (१) पतला । (२) छेददार । भिल्लिका, भिल्लीक—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] भींगुर, भिल्ली। भिल्ली—संशा स्त्री. [सं. चैल] (१) किसी चीज की अपरी पतली तह। (२) बारीक छिलका। (३) ग्राँख का जाला। वि.—बहुत पतला या बारीक, भीना। संज्ञा पुं. [सं.] भींगुर, भिल्लिका। भिल्लीदार—वि. [हिं. भिल्ली+फ़ा. दार ] जिस पर पतली तह या बारीक भिल्ली हो। भींक, भींका—संशा पुं. [देश.] उतना श्रन्न जितना एक बार चक्की में डाला जाय। भींकना—कि. श्र. [हिं. भींखना ] कुढ़ना, खीजना। क्रि. स. [ देश. ] फेंकना, पटकना । भींखना—कि. श्र. [हिं. खीजना] (१) दुखी होकर ं पछताना, कुढ़ना या खीजना । (२) दुखड़ा रोना । संशा पुं--(१) भींखने का भाव। (२) दुखड़ा। भीं खि-कि. श्र. [हिं. भींखना] भींखकर। उ.-देखि सखी कछु कहत न आवै भींखि रही अपमानन मारि—२७६५। भींगट-संशा पं. [देश.] केवट, मल्लाह।

देखि सखी कल्लु कहत न श्रावै भींखि रही श्रपमानन मारि—२७६५।
भींगट—संशा पुं. [देश.] केवट, मल्लाह।
भींगा—संशा पुं. [सं. चिगट] (१) एक मछली। (२) एक धान। (३) कपास का हानिकारक एक कीड़ा।
भींगुर—संशा पुं. [श्रनु. भीं+कर] भिल्ली नामक कीड़ा।
भींभना—कि. श्र. [श्रनु.] भूँभलाना, खिजलाना।
भींभो—संशा पुं. [देश.] (१) श्रादिवन शुक्ल चतुर्दशी को कन्याग्रों का एक छेददार घड़े में दिया जलाकर संबंधियों के घर जाने की रस्म। (२) छेददार घड़ा जिसमें दिया जलाया जाता है।
भींटना—कि. श्र. [हि. भींकना] खींजना, कुढ़ना।

भींपना-कि. अ. [हिं. भेंपना ] लिजत होता।

कि. त्र. [हि. दॅपना ] छिपना।

भींसा—संज्ञा पुं. [हिं. भींसी ] बहुत हल्की वर्षा। भींसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भींना ] फुहार, महोन बूँदें। भींख—संज्ञा स्त्री. [हिं. सींभा ] कुढ़न, खींभा। भींखना—कि. त्रा. [हिं. भींखना ] (१) कुढ़ना, खींजना, भुँभलाना। (२) दुखड़ा रोना, विपत्ति कहना। भीन, भींना—वि. [सं. चींण ] (१) बहुत पतला। (२) महीन, छेददार। (३) दुबला, पतला। (४) मंद, घोमा। भींनिये, भींनीये—वि. [हिं. भींना ] महीन, बारीक, पतला। उ.—प्रफुल्लित है के त्रानि दीन है जसोदा रानि भींनिये (भींनीये, भोंनीये) भाँगुलि तामें कंचन (को) तगा—१०-३६।

भीनी—िव. स्त्री. [हिं. पुं. भीना] (१) बहुत महीन, बारोक, पतली। उ.—(क) पियरी पिछौरी भीनी श्रोदे उपमा न भीनी, बालक दामिनि मानौ श्रोदे बारौ बारि-धर—१०-२५१। (ख) फटी कंचुकी भीनी—३४४६। (२) फटी-पुरानी। उ.—भीनी कामरि काज कान्ह ऐसो नहिं कीजै—११२७।

भीमर—संज्ञा पुं. [हं. भीवर] मल्लाह, माँभी।
भील—संज्ञा स्त्री. [सं. चीर = जल] (१) बहुत बड़ा
प्राकृतिक जंलाश्य। (२) बहुत बड़ा तालाब।
भीली—संज्ञा स्त्री. [हं. भिल्ली] (१) भिल्ली। (२)
दूध पर पड़नेवाली मलाई।
भीवर—संज्ञा पं. [सं. धीवर] माँभी, मल्लाह।

भीवर—संज्ञा पुं, [सं, धीवर] मांभी, मल्लाह। भुँकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं, भोंकाई] भोंकने की किया, भाव या मजदूरी।

भुँगरा—संशा पुं. [ देश. ] सांवाँ नामक ग्रन्न ।
भुँभलात—कि. श्र. [ हिं. भुँभलाना ] खीजते हैं ।
भुँभलाना—कि. श्र. [ श्र्यु. ] खीजना, कुढ़ना ।
भुँभलावत—कि. श्र. [ हिं. भुँभलाना ] खीजते हैं ।
भुँभायो—संशा पुं. [ हिं. भुँभलाना ] भूँभल, खिजलाहट, भुँभलाहट । उ.—िनत प्रति रीती देखि कमोरी,
मोहिं श्रित लगत भुँभायो—१०-२८८ ।
भुंड—संशा पुं. [ सं. यूथ ] समूह, गिरोह ।

मुहा.—भुंड के भुंड—बहुत बड़ी संख्या में। भुंड में रहना—ग्रपने ही वर्ग वालों के साथ रहना। भुक्तभोरना—कि. स. [हिं. भक्तभोरना] जोर से हिलाना। भुकति—कि. श्र. [हिं. भुकना] भुँभलाती है, त्रुढ़ होती है, रिसाती है। उ.—(क) लोगन कहा भुकति तू बौरी—१०-३२४। (ख) श्रब भूठौ श्रभिमान करति सिय भुकति हमारे ताई। (ग) भुकति कहा मोपर ब्रजनारी—३०३४।

भुकना— कि. ग्र. [ सं. युज्, युक्, हिं. जुक] (१) नीचे लटकना, नवना।

मुहा. — भुक भुक पड़ना — नशे या नींद के कारण भूमना या सीधा न रह सकना।

(२) नीचे की श्रोर होना। (३) प्रवृत्ता होना, ध्यान देना, मुखातिब होना। (४) कुछ लेने को बढ़ना। (४) नम्र या विनीत होना। (६) रिसाना, श्रोध करना।

भुकमुख—संशा पुं. [हिं, भुकना+मुख] भुटपुटा।
भुकरना—कि. त्र्रा. [त्र्राना, खीभना।
भुकराना—कि. त्र्रा. [हिं. भोंका] भोंका खाना।
भुकवाई—संशा स्त्री. [हिं. भुकवाना] भुकवाने की
किया, भाव या मजदूरी।

भुकवाना—कि. स. [हिं. भुकाना] भुकाने में लगाना। भुकाई—कि. स. [हिं. भुकाना] भुकाकर, दबाकर। उ.—इहिं बिधि लखत, भुकाइ रहे जम श्रपनें हीं भय भाल। सूर सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल—१-१८६।

भुकाई—कि. स. [हिं. भुकाना] भुकाया।
संज्ञा स्त्री.—भुकाने की क्रिया, भाव, या मजदूरी।
भुकाना—कि. स. [हिं. भुकना] (१) नीचे लाना,
नवाना। (२) किसी चीज को किसी स्रोर प्रवृत्ता
करना। (३) ध्यान दिलाना, प्रवृत्ता या रुजू करना।

(४) दबाना, नम्र या विनीत करना।

मुकामुखी—संशा स्त्री. [हि. भुकमुख] भुटपुटा।

मुकार—संशा पुं. [हि. भकोरा] हवा का भोंका।

मुकाव—संशा पुं. [हि. भुकना] (१) भुकने की किया

या भाव। (२) ढाल, उतार। (३) प्रवृत्ति, रुवि।

मुकावट—संशा स्त्री. [हि. भुकना+स्त्रावट (प्रत्य.)]

(१) नम्र होने की किया या भाव। (२) रुचि। भाकि— कि. श्र. [हिं. भुक्ना] भुक्कर। उ.—रथ तैं उतिर चक्र कर लीन्हों, सुभट सामुहें ऋाए। ज्यों कंदर तैं निकिस सिंह, भुकि, गज-जूथिन पर धाए —१-२७४।

भुकी—कि. श्र. [हिं. भुकना] श्रुद्ध हुई, रिसाई। उ.—कह जाने मेरो बारो भोरो, भुकी महरि दे दे मुख गारि—१०-३०४।

भुगिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटिया ] कुटिया, भोपड़ी। उ.—हरि, तुम क्यों न हमारें त्राए ? षट्रस व्यंजन छाँड़ि रसोई, साग बिदुर-घर खाए। ताके भुगिया में तुम बैठे कौन बड़पन पायौ—१-२४३।

भुटपुटा संज्ञा पुं. [अनु.] प्रातः प्रौर संध्या काल की वह घड़ी जब कुछ ग्रंधेरा ग्रौर कुछ उजेला होता है। भुटुंग वि. [हिं. भोटा] भोंटे या जटा वाला। भुटठा वि. [हिं. भूठा] (१) जो सचन बोले। (२)

ुजो पवित्र, शुद्ध या ग्रनखाया न हो।

भुठकाना, भुठलाना—कि, स. [हिं. भूठ] (१) भूठी बात कहकर बहलाना या घोला देना। (२) भूठा बनाना या ठहराना।

भुठयो, भुठयो — क्रि. स. [हि. भुठलाना] भुठलाया।
भुठवत — क्रि. स. [हि. भुठलाना] भूठा या असत्य सिद्ध
करता है। उ. — साँटी लिए दौरि भुज पकरयो, स्याम
लँगरई ठानी। लरिकनि का तुम सब दिन भुठवत,
मोसों कहा कहोगे—१०-२५३।

भुठाई—संशा स्त्री. [हिं. भूठ+त्राई (प्रत्य.)] भूठापन, ग्रसत्यता, ग्रयथार्थता। उ.—जानि परत नहिं साँच- भुठाई, चारत धेनु भुरैया—५१३।

भुठाना—कि. स. [हिं. भूठ+त्राना] भूठा ठहराना। भुठामुठी—कि. वि. [हिं. भूठमूठ] भूठे ही, व्यर्थ। भुठालना—कि. स. [हिं. भुठलाना] भूठा बनाना। भुत—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

भुनक—कि. श्र. [हि. भुनकना (श्रनु.) भुनभन शब्द करती है। उ.—भुनक स्थाम की पैजनियाँ—१०-१३२। कि. वि.—भुनभुन शब्द या ध्वनि के साथ। उ.—रनक भुनक कर कंकन बाज, बाँह डुलावित ढीली—१०-२६६।

भनकना-कि. अ. [ अनु.] भुनभुन शब्द करना।

संज्ञा पं—बच्चों का 'भुनभुना' नामक खिलौना। भुनका—संज्ञा पं.—धोखा, छल, कपट। भुनकार—वि. [हिं. भीना ] महीन, भीना। भुनकरी—वि. [हिं. पुं. भुनकार ] भीना। मुनमुन—संशा पुं, [ अनु. ] नूपुर आदि का भुनभुन शब्द। उ.—श्ररन तरनि नख ज्योति जगमगित भुनभुन करत पाय पैजनियाँ। भुनभुना—संज्ञा पुं, [हिं, भुनभुन ] एक खिलौना। भुनभुनाना — क्रि. श्र. [ श्रनु. ] भुनभुन शब्द होना। कि. स. - भुनभुन शब्द करना या निकालना। मुनमुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] (१) 'भुनभुन' करने-वाला पैर का श्राभूषण। (२) बेड़ी, निगड़। संज्ञा स्त्री, — सनई का पौधा। भुनभुनी संश स्त्री. [हैं. भुनभुनाना ] सनसनाहट। भुनुक-भुनुक-कि,वि,[हिं,भुनक] भुनभुन शब्द के साथ। उ.—ललित श्राँगन खेलै, ठुमुकि-ठुमुकि डोलै, भुनुक मुनुक बोलै पैजनी मृदु मुखर-१०-१५१। भुपभुपी, भुवभुबी—संशा स्त्री. [देश.] कान में पहनने का देहाती स्त्रियों का एक गहना। भुपरी—संज्ञा पुं. [हिं. भोपड़ी ] भोपड़ी। भुपा—संशा पुं. [हिं. भव्वा ] गुच्छा, भव्वा । संशा पूं. [हिं. भुंड ] समूह, वृंद, गरोह। भुभका—संज्ञा पं. [हिं. भूमना] (१) कान का एक गहना। (२) एक पौधा या उसका फूल।-भुमना वि. [हिं, भूमना ] भूमनेवाला, मस्त । भुमाऊ-वि. [हि. भूमना] भूमनेवाला, मस्त। भुमाना कि. स, [हिं भूमना] भूमने में प्रवृत्ता करना, हिलाना-डुलाना, किसी को मस्त करना। भुरकुट-वि. [हिं. भुराना ] (१) दुबला। (२) सूला। भुरकुटिया—वि [हि. भुराना ] दुबला-पतला । संज्ञा पं [ देश ] पक्का लोहा, खेड़ी। भुरकुन-संशा पं. [हिं. भड़ + करा ] चूरा, चूर। भुरभुरी—संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] (१) कॅपकॅपी, घबराहट। (२) सर्वी के बुखार या जूड़ी की कँपकँपी। भुरना—िक. श्र. [हिं. धूल, या चूर ] (१) सूल जाना, उ.—जानि परत नहिं सौंच भुठाई, चारत धेनु खुक्क होना। (२) बहुत दुखी होना। (३) चिंता

या परिश्रम से दुबला होना, घुलना । भुरमुट—संशा पूं. [सं. भूंट+भाड़ी ] (१) भाड़ी ग्रादि की श्राड़। (२) समूह, भुंड। (३) चादर से सारा शरीर ढकना। भुरवन-संज्ञा स्त्री. [हिं. भुरना+वन (प्रत्य०)] ग्रंश जो किसी चीज के सूखने पर उसमें से निकल जाय। भुरवाना-कि. स. [हिं. भुरना ] सुखाने में लगाना। क्रि. श्र.—सूख जाना, भुरा जाना। भुरसना—कि. अ. [हिं. भुलसना ] ताप की प्रधिकता से जल या सूख जाना। मुरसाना कि. श्र. [हिं. भुलसाना ] ताप श्रधिक करके जलाना या सुखाना। भुरहुरी-संज्ञा स्त्री. [हिं. भुरभुरी] कॅपकॅपी। भुराइ-कि. श्र. [हिं. भुराना] (दुख या भय से) उदास होना, सूख जाना, कुम्हला जाना। उ.— (क) नंद धरिन सौं पूछत बात । बदन भुराइ गयी क्यों तेरी, कहाँ गए बल, मोहन तात-487। (ख) जबहिं आए सुने ऊधो अतिहिं गई भुराइ भुराना कि. स. [हिं. भुरना ] सुखाना। कि. श्र.—(१) सूखना। (२) दुखःसे खिन्न, उदास या क्षुब्ध होना। (३) दुबला या क्षीण होना। भुरानी - क्र. श्र. [हि. भुराना ] दुख से खिन्न, उदास या स्तब्ध हो गयो। उ,--यह बानी सुनि गवारि सुरानी । मीन भयौ मानो बिन पानी--११६१। भुराये-कि. श्र. [हि. भुराना ] उदास किये हुए। भुरावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. भुरना + वन (प्रत्यः) ] वह श्रंश जो किसी चीज के सूखने पर निकल जाय। भारि-कि. श्र. [हि. भुरना] (१) बहुत दुखी या शोकग्रस्त होकर। उ.— भुरि-भुरि सब मरति बिरह

गोपीजन की ते-- २६५२। (२) सूखकर। उ,--सुरि सुरि पियरी भई हैं यह तौ सुकुमारी-१६७८। मरैया-कि. श्र. [हिं. भुरना] (चिता, रोग या परि-श्रम श्रादि के कारण ) घुल जाना, दुर्बल हो जाना। मुरैया---५१३।

भुरी—संशा स्त्री, [हिं. सुरना ] सिकुड़न, शिकन। ः मलना — संज्ञा पुं. [हि. भूलना ] भूला। ा वि: भूलनेवाला, भूलने का शौकीन। मुलनी—संशा स्त्री. [हिं. भूलना ] चाँदी-सोने के हार ाकी में गुँथा मोतियों का गुच्छा। क्तामुला—वि. [हिं. भिलमिला ] चमकदार । भूलय—संज्ञा पं. [हि. भूला ] भूला। भलवत-कि. य. [हि. भूलना] भूला भूलती है। उ. क्ज-पंज भुलय भुलवत सहचरी चहुँ श्रोर—२२८१। भलवा - संशा पुं. [देश.] (१) जेठवा कपास। (२)भूला। अलवाना कि. स. [हिं. भूलना ] भुलाने के काम में दूसरे को लगाना या प्रवृत्त करना। भलसन संशा स्त्री, [हिं. भुलसना ] (१) भुलसने की किया या भाव। (२) भुलसाने वाली गरमी। भलसना - क्रि. श्र. [ सं. ज्वल+श्रंश ] (१) श्रांच की तेजी से श्रधजला हो जाना, भौंसना। (२) धूप की ें तेजी से सूखकर काला-सा पड़ जाना। कि. स.—(१) ग्रांच में ग्रधनला करना, भौंसना। (२) श्रधिक धूप में सुखाकर काला करना। भलसवाना कि. स. [हिं भुलसाना] भुलसाने या सुखाने में लगाना। भलसामा कि. स. [हिं. भुलसना] (१) तेज ग्रांच में अधजला करना। (२) तेज गरमी में सुखाकर ा काला करना। भलाइ, भुलाई - कि. आ. [हिं. भुलाना ] भुलाकर। म् रहा मुलाई भूल रहा है, लटक रहा है, हिलंडुल रहा है। उ.—स्याम भुजनि की संदरताई। अध्यक्त बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन अप्रोई। मनौं भुजंग गगन तें उतरत, अधमुख रह्यो मुलाई—६४१। देत मुलाइ—भुलाते हैं। उ.— डरत लाल हिंडोल भूलत, हरें देत भुलाइ—४६८। मुलाना कि. स. [हिं. भूलना ] (१) भूले या हिंडोले मं बैठा कर हिलाना या पेंग देना। (२) बार-बार

क्षेत्रा देकर या टाँगकर हिलाना। (३) ग्रासरे में रखना।

मलावति—कि. स. [हिं. भुलाना ] भुलाती है। उ.—

प्लना स्याम भुलावति जननी—१०-४४।

भलावना—क्रि. स. [हिं. भुलाना] भुलाना, हिलाना। मलावनि — संशा स्त्री. [ भुलाना ] भुलाने की किया। भेलावहीं — कि. स. [हिं. भुलाना] भुलाती हैं। उ.— भूलें सखी भुलावहीं, सूरदास बिल जा इ हालर रे— 80-80 भलावें — कि. स. [हिं. भुलाना] भूला भुलाते हैं। उ. पालनें गुपाल भुलावें—१०४५। भलावै—कि. स. [हिं. मुलाना] भुलाती है। उ.— जसोदा हरि पालनें भुलावै-१०-४३। भूलुत्रा - संशापं. [हिं. भूला] भूला। भूलैया—संज्ञा पं. [हिं. भूला] भूलनेवाला। उ.— पालनौ आन्यौ बनाइ, अति मन मान्यौ सुहाइ, नीकौ सुभ दिन सुधाइ, भूलौ हो भुलैया—१०-४१। मुलीवा—संज्ञा पुं. [हिं. भूला] (१) ढीला-ढाला जनाना कुरता। (२) भूलना, हिंडोरा। वि. [हिं. भूलना ] भूलनेवाला! भूल्ला—संशा पं. [हिं. भूला] भूला, हिंडोला। म्हिरना-कि. श्र. लदना, लादा जाना। भूहिराना-कि. स. [हिं. भुहिरना ] (बोभ) लादना। भूँक— संशा पुं. [हिं. भोंका ] हवा का भोंका। संशा स्त्री, [हिं, भोंक] (१) भुकाव। (२) बोभ। (३) तेजो। (४) कार्य की उठान या गति। (५) ठाठ । (६) भोंका, भकोरा । भूँकना कि. स. [हिं. भोंकना ] छोड़ना, डालना। ं कि. स. [हिं. भखना ] भीखना । दुखड़ा रोना । भू खना—कि. त्र. [हिं. भीखना] कुढ़ना। दुखड़ा रोना। भूँभल—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूँभलाना ] भूँभलाहट। भूँका—संज्ञा पुं. [ हिं. भोंका ] भकीरा, हिलोरा। भूँटा-संशा पं. [हिं. भोंटा ] भूले का पेंग। वि. [हिं. मूठा ] भूठ बोलनेवाला। भूँठ—संशा पुं. [हिं. भूठ] असत्य कथन। वि , -- ग्रसत्य, मिथ्या। भूँपड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. भोपड़ा] भोपड़ा, कुटिया। भँसना कि. श्र. [हिं. भुलसना ] भलसना। भूँसा संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह की घास। भूक-संशा पुं. [हिं. भोंका ] हवा का भोंका।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भोंक] (१) भुकाव। (२) भोंका। भूकटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. जूट+काँटा] छोटी भाड़ी। भूके—कि. श्र. [हिं. भुकना=भोंका जाना] गिरे, पड़े, डूबे। उ.—जाको दीनानाथ निवाजें। भवसागर मैं कबहुँ न भूके, श्रमय निसाने वाजें—१-३६। भूखी—कि. श्र. [हिं. भींखना] दुखी हुई, कुढ़ी, खीभी, पछतायी। उ.—श्रवधि गनत इकटक मग जोवत

पछतायी। उ.—श्रवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं भूखी—३०२६।

भूभा—संशा पुं. [सं. युद्ध ] युद्ध ।
भूभा—िक. त्र्य. [हिं. जूभाना ] युद्ध करना ।
भूभी—िक. त्र्य. [हिं. सूभाना ] लड़ी, युद्ध किया ।
भूट, भूठ—संशा पुं. [सं. त्र्ययुक्त, प्रा. त्र्रश्चत, हिं, भूठ ]
भिष्या या श्रयथार्थ कथन । उ.—सूर पतित जो भूठ
कहत है, देखो खोजि बही—१-१३७।

मुहा.— भूठ-सच कहना (लगाना)— ठीक बेठीक बातें बताकर शिकायत करना।

वि. [हिं. जूठा] निस्सार, ग्रसार। उ.—सुख-संपति, दारा सुत, हयगय, भूठ सबै समुदाइ। छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु ग्रंत नाहिं सँग जाइ—१-३१७। संज्ञा स्त्री. [हिं. जूठन] जूठी चीज, जूठन।

भूठिनि—िव. [हिं. भूठ+िन (प्रत्य.)] जो सच्चे नहीं हैं, जो नश्वर हैं, ग्रसार। उ.—मूठौ मन, भूठी सब काया, भूठी श्रारभटी। श्रक भूठिन के बदन निहारत मारत फिरत लटी—१-६८।

भूठमूठ—कि. वि. [हिं. भूठ+श्रनु. मूठ] (१) बिना किसी तथ्य या श्राधार के। (२) यों ही, व्यर्थ।

भूठिहिं—िकि. वि. [हिं. भूठ+हिं. (प्रत्य.)] भूठे-ही, भूठमूठ ही। उ.—प्रेम सहित मुख खीभिति जाहीं। भूठिहं बार-बार पछिताहीं—७६६।

भूठा—िव. [हिं. भूठ] (१) मिथ्या, श्रसत्य। (२) जो सचन बोले। (३) जो श्रसली न हो। (४) जो (पुरजे ग्रादि बिगड़ जाने से) ठीक काम न दे। (४) साररहित, श्रसार, मायामय।

वि. [हिं. जूठा] (१) जो शुद्ध या पवित्र न हो।

(२) भोगा हुआ। (३) खाया हुआ। भूठी—वि. [हि. पुं. भूठा] (१) श्रसत्य, मिथ्या। (२) नाशवान । उ.—भूठो मन, भूठो सब काया, भूठी ख्रारभटी—१-६८ । (३) गलत, प्रशुद्ध बातों से युक्त । उ.—ग्रहंकार पटवारी कपटी भूठी लिखत बही—१-१८५ ।

भूठे—वि. [हिं. भूठ] (१) मिश्या, ग्रासत्य, जो सच्चे न हों। उ.—एकनि कों जिय-बलि दे पूजे, पूजत नेंकु न त्ठे। तब पहिचानि सबनि कों छाँड़े, नख-सिख लों सब भूठे—१-१७७। (२) नाशवान, निस्सार, मायामय। उ.—भूठे नाते जगत के सुता कलत्र परिवार—२-२६।

भूठेहिं—कि. वि. [हिं. भूठ] भूठमूठ। उ.—भूठेहिं मोहिं लगावति ग्वारि—१०-३०४।

भूठें—िक. वि. [हिं. भूठ] भूठ ही, भूठमूठ ही। उ.—भूठें लोग लगावत मोकों, माटी मोहिं न सुहावे—१०-२५३।

भूठों, भूठों—िक. वि. [हिं. भूठा] (१) भूठमूठ, यों ही सा, व्यर्थ ही। (२) नाममात्र को, कहने भर को। भूठो, भूठों—िव. [हिं. भूठ] (१) श्रसत्य, निस्साद, मिथ्या। उ.—(क) भूठों सुख श्रपनों करि जान्यों, परस प्रिया के भीनों—१-६५। (ख) यह तन-गति जनम भूठों, स्वान काग न खाइ—१-३१६ १०(२) गलत, श्रयथार्थ। उ.—श्रव भूठों श्रभिमान करित है—६-७७। (३) मिथ्यावादो।

भूना—वि. [हिं. भीना] महीन, पतला, भीना। भूम—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूमना] (१) भूमने की क्रिया या भाव। (२) ऊँघ, उँघाई, भपकी।

भूमक—संज्ञा पुं. [हिं. भूमना] (१) होली का एक गीत जिसे स्त्रियां भूमभूम कर गाती हैं। उ.—भूमि भूमि भूमक सब गावित बोलित मधुरी बानी—२३६१।(२) विवाह के प्रवसर का एक गीत।(३) गीत के साथ का नृत्य। (४) गुच्छा। (४) चाँवी-सोने की गोलियों या मोतियों के गुच्छे जो साड़ी के उस भाग में लगाये जाते हैं जो माथे पर रहता है।

(६) भुमका नामक कान का गहना। भूमकसाड़ी, भूमकसारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूमक+ सारी ] वह साड़ी या श्रोढ़नी जिसके माथे पर रहने- वाले भाग में सोने-चाँदी की गोलियाँ या मोती श्रादि लगे हों। उ.—लाख टका श्रीर भूमक (भुमका) सारी देहु दाइ की नेगु—१०-४०।

भूमका—संशा पुं. [हिं. भुमका] (१) कान का एक गहना, फूल के आकार का एक गहना। उ.—मोतिन भालिर भूमका राजत बिच नीलमनि बहुमावनो। (२) सोने-चाँदी की गुरियों या मोतियों का गुच्छा जो माथे की शोभा बढ़ाने को साड़ी या आढ़नी में टाँका

जाता है। उ.— अंचल चंचल भूमका।
भूमड़— संशा पुं. [हिं. भूमरा] एक गहना।
भूमड़ा— संशा पुं. [हिं भूमरा] एक तरह का ताल।
भूमड़ा भामड— संशा पं. [हिं भूमड़ा] हकोसला।

भूमड़ भामड़—संज्ञा पुं. [हिं. भूमड़ा ] ढकोसला। भूमना—क्रि. त्र्य. [सं. भंप] (१) हिलना, भोंके खाना। (२) नशे या नींद में सिर हिलाना।

मुहा.—दरवाजे (द्वार) पर हाथी सूमना—बहुत धनी होना। सूमसूमकर—बड़ी मस्ती या नशे से सिर हिला हिलाकर

भूमर, भूमरि—संज्ञा पुं. [हिं. भूमना, या सं. युगम, प्रा. जुम्म र (प्रत्य.)] (१) सिर का एक गहना। (२) भुमका नामक गहना। (३) होली का भूमक गीत। (४) इस गीत का नाच। (४) चीजों का ग्रंबार या जमघटा। (६) स्त्री-पुरुषों का घेरा बनाकर नाचना। (७) भूमरा ताल। (८) एक खिलौना।

भूमरा—संशा पुं. [हि. भूमर] ताल का एक भेद।
भूमरी—संशा स्त्री. [देश.] ताल का एक भेद।
भूमि—कि. श्र. [हि. भूमना] मस्ती से भूमभूमकर।
अ.—भूमि-भूमि भूमक सब गावित बोलित मधुरी
बानी—२३६१।

भूमें कि. श्र. [हिं. भूमना] भूमता है, मस्त चाल से उठता या चलता है। उ.—चार चलौड़ा पर कुंचित कच, छिब मुक्ता ताहू में। मनु मकरंद-बिंदु ले मधु-कर, सुत-प्यावन-हित भूमें — १०-१४७।

भूर—िव. [हिं. धूर या चूर ] सूखा, शुष्क।
वि. [हिं. भूठ] (१) खाली। (२) बेकार।
वि. [हिं. जुष्ट] जूठा, खाया हुग्रा।
संज्ञा स्त्री. [हिं. भार] (१) दाह। (२) दुख।

भूरना — कि. सं. [हिं. भूर ] सूखना, दुबला होना। भूरा—वि. [हिं. भूर ] (१) सूखा। (२) खाली। (३) व्यर्थ। (४) जूठा, उच्छिष्ट।

संज्ञा पुं.—(१) सूखा स्थान । (२) वर्षा का स्रभाव। (३) कमी।

भूरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूर] (१) जलन, दाह। (२) दुख, व्यथा। उ.—सूर दाहिन मरत गोंपी कूबरी के भूरि—२६८२।

कि. स. [हिं. भाइना] भाइकर, खोज या भटककर, प्राप्त करके। उ.—भारि भूरि मन तौ तू लै गयौ बहुरि पयारहिं गाहत—३०६५।

भूरे—िक. त्रा. [हिं. भूर ] दुखी होती है, परिताप सहती है। उ.—बाँधि पची डोरी नहिं पूरे। बार-बार खीभे, रिस भूरे—३६१।

कि. वि.—व्यर्थ, निष्प्रयोजन।

भूल—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूलना] (१) शोभा के लिए चौपायों की पीठ पर डाला जानेवाला चौकोर कपड़ा। मुहा—गर्धे पर भूल पड़ना—श्रयोग्य या कुरूप को बढ़िया वस्त्र मिलना।

(२) ढीला-ढाला ग्रौर बेढंगा सिला कपड़ा।
मुहा.—भूल डाले घूमना—ढीला-ढाला ग्रौर
बेढंगा सिला कपड़ा पहने घूमना।

(३) भूलने का भूला, हिंडोला।

भूलत—िक. त्र. [हिं. भूलना] (पालने या भूले प्रावि पर) भूलते हुए, पेंग लेते हुए। उ.—सुर-नर मुनि कौत्हल फूले, भूलत देखत नंदकुमार—१०-८४। भूलन—संज्ञा पुं. [हिं. भूलना] (१) वह उत्सव जिसमें श्रीराम या श्रीकृष्ण की मूर्तियों को भूले में बैठाकर भुलाते हैं, हिंडोल। (२) एक तरह का गाना। संज्ञा स्त्री.—भूलने की किया या भाव। उ.—वह छिब छाके श्राति हैं दोऊ लोचन बाहे गिह भूलिन की—३२९६।

भूलना—कि. श्र. [सं. दोलन] (१) इधर-उधर हिलना। (२) भूले पर बैठकर पेंग लेना। (३) किसी श्राशा या श्रासरे में रहना। वि.—भूलनेवाला, जो हिलता-डोलता हो।

संशा पुं. - (१) एक छंद। (२) हिंडोला, भूला। भूलिन—संशा स्त्री. [हिं. भूलिन] भूलिन की किया या भाव। उ. -- कहाँ लता तर तर प्रति भूलिन कुंज कंज बन धाम-३०११।

भूलिर — संशास्त्री. [हिं. भूलना ] भूलता या हिलता-डोलता गुच्छा या भुमका।

भूला — संज्ञा पुं [ सं. दोला ] (१) ऊँचे स्थान पर बँघी रस्सी या जंजीर जिस पर पटरी डाल कर भूलते हैं, हिंडोला। (२) भूलता हुआ पुल। (३) पशुश्रों की भूल। (४) ढीला-ढाला कुरता। (५) भोंका, भटका, धक्का, हिलकोरा।

भूति—िक. श्र. [हिं. भूलना ] हिलडुल या भूलकर। भूले—वि. [हिं. भूलना] भूलते या भूमते हुए। उ.— कुमुदिनि सकुची, बारिज फूले। गुंजत फिरत श्रलीगन भूले - १०-२३३।

कि. या.—भूले पर पेंग लिये। उ.—जो छबि निर-खत सो पुनि नाहीं भरम-हिंडोरे भूले-ए. ३३४।

भूलें - कि. स. [हिं. भूलना] भूलते हैं। उ. - भूलें सखी अलावहीं, खूरदास बलि जाइ, बलि हालह रे— 80-80

भूली—कि. ग्र. [हिं. सुलना] भूलो, भूले पर बैठकर पेंग लो। उ.—(क) पालनी आन्यी बनाइ, अति मन मान्यौ सुहाइ, नीकौ सुभ दिन सुधाइ, भूलौ रे मुलैया--१०-४१। (ख) पलना भूली मेरे लाल पियारे--१०-१६०।

भूल्यो — कि. श्र. [ हिं. भूलना ] हिला-डुला, डोल गया, भ्रम में भटक गया। उ.—यह गोकुल किधौं श्रीर किंधों मैं ही चित्त भूल्यौ । ये ऋबिनासी हो हैं, ज्ञान मेरौ अम भूल्यौ-४६२।

भेंपना, भेपना-कि. श्र. [हिं. छिपना ] लजाना। भोर—संज्ञा स्त्री. [फा. देर ] (१) विलंब, देर । उ.— (क) काहे को तुम भेर लगावति। दान देहु घर जाहु वेचि दिध तुम ही को यह भावति—११४५। (ख)दिध बेचहु घर सूधे श्रावहु का है भेर लगावति— ११७४। (ग) चलहु तुरत जिनि भेर लगावहु— १८८१। (२) भगड़ा, बखेड़ा, टंटा। उ.—बिरह की जंजीर जो नाक के गहने का भार सम्हालने के

बिषय चहुँ घा भरमति है स्याम कहा कियों भैर-१२१५।

भेरन-संशा स्त्री. [हिं. भेर ] भगड़ा, बलेड़ा। उ.-नंदकुमार छाँड़ि को लैहे जोग दुखन की टेरन। जहाँ न परम उदार नंदसुत मुक्ति परो किन भेरन— २४७७

भोरना-कि. स. [हिं. भेलना ] भेलना, सहना। क्रि. स. [हिं. छेड़ना] म्रारंभ या शुरू करना। मेरा-संशा पुं. [हिं. भेर] भगड़ा, बखेड़ा, अंभट।

मेरें, मेरे-संशा पुं [हिं. मेर] मगड़ा, बखेड़ा, मंभट। उ. (क) श्री बनवारी बृथा करत काहे भेरें। (ख) कतिहं करति त्रिय भेरे री--२०३४।

मेरो, मेरो संज्ञा स्त्री. [फ़ा. देर, हिं. फेर] (१) भगड़ा, बलेड़ा। उ.—(क) दीपक मैं धरधौ बारि, देखत भुज भए चारि, हारी हों धरति करति दिन-दिन को भेरो--१०-२७६ । (ख) जंत्र-मंत्र कह जाने मेरौ। यह तुम जाइ गुननि कौं बूभौ, इहाँ करति कत भेरौ-७५३।

मेल-संशा स्त्री. [हिं. भेलना] (१) तैरने की किया। (२) हल्का धक्का या हिल होरा। उ.—सुरत समुद्र मगन दंपति रस भेलत ऋति सुख भेल। (३) भूलने की किया या भाव।

संज्ञां स्त्री. [हिं, भेर ] विलंब, देर। भेलत - कि. स. [हिं. भेलना ] (हाथ-पैर से ) पानी उछालते या हटाते हैं। उ.—(क) कर पग गहि, ऋँगुठा मुख मेलत । प्रभु पौढ़े पालनें ऋकेले, हरिष हरिष श्रपनें रंग खेलत। सिव सोचत, विधि बुद्धि बिचारत, बट बाढ़यौ सागर जल भेलत-१०-६३। (ख) बाल केलि को बिसद परम सुख सुख समुद्र नुप भेलत—सारा. १८६।

भेलना—कि. स. [सं. द्वेल = हिलाना-डुलाना ] (१) सहना, बरदाइत करना। (२) तैरने में पानी को हाथ-पैर से हटाना । (३) पानी में हिलना । (४) ठेलना, आगे बढ़ाना। (५) हजम करना। मेलिन, मेलिनी - संशा स्त्री. [हिं. भेलिना ] सोने-चाँदी लिए बालों में ग्रटकायी जाती है।
भेलि—िक. स. [हिं. भेलना ] ऊपर लेकर। उ.—ठेलि
हलधर दियो भेलि तब हरि लियो महल के तरे
धरनी गिरायो—२६१५।
भोंक—संशा स्त्री. [सं. युक्त, हिं. भुकना ] (१) भुकाव,

भोंक—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्त, हि. क्षुकना] (१) भूकाव, प्रवृत्ति, रुचि। (२) बोभ, भार। (३) वेग, भटका, तेजी। (४) कार्य की गति। (५) ठाट, सजावट, चाल। (६) पानी का हिलोरा। (७) भोंका।

भोंकना—कि. स. [हिं. भोंक] (१) तेजी से फेंकना।
मुहा.—भाड़ भोंकना—तुच्छ काम करना।

(२) ठेलना, श्रागे बढ़ाना। (३) श्रंधाधुंध खर्च करना। (४) दुख या मुसीबत में डालना। (४) बहुत ज्यादा काम किसी पर लादना। (६) दोष लगाना। ोंकवा—िव दिश्यो भाड भोंकनेवाला।

भोंकवा—िव. [देश.] भाड़ भोंकनेवाला। भोंकवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोंकना ] (भाड़ ग्रादि) भोंकने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

भोंकवाना—कि. स. [हिं, भोंकना ] भोंकने के काम में लगाना या प्रवृत्ता करना।

भोंका—संज्ञा पुं. [हिं. भोंक] (१) धक्का, रेला, भपेटा। (२) वायु का भटका या थपेड़ा। (३) वायु का प्रवाह या भकोरा। (४) पानी का हिलकोरा। (४) भूमने या हिलने-डोलने की किया।

मुहा.—भोंका श्राना— अँघना, नींद से भूमना। भोंका खाना— भटका खाना।

(६) ठाट, सजावट, चाल।

भोंकाई—संज्ञास्त्री. [हिं. भोंकना] (भाड़ ग्रादि) भोंकने की किया, भाव या मजदूरी।

भोंकिया—वि. [हिं. भोंकना] भोंकनेवाला।
भोंकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोंक] (१) बोभ। (२) हानि।
भोंको—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोंका] ठाट, सजावट, चाल,
ग्रंदाज। उ.—पहिरे राती चूनरी सिर उपरना सोहै।
कटि लहँगा लीलो बन्यो भोंको जो देखि मन मोहै।
भोंभ—संज्ञा पुं. [देश.] (१) घोसला। (२) खुजली।
भोंभल—संज्ञा पुं. [हिं. भुँभलाना] भुँभलाहट।
भोंभा—संज्ञा पुं. [हिं. भोंभा] बया का घोसला।
भोंट—संज्ञा पुं. [सं. भुंट] (१) भाड़ी। (२) ग्राड़।

(३) समूह, जुट्टी, गड्डी । (४) भोंटा ।
भोंटा—संशा पुं. [सं. जूट] (१) बड़े-बड़े श्रीर बिखरे
हुए बाल । (२) जुट्टा, समूह, गड्डी ।
संशा पुं. [हिं. भोंका] भूले का भोंका या पेंग ।
उ.—लिता बिसाखा देहिं भोंटा रीभि श्रंग न
समाति—२८८१।

संज्ञा पुं, [हिं, ढोटा] भैंस का बच्चा। भैंसा। भोंटी—संज्ञा स्त्री, [हिं, भोंटा] बड़े बड़े बाल। संज्ञा स्त्री, [हिं, भोंका] हिलोर, भकोरा, भोंका।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भोंका] हिलोर, भकोरा, भोंका। भोंपड़ा—संज्ञा पुं [हिं. छोपना = छाना] कुटी।

मुहा.—श्रंधां कोपड़ा—पेट। श्रंधे कोपड़े में श्राग लगना—भूख लगना।

भोंपड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोपड़ा का श्रल्प.] कुटिया। भोंपा—संज्ञा पुं. [हिं. भव्बा] गुच्छा, भव्बा। भोटा—संज्ञा पुं. [हिं. भोंका] भूले का पेंग। उ.— लिता बिसाखा देहि भोटा रीभि श्रंगन समाति

--- २२८१ ।

भोटिंग—िव. [हिं. भोंटा ] बड़े बालवाला।
भोपड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. भोपड़ा ] कुटी।
भोपड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोंपड़ी ] कुटिया।
भोर—संज्ञा पुं. [हिं. भोल ] गाढ़ा रसा, ज्ञोरवा।
भोरई—िव. [हिं. भोल ] भोल या रसेदार। उ.—सूर करत री सरस तोरई। सेमि सींगरी छमिक भोरई।
संज्ञा स्त्री.—भोल या रसेदार तरकारी।

भोरना—िक, स. [सं. दोलन] (१) भटके से हिलाना।

(२) हिलाकर गिराना। (३) इकट्ठा करना।
भोरा--संज्ञा पुं. [हिं. भव्वा] गुच्छा, भव्वा।
भोरि-कि. स. [हिं. भेरना] भटके से हिलाकर या कँपाकर। उ.—कहयी कहारिन हमें न खोरि। नयी कहार चलत पग भोरि।

संशा स्त्री. [हिं. भोली ] भोली।
भोरी—संशा स्त्री. [हिं. भोली ] (१) भोली। उ.—हमरे
कौन बेद बिधि साधै। बदुश्रा भोरी देउ श्रधारा
इतनेन को श्राराधै—३२८४। (२) पेट। (३) एक
तरह की रोटी। उ.—रोटी बाटी पोरी भोरी।
इक कोरी इक घीव चभोरी—३६६।

भोल—संज्ञा पुं. [हिं. भाल ] (१) तरकारी का रसा। (२) पतली लेई। (३) माँड़ (४) मुलम्मा।

संशा पुं. [हिं. भूलना] (१) कपड़े का भाग जो ढीला होने के कारण लटक जाय। (२) पहला, श्रांचल। उ.—तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछत पट भोला।

(३) परदा, स्रोट, स्राड़। उ.—कहन देहु कहा करें हमरों बस उठि जैहें भोल।

वि.—(१) जो कसा या तना न हो, ढोला। यौ.—भोल-भाल—(१) ढीला। (२) भगड़ा। संज्ञा पुं.—भूल, गलती।

संज्ञा पुं. [हिं. भिल्ली या भोली ] गर्भ।

संज्ञा पुं. [ सं. ज्वाल, हिं. भ्राल ] (१) भस्म, राख। (२) दाह, जलन।

क्रि. स. [हिं. जलाना ] जलाना, भस्मना।
प्र.—भोल डारयो — जला दिया। उ.—तिन
स्राति बोल भोल तन डारयो स्रानल भँवर की नाई
—३०७७।

भोलदार—वि. [हं. भोल+फ़ा. दार] (१) रसेदार। (२) जिस पर मुलम्मा हो। (३) ढीला-ढाला।

भोला—कि. स. [सं. ज्वलन] जलाना।
भोला—संशा पुं. [सं. चोल या हिं. भूलना] (१) कपड़े
की बड़ी थैली या भोली। (२) ढीला-ढाला गिलाफ
या खोल। (३) ढीला-ढाला कुरता, चोला। (४)
वात का एक रोग।

मुहा.—िकसी को भोला मारना—(१) वात रोग से भ्रंग बेकाम होना। (२) सुस्त या शिथिल पड़ना। (५) पेड़ों के सूखने का रोग। (६) भटका, ग्रघात। (७) हाथ का संकेत या इशारा। (६) रस्सी को ढीला करना।

भोलिहार, भोलिहारा—संज्ञा पुं. [हिं. भोली+हारा (प्रत्य.)] (१) भोली लटकानेवाला। (२) कहार। भोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूलना] (१) कपड़े की थैली। उ.—दूक दूक है सुभट मनोरथ त्र्याने भोली घालि —२८२६।

मुहा. - भोड़ी छोड़ना - बुढ़ापे में खाल लटकना।

भोली डालना (लेना, सम्हालना)—साधु या भिक्षुक होना। भोली भरना—(१) बहुत सा सामान भरना।(२) भरपूर भिक्षा देना।

(२) घास बाँधने का जाल। (३) मोट, चरसा। संज्ञा स्त्री. [सं. ज्वाल या भाला] राख, भस्म। मोलो—संज्ञा पुं. [हिं. भोल] निकम्मापन, दोष, बुराई, कमी। उ.—कैधों तुम पावन प्रभु नाहीं, के कछु मो में भोलो। तो हों अपनी फेरि सुधारों, बचन एक जो बोलो—१-१३६।

भोंका—संशा पुं. [हिं. भोंका ] हवा का भोंका। भोंकट—संशा पुं. [हिं. भंकट] कगड़ा, बखेड़ा। भोंद—संशा पुं. [हिं. भोंक ] पेट, उदर।

भौर—संज्ञा पुं. [सं. युग्म, प्रा. जुम्म, हिं. भूमर] (१) भुंड, समूह। (२) फूल, पत्ती, फल का गुच्छा। (३) एक गुच्छेदार गहना। उ.—कलगी तुरी भौर जग्ग सिरपेच सुकुंडल। (४) पेड़ों-भाड़ों का समूह, कुंज। भौरना—कि. श्र. [श्रनु.] (१) गूँजना, गुंजारना।

(२) भपट कर पकड़ लेना, धर दबाना।
भौरा—संज्ञा पुं. [हिं. भौर ] (१) भुंड। (२) गुच्छा।
भौराना—क्रि. श्र. [हिं. भाँवा या भाँवरा ] (१) काला

या बदरंग हो जाना। (२) मुरभाना, कुम्हलाना। कि. श्र. [हिं. भूमना ] हिलना, भूमना। की. श्र. [हिं भलसना ] (१) ताप की

भौंसना—कि. श्र. [हिं. भुलसना] (१) ताप की श्रिधकता से श्रधजला होना। (२) धूप की तेजी से भुलसना या कुम्हलाना।

भौत्रा—संज्ञा पुं. [हिं. भावा] खँचिया, खँची। भौनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] टोकरी।

भोड़, भोर—संज्ञा पुं. [ अनु. भाँव-भाँव ] (१) भंभट, बखंड़ा, भगड़ा, विवाद । उ.—(क) महरि तें ब्रज चाहति कछु श्रोर । बात एक में कही कि नाहीं, श्रापु लगावित भोर—१०-३२३। (ख) नहीं ढीठ नैनन ते श्रोर । कितनो मैं बरजित समुभावित उलिट करत हैं भोर । (२) डाँट-फटकार, कहा-सुनी।

भौरना—कि. स. [हिं. भपटना] भपट कर पकड़ लेना, वबा या छोप लेना।

भौरा—संशा पुं. [हिं. भाँव-भाँव ] भंभट, हुज्जत।

भौरे—क्रि. वि. [हिं. घौरे] (१) समीप, पास, निकट। (२) संग-संग, साथ-साथ। भौलना—क्रि. स. [सं. ज्वाल] जलाना, बलाना।

भौवा—संशा पुं. [हिं, भावा] खँचिया, खँची। भौहाना—कि. अ. [अनु.] (१) गुर्राना। (२) जोर से बकना, भकना या चिड़चिड़ाना।

ञ

ञ-देवनागरी वर्णमाला का दसवाँ व्यंजन, चवर्णका

पाँचवाँ वर्ण, उच्चारण तालु श्रौर नाक से होता है।

ट

ट—देवनागरी वर्णमाला का ग्यारहवाँ व्यंजन, टवर्ग का पहला वर्ण, इसका उच्चारण करने में तालू से जीभ लगानी होती है।

टंक—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) एक तौल। (२) सिक्कों की तौल का एक मान। (३) सिक्का। (४) पत्थर काटने की टाँकी या छेनी। (४) कुल्हाड़ी। (६) कुदाल। (७) तलवार। (८) टाँग। (६) क्रोध। (१०) अभिमान। (११) खजाना। (१२) एक राग। (१३) म्यान। (१४) एक कँटीला पौधा।

टंकक—संज्ञा पुं [ सं. ] चाँदी का सिक्का। टंककशाला—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] टकसाल। टंकटीक—संज्ञा पुं. [ सं. ] शिव।

टंकगा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धातु के पात्र ग्रादि में टाँका लगाने की किया। (२) एक तरह का घोड़ा। टँकना—कि. ग्रा. [सं. टंकण] (१) टाँका या जड़ा जाना। (२) सिया या जोड़ा जाना। (३) सींकर श्रटकाया जाना। (४) रेती (ग्रीजार) तेज होना। (४) लिखा या दर्ज किया जाना। (६) चक्की ग्रादि

का खुरदुरा किया जाना।
टंकपति—संज्ञा पुं. [सं.] टकसाल का ग्रध्यक्ष।
टॅकवाना—क्रि.स. [हिं. टॅकाना] टांकने का काम कराना।
टंकशाला—संज्ञा स्त्री, [सं.] टकसाल।

टंका—संज्ञा पुं, [सं, टंक] (१) एक तौल। (२) टका। संज्ञा पुं, [देश,] एक तरह का गन्ता।

सज्ञा पु. [ दश. ] एक तरह का गन्ना।
संज्ञा स्त्री. [ सं. ] (१) जाँघ। (२) तारा देवी।
टॅकाई—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टॅकाना ] टाँकने की किया,
भाव या मजदूरी।

टॅंकाना—कि. स. [हिं. टॉंकना का प्रे.] (१) जुड़-वाना, सिलवाना। (२) सिला कर लगवाना। (३) चक्की, सिल ग्रादि को खुरदुरा कराना। टंकार—संज्ञास्त्री [सं ] (१) उन्हान करता। (२) धनाप

टंकार—संशा स्त्री. [सं.] (१) टनटन शब्द। (२) धनुष की डोरी खीचकर छोड़ने का शब्द। (३) सनकार, ठनाका। (४) विस्मय। (४) यश, कीर्ति।

टंकारना—कि. स. [सं. टंकार] धनुष की डोरी खूब खीचकर ग्रौर छोड़कर 'टंकार' ध्वनि करना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़। टंकिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्थर काटने की छेनी। टंकी—संज्ञा स्त्री. [सं.टंक] एक रागिनी।

संज्ञाःस्त्री. [सं. टंक = गड्ढा ] पानी का कुंड। टंकोर—संज्ञा पुं. [हिं. टंकार ] धनुष की टंकार। टॅकोरत—कि. अ. [हिं. टंकोरना ] 'टंकोर' ध्वनि करता

है। उ.—जाके धनुष टॅकोरत हाथा—२६३१।
. टॅकोरना—कि. स. [ अनु, ] (१) धनुष की डोरी से
टंकार शब्द करना। (२) ठोकर या टक्कर मारकर
शब्द निकालना।

टॅकोरी—संशा स्त्री. [सं.] छोटी तराजू। टंग—संशा पुं. [सं.] (१) टाँग। (२) कुल्हाड़ी। (३) कुदाल, फरसा। (४) सुहागा। (४) एक तौल। टँगड़ी—संशा स्त्री. [सं.टग] टाँग।

टगड़ा—सरास्त्रा. [स.टग] टाग। टॅगना—क्रि. श्र. [सं.टंकण=जड़ा जाना] (१)लटकना।

(२) फाँसी पर चढ़ना।
संज्ञा पुं—टाँगने की रस्सी, अलँगनी, बिलगनी।
टँगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टँगड़ी ] टाँग।
टूँगारी—संज्ञा स्त्री. [सं. टंग] कुल्हाड़ी, फरसा।

टंच—वि. [सं. चंड, हिं. चंठ] (१) कंजूस, सूम। (२) निष्ठुर । (३) चालाक, काइयाँ। वि. [हिं. टिचन ] तैयार, सुस्तेद । टंट-घंट-संशा पुं [श्रानु. टन टन+घंटा ] बहुत साज-सामान के साथ पूजा करने का आडंबर। टंटा—संज्ञा पुं. [ ऋनु. टनटन ] (१) प्रपंच, बखेड़ा, खटराग। (२) दंगा, फसाद। (३) लड़ाई, तकरार। टॅंड़िया-संज्ञा स्त्री. [सं. ताड़ ] बाँह का एक गहना। टॅंडुलिया—संश स्त्री, [देश, ] बन-चौलाई का साग। टंसरि, टंसरी--संज्ञा स्त्री.- एक तरह की बीणा। टॅसहा—संज्ञा पुं. [हिं. टाँस+हा.] लँगड़ा बैल। वि.—जो लँगड़ा हो गया हो। ट- संज्ञा पुं. [सं.] (१) नारियल का खोपड़ा। (२) चौथाई भाग। (३) शब्द। टई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टही ] जोड़तोड़, युक्ति। टक-संशास्त्री. [सं. त्राटक या टक ] स्थिर दृष्टि से देखने की क्रिया, गड़ी नजर। उ.—सहज समाधि रूप रस इक टक करत न टक तें टारे—३०३६। मुहा,—टक बँधना—स्थिर दृष्टि से देखना। टक बाँधना—स्थिर दृष्टि होना। एक टक देखना— स्थिर दृष्टि से देखना । टक लगाना—ग्रासरा देखना, प्रतीक्षा में रहना। टकटका—संशा पुं. [हिं.टक] स्थिर दृष्टि, टकटकी। वि.— स्थिर, बँधी हुई या एक तरफ जमी (वृष्टि)। टकटकाना—कि. स. [हिं.टक] (१) एक टक या दृष्टि जमाकर देखना। (२) टकटक शब्द करना। टकटकी—संशा स्त्री. [हं. टक ] स्थिर दृष्टि। मुहा.—टकटकी बँधना—दृष्टि स्थिर होना या जमना। टकटकी बाँधना—स्थिर दृष्टि से देखना। टकटके कि. स. [हिं टकटकाना ] स्थिर या एकटक दृष्टि से देखकर। उ.—टकटकै मुख क्की नैनहीं नागरी, उरहनो देत रुचि अधिक बाढ़ी। टकटोना-कि. स. [हिं. टकटोरना ] टटोलना। टकटोरत-कि. स. [हिं. टकटोरना] टटोलता है, स्पर्श करके देखता है। उ.—पुनि पीवत ही कच इकदोरत भठहिं जननि रहै—१०-१७४।

टकटोरना-कि. स. [हिं. टटोलना ] (१) छ कर या स्पर्श करके जाँचना। (२) ढूँढ़ना। (३) कुतरना। टकटोरि-कि. स. [हिं. टकटोरना ] जाँचकर, परख-कर, परीक्षा लेकर। उ. -- सूर एकहू श्रंग न काची मैं देखी टकटोरि-३४६८। टकटोलना—कि. स. [हिं. टकटोरना ] टटोलना । टकटोहन—संज्ञा पुं. [हिं. टकटोना ] टटोलकर या स्पर्श करके देखने या जाँचने की किया या भाव। उ.— स्याम-स्याम मन रिभावत पीन कुचन टकटोहन। टकटोहना—कि. स. [हिं. टकटोलना ] टटोलना। टकटोहै-कि. स. [हिं. टकटोलना, टकटोहना] जाँचता है, टटोलता है, खोजता है। उ.—या छवि की पट-तर दीबै को सुकबि फहा टकटोहै। देखत अंग-अंग प्रति बानक, कोटि मदन-मन मोहै--१०-१५८। टकटौरे-कि. स. [हिं. टकटोरना ] कुतरता है, काट लेता है। उ.—वरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे। तीछन लगी नैन भरि श्राए, रोवत बाहर दौरे-१०-२२४। टकतंत्री-—संशास्त्री. [ सं. ] एक पुराना बाजा। टकना—संज्ञा पुं. [ हिं. टाँग ] घुटना, टेंबना । कि. अ. [हिं. टॅकना ] टाँका या सिया जाना। टकबीड़ा—संशा पुं. [ देश. ] विवाहादि की भेंट। टकरात-कि. छ. [हिं. टकराना ] मारे-मारे बेकार धूमता है। उ. जहॅ-तहँ फिरत स्वान की नाई दार-द्वार टकरात। टकराना—कि. श्र. [हिं. टक्कर ] (१) धक्का या ठोकर खाना। (२) इधर-उधर मारे-मारे घूमना-फिरना। मृहा .-- टकराते फिरना -- सारे-मारे बेकार घूमना। कि. स.—एक वस्तु को दूसरी से भिड़ाना। मुहा.—माथा टकरंगा—(१) पैर पर सिर रख-कर विनय करना। (२) बहुत प्रयत्न करना। टकरी-संशा स्त्री. [देश.] एक तरह का पेड़ । टकसरा—संशा पु. [देश.] एक तरह का बाँस। टकसार, टकसाल—संशा स्त्री. [हिं. टंकशाला ] (१) सिक्के बनाने या ढालने का स्थान। मुहा.—टकसाल का खोटा—नीच, अशिब्द। टकसाल चढ़ना—(१) परखा जाना, परीक्षा होना।
(२) चतुर या कुशल समभा जाना।(३) बुराई में
पक्का होना। टकसाल बाहर—(१) (जो सिक्का)
प्रचार में न हो। (२) (जो वाक्य, शब्द या प्रयोग)
शिष्ट या प्रामाणिक न हो।

(२) निर्दोष, प्रामाणिक या ग्रसल चीज।
टकसाली—वि. [हिं. टकसाल ] (१) टकसाल का या
उससे संबंधित। (२) खरा, चोखा, ग्रसली। (३)
सर्वसम्मत, सर्वमान्य, (४) जँचा हुग्रा, प्रामाणिक,
शिष्ट, मान्य।

मुहा.—टकसाली बात—ठीक और पक्की बात। टकसाली बोली या भाषा—शिष्ट और सर्वसम्मत भाषा या प्रयोग।

संज्ञा पुं.—टकसाल का अध्यक्ष या अधिकारी।
टका—संज्ञा पुं. [सं. टंक] (१) चाँदी का एक पुराना
सिक्का, रुपया। उ.—नाइन बोलहु नवरँगी (हो),
ल्याउ महाउर वेग। लाख टका अरु भूमका (देहु)
सारी दाइ कों नेगु—१०-४०। (२ ताँबे का एक
सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है।

मुहा.—टका पास न होना—दिरद्र होना। टका सा जवाब देन:—(१) साफ इनकार करना, कोरा जवाब देना।(२) साफ निकल जाना। टका सा मुँह लेकर रह जाना—लिजत हो जाना, खिसिया जाना। टका सी जान—(१) श्रकेला दम। (२) बहुत सुकुमार या कोमल होना।

(३) रुपया-पंसा। (४) तीन तोले की तौल।
टकाटकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकटकी ] गड़ी हुई दृष्टि।
टकानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकना ] बेलगाड़ी का जूग्रा।
टकासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टका ] टके रुपए का व्याज।
टकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकटकी ] गड़ी हुई दृष्टि।
टकुत्र्या—संज्ञा पुं. [सं. तर्कुक, प्रा. तकुत्रा ] सूत चढ़ाने का सूत्रा, चरखे का तकुग्रा या तकला।

टकुली—संज्ञा स्त्री. [सं. टंक] पत्थर काटने की टाँकी। टकुचना—क्रि.स. [हिं. टाँकना] मुनाफा लेना या खाना। टकेट, टकेत—वि. [हिं. टका+ऐत (प्रत्य.)] धनी। दकोर—संज्ञा स्त्री. [सं. टंकार] (१) हल्की चोट,

ठेस । (२) डंके या नगाड़े की चोट या श्रावाज । (३) धनुष की टंकार । (४) गरम पोटली की सेंक । (४) खटास से दांतों की टीस । (६) भालपन, चरपराहट । उ.—कबहूँ कौर खात मिरचन की लागी दसन टकोर ।

टकोरना—िक. स. [हिं. टकोर] (१) ठोकर या ठेस मारना। (२) डंके पर चोट देना। (३) सेंक करना। टकोरा—संज्ञा पुं. [सं. टंकार] डंके की चोट। टकोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकर] चोट, श्राघात। टकौना—संज्ञा पुं. [हिं. टका] (१) टका। (२) रुपया। टकौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. टंक] छोटी तराजू, काँटा। टकर—संज्ञा स्त्री. [ग्रनु. ठक] (१) धक्का, ठोकर। मुहा.—टकर खाना—(१) धक्का या ठोकर लगाना। (२) बेकार फिरना ग्रीर सफल न होना। (२) मुटभेड़, लड़ाई, भिड़ंत।

मुहा,— टक्कर का—बराबरी का, समान। टक्कर खाना—(१) लड़ना-भिड़ना। (२) -मुकाबले का या समान होना। टक्कर लेना—मुकाबला करना, लड़ना-भिड़ना। पहाड़से टक्कर लेना—बड़े प्रतिद्वंद्वीसे भिड़ना।

(३)कड़ी चीज से सिर टकराने का ग्राघात। मुहा.—टक्कर मारना—(१) सिर पटकना।(२) कठिन परिश्रम करने के बाद भी लाभ न होना। (४) घाटा, हानि, नुकसान।

मुहा.—टक्कर भेलना—नुकसान सहना।
टखना—संज्ञा पुं. [सं. टंक=टाँग] पैर का गट्टा।
टगटगाना—कि. स. [हिं. टकटकी ] एकटक देखना।
टगएा—संज्ञा पुं. [सं. ] छः मात्राओं का एक गण।
टगर—संज्ञा पुं. [सं. टंकण] विलास, क्रीड़ा।
टघरना—कि. अ. [हिं. पिघलना] (१) घी आदि
पिघलना। (२) हृदय में दया आदि उपजना।
टघराना—कि. स. [हिं. टघरना] (१) घी आदि पिघला।।(२) हृदय में दया आदि करना।
टचटच—कि. स. [हिं. टचना—जलना] (आग की

लपट के ) धकधक या धाँय-धाँय शब्द के साथ। टचना—िक, ग्रा. [ श्रानु. ] धकधक करके जलना। टचनी—संशा स्त्री. [ सं. टंक ] नक्काशी का ग्रीजार। टेटका-वि. [ सं. तत्काल ] (१) हाल का, ताजा, तुरंत का। (२) जो बरता न गया हो। टटकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टटका+स्त्राई] ताजापन। टटकी — वि. स्त्री. [हिं. टटका ] (१) तत्काल की, हाल की, श्रभी की। उ.—िनिस के उनींदे नैन, तैसे रहे ढिर ढिर, कीधौं कहुँ प्यारी कौं लागी टटकी नजरि-७५२। (२) नयी, कोरी, बिना बरती। टटड़ें संशास्त्री. [पंजाबी] (१) खोपड़ी। (२) हिंड्यों की ठटरी। (३) खपिच्यों का ढाँचा। टटरी-संज्ञा स्त्री. िहं. टटटी विपिच्चियों का ढाँचा। टटाना—क्रि. श्र. [हिं. ठाँठ] सूख जाना। टटल-बटल-वि. श्रिन्. ] ऊटपटाँग, श्रंटसंट । टटावली—संज्ञा स्त्री. [ सं. टिडभावलि ] क्ररी चिड़िया। टटिया—संशास्त्री. [हिं. टही ] खपिच्चयों का ढाँचा। टटियाना—कि. श्र. [हिं. टटाना ] सूख जाना। कि. श्र. [ हिं. टट्टी ] टट्टी से घेरना। टटीबा-संज्ञा पुं. [ अनु. ] घिरनी, चक्कर। टटीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिटिहरी ] कुररी चिड़िया। वि.—(१) बहुत दुबला-पतला। (२) तेज। टदुश्रा—संज्ञा पुं. [ हि. टट्टू ] छोटा घोड़ा, टाँगन। टटुई--संज्ञा स्त्री. [हिं. टट्टू ] मादा टट्टू । टटोना, टटोरना, टटोलना, टटोहना-कि. स. [ सं. त्वक्+तोलन = श्रंदाज करना, हिं. टटोलना ] (१) छूना, दबाना। (२) ढूँढ़ना, खोजना। (२) मन की थाह लेना। (४) परीक्षा करना। टटोल-संज्ञा स्त्री. [हिं. टटोलना ] टटोलने का भाव। टट्टूड़, टटटर--संज्ञा पं. [ सं. तट या स्थाता ] (१) बाँस की खपिच्यों का दरवाजा। (२) सीखचों का छाजन। (३) भेरी का शब्द। टट्टनी-संज्ञास्त्री' [सं.] छिपकली। टट्टरी—संज्ञा स्त्री. [सं. ] (१) ढोल-नगाड़े का शब्द। (२) लंबी-चौड़ी बात। (३) चुहलबाजी। टट्टा—संज्ञा पुं. [सं. तट या स्थाता = जो खड़ा हो ] (१) बाँस की खपिचयों का परदा। (२) तस्ता। टट्टी—संशा स्त्री. [ हिं. टट्टर ] (१) बाँस की खपिचयों या खस के परदे श्रादि की श्राड़ या रोक।

मुहा.—टट्टी की ब्राइ (ब्रोट) से शिकार खेलना—(१) छिपकर चाल चलना। (२) छिपकर बुरा काम करना। टट्टी में छेद करना—खुलकर बुरा काम करना। टट्टी लगाना—(१) ब्राइ करना। (२) सामने ही भीड़ इकट्ठा करना। घोखे की टट्टी—(१) घोखा देने की ब्राइ। (२) ऐसी ब्राइ या चीज जिसके कारण लोग घोखा खा जायँ। (३) ऐसी चीज जो सुंदर हो, पर ज्यादा काम की न हो, चटपट टूट जानेवाली दिखावटी चीज।

(२) परदा, चिलमन। (३) परदे की पतली दोवार। (४) बाँस की खपिच्यों का हलका छाजन। टट्टू—संज्ञा पुं. [ त्र्यनु.] छोटा घोड़ा, टाँगन।

मुहा.—टट्टू पार होना—मतलब निकल जाना।
भाड़े का टट्टू —रुपया लेकर काम करनेवाला।
टिटिया—संज्ञा स्त्री. [हं. टाठी] छोटी थाली।
टिड्या—संज्ञा स्त्री. [सं. ताड़] बाँह का एक गहना जो श्रनंत से कुछ मोटा श्रीर बेघुंडी का होता है, टाँड़।
टन—संज्ञा स्त्री. [श्रनु.] घंटा बजने का शब्द।

महां.—टन हो जाना — चटपट मर जाना।
टनकना — कि. श्र. [श्रुनु. टन] (१) टनटन बजना।
(२) सिर में रहरह कर पीड़ा होना।

टनटन—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] घंटा बजने का शब्द । टनटनाना—क्रि. श्र. [ हिं. टनटन ] घंटा बजना ।

क्रि. स. — घंटा बजाना, टनटन करना।
टनमन—संशा पुं, [हिं, टोना] जादू-टोना।
टनमन, टनमना—वि. [सं. तन्मनस्] स्वस्थ, चगा।
टनाका—संशा पुं, [ अनु, टन] घंटा बजने का शब्द।

वि.—माथा टनकानेवाली तेज ग्रौर कड़ी (धूप)। टनाटन—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] लगातार टनटन शब्द।

वि,—बिलकुल ठीक दशा में श्रौर दृढ़।
कि, वि,—'टनटन' शब्द के साथ।
टप—संशा स्त्री. [हिं. टोप, तोप = श्राच्छादन ] खुली गाड़ियों का श्रोहार, सायवान, कलंदरा या छतरी। संशा पुं. [हिं. ठप्पा ] एक श्रौजार। संशा स्त्री. [श्रनु.] (१) बूँद टपकने का शब्द। उ.—परत स्त्रम-बूँद टप टपिक श्रानन बाल भई

बेहाल रित मोह भारी। (२) किसी चीज के ग्रचानक ऊपर से गिर पड़ने का शब्द।

मुहा. - टप से - भटपट, चट से, तुरंत।

टपक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टपकना ] (१) टपकने का भाव। (२) बूँद टपकने का शब्द। (३) रुक रुक कर होने-

वाला दर्द, टीस, कसक ।

टपकत—िक. श्र. [हिं. टपकना] चूता है, बूँद बूँद पानी गिरता है। उ.—श्रित दरेर की भरेर टपकत सब श्रॅबराई—१५६५।

टपकना—िक, अ. [ अनु. टपटप ] (१) बूँद-बूँद गिरना, चूना, रसना। (२) फल का पककर गिरना। (३) ऊपर से अचानक गिरना।

मुहा.—श्रा टपकना—टपक पड़ना, एकाएक श्राकर उपस्थित हो जाना।

(४) लक्षण, चेव्हा म्नादि से कोई भाव प्रकट या व्यंजित होना। (५) चित्त लुभाना या मोहित होना। (६) घाव-फोड़े का टीसना। (७) घायल होकर गिरना।

टपका—संज्ञा पुं. [हिं. टपकना ] (१) टपकने का भाव।

(२) टपकी हुई चीज। (३) गिरा हुम्रा पक्का फल।

(४) रह रहकर उठनेवाला दर्व, टीस।

टपका-टपकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टपकना] (१) बूँदा-बाँदी, हलकी वर्षा। (२) पके फलों का गिरना।

(३) किसी चीज के लिए बहुतों का टूट पड़ना।

(४) एक एक करके कई सौतें।

वि.—एक-ग्राध, बहुत कम, भूला-भटका।
टपकाना—क्रि. स. [हिं. टपकना] (१) बूँद बूँद
गिराना। (२) भवके से ग्ररक उतारना।

टपकाव—संज्ञा पुं. [हिं. टपकाना ] टपकाने का भाव। टपना—क्रि. श्र. [हिं. तपना ] (१) बिना खाये-पिये पड़े रहना। (२) बेकार श्रासरे में पड़े रहना।

कि. ग्र. [हिं टाप] उछलना, कूदना।

क्रि. स. [हिं. तोपना] ढक देना। टपरा—संज्ञा पुं. [हिं. तोपना] (१) छप्पर, छाजन।

(२) भोपड़ा, कुटी ।

संज्ञा पुं, [हिं, टप्पा] खत का छोटा भाग। टपाटप—क्रि, वि. [ग्रनु, टपटप] (१) बूँद-दूँद करके वराबर गिरना। (२) भटपट, जल्दी जल्दी। टपाना—िक, स. [हिं, टपाना] (१) बिना खिलाये-पिलाये डाल रखना। (२) बेकार ग्रासरे में रखकर हैरान करना। (३) कुदाना, फँदाना।

कि. स. [हिं. टाप] कुदाना, फँदाना। टप्पर—संज्ञा पुं. [हिं. तोपना] छप्पर, छाजन।

मुहा.—टप्पर उलटना—दिवाला निकलना।

टप्पा — संज्ञा पुं. [ सं. स्थापन, हिं. थाप, टाप ] (१) उछलने वाली चीज का जमीन से टकराना। (२) कूद-फाँद। (३) तय की हुई दूरी। (४) दो स्थानों के बीच का सैदान। (५) ग्रांतर, फर्क।

सुहा.—टप्पा देना—श्रांतर करना, फर्क डालना।

(६) मोटी भही सिलाई। (७) टिकान। (८) एक चलता गाना। (६) एक तरह का काँटा। टप्पैत—वि. [हं. टप्पा] (१) टप्पे (गाने) से संबंधित।

(२) टप्पा (गाना ) गानेवाला।
टब्बर—संज्ञा पुं. [हिं. कुटुंब] कुटुंब, परिवार।
टमकी, टमुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. टंकार] छोटा नगाड़ा।
टमटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का बरतन।
टमस—संज्ञा स्त्री. [सं. तमसा] टौंस या तमसा नदी।
टर—संज्ञा स्त्री. [ग्रनु.] (१) कर्कश्च या प्रित्रय बोली।
मृहा.—टर टर करना (लगाना)—(१) ढिठाई से
जवान लड़ाना। (२) बकवाद करना।

(२) मेढ़क की बोली।(३) घमंड या अकड़भरी बात।(४) हठ, जिद, अड़। (५) तुच्छ या बेमेल बात।(६) ईद के बाद का एक मेला।

टरई—कि. श्र. [हिं. टरना=टलना] (१) विचितित होती है, डिगती है। उ.—श्रवला चलें, चलत पुनि थाकें, चिरंजीवि सो मरई। श्रो रघुनाथ-प्रताप पितव्रत, सीतासत निहं टरई—६-७८। (२) दूसरे स्थान को जाती है, हटती है। उ.—चिरंजीवि सीता तस्वर तर छिनक न कबहूँ टरई—६-६६। (३) मिटता है, दूर होता है। उ.—(क) मोकों भई श्रनाहत बानी, तातें सौच न टरई—१०-४। (ख) घटे बढ़े यहि पाप तें कालिमा न टरई—२८६१।

टरकना-कि. श्रं. [हिं. टरना] चले जाना, दूर होना।

कि, श्र. [हिं. टर] कर्कश स्वर से बोलना।
टरकनी—संशा स्त्री. [देश.] ईख की दूसरी सिचाई।
टरकाना—कि. स. [हिं. टरकना] (१) हटाना,
खिसकाना, दूर करना। (२) बहाने से टालना।

टरकुल-वि.-खराब, बहुत मामूली।

टरटराना—कि. स. [हिं.टर] (१) बकबक करना, श्रिय वाणी बोलना। (२) ढिठाई से बोलना।

टरत—िक. श्र. [हिं. टलना ] हटता (है), श्रपने स्थान से श्रलग होता (है)। उ.— नरक कृपनि जाइ जमपुर परथौ बार श्रनेक। थके किंकर-जूथ जम के, टरत टारेन नेक—१-१०६।

मुहा.—ब्रत टरत न टारे—(प्रतिज्ञा) ग्रवश्य पूरी होती है, (निश्चय) नहीं टल सकता। उ.—हम भक्ति के भक्त हमारे। सुनि श्ररजुन परतिज्ञा मेरी यह ब्रत टरत न टारे—१-२७२।

टरतौ—िक. श्र. [हिं. टरना, टलना] (१) दूर होता, संबंध न रखता, जाता रहता, बंचित होता। उ.— परितय-रित - श्रिभलाष निसा-िदनु मनिपटरी ले भरतौ। दुर्गति, श्रित श्रिभमान, ज्ञान बिनु, सब साधन तें टरतौ—१-२०३।(२)पास न बना रहता, चला जाता। उ.—होतौ नफा साधु की संगित मूल गाँठ निहं टरतौ।

टरना— कि. श्र. [हिं. टलना ] हटना, दूर होना। टरनि— संज्ञा स्त्री. [हिं. टरना ] टरने का भाव। टरहीं— कि. श्र. [हिं. टलना ] दूर होते हैं।

महा.—ि चित ते टरहीं—ध्यान नहीं रहता, याद नहीं बनी रहती। उ,—सकत सखा श्रक्त नंद जसोदा वे चित तें न टरहीं—१० उ० १०३।

टराना—कि. श्र. [हिं. टरना ] हटाना, टालना।
टराहीं—कि. श्र. [हिं. टलना ] हलते हैं, दूर होते हैं।
उ.—सुरभी ग्वाल नंद श्रक जसुमित मम चित तें
न टराहीं—१० उ० १०४।

टरि—कि. ग्रा. [हं. टलना] (समय) टल गया, बीत गया। उ.—चेत्यी नाहिं, गयी टरि श्रीसर, मीन बिना जल जैसे—१-२६३।

टरिबो—संज्ञा पुं. [हिं, टलना ] टलने का भाव या

किया। उ.—रथ थाक्यो मानो मृग मोहे नाहिन कहूँ चंद्र को टारिबो—२८६०।

टरिहै—कि. श्र. [हिं. टलना] टलेगा, श्रन्यथा होगा, खंडित होगा, ठीक न होगा। उ.—मेरी कहयी नाहिं यह टरिहै—८-२।

टिरहों—िक. श्र. [हिं.टलना] (१) भगाऊँगा, हटाऊँगा। उ.—श्राज हों एक-एक किर टिरहों। के तुमहीं के हमहीं माधी, श्रपन भरोसों लिरहों—१-१३४। (२) हटूँगा, श्राना-कानी करूँगा, पिछडूँगा। उ.—िबदुर कहयी, सेवा में किरहों। सेवा करत नैंकु निहं टिरहों—१-६८४।

टरी—िक. श्र. भूत. स्त्री. [हं. टरना, टलना] (१) दूटी, दूर हुई, मिटी, खंडित हुई। उ.—मो श्रनाथ के नाथ हरी। ब्रह्मादिक, सनकादिक, नारद, जिहिं समाधि निहं ध्यान टरी—१-२४६। (ख) मेरे साँवरे जब मुरली श्रधर धरी। सुनि सिध समाधि टरी—६२३। (ग) सूरदास प्रभु तुम्हरे बिछुरे बिधि मरयाद टरी —३४५५। (२) दूर हुई, टल गई। उ.—करवर बड़ी टरी मेरे की, घर-घर श्रानँद करत बधाई—१०-५१।

टरे—कि, श्र. [हिं. टलना] चंचल या गतियुक्त हुए। उ.—चल थाके श्रचल टरे—६२३।

टरेगो—िक, श्र. [हिं. टलना] दूर होगा, मिटेगा। उ.—काहे को लेति नयन जल भरि भरि नयन भरे ते कैसे सूल टरेगो—२८७०।

टरें—कि. श्र. [हिं. टालना] हटाता है, खिसकाता है। उ.—चिरिया कहा समुद्र उलीचे, पवन कहा परवत टरें—१-२३४।

कि. श्र.-[हिं. टलना] (१) (श्रपने स्थान से) हटता है, डिगता है। उ.—प्रह नछत्रहू सबही फिरें। तू भयी श्रटल न कबहूँ टरै- ४-६।(२) टलता है, श्रघटित होता है। उ.—भावी काहू सों न टरै—१-२६४।(३) मिटे, दूर हो। उ.—यह मम दोष कौन बिधि टरै-४-१२। टरो—कि. श्र. [हिं. टलना] (कोई बात) श्रपूर्ण या खंडित हुई जाती है। उ.—(क) के इनको निरधार की जिये, के प्रन जात टरो—१-२२०। (ख) सुनि

राजा, तेरौ ब्रत टरौ--६-५। टरयौ-कि. ग्र. [हि. टरना=टलना ] टला, टल गया, श्रमत्य हुन्ना, श्रत्यथा हो गया। उ.—राजा, वचन तुम्हारौ टरयौ-- ६-२। टरी—वि. श्रिनु. टरटर ] (१) ऐंठ या अकड़कर बोलने-वाला, दर्रानेवाला । (२) ढीठ । टरोना-कि. श्र. [ श्रनु. टर ] ऐंठ या श्रकड़ कर बात

करना, सीघे न बोलना।

टरोपन—संज्ञा पुं. [हिं. टर्रा + पन (प्रत्य.) ] ऐंठ या श्रकड़कर बात करने का भाव या ढंग।

टर्रे—संज्ञा पुं. [ हिं. टरटर ] (१) टर्रा श्रादमी। (२) मेढ़क। ३) एक खिलौना।

वि, — ऐंठ या श्रकड़कर बात करनेवाला। टलना—कि. श्र. [सं. टलन=विचलित होना] (१) श्रपने स्थान से श्रलग होना। विसकना।

मुहा. — बात से टलना — प्रतिज्ञा पूरी न करना। (२) स्थान-विशेष पर उपस्थित न रहना। (३) दूर होना, मिटना, न रहना। (४) किसी काम या बात के लिए श्रागे का समय तय होना। (१) किसी बात का ठीक न रहना या खंडित होना। (६) (किसी बात का ) माना न जाना। (७) समय बीतना।

दलहा-वि. [देश.] खोटा, खराब। टलाटली—संशा स्त्री. [हिं. टालदूल ] बहाना । दल्ला—संशा पुं. [ श्रनु. ] धक्का, ठोकर।

महा, -- टल्ला (टल्ले) मारना -- मारे-मारे फिरना। दवरी—संशा पुं. [सं. ] टठडढण का समूह। दवाई—संज्ञा स्त्री. [ सं. श्रटन ] मारे-मारे फिरना । दस—संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] (१) खिसकने का शब्द।

मृहा.—ट्स से मस न होना—(१) भारी चीज का जरा भी न हटना। (२) कड़ी चीज का जरा भी न गलना। (३) कहने-सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना।

(२) (कपड़ा) फटने या मसकने का शब्द । टसक—संशा स्त्री. [हिं. टसकना ] कसक, टीस। संशा स्त्री, -- टलने या हटने का भाव। दसकना—कि. श्र. [हिं. टस] (१) हिलना, हटना, खिसकना। (२) रह रहकर दर्द करना, कसकना।

(३) प्रभावित होना। (४) (फल ग्रादि का) पक जाना। (५) रोना-धोना। टसकाना—कि. स. [ हिं. टसकना ] सरकाना, खिसकाना । टसना—कि. अ. [ अनु. टस ] (कपड़ा) फटना । टसर—संज्ञा पुं. [ सं. त्रसर ] एक तरह का रेशम। टसुत्रा—संशा पुं. [हिं. ऋँस्, ऋँसुत्रा ] ऋाँसू। मुहा.—टसुत्रा बहाना (ढरकाना) भूठमूठ रोना। टहक-संज्ञा स्त्री. [हिं. टसक ] कसक, टीस, चसक। टहकना-कि. अ. [हिं. टसकना ] (१) रहरहकर दर्द मारना । (२) ( घी श्रादि ) पिघलना । टहकाना-कि. स. [हिं. टहकना ] पिघलाना।

टहटहा-वि. [हिं, टटका ] ताजा, नया, कोरा। टहना-संशा पुं. [सं. तनुः ] वृक्ष की मोटी डाल। टहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टहना ] वृक्ष की पतली डाल। टहरना—कि. अ. [हिं. टहलना ] घूमना-फिरना। टहल-संशा स्त्री. [हिं. टहलना ] (१) सेवा, शुश्रूषा। उ.—(क) दासी तृष्मा अमत टहल-हित, लहत न छिन बिसाम-१-१४१। (ख) जसुमति मात श्रौर

ब्रजपति जू बहुतिहं ब्रानेंद दीनो । यातें टहल करन नहिं पायौ कहत स्याम रँगभीनों सारा, ५३०। (ग) जिहिं डर अमत पवन, रिव, सिस जल सो करै टहल, लकुटिया सौं डरि-३६२।

यौ,—टहल टई (टकोर)—सेवा-शुश्रुषा।

(२) नौकरी-चाकरो, काम-धंधा। उ.—जाकौ ब्रह्मा श्रंत न पावै । तापै नंद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै—३६३।

टहलई—संशा स्त्री. [हिं. टहल ] सेवा, नौकरी। टहलना—िक. श्र. [सं. तत्+चलन] (१) घूमना-फिरना।

मुहा,—टहल जाना—(१) चुपचाप चले जाना। (२) सर करना, हवा खाना। (३) मर जाना। दहलनी—संशा स्त्री. [हिं. टहल ] दासी, लौंडी। टहलाना-कि. स. [हिं. दहलना] (१) घुमाना-फिराना ।

(२) सैर कराना, हवा खिलाना । (३) हटा देना । टहलुश्रा—संशा पं. [हिं. टहल ] सेवक, नौकर।

टहलुई—संशा स्त्री. [हिं. टहल ] दासी, लौंडी।
टहलुवा, टहलू—संशा पुं. [हिं. टहल ] सेवक, नौकर।
टही—संशा स्त्री. [हिं. घात ] जोड़-तोड़, घात।
टहुआटारी—संशा स्त्री. [देश.] चुगलखोरी।
टहूका—संशा पुं. [देश.] (१) पहेली। (२) चुटकुला।
टहोका—संशा पुं. [हिं. ठोकर ] धक्का, सटका।

मुहा.— टहोका देना—ढकेलना, ठेलना। टहोका खाना—धक्का खाना, ठोकर सहना, ठेला जाना। टाँक—संशा स्त्री. [सं. टंक] (१) तीन या चार माशे की तौल। (२)धनुष-परीक्षा की पचीर्स, सेर की तौल। (३) जाँच, कूत, ग्रंदाज। (४) हिस्सेदारों का भाग। संशा स्त्री. [हं. टाँकना] (१) लिखने का ग्रंक या चिह्न, लिखावट, (२) कलम की नोंक या डंक। टाँकना—कि. स. [सं. टंकन] (१) विष्पी ग्रादि जड़ना। (२)सुई से सीना या जोड़ना।(३)सी कर ग्रटकाना। (४) सिल, चक्की ग्रादि को खुरदुरा करना। (५) कागज, बही ग्रादि में लिखना।

मुहा.—मन में टाँकना (टाँक रखना)—याव रखना, सदा ध्यान रखना।

(६) लिखकर भेजना । (७) (भोजन ग्रादि) चटपट खा लेना । (६) (रुपया-पैसा) मार लेना । टाँकली—संज्ञा स्त्री. [सं. टकर] एक पुराना बाजा । टाँका—संज्ञा पुं. [हिं. टाँकना] (१) धातु-पत्तरों ग्रादि का जोड़ मिलाने की कील या काँटा ।(२) सुई का एक बार ऊपर-नोचे करने पर लगनेवाली सीवन या ग्रंथि । (३) सिलाई, सीवन । (४) सी हुई थिगली या चकती । (४) धातु जोड़ने का मसाला । संज्ञा पुं. [सं. टंक] पत्थर काटने की छेनी । संज्ञा पुं—(१) पानी का हौज । (२) कंडाल ।

टाँका टूट—िव. [हिं. टाँक+तौल ] ठीक तुला हुआ। टाँकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँका ] पत्थर गढ़ने की छेनी।

(२) काटकर किया हुआ छेद। (३) दाँता, दँदाना।

टाँको—संज्ञा पुं. [हिं. टाँकना] (१) टँकी हुई चकती, जोड़, थिगली, पेंबंद, चिप्पी। (२) दोष, लांछन, कलंक। उ.—नरहरि है हिरनाकुस मारथी, काम

परथो हो बाँको। गोपीनाथ सूर के प्रभु कें बिरद

टाँग—संज्ञा स्त्री. [सं. टंग] जाँघ से एड़ी तक ग्रंग।

मुहा.—टाँग श्रङ्गाना—(१) किसी काम में
बेकार हाथ डालना या दखल देना। (२) विघन-वाधा
डालना। (३) जिस विषय का ज्ञान या जानकारी
न हो उसकी चर्चा करना। टाँग उठाना—जल्दी-जल्दी चलना। टाँग तलें (नीचे) से निकलना—
हार मानना, ग्रधीन होना। टाँग तोड़ना—(१) ग्रंग भंग करना। (२) बेकार करना। (३) टूटी फूटी भाषा लिखना-बोलना। (४) पैर धकाना। टाँग पसार कर सोना—(१) सुख की नींद सोना। (२) चैन के दिन बिताना। टाँग रह जाना—चलते-चलते पैर दुखने लगना। टाँग लेना—(१) टाँग पकड़ना। (२) कुले की तरह काटना। (३) पंड न छोड़ना। टाँग बराबर—छोटा सा। टाँग से टाँग बाँधकर बैठना—पास से न हटना।

टाँगन, टाँघन—संज्ञा पुं. [हिं. ठेंगना या सं. तुरंगम्] पहाड़ी टट्टू, छोटा घोड़ा।

टाँगना—क्रि. स. [हिं. टँगना] (१) ग्रटकाकर लटकाना। (२) फाँसी पर चढ़ाना।

टाँगा -- संज्ञा पुं. [सं.टंग] बड़ी कुल्हाड़ी।
संज्ञा पुं. [हिं. टॅगना] एक घोड़े को एक गाड़ी।
टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँग+नोचना] नोचखसोट, छीन-भपट।

टॉगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँगा] कुल्हाड़ी।
टागुन—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मोटा ग्रनाज।
टाँच, टाँचु—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँकी] दूसरे का काम
बिगाड़ने या चित्ता बहकानेवाली बात, भाँजी।
संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँका] (१) सिलाई। (२)
थिगली, जोड़।

टाँचना—क्रि. स. [हिं. टाँच] (१) सीना। (२) छीलना।
क्रि. श्र.—गुलछर्रे उड़ाते घूमना-फिरना।
टाँची—संज्ञा स्त्री. [सं. टंक=रुपया] रुपए कमर में बाँधने की लंबी थैली, न्योजी, मियानी, बसनी।
संज्ञा स्त्री. [हिं. टाँकी] भाँजी, खटकती बात।

टाँट, टाँटर—संज्ञा पुं, [हिं, टट्टी] खोपड़ी, कपाल।
मुहा,—टाँट के बाल उड़ना—(१) सिर के
बाल गिरना।(२) पास में कुछ धन न रहना।
(३) बहुत मार पड़ना। टाँट खुजाना—मार खाने
को जी चाहना। टाँट गंजी करना—(१) बहुत
मारना।(२) खूब धन खर्च कराना।

टाँठ, टाँठा—वि. श्रिनु. टन ] (१) कड़ा (२)तगड़ा। टाँड़—संज्ञा पुं. [सं. ताइ ] बाँह का गहना, टेंडिया। उ.—कर कंकन तें भुज टाँड भई।

संशा पुं. [सं. ऋहाल, हिं. ऋटाला, टाल ] (१) हेर, टाल। (२) पंक्त। (३) घरों की पंक्त। टाँड़ा—संशा पुं. [हिं. टाँड़=समूह] (१) व्यापारी या बनजारों के सामान से लवे बेलों का समूह। (२) माल का एक स्थान से दूसरे को जाना, खेप चलाना। मुहा.—टाँड़ा लदना—(१) बिकी का माल लदना। (२) चलने की तैयारी होना। (३) मरने के समीप होना।

(३) व्यापारियों या बनजारों का चलता-िकरता भुंड। (४) नाव पर पार जानेवाले यात्रियों श्रौर व्यापारियों का समूह। (५) कुदुंब, परिवार।

संशा पुं. [सं. तुंड, हिं. टूँड़] एक हरा कीड़ा।
टाँड़ी—संशा स्त्री. [सं. तत्+डीन+उड़ान] टिड्डी।
टाँड़ो—संशा पुं. [हिं. टाँड़ =समूह] पथिकों या
व्यापारियों का समूह जो नाव द्वार इस पार से उस
पार जाता है। उ.—बहुत भरोसी जानि तुम्हरी
श्रघ कीन्हे भरि भाँड़ो। लीजे बेगि निबेरि तुरतहीं
सूर पतित की टाँड़ो—१-१४६।

टाँयटाँय—संज्ञा स्त्री. [ त्रानु. ] (१) टें टें जैसा कर्कश शब्द। (२) बकबक, बकवाद।

मुहा.— टाँयटाँय फिस—शुरू में बहुत हाथ-पैर मारे जाय पर बाद में जोश ढंडा हो जाना। टाँस—संश स्त्री. [हिं. टनना] नसों का तनाव। टाँसना—क्रि. स. [हिं. टाँचना] काटना-छाँटना।

कि. स. [हिं. टाँकना ] टांका मारना, सीना। टाकू—संशा पुं. [सं. तकुं] टकुआ, तकुआ, टेकुरी। टाटू—संशा पुं. [सं. तंतु ] (१) सन का मोटा कपड़ा।

मुहा.—टाट में मूँज की बिखया—दो भद्दी चीजों का मेल। टाट में पाट की बिखया—भद्दी ग्रौर सस्ती चीज का सुंदर ग्रौर मूल्यवान चीज के साथ मेल।

(२) कुल, बंश, बिरादरी।
मुहा,—एक ही टाट के—(१) एक ही बिरादरी
के। (२) एक साथ उठने-बैठनेवाले, एक दल के।

(३) साह्कार या महाजन की गद्दी।
मुहा.—टाट उलटना—दिवालिया होना।
टाटक—वि. [हिं. टटका](१) ताजा। (२) कोरा।
टाटवाफी—वि. [फा. तारवाफी] कलाबसू के काम का, जिस पर कलाबसू का काम हो।

टाटर—संज्ञा पुं. [सं. स्थार्त=खड़ा हुत्रा ] (१) टट्टर, टट्टी। (२) सिर की हड़ी, खोपड़ी।

टाटिका, टाटी—संज्ञा स्त्री. [हिं, टट्टी] छोटा टट्टर, टट्टी। उ.—सूर प्रभु कहा निहोरों मानत रंक त्रास टाटी को—१० उ. ७१।

टाठी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थाली, प्रा. ठाली, ठाडी] थाली। टाड़—संज्ञा स्त्री. [सं. ताड़] भुजा का एक गहना, टांड़, टांड़या। उ.—बाहु टाड़ कर कंकन बाजूबंद एते पर हो तौकी।

टाडर—संशा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।
टान—संशा स्त्री. [सं. तान=फैलाव, खिंचाव](१)
तनाव, खिंचाव। (२) खींचने की किया।

संज्ञा पुं. [सं. स्थाणु=थून, खंभा ] मचान।
टानना—क्रि. स. [हिं. टान ] तानना, खींचना।
टाप—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थापन, हिं. थापन, थाप ] (१)
घोड़े का पद-तल या सुम। (२) घोड़े का पैर जमीन
पर पड़ने का शब्द।

टापड़—संज्ञा पुं. [सं. टप्पा] ऊसर मैदान।
टापदार—वि. [हं. टाप+फ़ा. दार] जिसके सिरे पर
कुछ भाग उभरा हुग्रा हो।

टापना—क्रि.श्र. [हिं.टाप](१) घोड़े का पैर पटकना।
(२) हेरान होकर फिरना।(३) उछलना-कूदना।
क्रि. स.—लाँघना-फाँदना।
क्रि. श्र. [सं. तप](१) बिना खाये-पिये रहना।

(२) ऐसी बात के आसरे में रहना जो हो न सके।

(३) हाथ मलना, पछताना ।

टापर—संज्ञा पुं. [देश,] स्रोढ़ने की मोटी चादर।
संज्ञा पुं. [हिं. टाप] टट्टू स्रादि की सवारी।
टापा—संज्ञा पुं. [हिं. थाप] (१) मैदान। (२) ऊसर
मैदान।(४) उछल-कूद, छलाँग।

महा,—टाप देना—लंबे-लंबे डग भरना।
टापू—संशा पुं. [हिं. टापा] (१) द्वीप। (२) टापा।
टाबर—संशा पुं. [पंजाबी टब्बर] (१) लड़का, बच्चा।

(२) परिवार, कुल, वंश।

टामक—संज्ञा पुं. [ अनु. ] डुग्गी, डुगडुगी।
टामन, टामनि—संज्ञा पुं. [ सं. तंत्र ] टोना, टोटका।
ड.—टोना-टामनि जंत्र - मंत्र विर ध्यायौ देवदुआरो री—१०-१३५।

टार—धंशा स्त्री. [हिं. टालना ] टालटूल। कि. स.—टालना, ध्यान न देना।

प्र.— दीन्हयौ टार—टाल दिया, ध्यान न दिया, बचा गये। उ.—खेलन चले नंदकुमार। दूत आवत जानि वज मैं, आपु दीन्ह्यौ टार—५२४।

संज्ञा पुं. [ सं. ] घोड़ा ।

संशा पुं. [सं. श्रष्टाल, हिं. टाल ] राशि, ढेर ।
टारत—िक. स. [हिं. टालना ] दूर करते हैं, मिटाते हैं,
रहने नहीं देते, टालते हैं, निवारते हैं । उ.—(क)
कौन जाति श्रष्ठ पाँति बिदुर की, ताही कैं पग
धारत । भोजन करत माँगि घर उनकेंं, राज-मानमद टारत—१-१२। (ख) चिंतत चित्त सूर चिंता
पित मोह-मेरु दुख टरत न टारत—६-६२।

टारन—वि. [हिं.टालना ] दूर करनेवाले, मिटानेवाले, निवारक । उ.—किल-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्थाम न गायौ—१-५८।

संज्ञा स्त्री,—(१) टालने या सरकाने की किया।
(२) विचलित करने का भाव। उ.—कैसै के पठ-वत वें स्त्रावत टारन को हित नेम—३३४८।

टारना—कि. स. [हं, टालना] हटाना, टरकाना।
टारि—कि. स. [हं, टालना] (१) टेढ़ा करना। उ.—
सूर केस नहि टारि सकै कोउ—१-२३४। (२)

हटाना, खिसकाना । उ.—कोपि श्रंगद कह्यो, घरों घर चरन में, ताहि जो सके कोऊ उठाई । । । रहे पचि हारि निहं टारि कोऊ सक्यों— ६-१३५ । (३) बहलाकर, टालटूल करके, बातें बनाकर । उ.— खेलत जमुना तट गये श्रापुहिं लाए टारि— ५८६ । टारी—कि. स. [हं. टालना] (१) दूर की, मिटायी, निवारी । उ.— (क) जे जन सरन भजे बनवारी । ते ते राखि लिए जग-जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी— १-२२ (ख) कठिन श्रापदा टारी— १-२८ । (२) धमं श्रादि से विचलित की । उ.—पतिव्रता जालंधर-जुवती सो पति-व्रत तें टारी— १-१०४।

टारे—िक. स. [हिं. टलना] (१) दूर किये, मिटाये, निवारे। उ.—(क) सर परी जह बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे—१-२५। (ख) सूर सहाइ कियो बन बिस के बन बिपदा-दुख टारे—१-१४७। (२) प्रालग किये, हटाये, सरकाये। उ.—जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तें निर्हे टारे—१-१४।

टारें—िक. स. [हं. टालना] (१) हटाने पर, खिसकाने पर। (२) निकालने या खदेड़ने पर। उ.—नरक- कूपनि जाइ जमपुर परथौ बार अनेक। थके किंकर- जूथ जम के, टरत टारें न नेक—१-१०६।

टारै—िक. स. [हं. टालना] (१) हटाये जाने पर। उ.—िनहचे एक असल पे राखे, टरेन कबहूँ टारे—१-१४२। (२) दूर करता है, निकालता है। उ.—स्रदास प्रभु अपने जन कों, डर तें नेंकुँ न टारै—१-२५७।

टारों—िक. स. [हिं. टालना] (म्रादेश म्रादि का) पालन न करूँ, उल्लंघन करूँ, न मानूँ। उ.—सूर-दास प्रभु तुम्हरे बचन लिंग, सिव-बचनि कौं टारों—६-१०८।

टारौ—िक. स. [हिं. टालना] दूर करो, मिटाम्रो, निवारण करो । उ.—(क) तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल श्रापदा टारौ—१-२१८। (ख) मारि के ताहि जग-दुख टारौ—४-११। (ग)

परस पुनीत जानकी सँग लै कुल-कलंक किन टारौ-- ६-११५।

टारयो—कि. स. [हं. टालना] (१) दूर किया, मिटाया, निवारा। उ.—ग्राह ग्रसत गज कों जल बूड़त, नाम लेत वाको दुख टारयो—१-१४। (२) हटाया, खिसकाया। उ.—सूरदास प्रभु प्रान-दान कियो, पठयो सिंधु उहाँ तें टारयो—४७४।

टाल—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रष्टाल, हिं. श्रटाला] (१) ऊपर-नीचे रखी चीजों का ढेर, श्रटाला, ऊँचा ढेर। (२) लकड़ी श्रादि की दूकान।

संशा स्त्री. [हिं. टालना ] टालने का बहाना।
टालटूल—संशा स्त्री. [हिं. टालना ] टालने का बहाना।
टालना—कि. स. [हिं. टलना ] (१) हटाना, खिस-काना, सरकाना। (२) दूर भेजना, टरकाना, भगा
देना। (३) दूर करना, मिटाना, निवारण करना।
(४) किसी काम को आगे के लिए हटाना। (४)
समय दिताना, (६) आजा या आदेश का पालन न

मुहा. — दूसरे पर टालना — दूसरे को सौंपना।
(प) भूठा वादा करना। (१) टरकाना, धता
बताना। (१०) श्रीर का श्रीर करना, बदलना।
(११) ध्यान न देना, बरा जाना, तरह देना।

टालमटाल, टालमटूल, टालमटोल—संज्ञा पुं. [हिं. टालना ] टालने या टरकाने का बहाना।

टाला—वि. [देश.] श्राधा (भाग)। टाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. टाला] (१)

टाली—संशा स्त्री. [हिं. टाला] (१) तीन वर्ष से कम की चंचल बिख्या। उ.—पाई पाई है रे भैया, कुंज-पुंज में टाली। अबकें अपनी हटिक चरावहु, जैहें भटकी घाली—५०३। (२) पशुओं के गले की घंटी। (३) एक बाजा (४) आधा रुपया, अठशी।

कि. स. [हिं टालना] मिटायी, निभने न दी, पूरी न होने दी। उ.—जिन हित सकट प्रलंब नुनाबत इंद्र प्रतिज्ञा टाली—२५६७।

टाहली—संज्ञा पुं. [हिं. टहल ] सेवक, नौकर। टिंड, टिंडा, टिंडसी, टिंडिश—संज्ञा पुं. [सं. टिंडिश] एक तरकारी, डेंड्सी, ढेंड्सी।

टिंडी—संज्ञा स्त्री. [देश, ] हल या चक्की की मूँठ।
टिकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. टीका] सफेद टीकेवाली गाय।
टिकटिक—संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] (१) घोड़ा हाँकने का
शब्द। (२) घड़ी के चलने का शब्द।

टिकटिकी, टिकठी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिकाष्ठ, हिं. तीन काठ] (१) श्रपराधियों को दंड या फाँसी देने का तीन लकड़ियों का ढाँचा। (२) ऊँची तिपाई।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री, [हिं. टकटकी ] स्थिर दृष्टि। टिकड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. टिकिया ] (१) गोल विपटा टुकड़ा। (२) सोने-चाँदी का जड़ाऊ टुकड़ा। (३) मोटी रोटी।

मुहा.—टिकड़ा लगाना—बाटी, मोटी रोटी या भ्रंगाकड़ी सेंकना।

टिकड़ी—संशा स्त्री. [हिं. टिकड़ा] छोटी मोटी रोटी।
टिकना—कि. ग्र. [सं. स्थित+क ग्रथवा हिं. ग्र=
नहीं + टिक=चलना] (१) ठहरना, डेरा करना।
(२) धुली हुई चीज का तल में बैठना। (३) कुछ
दिन तक काम देना या चलना। (४) जम जाना,
बैठना, स्थिर रहना।

टिकरी—संशा स्त्री. [हिं. टिकिया] एक पकवान। टिकली—संशा स्त्री. [हिं. टीका] (१) छोटी टिकिया।

(२) छोटी बिंदी, चमकी। (३) छोटा टीका।
संश स्त्री, [हिं, तकला] सूत बटने की फिरकी।
टिकसार—वि. [हिं, टिकना] टिकाऊ।
टिकाई—संशा पुं, [हिं, टीका] युवराज।

कि. स. [हिं. टिकाना ] टिकाकर, ठहराकर, विश्वर करके। उ.—दसरथ कहथों, देवहू भाष्यी ब्योम बिमान टिकाई— ६-१६२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकना] (१) रहने या ठहरने की किया। (२) ठहराने की मजदूरी।

टिकाऊ—िव. [हिं. टिकना] (१) कुछ दिन रहने-बसने वाला। (२) कुछ दिन काम देनेवाला।

टिकान—संश स्त्री. [हिं. टिकना] (१) रहने या ठहरने का भाव। (२) रहने या ठहरने का स्थान।

टिकाना—कि. स. [हिं. टिकना] (१) रहने या ठहरने का स्थान देना, ठहराना। (२) सहारे खड़ा करना, जमाना।(३) सहारा देना।(४) रुपया पैसा हाथधरना। टिकाव—संज्ञा पुं. [हिं. टिकना](१) ठहरने का भाव।

(२) स्थिरता। (३) ठहरने का स्थान, पड़ाव। टिकिया—संज्ञा स्त्री. [सं. वटिका] (१) छोटा गोल- चिपटा टुकड़ा। (२) एक मिठाई। (३) छोटी मोटी रोटी, छोटी बाटी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टीका ] (१) माथा। (२) माथे पर लगी बिंदी, टिकुली।

टिकुरा—संज्ञा पुं. [ देश. ] टीला, भीटा।
टिकुरी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टकुत्रा ] सूत बटने की फिरकी।
टिकुला, टिकोरा, टिकोला—संज्ञा पुं. [ हिं. टिकिया ]

कच्चा ग्राम जिसमें जाली न पड़ी हो।
टिकुली—संशा स्त्री. [हिं. टिकली ] बिंदी, टिकली।
टिकुवा—संशा पुं. [हिं. टेकुग्रा] चरखे का तकला।
टिकेत—संशा पुं. [हिं. टीका + ऐत (प्रत्य.)] उतरा-

धिकारी राजकुमार, युवराज । (२) सरदार, स्वामी । वि. [हिं. टिकना] जमकर रहनेवाला। टिकोर—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकोर] (१) हल्की चोट या हेस। (२) डंके की चोट। (३) धनुष की दंकार।

टिकोरा—संज्ञा पुं. [हिं. टिकिया] कच्ची ख्रेंबिया। दिकड़—संज्ञा पुं. [हिं. टिकिया] (१) बड़ी टिकिया। (२) हाथ की मोटी रोटी, बाटी। (३) मालंपुत्रा। टिका—संज्ञा पं. [हिं. टीका] (१) तिलक। (२) याद।

रिकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकिया ] (१) छोटी टिकिया।
मुहा,—टिकी जमना (बैठना, लगना)—जुगत

बैठमा

(२) छोटी मोटी रोटी, बाटी। (३) एक पकवान। संज्ञा स्त्री. [हिं.टीका] (१) बिंदी, टिकुली। (२) गोल ढीका।

दिघलना—िक. श्र. [सं. तप + गलन ] पिघलना।
दिघलाना—िक. स. [हं. टिघलना ] पिघलाना।
दिदकारना—िक. स. [श्रनु. ] टिकटिक करके हाँकना।
दिदिह, दिदिहा, दिदिहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. टिटिभ हं. टिटिह ] पानी के किनारे रहनेवाली कुररी नामक चिड़िया जिसकी बोली कड़ ई होती है।
दिदिहा रोर—संज्ञा पं. [हं. हिटिहा+रोर ] (१) कुररी

का कर्कश स्वर। (२) शोर-गुल, कोलाहल। (३)

टिट्टिभ-संज्ञा पुं. [सं.] (१) टिटिहरी। (२) टिड्डी। टिट्टिभा, टिट्टिभी—संज्ञा स्त्री. [सं. टिट्टिभ] मादा टिटिहरी।

टिड्डा—संज्ञा पुं. [ सं. टिहिम ] एक परदार कीड़ा।
टिड्डी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टिड्डा ] एक तरह का टिड्डा।
सहा.—टिड्डी दल—बड़ी भारी भीड़ या सेना।

टिढ़िबंग—िव, [हिं. टेढ़ा+सं. बंक ] टेढ़ा-मेढ़ा। टिप—संज्ञा स्त्री. [हिं. टीपना ] साँप के काटने की एक रीति जिससे रक्त में विष भिल जाय।

टिपकना—िक. श्र. [हिं. टपकना ] बूँद बूँद चूना। टिपका—संज्ञा पुं. [हिं. टिपकना ] बूँद, कतरा। टिपटिप—संज्ञा स्त्री. [श्रनु.] बूँद टपकने का ज्ञब्द। टिपवाना—िक. स. [हिं. टीपना] (१) व्यवाना। (२) पिटवाना।

दिपारा, दिपारो—संज्ञा पुं. [ हिं. तीन+फा. पार:= दुकड़ा ] तीन शाखाओं वाली एक मुकुटनुमा टोपी। टिपुर—संज्ञा पुं. [ देश. ] (१) घमंड। (२) पाखंड। टिप्पगी, टिप्पनी—संज्ञा स्त्री. [ सं. टिप्पनी ] (१) दीका, व्याख्या। (१) विशेषण-सूचक लेखा।

टिप्पल—संशा पुं. [सं.] (१) टीका। (२) जनमपत्री। टिप्पल—संशा स्त्री. [देश.] उपाय, युक्ति, जुगत। टिबरी—संशा स्त्री. [देश.] पहाड़ों की छोटी चोटी। टिब्बा—संशा पुं. [देश.] पहाड़ों का छोटा शिखर। टिमकी—संशा स्त्री. [अनु.] (१) छोटा पात्र। (२) बच्चों का पेट।

टिमटिमाना—िक. त्र. [सं. तिम = ठंडा होना] (१) मंद-मंद जलना, धीमी रोशनी देना। (२) बुभने पर हो होकर जलना।

टिमाक—संज्ञा स्त्री. [ देश. ] बनाव, श्रृंगार, ठसक।
टिमिला—संज्ञा पुं. [ देश. ] लड़का, छोकरा।
टिमिली—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टिमला ] लड़की, छोकरी।
टिम्मा—वि, [ देश. ] नाढे डील डौल का।
टिरिफस—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टर+फिस ] चीं-चपड़।
टिलैवा—संज्ञा पुं. [ देश. ] (१) गँठीला लक्कड़। (२)

नाटा या िंगना श्रादेमी। (३) चापलूस श्रादमी। टिल्ला—संशा पुं. [हं. ठेलना ] धक्का, चोट, प्रहार। टिल्ला—संशा स्त्री. [हं. टिल्ला+फ़ा. नवीसी]

(१) हीन या नीच सेवा।(२) बेकार का काम।(३) टालटूल, टालमटोल।

टिसुद्या—संशा पुं. [हिं. श्राँख, श्रँसुश्रा ] श्राँसू। टिहुकना, टिहूकना—कि. श्र. [देश.] (१) ठिठकना, भिभकना। (२) चौंक पड़ना।

टिहुनी—संज्ञा स्त्री. [हं. घुटना ] (१) घुटना, टखना। (२) कोहनी।

टिहूक—संज्ञा स्त्री. [ देश. ] किमक, चौंक। टींड़ी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टिड्डी ] टिड्डी।

मुहा.—टींड़ी दल—बड़ी भीड़ या सेना। टीक—संज्ञा स्त्री. [सं. तिलक] (१) गले का एक गहना।

(२) माथे का एक गहना। (२) रक्त की धार।
टीकठ—संज्ञा पुं. [हिं. टिकना ] रीढ़ की हड्डी।
टीकन—संज्ञा पुं. [हिं. टेकना ] टेक का खंभा, थूनी।
टीकना—कि. स. [हिं. टीका ] तिलक करना।
टीका—संज्ञा पुं. [सं. तिलक ] (१) रोली-चंदन का तिलक। (२) विवाह तय होने की एक रीति, तिलक। (३) दोनों भौहों के बीच का भाग। (४) श्रेट्ठ पुरुष। (४) राजतिलक। (६) युवराज। (७) प्रधानता या विशेषता की छाप।

मुहा.—टीके का—विशेषता रखनेवाला।

(६) मार्थ का एक गहना। (१०) दाग, घटवा।
संज्ञा स्त्री. [सं.] व्याख्या, प्रश्नं का स्पव्दीकरण।
टीकाकार—संज्ञा पुं. [सं.] व्याख्या करनेवाला।
टीका संज्ञा स्त्री. [हिं. टीका] टिकुली। टिकिया।
टीकुर—संज्ञा पुं. [देश.] (१) ऊँची जमीन।(२) वन।
टीको, टीको —संज्ञा पुं. [हिं. टीका] (१) श्रेष्ठ व्यक्ति,
विरोमणि, श्रगुन्ना। उ.—प्रमु, हों सब पतितिन की
टीको। श्रीर पतित सब दिवस चारि के, हों ती
जनमत ही कौ—१-१३६। (२) रोली चंदन श्रादि
का तिलक। उ.—श्रुकुटी धनुष नैन सर साँधे सिर
केसरि को टीको—१८४१। (३) माथे का एक

गहना। उ.—मोतिन माल जराउ को टीकी कंस फूल नक बेसरि—११२०। (४) भेंट, उपहार। उ.—रघुकुल प्रकटे हैं रघुबीर। देस-देस तें टीकी स्त्रायो, रतन-कनक मिन हीर—६-१८। (ख) लोक-लोक को टीको स्त्रायो—२६३०।

टीड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिड्डी ] टिड्डी ।
टीप—संज्ञा स्त्री. [हिं. टीपना ] (१) हाथ से दबाने की किया या भाव । (२) घीरे-घीरे ठोंकने का भाव ।
(३) गच या फर्श की पिटाई । (४) ईंट के जोड़ों में मसाला भरना । (४) टंकार, ध्विन । (६) जोर की तान । (७) टाँकने या लिखने का काम । (८) दस्तावेज । (६) जन्मपत्री ।

वि.—सबसे भ्रच्छा या बढ़िया।
टीपटाप—संज्ञा स्त्री. [देश, ] सजावट, ठाट-बाट।
टीपना—क्रि. स. [सं. टेपन = फेंकना] (१) हाथ से दबाना। (२) धीरे-धीरे ठोंकना। (३) ऊँचे स्वर से गाना।

कि. स. [सं. टिप्पनी] लिख या टाँक लेना।
टीबा—संशा पुं. [हिं. टीला] टीला, ढूह, भीटा।
टीमटाम—संशा स्त्री. [देश.] ठाट-बाट सजावट।
टीला—संशा पुं. [सं. श्रष्ठीला = उभार], १) पृथ्वी का
ऊँचा भाग, ढूह, भीटा। (२) छोटी पहाड़ी।

टीस—संशा स्त्री. [देश.] रह-रहकर उठनेवाली पीड़ा, कसक, चसक,

टे.सना—िक. श्र. [हिं. टीस ] रहरहकर दर्व उठना। टुँगना—िक. स. [हिं. दुनगा ] कुतरकर चबाना। टुँच—िव. [सं. तुच्छ ] क्षुद्र, टुच्चा, श्रोछा।

मुहा,—दुंच भिड़ाना (लड़ाना)—(१) थोड़ी पूँजी से काम करना। (२) थोड़े धन से जुग्रा खेलना। दुंटा—वि. [सं. ६ंड, हिं. टूटा] जिसका हाथ कटा हो। दुंड—संशा पुं. [सं. ६ंड] (१) डाल-शाखारहित वृक्ष, ठूँठ। (२) कटा हुग्रा हाथ। (३) एक प्रेत। दुंडा—वि. [हिं. तुंड] (१) डाल-शाखा-रहित। (२)

लूला, लुंज। (३) सींगटुट्टा, डूँडा।
संज्ञा, पुं.—(१) लूला या लुंजा श्रादमी। (२)
एक सींगवाला बेल।

टुंडी—संशा स्त्री. [सं. तुंडि ] नाभि, ढांढी, तोंदी।
संशा स्त्री. [सं. दंड ] भुजा, बाहुदंड, मुक्क।
टुइयाँ—वि. [देश.] ठिगना, नाटा, बौना।
टुक—वि. [सं. स्तोक+थोड़ा ] थोड़ा, तिनक।
मुहा.—डुक सा—थोड़ा सा, जरा-सा।
कि. वि.—थोड़ा, जरा, तिनक।
टुकड़गदा—संशा पुं. [हिं. टुकड़ा+फ़ा. गदा] भिखारी।
वि.—(१) तुच्छ, होन। (२) दरिद्र, कंगाल।
टुकड़तोड़—वि. [हिं. टुकड़ा+तोड़ना] दूसरे के ग्राश्रित।
टुकड़ा—संशा पुं. [सं. स्तोक =थोड़ा, हिं. टुक, टूक + ड़ा (प्रत्य.)] (१) छोटा खंड या ग्रंश।
मुहा.—टुकड़े-टुकड़े उड़ाना (करना)—काटकर छोटे-छोटे कई भाग करना।

(२) रोटी का टुकड़ा, ग्रास, कौर।

मुहा.—दूसरे का टुकड़ा तोड़ना—भोजन के लिए
दूसरे के ग्राश्रित होना। टुकड़ा तोड़कर (सा) जवाब
देना—साफ इनकार करना। दूसरे के टुकड़ों पर
पड़ना—भोजन के लिए दूसरे के ग्राश्रित होना।
टुकड़ा माँगना—भीख माँगना।

दुकड़ी, दुकरी—संज्ञा स्त्री, [हिं. दुकड़ा] (१) छोटा दुकड़ा। (२) दल, भुंड, जत्था। (३) सेना का एक भाग। (४) स्त्रियों का लहुँगा। (५) कार्तिक स्नान का मेला।

दुकनी—संशा स्त्रो. [हिं. टोकनी ] टोकरी, डिलया। दुघलाना—कि. श्र. [देश.] (१) चूसना। (२) जुगाली करना।

दुचा—वि. [सं. तुच्छ ] ग्रोछा, छिछोरा, नीच।
दुटका—संशा पुं. [हिं. टोटका ] तंत्र-मंत्र, टोना।
दुटनी—संशा स्रो. [हिं. टोटो ] छोटी टोटी।
दुटपुँ जिया —वि. [हिं. ट्रोटो मूँजी ] थोड़े धनवाला।
दुटक्—संशा पुं. [ग्रानु.] छोटी पंडुकी या फाल्ता।

मुहा.—दुटरूँ सा—ग्रकेला, एकाकी।
दुटरूँ टूँ—संशा स्त्री. [ग्रानु.] पंडुकी का शब्द।
वि.—(१) ग्रकेला। (२) दुबला-पतला।
दुदुका—संशा स्त्री. [देश.] एक चमड़ा-मढ़ा बाजा।
दुदुहा—संशा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया।

दुटेला—िव. [हिं. टूटना ] टूटा-फूटा।
टुड़ी—संशा स्त्री. [सं. तुंडि ] (१) नाभि। (२) ठोड़ी।
संशा स्त्री. [हिं. दुकड़ी ] छोटा टुकड़ा, डली।
टुनकी—संशा स्त्री. [देश.] एक परदार कीड़ा।
टुनगा, टुनगी—संशा स्त्री. [सं. तनु=पतला + श्रग्र=
श्रगला ] टहनी का श्रगला कोमल भाग।

दुनदुना—संशा पुं. [ देश. ] एक नमकीन पकवान । दुनहाया—संशा पुं. [ हिं. टोनहाया ] टोना करनेवाला । दुनियाँ—संशा स्त्री. [ सं. तुंड ] मिट्टी का टोंटीदार पात्र । दुनिहाई—संशा स्त्री. [ हिं. टोनहाई ] टोना करनेवाली । दुन्ना—संशा पुं. [ सं. तुंड ] नाल जिसमें फूल लगता है । दुपकना—कि. स्त्र. [ त्रुन. ] (१) धीरे से काटना या डंक मारना । (२) चुगली खाना, किसी के विरुद्ध कुछ

कहना। (३) धीरे से मारना।
टुबी—संश स्त्री. [हं. डूबना] गोता, डुब्बी।
टुरी—संश पुं. [देश.] टुकड़ा। ग्रनाज का दाना।
टुलकना—िक. श्र. [हं. ढुलकना] लुढ़कना।
टुलड़ा—संश पुं. [देश.] एक तरह का बाँस।
टुसकना—िक. श्र. [हं. टसकना] रोना-धोना।
टूँक—संश पुं. [हं. टूक] टुकड़ा।
टूँगना—िक. स. [हं. टुनगा] (१) कुतर कर चबाना।

(२) संकोच या चिता से बहुत धोरे-धोरे खाना। दूँड़—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] (१) मच्छड़, मक्खी ग्राहि के ग्राले बाल। (२) जौ-गेहूँ ग्राहि की बाल के दाने के कोश का नुकीला सींग।

दूँड़ी — संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) जौ-गेहँ की बाल के दाने के कोश का नुकीला सींग। (२) तोंदी, नाभि। (३) गाजर-मूली की नोक। (४) नुकीला भाग, नोक।

दूक, दूकर, दूका—संशा पुं. [सं. स्तोक] (१) दुकड़ा, खंड। उ.—(क)सूर- सिंस कहयी, यह असुर, तब कृष्नज ले सुदरसन सु है दूक कीन्ह्यी— द-द। (ख) लखन कहयी, करवार सम्हारों। कुंभकरन अस इंद्र- जीत की दूक-दूक करि डारों—१-१४३। (२) रोडी का दुकड़ा। (३) भीख।

दुकी—संशास्त्री. [हिं. दूक] (१) दुकड़ा। (२) भीख। दूट-संशास्त्री. [हिं. दूटना] (१) दूटा हुम्रा भाग।

(२) टूटने का भाव। (३) छटा हुआ शब्द श्रादि जो बाद में लिखा जाय।

संज्ञा पुं.—(१) घाटा, कमी। (२) भूल, चूक। दूटतं—क्रि. श्र. [हं. टूटना] ट्टते ही, टुकड़े-टुकड़े होते ही। उ.—टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ, ज्यों तारागन भोर—६-२३।

दूटना—िक, स. [सं. त्रुट] (१) खंडित या भग्न होना।
(२) शरीर के किसी जोड़ का उखड़ना। (३) ऋम
या सिलिसला भंग होना। (४) भपटना। (४)
बहुत से लोगों का एक साथ आ जाना, पिल पड़ना।
मुहा.—हूट हूट कर—बहुत ज्यादा।

(६) ग्राक्रमण या धावा करना। (७) एकाएक ग्राजाना। (८) ग्रलग होना, मेल न रहना। (६) संबंध छूटना, लगाव न रहना। (१०) दुबला-पतला होना।

मुहा.—(कुएँ आदि का) पानी टूटना—पानी कम होना।

(११) निर्धन हो जाना, बिगड़ जाना। (१२) चालू म रहना, बंद होना। (१३) किले पर शत्रु का श्रिधकार होना (१४) रुपये का वसूल न होना। (१५) हानि या घाटा होना। (१६) शरीर में पीड़ा होना। (१७) पेड़ का फल तोड़ा जाना।

दूटा—िव. [हिं. टूटना] भग्न, खंडित।
यो.—टूटा फूटा—बेकार, निकम्मा, बरता हुम्रा।
मुहा.—टूटी फूटी बात(बोली)(१) जिस बात में क्रम
या संबंध न हो। (२) जो बात स्पष्ट न हो। टूटी बाँह
गले पड़ना—ग्रपाहिज के निर्वाह का भार पड़ना।

(२) दुबला-पतला । (३) निर्धन, दरिद्र । संज्ञा पुं. [हिं. टोटा] घाटा, नुकसान ।

दूटि—िक, श्र. [हिं. टूटना] (१) दूट कर, टुकड़े-टुकड़े होकर। उ.—गज दोउ दंत टूटि घर परे—७-२। (ख) पाट गए टूटि, परी लूटि सब नगर में, सूर दरबान कहयो जाइ टेरी—६-१३८। (ग) पैरि पाटि टूटि परे, भागे दरवाना—६-१३६। (घ) सहज कपाट उघरि गये ताला-कूँची टूटि—२६२५।

मुहा,---दूटि परीं--- इल बाँध कर सहसा ग्राकमण

किया। उ.—टूटि परीं चहुँ पास घेर लीन्हों बलभाई—३४१६।

दूटी—वि. [हिं, टूटना] भग्न, खंडित, टुकड़े-टुकड़े। उ.—टूटी छानि मेघ जल बरसें— १-२३६।

मुहा.—टूटी फूटी बात—जो बात स्पष्ट न हो। उ.—सीत पित्त कफ कंठ निरोधे रसना टूटी फूटी बात।

दूरे—िक, श्र. [हिं. टूटना] (१) दुकड़े-दुकड़े हो गये। उ,—जै-जै रघुनाथ कहत बंधन सब दूरे—६-६७। (२) दह गये, दूसरे के श्रिधकार में चले गये। उ,— घूँघट पट कोट दूरे, छूटे हग ताजी—६५०।

दूरें—कि. श्र. [हिं टूटना] (१) खंडित होता है, भगन होता है।

मृहा.—हूटै बात—ग्रस्पष्ट या ग्रसंबद्ध बात (निकलतो है)। उ.—सीत-बात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात—१-३१३।

(२) लपकता है, दौड़ता है। उ.—करनी श्रीर, कहै कछु श्रीरे, मन दसहूँ दिसि टूटै—२-१९।

दूरैगी—क्रि. स. [हिं. टूटना] दूढ जायगी। उ,—तब मैं कहथौ खीभि, हरि छाँइहु, टूटैगी मोतिन लर मेरी—१२०६।

दूरौ- वि. [हिं. दूटना] दूटा, भग्न हुग्रा, खंडित। उ.—दूटी छानि, मेघ जल बरसें, दूटौ पलँग विछइयै—१-२३६।

दूटगो—िक. स. [हिं. टूटना] (१) टूटा, भग्न हुम्रा, खंडित हुम्रा। उ.—सब नृप पचे धनुष निहं दूटगो तब बिदेह दुख पायो—सारा. २८८। (२) संबंध छूट गया, लगाव न रहा। उ.—जा तें म्रॉगन खेलत देख्यो, में जसुदा को पूत री। तब तें गृह सों नातो टूम्यो, जैसें काँची सूत री—१०-१३६। (२) ढह गया। उ.—सखी री कठिन मान गढ़ दूट्यो—२१५२।

दूठना—िक. श्र. [सं. तुष्ठ, प्रा. तुष्ठ ] संतुष्ट होना। दूठिन—संश स्त्री. [हिं. दूठना ] संतोष, तुष्टि। दूठे—िक. श्र. [हिं. दूठना ] संतुष्ट हुए। उ.—हमसों मिले वर्ष द्वादस दिन चारिक तुम सों दूठे—३२८०।

दूना—संशा पुं. [हिं. टोना] जादू-टोना।
दूम—संशा स्त्री. [ अनु. दुन दुन] (१) गहना, माल।
यौ.—दूमटाम—(१) गहना,जेवर। (२) बनावसिगार। दूम छल्ला—छोटा मोटा गहना।

(२) सुंदर स्त्रो। (३) मालदार स्त्री। (४) चालाक ग्रादमी। (४) भटका, धक्का। (६) ताना, व्यंग्य।

दूसना—कि. स. [ श्रनु. ] (१) धक्का या भटका देना। (२) ताना मारना, व्यंग्य करना।

दूसा—संज्ञा पुं. [ देश.] (१) दुकड़ा। (२) एक फूल। दूसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. दूसा] अधिष्वला फूल, कली। दें—संज्ञा स्त्री. [ ऋनु.] तोते या सुए की बोली। यौ.—टें टें—ध्यर्थ की बकवाद।

मुहा,—टें होना (बोलना)— चटपट मर जाना। टेंकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह का नृत्य। टेंगड़ा, टेंगना, टेंगर, टेंगरा—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड]

एक मछली जो मुंह से गनगुनाती-सी है।

टेंघुना—संज्ञा पुं. [सं. श्रष्ठीवान् ] घुटना।
टेंघुनी - संज्ञा स्त्री. [हिं. टेंघुना ] घुटना।
टेंचन—संज्ञा पुं. [हिं. टेंक ] खंभा, चाँड़, टेंक।
टेंट—संज्ञा स्त्री. [देश.] कमर पर धोती की ऐंठन या
मुर्री जिसमें रुपया-पंसा भी रखा जाता है।
मुहा.— टेंट में कुछ होना—पास में रुपया-पंसा होना।

संशा स्त्री. [सं. तुंड, हिं. टोंट ] (१) कपास की ढोंढ़ या डोडा जिससे रुई निकलती है। (२) करील का कड़्या फल।

टेंटड़, टेंटर—संज्ञा पुं. [ सं. तुंड ] रोग या चोट से श्रांख के डेले का सूजा हुग्रा माँस, ढेंढर ।

टेंटा, टेंटार—संज्ञा पुं. [ देश. ] एक चितकबरा पक्षी। टेंटी—संज्ञा स्त्री. [ देश. ] (१) करील । उ.—सूर कही कैसे रुचि माने टेंटी के फल खारे। (२) करील का फल, कचड़ा।

संज्ञा पुं. [हिं. टें टें (श्रनु.)] टर्गनेवाला। वि.—चपल, चंचल। टेंडुआ, टेंडुवा—संज्ञा पुं. [देश.] गला, घींची।

टेंटें—संज्ञा स्त्री, [ त्रानु, ] (१) तोते की बोली। (२) व्यर्थ की बकवाद या हुज्जत।

मुहा.—टें टें करना—बकवाद या हुज्जत करना।
टेंव, टेंड—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेक, टेव] ग्रादत, स्वभाव,
प्रकृति। उ.—(क) विषय-विकार-द्वानल उपजी,
मोह-बयारि लई। अमत-अमत बहुते दुख पायी,
ग्रजहुँ न टेंच गई—१-२६६। (ख) जदिप टेंच तुम
जानति उनकी तक मोहिं कहि ग्रावै—३७६३।

टेडकन—संज्ञा पुं. [हिं. टेक ] ग्राड़, रोक।
टेडकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेक ] ग्राड़, रोक, टिकान।
टेक—संज्ञा स्त्री. [हिं. टिकना ] (१) रोक का खंभा,
थूनी, चाँड़। (२) रोक, सहारा। (३) संकल्प,
दृढ़ निश्चय, ग्रड़, हठ, जिद। उ.—(क) मोकों
मुक्ति विचारत हो प्रभु, पचिहो पहर-परी। श्रम
तें तुम्हें पसीना ऐहै, कत यह टेक करी—१-१३०।
(ख) लोगनि तिहिं बहु विधि समुभायौ। पै तिहिं
मन-संतोष न श्रायौ। तब हरि कह्यौ टेक परिहरी
भीष्म पितामह कहें सो करौ—१-२६१।

मुहा—टेक निभना (रहना)—(१) हठ पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होना। टेक गहना (पक-इना)—हठ या जिद करना।

(४) ग्राश्रय, ग्रवलंब, सहारा । उ.—ग्रब मोकों धरि रही न कोऊ, तातें जाति मरी। मेरें मात-पिता- पित-बंधू, एके टेक हरी—१-२५४। (५) बैठने का ऊँचा चब्तरा या वेदी। (६) ऊँचा टीला, छोटी पहाड़ी। (७) बान, ग्रादत, संस्कार। (८) गीत का चरण जो बार बार गाया जाय।

टेकड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. टेक] (१) टिकान। (२) शांति या आराम से बैठने की किया।

टेकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेक] (१) ऊँचा टीला, छोटी पहाड़ी। (२) टिकान। (३) शांति या ग्राराम से बैठने की किया या रीति।

टेकत—कि स. [हिं. टेकना] ( चलते, उठते, बैठते समय किसी वस्तु को) हाथ से पकड़ते हैं, सहारे के लिए थामते हैं। उ.—(क) स्थाम उलटे परे देखें बड़ी सोभा लहरि। सूर प्रभु कर सेज टेकत, कबहुँ

टेकत ढहरि—१०-६७। (ल) नाचत गावत गुन की खानि। सोभित भए टेकत पिय पानि।
टेकन, टिकनी—संज्ञा पुं. [हिं. टेकना] रोक, थूनी।
टेकना—क्रि. स. [हिं. टेक](१) उठने-बैठने में किसी खोज का सहारा लेना। (२) शरीर को सहारे के लिए टिकाना या ठहराना।

मुहा.—माथा टेकना—प्रणाम या दंडवत करना। (३) सहारे के लिए थामना। (४) हाथ का

सहारा लेना। (४) हठ ठानना।

संज्ञा पुं. [ देश. ] एक तरह का जंगली धान।
टेकर, टेकरा—संज्ञा पुं [ हिं. टेक ] ऊँचा टीला।
टेकरी—संज्ञा स्त्री [ हिं. टेकरा ] ऊँचा टीला।
टेकला—संज्ञा स्त्री. [ हिं. टेक ] धुन, रट।
टेकहु—क्रि. स. [ हिं. टेकना ] रोको, थामों। उ.—
टेकहु गिरि गोवर्धनराई—१०५८।
टेकान—संज्ञा पुं. [ हिं. टेकना ] (१) टेक, थूनो। (२)

चब्तरा जिस पर बोक्ता रखकर सुस्ताया जा सके। टेकाना—क्रि. स. [हिं. टेकना] उठने या चलने-फिरने में सहारा देने को पकड़ना या थामना।

टेकानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेकना] फँसाने की कील।
टेकि—कि. स. [हिं. टेकना] (१) उठते, चलते, चढ़ते
समय किसी वस्तु को थाम कर, सहारा लेकर। उ.—
यह यह प्रति द्वार फिर्यो, तुमकों प्रभु छाँड़े। ग्रंधग्रंध टेकि चले, क्यों न परे गाड़ै—१-१२४। (२)
पकड़कर, थामकर। उ.—चरन टेकि दोउ हाथ
जोरि के बिनती क्यों नहिं कीजै—१-१२६।

टेकी—िव. [हिं. टेक] (१) कही हुई बात या प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। उ.—ऐ तो अलि उनहीं के संगी अपनी बात के टेकी—३२८८। (२) हठी, जिही।

मुहा.—गों के टेकी—पक्का मतलबी, बड़ा स्वार्थी। उ.—तुम तौ श्रिल उनहीं के संगी श्रिपनी गों के टेकी—३२८७।

टेकुआ, टेकुवा—संज्ञा पुं, [हिं, तकला] चरखे का तकुला जिस पर सूत लपेटा जाता है। संज्ञा पुं, [हिं, टेक] टिकाने की चीज।

टेकुरा—संज्ञा पुं, [देश.] पान। टेकुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेकुग्रा] (१) तकला। (२) फिरकी।

टेघरना—िक, श्र. [हिं, टिघलना] पिघलना।
टेटका—संज्ञा पुं. [सं, ताटंक] कान का एक गहना।
टेटा—संज्ञा पुं. [हिं, टेंट] करील का कङ्ग्रा फल।
उ.—स्रदास गोपाल छाँड़ि के चूसे टेटा खारे—
३०४५।

टेढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेढ़ा ] (१) टेढ़ापन। (२) ऐंठ। वि.—जो सीधा न हो, वक्र, कुटिल।

टेढ़िबड़ंगा—िव [हिं, टेढ़ों+बेढंगा ] टेढ़ा-मेढ़ा।
टेढ़ा—िव [सं. तिरस्] (१) जो सीधान हो, वक्र,
कृटिल। (२) तिरछा। (३) जो सरल न हो,
किठन। (४) जो शिष्ट या नम्र न हो, उजड्ड।
मुहा.—टेढ़ा पड़ना (होना)—(१) उग्र या कठोर
होना (२) श्रकड़ना, ऐंठना।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री, [हिं. टेढ़ा ] टेढ़ापन। टेढ़ापन—संज्ञा पुं. [हिं. टेढ़ा+पन (प्रत्य.)] टेढ़ा होने का भाव, टेढ़ाई।

टेढ़ी—वि.स्री. [हिं. टेढ़ा] (१) जो सीधी न हो, वऋ।
मुहा.—टेढ़ी चितवन—तिरछी नजर।

(२) जो समानांतर न हो, तिरछी। उ.—(क) श्रुक्त लोचन भोंह टेढ़ी बार बार जँभात—१०-१००। (ख) रोकि रहत गिह गली साँकरी टेढ़ी बाँधत पाग-१०-३२८। (३) जो सरल न हो, कठिन। सहा.—टेढ़ी खीर—कठिन या मुश्किल काम।

(४) जो शिष्ट या नम्र न हो, उग्र, उजड्ड। उ.—कुटिल कुंचील जन्म की टे़ड़ी सुंदर किर घर त्रानी—३०८६।

मुहा.—टेढ़ी श्राँख से देखना— क्रोध से देखना, दुष्टता के व्यवहार का विचार करना। टेढ़ी श्राँखें करना—क्रोध से देखना, बिगड़ना।

टेढ़ी (टेढ़ी-सीधी) सुनाना—बुरा-भला कहना। टेढ़े, टेढ़ें, टेढ़ो—िक, वि. [हिं, टेढ़ा] घूम कर, सीधे नहीं।

मुहा,—टेढ़ टेढ़े (टेढ़ों टेढ़ों) जाना (चलना

घाना)— घमंड करना। टेढ़े टेढ़े जात—घमंड करता
है, इतराता है। उ.—कबहूँ कमला चपल पाय के
टेढ़े टेढ़ें (टेढ़ेंं टेढ़ेंं) जात। कबहुँक मग मग धूरि
टटोरत, भोजन को बिललात—२-२२। टेढ़ें टेढ़ेंं
धायौ—इतराया, घमंड किया। उ.—टेढ़ी चाल,
पाग सिर टेढ़ी, टेढ़ेंं टेढ़ेंं धायौ—१-३०१। टेढ़ें
बताना—घमंड से बात करना। टेढ़ें बतात—घमंड
से बकते हो। उ.—टेढ़ें कहा बतात कंस कों देहुं
कमल अब—५८६।

टेना—कि. स. [ देश, ] (१) हथियार आदि तेज करने को रगड़ना। (२) मूँछें ऐंठना या मरोड़ना। टेनी—संज्ञा स्त्री. [ देश. ] छोटी उँगली।

टेपारा—संज्ञा पुं. [हिं. टिपारा ] टोपी जिसमें कलगी की तरह तीन शाखाएँ होती हैं।

टेम-संज्ञा स्त्री. [हिं. टिमटिमाना ] दीपक की लौ। टेमन-संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का सांप।

टेर—संशा स्त्री. [सं. तार] (१) गाने की तान, टीप।
(२) पुकार, हांक, बुलाहट। उ.—(क) हा लिछमन
सुनि टेर जानकी, बिकल भई, आतुर उठि घाई—
६-५६। (ख) स्थाम स्थाम किह टेर लगायौ—११७७। (ग) सिखिनि सिखर चिढ़ टेर सुनायौ।
बिरहिनि सावधान है रहियौ सिज पावस दल
आयौ—३६४६।

संशा स्त्री. [सं. तार = तै करना ] निर्वाह, गुजर।
मुहा.—टेर करना—बिताना, काटना, निर्वाहना।
टेरिति—कि. स. [हिं. टेरना ] बुलाती (है), पुकारती
(है), हाँक लगाती (है)। उ.—(क) जसुमित सुनत
चली श्रति श्रातुर, ब्रज घर-घर टेरित लै नाम—
१०-२३५। (ख) हरि कौं टेरित है नँदरानी।
बहुत श्रवार भई कहँ खेलत रहे मेरे सारँगपानी—
१०-२३६। (२) चिल्लाती है। उ.—ब्रह्म-बाण तैं
गर्भ उवारयौ, टेरित जरी जरी—१-१६।

टेरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेरना ] संगीत की तान, टीप। उ.—तन-मन लियो चुराइ हमारो वा मुरली की टेरन—३२७७।

देरना-कि, स. [हिं, टेर+ना (प्रत्य.)] (१) तान

निकालना, सस्वरंगाना। (२) बुलाना, पुकारना, हाँक लगाना।

कि. स. [सं. तोरण = तै करना] (१) पूरा करना, निभाना। (२) बिताना, काटना, निर्वाह करना। टेरहीं—िकि. स. [हिं. टेरना] बुलाते हैं, पुकारते हैं।

उ.—गवाल-बाल सब टेरहीं, गैया बन चारन— १०-४३६।

टेरा—कि. स. [हिं. टेरना] बुलाया, पुकारा। संज्ञा पुं. [देश.](१) श्रंकोल का पेड़। (२) पेड़ का तना। (३) शाखा, डाली।

टेरि — कि. स. [हिं. टेरना] ऊँचे स्वर से चिल्लाकर, हाँक लगाकर। उ.— (क) प्रभु हों बड़ी देर की ठाड़ों टेरि कहत हों यातें। मरियत लाज पाँच पिततिन में, हों अब कहीं घटि कातें—१-१३७। (ख) द्रुपद-सुता को मिट्यों महादुख, जबहीं सो हरि टेरि पुकारों।

संज्ञा स्त्री. [हिं. टेर] पुकार, हांक। उ.—ग्राह जब गजराज घेर्यो, बल गयो हारी। हारि के जब टेरि दीन्ही, पहुँचे गिरधारी—१-१७६।

टेरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] टहनी, पतली शाखा।
संज्ञा स्त्री. [देश.] एक पौधा। एक फली।
क्रि. स. [हिं. टेरना] (१) बुलाया, पुकारा,
दुहाई दी, हाँक लगायी। उ.—इत-उत देखि द्रोपदी
टेरी। ऐंचत बसन, हँसत कौरव सुत, त्रिभुवन-नाथ,
सरन हौं तेरी—१-२४१।(२) चिल्लाकर, पुकारकर। उ.—पाट गये टूटि, परी लूटि सब नगर
मैं, सूर दरबान कहयी जाइ टेरी—६-१३८।

टेरै—कि. स. [हिं. टेरना] टेरता है, बुलाता है। उ.— बृ'दाबन मैं गाइ चराबै, घौरी धूमरि टेरै हो—४५२। टेरो, टेरो—कि. स. [हिं. टेरना] बुलाग्रो, पुकारो, हाँक लगाग्रो। उ.—(क) द्रुम चिंह काहे न टेरो कान्ह, गैयाँ दूरि गई—६१२। (ख) राधा सों कहति नारि काग सगुन टेरो—३०४६।

संज्ञा स्त्री. [ देश. ] एक तरह की सरसों।
टेर्यौ—कि. स. भूत. [ हिं. टेरना ] बुलाया, पुकारा,
हाँक लगायी। उ,—हा करुनामय, कुंजर टेरयौ,

रहयौ नहीं बल, थाकौ--१-११३। टेली-संज्ञा पं. [देश.] एक तरह का पेड़ । टेव-संशा स्त्री. [हिं. टेक] अभ्यास, आदत, बान, स्वभाव। उ.—(क) जुग-जुग जनम, मरन श्ररु बिद्धरन, सब समुभत मत-भेव। ज्यौं दिनकरहिं उलूक न मानत, परि आई यह टेव-१-१००। (ख) सब बिधि सोधै ताकी टेच--६-१७३। (ग) तुम तौ टेव जान तिहि हो हो, तऊ मों हि कहि आवै। पात उठत मेरे लाल लड़ेतें माखन रोटी भावे-३७६३। टेवकी—संज्ञा स्त्री. [हि. टेकन ] नाव का ऊपरी पाल। टेवना-कि. स. [हिं. टेना ] (१) हथियार तेज करने के लिए रगड़ना। (२) मूँछे ऐंठना। टेवा—संज्ञा पुं. [सं. टिप्पन] (१) जन्म-पत्री या कुंडली। (२) विवाह का लग्नपत्र। टेवैया—संज्ञा पं. [हिं. टेवना] (चाकू, हथियार भ्रादि पर ) धार धरने या तेज करनेवाला । टेसुआ, टेसू—संज्ञा पुं. [ सं. किंशुक ] पलाश या ढाक का पेड़ या फूल। (२) लड़कों का एक उत्सव जिसमें विजयदशमी को घास का एक पुतला बनाकर घर घर घुमाते हैं श्रौर शरद्पूर्णिमा को खेल खेलते श्रौर मिठाई खाते हैं। उ.—जे कच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल । तिन केसन को भस्म चढ़ावत टेसू केसे खेल-३२२१।

टेहला—संज्ञा पुं. [देश.] विवाह की रीति-रस्म।
टैयाँ— संज्ञा स्त्री. [देश.] चित्ती कौड़ी।
टैन—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की घास।
टैना—संज्ञा पुं. [देश.] घास का पुतला जो खेत में पक्षियों की डराने के लिए रखा जाता है।
टोंक—संज्ञा स्त्री [हिं. टोकना] किसी के टोकने या पूँछ-ताँछ करने से लगनेवाली नजर।
संज्ञा पुं. [हिं. टोंका] छोर, सिरा, नोक।

संशा पुं. [हिं. टोंका] छोर, सिरा, नोक।
टोंकना—क्रि. स. [हिं. टोंकना] (१) दूसरे के बीच में
एकाएक बोल उठना। (२) हूँसना, नजर लगाना।
टोंका—संशा पुं. [सं. स्तोक = थोड़ा] (१) छोर,
सिरा, किनारा। (२) नोक, कोना।
टोंचना—क्रि. स. [सं. टंकन] चुभाना, गड़ाना।

टोंट, टोंटा—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चोंच। (२) चोंच की तरह की निकली हुई चीज। (३) तुलतुली। टोंटरी, टोंटी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) भारी, लोटे ग्राबि की पतली नली या तुलतुली। (२) पशुग्रों का थूथन।

टोझा—संज्ञा पुं. [पंजाबी] गड्ढा, गढ़ा।
टोइयाँ—संज्ञा स्त्री. [देश.] पीली चोंच का तोता।
टोई—संज्ञा स्त्री. [देश.] गन्ने आदि की पोर।
टोक—संज्ञा पुं. [सं. स्तोक] बोला हुआ। शब्द।

संशा स्त्री.—(१) दूसरे के बीच में कुछ पूछने या जानने के लिए कहा हुआ शब्द या वाक्य।

यौ.—टोक-टाक—पूछ-ताँछ । रोक-टोक— मनाही, विघ्न-बाधा, छेड़-छाड़।

(२) नजर, कुदृष्टि का प्रभाव।

मुहा.—टोक में ज्ञाना—नजर लगानेवाले के सामने पड़ जाना । टोक लगना—कुदृष्टि का प्रभाव पड़ना।

टोकना—कि. स. [हिं. टोक] (१) बीच में बोलकर या पूछताँछ करके बाधा डालना। (२) हूँसना, नजर लगाना।

संज्ञा पुं,—(१) बड़ा भौग्रा। (२) बड़ा हंडा। टोकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं, टोकना] (१) छोटा भावा, डिलया। (२) छोटा हंडा या कलसा। (३) बटलोई। टोकरा—संज्ञा पुं.—भावा, भौग्रा।

महा.—टोकरे पर हाथ रहना—इज्जत बनी रहना।
टोकरिया, टोकरी—संशा स्त्री. [हं. टोकरा] डिलया।
टोकवा—संशा पुं. [देश.] नटखट लड़का।
टोका—संशा पुं. [सं. स्तोक] (१) सिरा, छोर। (२)
कपड़े श्रादि का कोना, पल्ला। (३) नोक।
टोकारा—संशा पुं [हं. टोक] इशारे का शब्द।
टोकै—कि. स. [हं. टोकना] दूसरे के बीच में एकाएक
बोलता या टोकता है। उ.—घाट बाट जमुना तट
रोकै। मारग चलत जहाँ तहँ टोकै—ए०२३४ (५)।
टोक्यो—कि. स. [हं. टोकना] रोका, सावधान किया,
पूछा-ताँछा, बाधा डाली। उ.—जब जब श्रधम करी
श्रधमाई, तब तब टोक्यो नाथ—१-१६६।

टोट—संज्ञा पुं [हिं. टोटा] (१) घाटा। (२) कमी। टोटका—संज्ञा पुं. [सं. त्रोटक] तंत्रमंत्र, जादू-टोना। मुहा.—टोटका करने आना—आकर तुरंत ही चल देना। टोटका होना—किसी काम का चटपट हो जाना।

टोटकेहाई—संज्ञा स्त्री. [हं. टोटका] टोना करनेवाली। टोटा, टोटो—संज्ञा पुं. [सं. तुंड] कटा हुग्रा दुकड़ा। संज्ञा पुं. [हं. टूटना, टूटा] (१) कमी, श्रभाव। (२) घाटा, हानि, नुकसान।

सृहा.—टोटा देना (भरना )—हरजाना देना। टोड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रोटकी ] प्रातःकाल गायी जानेवाली एक रागिनी।

टोनहा—िव. [हं. टोना ] टोना करनेवाला। टोनही—िव. स्त्री. [हं. टोनहा ] जादू करनेवाली। टोनहाई—संशा स्त्रो. [हं. टोना+टाई (प्रत्य.)](१)

जादू-टोना करनेवाली। (२) भाड़-फूँक करनेवाली।
टोनहः या—संज्ञा पुं. [हं. टोना+हाया (प्रत्य)] जादूटोना करनेवाला। (२) भाड़-फूँक जाननेवाला।
टोना—संज्ञा पुं. [सं. तंत्र] (१) तंत्र-मंत्र का प्रयोग,
जादू। उ.—(क) नैकुँ दृष्टि जहँ परि गई, सिव-

भाद्गा उ.—(क) नकु हाव्ट जह पार गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)—१-४४। (ख) हरि कञ्ज ऐसो टोना जानत—१० उ. ८०।

यौ.—होना टामनि (टम्मन)—जाद्द-होना, जंत्र-मंत्र । उ.—होना टामनि जंत्र मंत्र करि ध्यायौ देव-दुत्रारौ री—१०-१३५।

(२) विवाह का एक गीत जिसमें 'टोना' शब्द कई बार प्रयुक्त होता है।

संज्ञा पुं. [ देश. ] एक शिकारी चिड़िया। कि. स. [ सं. त्वक=स्पर्शेद्रिय + ना (प्रत्य.) ] हाथ से टटोलना, छू कर मालूम करना।

टोनाहाई—संश स्त्री. [हैं. टोनहाई] (१) जादू-टोना करनेवाली। (२) भाड़-फूँक जाननेवाली।

टोप—संशा पुं. [हिं. तोपना=ढाँकना ] (१) बड़ी टोपी। (२) लोहे की टोपी, सिरस्त्राण। (३) गिलाफ।

संज्ञा पुं. [ अनु. टपटप या सं. स्तोक.] बूँद।
 होपा—संज्ञा पुं. [ हिं. टोप ] बड़ी टोपी।

संज्ञा पुं. [हिं. तोपना] आबा, टोकश।
संज्ञा पुं. [हिं. तुरपना] टाँका, सीवन।
टोपी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तोपना=ढाकना] (१) सिर का
एक पहनावा।

मुहा.—टोपी उछालना—बेइज्जती करना। टोपी वदलना—आई-बारे का संबंध स्थापित करना।

(२) ताज, राजमुकुट। (३) टोपी की तरह गोल श्रौर गहरी चीज। (४) थैली जो शिकारी जानवर के मुँह पर चढ़ी रहती है।

टोभ-संज्ञा पुं. [हिं. डोभ ] टाँका, सीवन। टोया—संज्ञा पुं. [सं. तोप ] गड्ढा, गढ़ा। टोर—संज्ञा स्त्री. [देश.] कटार, कटारी। टोरना—कि. स. [सं. त्रुट] तोड़ना।

मृहा.—श्राँख टोरना—लज्जा ग्रादि के कारण हृष्टि छिपाना, नजर बचाना। टोरा—संज्ञा पं. [सं. तोक] लड़का, छोकरा।

टोरि—कि. स. [हिं. टोरना] तोड़कर।

मुहा.—लोचन टोरि—लज्जा आदि से दृष्टि बचाकर, नजर चुराकर। उ.—सूर प्रभु के चरित सखियन कहत लोचन टोरि।

संशा स्त्री [हिं. टोली] (१) समूह, (२) मुहल्ला।
टोरी—संशा स्त्री. [हिं. टोड़ी] एक रागिनी।
टोल—संशा स्त्री. [सं. तोलिका=घेरा, बाड़ा] (१)
मंडली, समूह, भुंड। उ.—कुचित केस सुगंध सुबसु
मनु उठि आये मधुपन के टोल—१३३०। (२)
बस्ती, मुहल्ला। उ.—आजु भोर तमचुर के रोल।
गोकुल में आनंद होत है, मंगन-धुनि महराने
टोल—१०-६४। (२) चटसार, पाठशाला।

संशा पुं.—एक राग। टोला—संशा पुं. [सं. तो लिका = घेरा, वाङा] बस्ती, मुहल्ला।

संज्ञा पुं. [देश.] बड़ी कौड़ी, टग्घा।
संज्ञा पुं. [देश.] (१) पत्थर का टुकड़ा, रोड़ा।
(२) मार-पीट का लाल-नीला चिह्न, नील।
टोलिया, टोली—संज्ञा स्त्री. [सं. तोलिका = हाता, वाड़ा] (१) छोटा मुहल्ला। (२) समूह, भुंड,

मंडली । (३) पत्थर की सिल ।
टोवना—कि, स. [हिं, टोना ] टटोलना ।
टोह—संज्ञा स्त्री. [हिं, टटोलना ] (१) खोज, तलाज्ञा ।
मुहा,—टोह मिलना—पता लगाना । टोह में
रहना—तलाज्ञा में रहना । टोह लगाना (लेना)—
पता लगाना ।

(२) खबर, देखभाल।

मुहा.—टोह रखना (लेना)—खोज-खबर लेना।
टोहना—कि. स. [हिं. टोह] (१) ढूँढ़ना, खोजना,
तलाशना। (२) छूना, टटोलना।
टोहाटाई—संशा स्त्री. [हिं. टोह] (१) छानबीन, ढूँढ़ढाँढ़, तलाश। (२) देखभाल।

टोहिया—िव. [हिं. टोह ] ढूँढ़ने या खोजनेवालां।
टोहियाना—िक. स. [हिं. टोहना ] ढूँढ़ना, टटोलना।
टोही—संशा स्त्रीं. [हिं. टोह ] तलाश करनेवाला।
टोंस—संशा स्त्रीं. [सं. तमसा ] तमसा नदी।
टोना—संशा पुं. [हिं. टोना ] टोना, जादू, तंत्र मंत्र का प्रयोग। उ.—ग्राति सुन्दर नंद-महर हुटौना निरिष्व निरिष्व ब्रजनारि कहितं सब, यह जानत कळु टौना—६०१।

टौर—संज्ञा पुं,— दाँव, घात। टौरना—क्रि. स. [हिं, टेरना] (१) जाँचना, परखना। (२) पता लगाना, खोजना।

ठ—टवर्ग का दूसरा श्रीर देवनागरी वर्णमाला का ब्रारहवाँ व्यंजन; उच्चारण-स्थान मूर्धा है—उच्चारण में जीभ का मध्य भाग तालु से लगता है।

ठंठ—वि. [ सं. स्थारा ] (१) ठूँठ, सूखा (पेड़)। (२) खाली, रीता, छूँछा। (३) सारहीन।

ठंठनाना—कि. श्रा. [हिं. ठनठनाना ] 'ठनठन' होना। कि. स.—'ठनठन' शब्द निकालना या बजाना। ठंठार—वि. [हिं. ठंठ ] खाली, रीता, छूँछा।

ठठार—ाव, [ हि. ०० ] खाला, राता, छू छा।
ठठी—संज्ञा स्त्री. [ हिं, ठंठ ] ज्वार-मूंग का दाना जो
पीटने के बाद भी बाल में लगा रहे।

वि. स्री.—जो (गाय-भेंस) बच्चा या दूध न दे।
ठंड, ठंढ़—संज्ञा स्त्री [हिं. ठंढा] जाड़ा, सरदी।
ठंडई, ठंढई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठंढाई] (१) कारीर की
गरमी क्षांत करनेवाला कारबत। (२) भाँग का
शरबत जिसमें सौंफ, इलायची श्रादि पड़ती हैं।
ठंडक, ठंढक—संज्ञा स्त्री. [हिं.ठंढा](१) सरदी, जाड़ा।
(२) ताप या जलन की क्षांति। (३) संतोष,
प्रसन्नता, तसल्ली। (३) रोग या उपद्रव की कांति।
ठंडा, ठंढा—वि. [सं. स्तब्ध, प्रा. तद्ध, ठढ्ढ, हिं.
ठंढा] (१) क्षीतल, सर्व। (२) बुभा या बुता हुग्रा।

(३) जी उद्विग्न या श्रावेशयुक्त न हो, शांत ।

मुहा, — ठंढा करना — (१) क्रोध शांत करना।
(२) धीरज या तसल्ली देकर शोक कम करना।

(४) जिसे कामोद्दीपन न हो । (४) जिसे क्रोध न हो, धीर, शांत, गंभीर । (५) धीमा, सुस्त, उत्साहहीन, उमंगरिहत । (६) चुप रहने या विरोध न करनेवाला। (७) तृप्त, संतुष्ट । (८) निश्चेष्ट, मृत, मरा हुआ।

मुहा.—ठंढा होना—मर जाना। ताजिया ठंढा करना—(१) ताजिया दफनाना।(२) भगड़ा या विरोध दबा देना।(मूर्ति श्रादि को) ठंढा करना— नदी श्रादि में विसर्जन करना। (पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंढा करना—फेंकना या तोड़ना-फोड़ना।

(६) जिसमें चहल-पहल, बहार या रौनक न हो।
मुहा.—बाजार ठंडा होना—खूब बिक्री न होना।
ठंडाई, ठंढाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठंढा] (१) सौंफ, इलायची, गुलाब के फूल ग्रादि से बना ठंढक पहुँचाने
वाला शरबत। (२) भाँग का शरबत।

ठंढा मुलम्मा—संज्ञा पुं, [हिं, ठंढा + ऋ मुलम्मा] बिना श्रांच के सोने-चाँदी का पानी चढ़ाना। ठंडी, ठंढी—वि. स्त्री. [हिं, पुं,ठंढा ] (१) सर्द, जीतल। मुहा.—ठंढी श्रागा—(१) बरफ। (२) पाला।

ठंढी कढ़ाई—सब पकवानों के अंत में हलुआ बनाने की रीति। ठंढी मार—भीतरी या गुप्त चोट। ठंढी मिट्टी—(१) शरीर जो जल्दी न बढ़े। (२) शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंढी साँस— दुखभरी साँस या आह। ठंढी साँस भरना (लेना)— दुख की साँस लेना।

(२ बुक्ती हुई। (३) श्रावेशरहित, श्रक्रुद्ध।
मुहा.—माता (चेचक, शीतला) ठंढी करना—
शीतला के श्रच्छे होने पर देवी की पूजा करना।

(४) जिसे कामोद्दीपन न हो। (५) शांत, गंभीर। (६) तृत्त, प्रसन्न। (७) धीमी, सुस्त, मंद।

मुहा. — ठंढी गरमी - बनावटी या दिखावटी प्रीति।

(८) विरोध न करनेवाली। (६) मरी हुई।
मुहा. चूड़ी ठंढी करना—किसी स्त्री के विधवा
हो जाने पर उसकी चूड़ी तोड़ना-फोड़ना।
संज्ञा स्त्री.—शीतला, माता, चेचक।

मुहा.—ठंढी ढलना — चेचक का जोर कम होना।
ठंढी निकलना—शीतला या चेचक का रोग होना।
ठंडे, ठंडे—िव. बहु. [हिं. ठंढा] (१) सर्व, शीतल।
मुहा.—ठंडे-ठंडे—ठंढे समय में, सबेरे।

(२) भ्रावेशरहित । (३) जिन्हें कामोद्दीपन न हो । (४) घीर, गंभीर । (५) जिनमें उमंग न हो । (६) जो विरोध न करें ।

मुहा.—ठंदे-ठंदे—बिना विरोध किये, चुपचाप। (७) संतुष्ट, तृष्त, प्रसन्न, खुश।

मुहा.—ठंढे-ठंढे—हँसी-खुशो से। ठंढे पेट (पेटों)-हँसी खुशो के साथ। ठंढे रहना—प्रसन्न रहना।

(८) बेरौनक। (६) मरे हुए, निश्चेष्ट। महा.—ठंढे होना—मर जाना।

ठ—संशा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) मंडल।
ठई—िक. स. [हं. ठथना] (१) दृढ़ संकल्प के साथ
ग्रारंभ की, ठानी, छड़ी। उ.—दासी सहस प्रगट
तहँ भई। इंद्रलोक-रचना रिषि ठई—६-३। (२)
ठहरायी, निश्चित की, स्थिर की। उ.—नृप पुत्री
दासी करि ठइ। दासी सहस ताहि सँग दई—
६-१७४। (३) स्थित हुई, घटित हुई। उ.—ठानी

हुती श्रौर कड्डु मन मैं श्रौरे श्रानि ठई—१-२६६।
ठउर, ठऊर—संज्ञा पुं. [हिं. ठौर ] स्थान, ठौर।
ठए—क्रि. स. [हिं. ठयना ] किये, संवादित किये। उ.—
प्राचीनवर्हि भूप इक भए। श्रायु प्रजंत जज्ञ तिन
ठए—४-१२।

ठक—संश स्त्री. [ अनु. ] ठोंकने का शब्द ।
वि.—भौचक्का, स्तब्ध, निश्चेष्ट ।
ठकठक—संश स्त्री. [ अनु. ] अगड़ा-बखेड़ा ।
ठकठकाना—कि. स. [ अनु. ] ठोंकना-पीटना ।
ठकठिकया—वि. [ अनु. ठकठक ] भगड़ालू, बखेड़िया ।
ठकठीआ—संशा पुं. [ अनु. ] (१) एक करताल । (२)
करताल बजाकर भीख माँगनेवाला । (३) एक नाव ।
ठकार—संशा पुं. [ हिं. ठ+कार ] 'ठ' की ध्विन ।
ठकुरई—संशा स्त्री. [ हिं. ठकुराई ] (१) प्रभुता । (२)
स्वामी के श्रविकार का उपयोग । (३) रियासत,

ठकुरसहाती—संशा स्त्री. [हिं. ठाकुर+सहाना ] वह बात जो दूसरे को खुश करने के लिए कही जाय, खुशामद, लल्लोचप्पो ।

जमींदारी। (४) महत्व, बङ्प्पन।

ठकुराइत—संशा स्त्री. [हिं. ठकुरायत ] (१) प्रभुत्व, प्रधानता। (२) ठाकुर का ग्रधिकृत प्रदेश, रियासत। ठकुराइन, ठकुराइनि—संशा स्त्री. [हिं. पुं. ठाकुर ] (१) स्वामिनी, मालिकन। उ.—(क) नहिं दासी ठकुराइन कोई—३४४२। (ख) तुम ठकुराइनि घर रही, मोहिं चेरी पाई—७१३। (२) क्षत्राणी। (३) नाइन, नाउन। (४) देवी।

ठकुराइस—संग स्त्री. [हिं. ठकुरायत ] (१) प्रभुता, प्रधानता, ग्राधिपत्य। (२) ठाकुर की रियासत। ठकुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर ] (१) ग्राधिपत्य, प्रभुत्व, सरदारी, प्रधानता। उ.—(क) कह पांडव के घर ठकुराई ग्रारजुन के रथ-बाहक—१-१६। (२) ठाकुर का ग्राधिकार, स्वामीत्व का उपयोग। (३) महत्व, बड़प्पन, श्रेष्ठता। उ.—(क) हरि के जन का ग्राति ठकुराई। महाराज, रिषिराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई—१-४०। (ख) उन सम नहिं हमरी ठकुराई—१० उ. ३२।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर](१) ठाकुर या सरवार की स्त्री। (२) रानी। उ.—स्रदास प्रभु तहँ पग धारे जहँ दोऊ ठकुरानी—१० उ. १२०। (३) देवी। स्वामिनी। (४) क्षत्राणी।

ठकुराय—संज्ञा पुं. [हिं. ठाकुर] एक क्षत्रिय जाति।
ठकुरायत—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर] (१) ग्राधिपत्य,
प्रभुता। उ.—ठकुरायत गिरिधर की साँची। कौरव
जीति जुधिष्ठिर राजा, कीरति तिहूँ लोक मैं माँची—
१-१८। (२) ठाकुर या सरदार का ग्रधिकृत प्रदेश,
रियासत, जमींदारी।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टेकना, ठेकना+ग्रीर (प्रत्य.)]
कुलियों ग्रादि की सहारे की लकड़ी, सहारा, टेक।
ठक्कर—संज्ञा स्त्री. [हिं. टकर] चोट, ग्राघात।
ठक्कर—संज्ञा पुं. [सं.] देवता, पूज्य प्रतिमा।
ठग—वि. पुं. [सं. स्थग] (१) लुटेरा, घोला देकर धन
हड़पनेवाला। उ.—बटपारी, ठग, चोर उचका,
गाँठिकटा लठबाँसी—१-१८६।

(२) छली, धूर्त, धोलेबाज, कपटी।
ठगई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग+ई (प्रत्य.)](१) ठग का काम,
धोले से धन हड़पने की किया।(२) छल, धूर्तता।
ठगण—संज्ञा पुं. [सं.] पाँच मात्राग्रों का एक गण।
ठगत—कि. ग्र. [हिं. ठगना] धोला खाने से, भुलावे में पड़ने से, ठगे जाने से। उ.—िबनु देखें, बिनुहीं सुनें,

मुहा, — ठग लगना — ठगों का पीछे पड़ना।

ठगत न कोऊ बाँच्यौ (हो)—१-४४।
ठगना—कि, स. [हिं. ठग] (१) घोखा देकर धन
हड़पना। (२) छल करना, भुलावे में डालना।
महा.—ठगा सा—चिकत, भौचक्का, दंग।

(३) किसी चीज का उचित से श्रधिक मूल्य लेना।

क्रि. श्रा.—(१) घोखा खाकर माल खोना। (२)
घोखे में श्राना। (३) चिकत होना, चक्कर में पड़ना।
ठगनी—िव, स्त्री. [हं. ठग] (१) ठगनेवाली। (२)
छल-कपट करनेवाली, घोखा देनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—(१) ठग की स्त्री। (२) कुटनी। ठगपना—संज्ञा पुं. [हिं. ठग + पन](१) ठगने का भाव या काम। (२) धूर्तता, चालाकी, छल।

ठगमूरी—संशा स्त्री. [हिं. ठग + मूरी] एक नशीली जड़ीबूटी जिससे बेहोश करके ठग यात्रियों को लूटते हैं।
मुहा,—ठगमूरी खाना—होश-हवास में न होना।
ठगमूरी खायी—मतवाली हुई, होश हवास में न रही।
उ.—काहू तोहि ठगोरी लाई। बूक्ति सखी सुनित

नहिं नेकहुँ तुही किधौं ठगमूरी खाई—८४६।

ठगमोदक—संज्ञा पुं. [हिं. ठग+सं. मोदक] ठगों के निशील लड्डू। उ.—चलत चिते मुसकाय के मृदु बचन सुनाये। ते ही ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि-तन छूछो छिटकाए।

ठगलाड़ू—संज्ञा पुं. [हिं. ठग+लड्डू ] ठगों के नशीले लड्डू जिन्हें खाकर पथिक बेहोश हो जाता है।

मुहा,—ठगलाङ्क खाना—मतवाला या बेसुध होना। ठगलाङ्क खायो — मस्त या बेसुध हुए। उ.— सुर कहा ठगलाङ्क खायो। इत उत फिरत मोह को मातो कबहु न सुधि करि हरि चित लायो।

ठगवाना—क्रि. स. [हिं. ठगना का प्रे.] धोखा दिलाना।
ठगविद्या—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग+विद्या ] धोखेबाजी।
ठगहाई, ठगहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग] ठगपना।
ठगाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग+स्त्राई (प्रत्य.)] ठगपना,
छल, धोखा। उ.—हम जानें हिर हित् हमारे उनके
चित्त ठगाई—२७१८।

कि. त्र. [हिं, ठगाना] ठगा दिया।
ठगाठगी—संज्ञा स्त्री. [हिं, ठग] धोखाधड़ी, छल।
ठगाना—कि. त्र. [हिं, ठगना] (१) धोखे में हानि सहना।

(२) किसी वस्तु का उचित से श्रिधिक मूल्य देना।
ठगायौ— कि. श्र. [हिं. ठगाना ] ठगा गया, धोखा खा
गया, भुलावे में पड़ा। उ.—रे मन, जग पर जानि
ठगायौ। धन-मद, कुल-मद, तरुनी कें मद, भव-मद
हरि बिसरायौ—१-५८।

ठगाही—संश स्त्री. [हिं. ठगाई] ठगपना, छल।
ठिंगि—कि. श्र. [हिं. ठगना,] चक्कर में श्रा गयी, चिंकत हुई, दंग रह गयी। उ.—स्रदास ठिंग रही ग्वालिनी, मन हरि लियों श्राजोरि—१०-२७०।

क्रि. स.—धोखा दिया, धूर्तता की, भुलावे में डाला। उ.—श्रवहिं त तू करति ये ढँग, तोहिं

श्रव हीं होन । स्याम कों तू ऐसें ठिग लियो, कञ्ज न जाने जीन—७१६।

ठिगिन, ठिगिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग] (१) ठग की स्त्री। (२) धोखेबाज या धूर्त स्त्री।

वि.—ठगनेवाली, घोखेबाज, छल करनेवाली। उ.—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी—११६०।

ठिगिया—ित. [हिं. ठग ] धूर्त, छली, ठग।

ठगीं—कि. स. [हिं. ठगना ] ठग लीं, धोखा दिया, भुलावे में डालीं। उ.—मैं इहिं ज्ञान ठगीं ब्रजबनिता दियौ सुक्यों न लहीं—३-२।

ठगी —िक. स. [हिं. ठगना ] (१) ठग लिया। उ.— जनु हीरा हिर लिए हाथ तें ढोल बजाइ ठगी— २७६०। (२) धोखे में डाला, धूर्तता की।

मुहा.— रही ठगी—चिकत, भौचक्की, स्तब्ध। उ.—(क) तब हाँस के मेरी मुख चितयो, मीठी बात कही। रही ठगी, चेटक सौ लाग्यो, परि गई प्रीति सही—१०-२८१। (ख) इतने बीच आइ गये ऊधी रहीं ठगी सब बाम—३०५८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग] (१) धोखा देकर माल या धन लूटना। (२) ठगने का भाव। धूर्तता।

ठगे—कि. त्रा. [हिं. ठगना ] ठक से रह गये, दंग रहे। उ.—दीरघ मोल कह्यों ब्योपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार—१०-१७३।

मुहा.—ठगे से—स्तब्ध, ठक से। उ.—िबनु गोपाल ठगे से ठाढ़े श्रति दुबल तनु कारे-३४४६।

ठगै—िक. स. [हिं. ठग] घोखा देती है, भुलावे में डालती है। उ.—एकनि को दरसन ठगे, एकनि के सँग सोवै (हो)—१-४४।

ठगोर, ठगोरी, ठगोरी, ठगौरी, ठगौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठग+मूरि, ठगोरी] ठगमाया, मोहिनी, होना, जादू। उ.—(क) दसन चमक अधरिन अहनाई, देखत परी ठगोरि—६७०। (ख) संग लिकिनी चिल इत आवित, दिन-थोरी, अति छिन, तन-गोरी। सूर स्याम देखत ही रीभें, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी—६७२। (ग) सूर चिकत भई सुंदरी सिर परी ठगोर—ए. ३३७ (७१)। (घ) कुटिलकच

मृगमद तिलक छिब-बचन मंत्र ठगोर—ए. ३२७। ठग्यो—कि. स. [हिं. ठगना] ठग लिया, ठगा। उ.—चोली चतुरानन ठग्यो, श्रमर उपरना राते (हो)—१-४४।

ठट—संज्ञा पुं. [सं. स्थाता = जो खड़ा हो ] (१) बनाव, रचना, सजावट। (२) (बहुत सी वस्तुग्रों या व्यक्तियों का) समूह, भीड़। उ.—घर-घर तें नर-नारि मुदित मन गोपी ग्वाल जुरे बहु ठट री—८१०। मृहा.—ठट के ठट—ऋंड के भुंड। ठट लगना—

(१) भीड़ होना। (२) ढेर या राशि लगना।
कि. स. [हिं, ठटना] सजाकर, तैयार करके।
मुहा.—ठट कर बातें करना—एक एक शब्द पर
जोर देते हुए या गढ़ गढ़ कर बात करना।

ठटिक - कि. श्र. [हिं. ठिठकना] रुक कर, श्रडकर, ठिठककर। उ. - क्रोध गजपाल के ठटिक हाथी रह्यों देत श्रंकुस मसिक कहा सकानो - २५६०।

ठटकील, ठटकीला – वि. [हिं. ठाट] सजा-सजाया, ठाटदार, तड़क-भड़कवाला।

ठटकीली—िव. स्त्री. [हिं. ठटकीला ] सजी-सजायी, तड़क-भड़कदार। उ.—श्राछी चरनिन कंचन लकुट ठटकीली बनमाल कर टेके द्रुम डार टेढ़े ठाढ़े नंदलाल छिब छायी घट-घट—८३६।

ठटना—कि. स. [हिं. ठाट, ठाढ़] (१) स्थिर या निश्चित करना, ठहराना। (२) सुसन्जित या तैयार करना, सजाना।

कि. श्र.—(१) श्रड़ना, डटना। (२) तैयार होना। कि. स.—[हिं. ठाठ] (राग) छेड़ना, श्रारंभ करना।

ठटनि, ठटनी—संज्ञास्त्रो. [हिं. ठटना ] बनाव, सजावट, रचना । उ.—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन तुलिन ठटनी ।

ठटया—संज्ञा पुं. [ देश, ] एक जंगली जानवर ।
ठटरी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. ठाट ] (१) हिंड्डयों का ढाँचा ।
मुहा,—ठटरी होना—बहुत दुबला हो जाना ।
(२) घास श्रादि बाँधने का जाल । । (२) किसी
चोज का ढाँचा । (४) मुरदे की श्ररथी ।

ठटी-कि. स. [ हिं. ठाट, ठाढ़ ] ठहरायी, निविचत की, स्थिर की, ठानी, ग्रपनायी। उ.—(क) किचित स्वाद स्वान-बानर ज्यों, घातक रीति ठटी--१-६८। (ख) होत सु जो रघुनाथ ठटी।

ठटु—संज्ञा पुं. [ हिं. ठाट ] बनाव, रचना, सजावट। ठटै-कि. स. [हिं. ठाट, ठाड़, ठटना] निश्चित या स्थिर करता है, सोचता है। उ.—होत सो जो रघुनाथ ठटे। पचि-पचि रहें सिद्ध, साधक, मुनि तऊ न बहै-घटै - १-२६३।

ठट्ट-संशा पुं. [हिं. ठट] (१) ढेर। (२) समूह। महा. - ठट के ठट - भूँड के भूँड।

ठट्टी—संशा स्त्री. [हिं. ठाट ] हड्डी का ढाँचा, ठररी। ठट्ठइ, ठट्ठई-संज्ञा स्त्री. [ हिं. ठडा ] हँसी-दिल्लगी। ठट्ठा-संशा पुं. [सं. अडहास ] हँसी, खिल्ली।

मुहा.—ठट्ठा उड़ाना—खिल्ली उड़ाना। ठट्ठा मारना (लगाना)—खिलखिला कर हँसना। ठट्ठेबाज-वि. [ हिं. ठट्ठा+फ़ा, बाज ] मसखरा। ठट्ठेबाजी-संशा स्त्री. [हिं. ठट्ठा+फ़ा. बाजी ] दिल्लगी। ठठ-संशा पुं. [सं. स्थाता ] भीड़, समूह, ढेर। ठठई—संशा स्त्री, [हिं, ठट्ठा] हँसी-दिल्लगी। ठठकत-कि. श्र. [हिं. ठठकना ] ठिठक ठिठक कर, रक रक कर। उ.—सुनहु सूर ठठकत सकुचत ता गृह गये नंदकुमार—२०८१।

ठठकति-कि. ग्र. स्त्री. [हिं. ठठकना ] ठिठककर, रुक कर। उ.—ठठकति चलै मटिक मुंह मोरै बंकट भौंह चलावे।

ठठकना—कि. अ. [सं. स्थेष्ट+करण ] (१) ठिठकना, रुकना, ठहरना। (२) चिकत या स्तब्ध होना। ठठकान—संशा स्त्री. [हिं. ठठकना ] ठिठकने का भाव। ठठकि-कि. श्र. [हिं. ठिठकना ] (१) स्तंभित होकर, ठक रहकर, ठिठककर। उ.—(क) जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी। ठठिक रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी-५४०। (ख) मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर स्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय।

करना, ठहराना । (२) सजाना, तयार करना । कि. श्र.—(१) ग्रड़ना, डटना। (२) तैयार होना। ठठनि—संज्ञा स्त्री. [हं, ठठना ] (१) बनावट, रचना। (२) ठाठ, सजावट, तैयारी ।

ठठरी—संज्ञा स्त्री. [हि. ठटरी ] हड्डी का ढाँचा। ठठवा-संज्ञा पं. [ हिं, टाट ] एक मोटा कपड़ा। ठठा-संज्ञा पुं. [हिं. टट्ठा ] हँसी-दिल्लाी। ठठाना—कि. स. [ अनु. ठ । ठोंकना-पीटना ।

कि. अ. [ सं. अष्टहास ] खिलखिलाकर हंसना । ठियार—संशा पुं. [ देश. ] चरवाहा । ठिठिरिन-संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठेरा ] ठठेरे की स्त्री। ठुकना-कि. श्र. [हिं. ठिठकना ] (१) रुकना, ठहरना,

ठिठकना। (२) चिकत होना, ठक रह जाना। ठठेर-मंजारिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठेरा+सं. मार्जारिका]

ठठेरे की बिल्ली जो खड़खड़ाहट से नहीं डरती। ठठेरा—संज्ञा पुं. [ अनु. ठकठक ] बरतन बनानेवाला। संशा पुं. [हि. ठाँठ] ज्वार-बाजरे का डंठल। ठठेरी-संश स्त्री. [हिं. ठठेरा ] (१) ठठेरे की स्त्री।

(२) बरतन बनाने का काम। वि.—ठठेरों का, ठठेरे से संबंधित।

ठठेरे-संज्ञा पुं. बहु. [ हिं. ठठेरा ] बरतन बनानेवाल। मुहा. - ठठेरे ठठेरे बदलाई--धूर्त श्रीर कांइयाँ मनुष्यों का पारस्परिक व्यवहार । ठठेरे की बिल्ली-ऐसा भ्रादमी जो बुराई देखते-देखते उसका अभ्यस्त हो गया हो।

ठठोल-वि. [ हिं. ठट्ठा ] दिल्लगीबाज, मसखरा। संशा पं. — हँसी, ठठोली, मसखरापन । ठठोली-संशा स्रो. [हिं. ठट्ठा ] हँसी-दिल्लगी। ठड़कना-ांक. श्र. [हिं. ठिठकना ] रुकना, ठहरना। ठड़ा--वि. [सं. स्थातृ] जो बैठा न हो, खड़ा। ठड्डा—संज्ञा पं. [ हिं. ठड़ा ] (१) रीढ़ की हड्डी, रीढ़। (२) पतंग की खड़ी कमाची।

ठढ़ा—वि. [सं. स्थातु ] जो बैठा न हो, खड़ा। ठिंद्या, ठढ़ ई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाढ़ ] ऊँची स्रोखली। ठिंद्याना—कि, स. [हि. ठढ़ा ] खड़ा करना। ठठना—िक, स. [हिं, ठटना] (१) निश्चित या स्थिर ठढ़े—िक, स्र. [हिं, ठढा] खड़े हुए। उ.—सूरदास

बिपरीत बिधाते यहि तनु फेरि ठढ़े—३३६६। ठन - संशा स्त्री. [ त्रानु. ] धातुखंड का शब्द। ठनक—संशा स्त्री. [ अनु. ] (१) मृदंग आदि बाजों का शब्द। (२) रहरह कर होनेवाली पीड़ा, कसक। ठनकना—कि. श्र. श्रिनु, ठनठन (१) ठनठन शब्द करता। (२) रहरह कर पीड़ा या कसक होना। मुहा. —माथा ठनका — किसी बुरे लक्षण को देखकर दुख, हानि या अनिष्ट की आशंका होना। ठनका — संज्ञा पु. [हिं. ठनक] (१) ठनकने का शब्द। (२) श्राघात, ठोकर । (३) रहरहकर होनेवाली पीड़ा । क्रि. श्र.—(१) शब्द निकला। (२) पीड़ा हुई। ठनकाना कि. स. [हि. ठनकना ] 'ठनठन' करना। मुहा. -- रपया ठनका लेना -- रपया वसूल करना। ठनकार—संशा पं. [ अनु. ठनठन ] 'ठनठन' शब्द । ठनगन-संशा पुं, [ अनु, ठनठन ] किसी शुभ अवसर पर नेग या पुरस्कार पानेवाले की भ्रड़। ठनठन—संशा पं. [ श्रनु. ] धातुखंड बजने का शब्द। ठनठनगोपाल—संशा पुं. [ अनु. ठनठन+गोपाल = कोई व्यक्ति ] (१) आदमी जिसके पास कछ न हो। (२) वस्तु जो छूछी श्रीर निस्सार हो। ठनठनाना - क्रि. स. [ श्रनु. ] 'ठनठन' शब्द निकालना । कि. श्र.—'ठनठन' होना या बजना। ठनना कि. श्र. [हिं. ठानना ] (१) किसी कार्य या भाव का छिड़ना या आरंभ होना। (२) मन में

(४) मुस्तैद होना।

मुहा,—किसी बात पर ठनना—(१) कोई काम
करने को तैयार होना। (२) किसी बात पर
भगड़ा होना।

पक्का या निश्चित होना। (३) धारण किया जाना।

ठनाका—संशा पुं, [श्रनु, ] 'ठनठन' शब्द । ठनाठन—क्रि, वि. [श्रनु, ] 'ठनठन' शब्द के साथ। ठप—वि, [श्रनु, ] (चलता हुग्रा कार्य या व्यापार) किसी कारण से एक जाना।

ठपका—संज्ञा पुं. [ देश.] धक्का, ठोकर, ठस।
ठप्पा—संज्ञा पुं. [ सं. स्थापन, हिं. थापन, थाप ] (१)
लकड़ी भ्रादि का साँचा। (२) लकड़ी का बेलबूटेदार

खापा। (३) छाप।
ठभोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठठोली ] हँसी-दिल्लगी।
ठमक—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठमकना ] (१) ठहरने का भाव।
(२) रुकावट। (३) चलने की ठसक या लचक।
ठमकना—िक. त्र्य. [सं. स्तंभ हिं. थम+करना ] (१)
ठिठकना, रुकना। (२) ठसक या लचक से चलना।
ठमकाना, ठमकारना—िक. स. [हिं. ठमकना ] (१)
ठहराना, रोकना। (२) चलने में ठसक या
हावभाव दिखाना।

ठयना—िक, स. [सं. श्रनुष्ठान] (१) दृढ़ संकल्प के साथ कोई काम श्रारंभ करना या छंड़ना। (२) श्रच्छी तरह से करना। (३) मन में ठहराना, निश्चित या पक्का करना।

कि, छ.—(१) दृढ़ संकल्प के साथ कोई काम आरंभ होना या छिड़ना। (२) मन में निश्चित या दृढ़ होना।

कि. स. [सं. स्थापन, प्रा. ठावन] (१) ठहराना, स्थापित करना। (२) लगाना, नियोजित करना। कि. या.—(१) जमना, बैठना। (२) लगना, नियोजित होना।

ठये—क्रि. स. [हिं. ठयना ] किया, बनाया, सजाया। उ.—करति प्रतीति आपु आपुन तें सबन सिंगार ठये—१० उ. १०७।

ठयो, ठयोे—िक. स. [हिं. ठयना ] (१) किया, ठाना, छेड़ा, ग्रारंभ किया। उ.—(क) होत समय तिन रोदन ठयों—३-७। (ख) इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियो। तब भृगु रिषि उपाइ यह ठयों—४-५। (२) माना, ग्रनुभव किया। उ.—िबनु देखें ताकों सुख भयों, देखे ते दूनों दुख ठयों—१-२८६।

क्रि. स.—(१) स्थापित किया, ठहराया, बैठाया।
(२) लगाया, नियोजित किया। उ.—विधिना
ग्रिति ही पोच कियो री। "। रोम रोम लोचन
एकटक करि जुवतिन प्रति काहे न ठयौ री-१५०६।
ठरना—क्रि. श्र. [सं. स्तब्ध, प्रा. ठड्ड+ना (प्रत्य.)]

(१) सरदी से ठिठुरना, श्रकड़ना या सुन्न होना। (२) बहुत ठंड पड़ना। ठरमरुखा, ठरुखा—वि. [हिं. ठार+मारना ] (फसल) जो पाले से मारी गयी हो।

ठरी—संज्ञा पुं. [हिं. ठड़ा=खड़ा] (१) मोटा सूत। (२) महुए की मामूली शराब। (३) ग्राँगियाँ की तनी। (४) भद्दा मोती।

ठवना—िक. स. [हिं. ठयना] (१) ठानना, छेड़ना। (२) करना, कर चुकना। (३) मन में ठहराना, निश्चित करना।

कि. श्र.—(१) ठनना। (२) मन में दृढ़ होना। कि. स.—(१) बैठाना, ठहराना। (२) नियोजित करना।

कि. स.-(१) स्थित होना। (२) नियोजित होना। ठविन, ठविनी—संज्ञा स्त्री. [मं. स्थापन, हिं. ठविनाः वैठना या सं. स्थान ] (१) बैठक, स्थिति। (२) खड़े होने की मुद्रा।

ठवर—संज्ञा पुं. [हिं. ठौर ] स्थान, ठौर ।
ठस—िव. [सं. स्थारन=हढ़ता से जमा हुग्रा ] (१)
ठोस, कड़ा । (२) भीतर से भरा हुग्रा । (३) घनी
बुनावट का । (४) दृढ़, मजबूत । (५) भारी, वजनी ।
(६) सुस्त, ग्रालसी । (७) (सिक्का) जिसकी ग्रावाज
ठीक न हो (८) भरापुरा, धनी, संपन्न । (६) कंजूस ।
(१०) हठी, जिही ।

ठसक—संज्ञा स्त्री. [हैं, ठस ] (१) नाज-नखरा, गर्वभरी चेट्टा। (२) ज्ञान, घमंड, ग्रिभमान।

ठसकदार—िव. [हिं. ठसक+फ़ा, दार] (१) नाज-नखरेवाला, घमंडी। (२) शानदार, तड़क-भड़कदार। ठसका—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) सूखी खाँसी। (२) धक्का। संज्ञा स्त्री. [हिं. ठसक] नखरा, शान।

ठसाठस— कि. वि. [हिं. ठस ] दबादबाकर भरा हुग्रा। ठस्सा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) ठसक, नखरा। (२) घमंड, ग्रहंकार। (३) ठाट-बाट, ज्ञान। (४) खड़े होने की मुद्रा, ठवनि।

ठह—िक्र. श्र. [हिं. ठहना] बनाकर, सजाकर।
मुहा.—ठह ठहकर बोलना—हाब-भाव के साथ
रकरक कर बोलना। ठहकर—श्रम्छी तरह जमकर।
टहक—संशा स्त्री. [श्रनु.] नगाड़े का शब्द।

ठहना—िक. श्र. [श्रनु.] (१) घोड़ों का हिनहिनाना। (२) घंटे का बजना, ठनठनाना, घनघनाना।

कि. श्र. [ सं. स्था, प्रा. ठा ] बनाना, सँवारना । ठहर—संशा पुं. [ सं. स्थल ] (१) स्थान, जगह। (२) लिपा-पुता स्वच्छ स्थान, चौका।

मुहा.—ठहर देना—चौका लगाना।
ठहरना—क्रि. श्र. [सं. स्थैर्य+ना (प्रत्य.)] (१) रुकना,
थमना। (२) टिकना, विश्राम करना। (३) इधरउधर न होना—एक स्थान पर बना रहना।

मुहा.—मन (चित्त) ठहरना—चित्त शांत होना। तिबयत ठहरना—तिबयत ठीक होना।

(४) ग्रड़ा या टिका रहना। (४) बना रहना, न मिटना, नष्ट न होना। (६) जल्दी न टूटना-फूटना। (७) घुली हुई चीज का नीचे बैठना, थिराना। (६) प्रतीक्षा करना, घीरज रखना। (६) कार्य ग्रारंभ करने में देर करना, ग्रासरा देखना। (१०) किसी बात या काम का रुकना, थमना। (११) पक्का होना, निश्चित होना।

महा.-किसी बात का ठहरना-विचार स्थिर होना।
ठहराइ-कि. श्र. [हिं. ठहरना] स्थिर होता है रकता
है, एकाग्रता श्राती है। उ.—जबै श्रावों साधु-संगति,
कञ्जक मन ठहराइ—१-४५।

ठहराई—कि. स. [हिं. ठहराना] निश्चित की, पक्की की, स्थिर की। उ.—मन मैं यहै बात ठहराई। होइ श्रसंग भजों जदुराई—५-३।

संज्ञा स्त्री.— (१) ठहराने की किया। (२) ठहराने की मजदूरी। (३) श्रिधकार, कब्जा।

ठहराउ—संशा पुं. [हिं. ठहराव] (१) ठहरने का भाव, स्थिरता। (२) निश्चय, स्थिर किया हुन्ना विचार। ठहराऊ—वि. [हिं. ठहरना] (१) ठहरने या रुकनेवाला।

(२) नष्ट न होनेवाला। (३) टिकाऊ, मजबूत। टहरात—कि. ग्रा. [हिं. ठहरना] टिकता है, हिलता- डुलता नहीं। उ.—मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै-ले भरि-भरि—१०-१२०।

ठहरान—संशा स्त्री. [हिं. ठहरना] ठहरने या स्थिर होने की किया। उ.—संत दरस कबहूँ जौ होइ। जग-सुख मिथ्या जाने सोइ। पे कुबुद्धि ठहरान न देइ। राजा कों श्रांकम भरि लेइ—४-१२।

ठहराना—िक. स. [हिं. ठहरना] (१) चलने से रोकना, थामना। (२) टिकाना, विश्राम कराना। (३) टिकाना, श्रड़ाना, स्थित करना। (४) इधर-उधर न जाने देना। (५) काम या बात को बंद करना। (६) पक्का या तय करना।

ठहरानी—कि. श्र. [हिं. ठहरना ] टिकी, स्थिर रही। उ.—ळूटत ही उड़ि मिले श्रापुन कुल, प्रीति न पल ठहरानी—३४७५।

ठहराने—कि. श्र. [हिं. ठहरना] स्थिर हुए। उ.— इक टक रहे चकोर चंद ज्यों निमिष बिसरि ठहराने —ए. ३२२।

ठहराय - कि. श्र. [हिं. ठहरना ] रुके, स्थिर रहे।

मुहा. -- सके नहिं ठहराय -- रुक न सके, सामने

न ठहर सके। उ. -- श्रंग निरिष्व श्रनंग लिजत

सके नहिं ठहराय।

ठहरायोे—िक. स. [हिं. ठहराना ] निश्चित किया, क्यिर किया, विचार दृढ़ किया। उ.—तब नारद मुनि श्राय चक्र सों बात करन ठहरायोे—सारा, ६६२। ठहराव—संज्ञा पुं. [हिं. ठहरना ] (१) ठहरने का भाव,

(वि—संशा पु. िह. व्हरना ] (१) व्हरना परा नाप स्थिरता। (२) निश्चय, स्थिर किया हुग्रा मत।

ठहरावत—कि. स. [हिं. ठहराना ] टिकाते हैं, श्राक-षित करते हैं। उ.—बरन-बरन मंदिर बने लोचन ठहरावत—२५६०।

ठहराविति—क्रि. स. [हिं. ठहराना ] स्थिर करती है; एक टक जमाती है। उ.—कैसे स्थाम अर्ग अव-लोकति क्यों नैनन को ठहरावत री—२६३४।

ठहरावै—िक्र. स. [हिं. ठहराना] (१) चलने से रोकता है। (२) टिकाता है, विश्राम देता है। (३) पक्का करता है, तय करता है, निश्चित करता है।

ठहरु—संज्ञा पुं. [हिं. ठहर ] स्थान, जगह।

ठहरौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहराना ] विवाह में वर पक्षवालों का कन्या पक्षवालों से धन आदि संबंधी करार।

ठहाका—संशा पुं. [ श्रनु. ] जोर की हंसी।

वि.—चटपट, तुरंत, तड़ से।
ठिहियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँव] जगह, ठिकाना।
ठिही—कि. श्रा. भूत [हिं. ठहना] बचायी, रक्षा की, संवारी। उ.—पूरे चीर, श्रांत नहिं पायी, दुरमित हारि लही। सूरदास प्रभु द्रुपद-सुता की, हरि जू लाज ठही—१-२५८।

ठाँ—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. ठाँव] ठाँव, स्थान, ठिकाना। उ.—(क) महर कंठ लावत, मुख पोंछत, चूमत तिहिं ठाँ स्त्रायौ—१०-१५६। (ख) भीतरि भरि भोग भामिनी की तेहि ठाँ कौन पठाऊँ—१० उ. ८५।

संशा पुं. [ श्रनु. ] बंदूक की श्रावाज। ठाँई—संशा स्त्री. पुं. [हिं. ठाँव] (१)स्थान, ठौर, ठिकाना। (२) तई, प्रति। ३) पास, निकट, समीप।

ठाँउँ, ठाँउँ—संज्ञा पुं. [हिं. ठाँव] स्थान, आश्रय, ठिकाना। उ.—(क) कृपा अब की जिये बिल जाउँ। नाहिंन मेरे और कोउ, बिल, चरन-कमल बिन ठाँउँ—१-१२८। (ख) रंक सुदामा कियो अजाची, दियो अभय-पद ठाँउँ—१-१६४।

ठाँठ—वि. [ श्रनु. ठनठन ] (१) जो सूख गया हो,नीरस। (२) जो (गाय-भेंस) दूध न देती हो।

ठाँयँ—संज्ञा पुं. स्त्री. [हिं. ठाँव] (१) स्थान, ठिकाना, ठौर। (२) पास, निकट, समीप।

संज्ञा पुं. [ अनु. ] बंदूक छूटने का शब्द । ठाँयँ ठाँयँ—संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] (१) बंदूक छूटने का शब्द । (२) लड़ाई-भगड़ा ।

ठाँव—संज्ञा पुं. स्त्री. [ सं. स्थान, पा. ठान ] स्थान, ठौर, िकाना। उ.—एक गाँव एक ठाँव को बास एक तुम केही क्यों में सैहों—८४३।

ठाँसना-कि, स. [सं. स्थास्तु=मजबूती से बैठाया हुत्रा ] (१) कसकर घुसेड़ना। (२) दबा-दबाकर भरना। (३) रोकना, मना करना।

कि. श्र.—िबना कफ निकाले जोर से खाँसना।
ठाँहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँहीं] (१) स्थान, ठौर, ठिकाना।
(२) तहं, प्रति। (३) पास, निकट, समीप।
हाई—िक्रि. स. [हिं. ठयना] सजाये, पहने। उ.—उलटे
श्रंम श्रभूषन ठाई—ए. ३३८ (७५)।

ठाकुर—संज्ञा पुं. [सं. ठक्कुर ] (१) देव-मूर्ति, देवता।
(२) ईव्वर, भगवान, परमेव्वर। उ.—स्रदास प्रभु
पूरन ठाकुर, कह्यो, सकल में हूँ नियराई—७-४।
(३) मालिक, स्वामी, प्रभु। उ.—(क) हिर सौं ठाकुर
स्त्रोर न जन को। जिहिं जिहि बिधि सेवक सुख
पावै, तिहिं बिधि राखत मन कौं—१-६। (ख)
हिं बिधि कहा घटेगो तेरौ। नंदनँदन किर घर
को ठाकुर न्त्रापुन हुँ रहु चेरौ—१-२६६।
(४) गाँव का मालिक, जमोदार। उ.—(क) घर
मैं गथ निहं भजन तिहारौ जीन दिये मैं छूटौं।
धर्म-जमानत मिल्यौ न चाहै तातें ठाकुर लूटौ—
१-१८५। (ख) घर के ठाकुर कें सुत जायौ—१०३२। (५) पूज्य या स्नादरणीय व्यक्ति। (६) नादयों
को उपाधि।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पुं. [हिं. ठाकुर + सं. द्वार ] देवालय, मंदिर।

ठाकुरबाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर + बाड़ा, बाड़ी= घर ] देवालय, मंदिर।

ठाकुरसेवा—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर+सेवा] (१) देवता का पूजन। (२) धन-संपत्ति जो मंदिर के नाम हो। ठाकुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाकुर] ठकुराई, स्वामित्व। ठाट—संज्ञा पुं. [सं. स्थातृ = खड़ा होनेवाला] (१) लकड़ी या बाँस की खपिच्चयों का बना ढाँचा या परदा। (२) ढाँचा, पंजर।

ठाट खड़ा करना— ढाँचा तैयार करना। ठाट खड़ा होना—ढाँचा तैयार होना।

(३) सजावट, बनावट, शृंगार । उ.— (क) ब्रज नर-नारि ग्वाल-बालक कहें कोने ठाट रच्यो । (ख) पिहिरि पटंबर किर श्राडंबर बहु तन ठाट सिंगारयो । मुहा.—ठाट बदलना—(१)नया रूप-रंग दिखाना । (२) मतलब गाँठने के लिए भूठा रूप-रंग बनाना या वेष-भूषा धारण करना । (३) भूठमूठ का श्रिधकार या बड़प्पन जताना, रंग बाँधना ।

(४) तड़क-भड़क, धूमधाम । (५) चैनचान । भुहा, —ठाट मारना —चैन करना, मजे उड़ाना ।

ठाट से रहना — चैन या आराम से दिन बीतना ।

(६) रीति, प्रकार, ढंग, ढब। (७) श्रायोजन, सामान, प्रबंध, श्रनुष्ठान, समारंभ। उ.—सोइ तिथि बार-नछन्नु-ग्रह, सोइ जिहिं ठाट ठयो। तिन श्रंकन कोउ फिरि नहिं बॉचत, गत स्वारथ समयो—१-२६८। (६) माल-श्रसबाब, सामान। (६) युक्ति, उपाय, रीति, व्यवहार, डौल। इ.—(क) पेड़ पेड़ तह के लगे ठाटि ठगन को ठाट—१००६। (ख) कहा हाथ परयो सठ श्रकूर के यह ठग ठाट ठए—३१४१। (१०) कुइती का पैतरा।

मुहा.—ठाट बदलना - पैतरा बदलना । ठाट बाँधना—वार करने की मुद्रा में खड़ा होना ।

(११) कबूतर भ्रादि पक्षियों का प्रसन्नता से पंख फड़फड़ाने या भाड़ने की क्रिया या रीति। (१२) सितार का तार।

संज्ञा पुं.—(१) समूह, भुंड। (२) अधिकता, प्रचुरता। (३) बैल या साँड़ की गरदन का कूबड़। ठाटना—िक स. [हिं. ठाट] (१) रचना, बनाना। (२) ठानना, अनुष्ठान करना। (३) सजाना। ठाटबंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाट+बंदी] (१) बाँस की खपिचयों और फूस का परदा या ढाँचा बनाने की किया। (२) इस प्रकार बना हुआ ढाँचा, टट्टर। ठाट-बाट—संज्ञा पुं. [हिं. ठाट](१) सजावट, सजधज।

(२) धूमधाम, साजबाज, तड़क-भड़क, शानशौकत।
ठाटर—संशा पुं. [हिं. ठाट] (१) बाँस की खपिच्यों
का टट्टर।(२) ठटरी,पंजर।(३) ढाँचा।(४)
ठाटबाट, सजावट।

ठाटि—िक. स. [हं. ठाटना] (१) रचकर, संयोजित करके, सजाकर, सँवारकर । उ.—में विरंचि विरच्यो जग मेरी, यह किह गर्व बढ़ायो । ब्रज-नर-नारि, ग्वाल-बालक, किह कोनें ठाटि रचायो—४३६। (२) ठानकर, आयोजिस करके, अपनाकर । उ.— पेड़ पेड़ तरु के लगे ठाटि ठगन के ठाट १००६। ठाटी—िक. स. [हिं. ठटना] ठानी, आयोजित की। उ.—बार-बार अनुस्चि उपजानित, महरि हाथ लिए साँटी। महतारी सो मानत नाहीं कपट-चतुराई

ठाटी--१०-२५४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाट] ठट, समूह, श्रेणी।
टाटु, ठाठ—संज्ञा पुं. [हिं. ठाट] (१) ढाँचा। (२)
सजावट। (३) चैनचान। (४) ढंग। (४) तैयारी।
टाठना—क्रि. स. [हिं. ठाटना] (१) बनाना, रचना।

(२) ठानना, श्रायोजित करना। (३) सजाना, सँवारना। ठाठर—संज्ञा पुं. [ हिं. ठाटर ] (१) टट्टर। (२) टठरी, पंजर। (३) ठाट-बाट, सजावट, बनावट।

संशा पुं. [देश.] नदी का काफी गहरा भाग।

ठाड़ा, ठाढ़ा—संशा पं. [हिं. खड़ा ] (१) खड़ा, जो बैठा न हो। (२) जो पिसा-कुटा न हो, साबुत। (३) उत्पन्न।

मुहा. — ठाढ़ा देना — ठहराना, टिकाना। वि. — हट्टा-कट्टा, बली, मजबूत।

ठाढ़—वि. [हिं. ठाढ़ा] खड़े। उ.—तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े, श्राह कुस हाथ धरे—१०-२४।

ठाड़ा — वि. [सं. स्थातृ] (१) खड़ा, जो बैठा न हो। (२) समूचा, साबुत, सारा।

ठाढ़ीं—िक. त्र. [हिं. ठाढ़ा ] खड़ी हैं। उ.—त्रष्ट महा-सिधि द्वारें ठाढ़ीं, कर जोरे, डर लीन्हे—१-४०।

ठाढ़े — कि. ग्र. [हिं. ठाढ़ा ] खड़े थे, खड़े रहे। उ.— ठाढ़े भीम,नकुत्त, सहदेवऽरु नृप सब कुष्न समेत-१-६।

ठाढ़ेश्वरी—संज्ञा हैंपुं. [ हिं. ठाढ़+ईश्वर ] साधु जो श्राध्यात्मिक साधना के लिए दिन-रात खड़े रहते हैं; खड़े खड़े ही खाते-पीते श्रीर सोते हैं।

ठाढ़ो ठाढ़ों—िक. ग्र. [हं. ठाढ़ा] (१) खड़ा हुग्रा। उ.—(क) रोर के जोर तें सोर घरनी कियो, चल्यों द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ों—१-५। (ख) काकें द्वार होउँ ठाढ़ों, देखत काहि सहाउँ—१-१२८। (२) उत्पन्न, पैदा।

मुहा.—दयो ठाड़ो—ठहराया, टिकाया। उ.— बारह वर्ष दयो हम ठाड़ो यह प्रताप बिनु जाने। अब प्रगटे बसुदेव सुवन तुम गर्ग बचन परिमाने।

ठादर—संज्ञा पुं. [देश.]रार, भगड़ा, मुठभेड़। उ.— देव श्रापनो नहीं सँभारत करत इंदु सों ठादर— ६४६। ठान—संशा स्त्री. [सं. अनुष्ठान] (१) कार्य का ग्रारंभ या आयोजन। (२) ग्रारंभ किया हुग्रा काम। (३) दृढ़ संकल्प, पक्का इरादा। (४) चेष्टा, मुद्रा, ग्रंग-संचालन। उ.—पाछे, बंक चिते मधुरे हँसि गात किए उलटे सु ठान सौं।

ठानत कि. स. [हिं. ठानना ] करता है, श्रारंभ करता है। उ.— तातें हमरी श्रस्तुति ठानत १० उ.१२७। ठानना कि. स. [सं. श्रनुष्ठान, हिं. ठान ] (१) किसी काम को तत्परता श्रीर संकल्प के साथ श्रारंभ करना। (२) मन में दृढ़ या स्थिर करना, दृढ़ संकल्प करना।

ठानहु—िक. स. [हिं. ठानना ] तत्परता से भ्रारंभ करो। उ.—गोवर्धन की पूजा ठानहु—१०१६।

ठाना—िक, स. [हिं. ठोनना](१) तत्परता ग्रीर संकल्प से श्रारंभ किया, छेड़ा।(२) मन में ठहराया या निश्चित किया।:(३) स्थापित किया, धरा।

ठानि—कि. स. [हिं. ठानना ] निश्चय कर, दृढ़ संकल्प कर, कोई बात ठानकर। उ.—सूर सो सुहृद मानि, ईश्वर श्रंतर जानि, सुनि सठ, भूठो हठ-कपट न ठानि—१-७७।

ठानी—कि. स. [हिं. ठानना] (१) मन में निश्चित की, दृढ़ संकल्प किया। उ.—(क) जन्म तें एक टक लागि श्रासा रही, बिषय-बिष खात नहिं तृष्ति मानी। जो छिया छरद करि सकल संतिन तजी, तासु ते मूढ़-मित प्रीति ठानी—१-११०। (ख) ठानी हुती श्रोर कछु मन में, श्रोरे श्रानि ठई—१-२६६। (ग) लीन्हे गोद बिभीषन रोवत कुल-कलंक ऐसी मांत ठानी—६-१६०। (घ) हरि माँग्यो माखन, नहिं दीन्हयो, तब मन में रिस ठानी—सारा. ४४८। (२) तत्परता के साथ श्रारंभ की। उ.—श्रर्ध निसा बजनारि संग ले बन बंसी लीला ठानी—३४०२।

ठानै—िक. स. [हि. ठानना ] स्थिर करता है, वित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करता है। उ.—उनमत ज्यों सुख-दुख नहि जाने। जागे वहै रीति पुनि ठाने—४-१२।

ठानो, ठानो-कि. स. [हिं. टानना] किया, माना,

ठाना। उ.—ऐसी बातनि भगरो टानो हो मूरख े तेरो कौन हवाला-१०३४।

ठान्यो, ठान्यो—क्रि. स. [हिं. ठानना ] (१) अनुष्ठित की, दृढ़तापूर्वक आरंभ की। उ.—विप्रनि बेद-धर्म नहिं जान्यौ । तातें उन ऐसौ बलि ठान्यौ-1-३। (२) मन में ठहराया, निश्चित किया। उ.—(क) अबलन को लै सो वत ठान्यौ जो जोगनि को जोग—३०८३। (ख) सुफलक सुत मिलि ढंग ठान्यौ है--३३५१।

ठाम—संज्ञा पुं. [सं. स्थान ] (१) स्थान, जगह ।उ.— छाँ इ न करत सूर सब भव-डर बुंदाबन सौं ठाम---१-७६। (१) भ्रंग-संचालन, मुद्रा, ठवनि । (३) शरीर की दीप्ति या कान्ति।

ठायँ—संज्ञा पुं., स्त्री. [हिं. ठाँव.] ठौर, ठिकाना, स्थान। ठार-संज्ञा पुं. [सं. स्तब्ध, प्रा. ठड्ड, ठड़ ] (१) कड़ा जाड़ा या शीत। (२) पाला, हिम।

ठारे—संज्ञा पुं., स्त्री. [ हिं. ठौर ] ठौर, स्थान, जगह। उ.—पूरव पवन स्वाँस उर ऊरध स्रानि जुरे इक ठारे—३३८४।

ठाल-संशा स्त्री. [हिं. निठल्ला] (१) बेकारी, बेरोज-गारी। (२) फुरसत, खाली समय।

वि. — जो खाली या बेकार हो, निठल्ला। कमी, बेकारी। (२) श्रामदनी की कमी। वि -- खाली, बेकार, निठल्ला।

मुहा. — ठाला बताना — बिना कुछ दिये टरकाना । ठाली-वि. स्त्री. [हिं. निठल्ला] खाली, बेकार, निठल्ली, जिसके पास काम-धंधा न हो। उ.—ऐसी को ठाली बैसी है तो सौं मूड़ चढ़ावै (चरावै)— ३२८७।

ठावँ – संज्ञा स्त्री., पूं. [हिं. ठाँव] स्थान, जगह, ठिकाना। यौ. - ठावँ हिं - ठावँ - स्थान - स्थान पर, भ्रनेक स्थानों पर । उ.—श्रनंद श्रतिसे भयौ घर-घर, नृत्य ठावँ हिं-ठावँ — १०-२६।

ठावना—कि. स. [हिं ठाना] (१) ठानना, आरंभ करना। (२) मन में ठहराना, संकल्प करना।

ठासा—संज्ञा पुं. [हिं, ठाँसना] लोहारों का एक ख्रोजार। ठाह—संज्ञा स्त्री हिं ठहना ] (१) ठहने की किया या भाव। (२) संगीत में साधारण से अधिक समय लगाकर गाने की क्रिया या भाव, विलंबित।

ठाहना-कि. स. [हि. ठहरना ] संकल्प करना। ठाहर, ठाहरु—संशा पुं. [सं. स्थल, हिं. ठहर ] (१) स्थान, जगह। उ.—(क) सुक-सुता जब आई बाहर। बसन न पाए तिन ता ठाहर—६-१७४। (ख) तातें खरी मरत इहिं ठाहर—३३६१। (ग) सर्वव्यापी तुम सब ठाहर-१० उ. १ ६। (२) निवास स्थान, बसने या टिकने का स्थान।

ठाहीं-संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाँई ] (१) स्थान, जगह। (२) तई, प्रति । (३) समीप, पास, निकट । ठिंगना — वि. [हिं. हेठ+श्रंग ] छोटे कद का, नाटा। ठिंगनी-वि. स्त्री. [हैं. ठिंगना ] छोटे कद की, नाटी। ठिक-संशा स्त्री. [हिं. टिकिया ] धातु की चकती। संज्ञा स्त्री, [हिं, टिकना] स्थिरता, ठहराव।

ठिकठान-संज्ञा पुं. [ हिं. ठीक+स्थान ] ठौर, ठिकाना । ठिकठैन, ठिकठैना—संज्ञा पुं. [हिं. ठीक + ठयना] प्रबंध। ठिकड़ा, ठिकरा—संज्ञा पुं. [ हिं. ठीकरा ] घड़े स्रादि मिट्टी के पात्र का टूटा हुआ टुकड़ा।

ठिकना — कि. श्र. [हिं ठिठकना ] ठहरना, रुकना। ठोला—संज्ञा पुं, [हिं, निठल्ला] (१) रोजगार की ठिकरी—संज्ञा स्त्री, [हिं, ठीकरी] (१) मिट्टी के बरतन का दुकड़ा। (२) तुच्छ चीज। (३) चिलम का तवा।

> ठिकान, ठिकाना—संज्ञा पुं. [ हिं. टिकान ] (१) स्थान, ठौर । (२) निवास-स्थान, रुकने-ठहरने की जगह। (३) ग्राश्रय, जीविका, निर्वाह का स्थान।

मुहा:—ठिकाना करना—(१) जगह या स्थान नियत करना। (२) टिकना, डेरा डालना। (३) श्राश्रय ढूँढ़ना, जीविका ठीक करना । (४) ब्याह ठीक करना । ठिकांना ढूँढ़ना—(१) जगह तलाश करना। (२) ठहरने या टिकने की जगह खोजना। (३) नौकरी खोजना। (४) कन्या के लिए वर खोजना। (किसी का) ठिकाना लगना—(१) ठहरने या दिकने का स्थान भिलना। (२) जीविका का

प्रबंध होना। (३) कन्या का विवाह हो जाना।

(४) ठीक,प्रमाण, यथार्थता। (५) प्रबंध, बंदोबस्त।
मुहा,—ठिकाना लगना—प्रबंध होना, प्राप्ति
का डौल होना। ठिकाना लगाना—प्राप्ति का डौल
लगाना।

(६) श्रंत, हद, सीमा, पारावार।

कि. स. [हिं. ठिकना] ग्रड़ाना, स्थित करना। ठिकान, ठिकानें —संशा पुं. सवि. [हिं. ठिकाना] ठिकाने पर, स्थान पर।

मुहा.— ठिकानें आवे — (१) निश्चित या नियत स्थान पर पहुँचे। उ.—चलत पथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डिर मरिहै सोइ। जो कोउ ताकों निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकानें आवै— ३-१३। (२) ठीक विषय, विचार या निष्कर्ष पर पहुँचे। (३) भ्रसली या मतलब की बात छेड़े या कहे। ठिकाने की बात-(१) ठीक या ग्रसली बात। (२) समभ्रदारी की बात। (३) पते या भेद की बात। ठिकाने न रहना—चंचल हो जाना ठिकाने पहुँचाना—(१) ठीक जगह पर पहुँचाना। (२) किसी चीज को नष्ट या लुप्त करना। (३) मार डालना। ठिकाने लगना—(१) ठीक जगह पर पहुँचना। (२) काम या उपयोग में भ्राना। (३) सफल होना। (४) मर जाना। ठिकाने लगाना— (१) ठीक जगह पहुँचाना । (२) काम या उपयोग में लाना। (३) सफल करना। (४) खो देना, लुप्त कर बेना। (४) खर्च कर डालना। (६) काम-धंधे से लगाना । (७) काम पूरा करना । (८) मार डालना । ठिकानो — संज्ञा पुं. [हिं. टिकान ] (१) ठिकाना, स्थान। (२) श्राश्रय स्थान, श्रवलंब । उ. — श्रपने हीं श्रज्ञान-तिमिर में, बिसरयौ परम ठिकानौ--१-४७।

ठिठकना—कि. श्र. [ सं. स्थित + करण ] (१) चलते-चलते रुकना, ठहरना। (२) श्रंगों का स्थिर होना, ठक या स्तब्ध हो जाना। ठिठरना, ठिठुरना—कि. श्र. [सं. स्थित ] सरदी से ऐंडना या श्रकड़ना, बहुत सरदी खा जाना।

िछनकना—क्रि. श्र. [ श्रनु. ] (१) बच्चों का रह रह

कर रोने-सा शब्द निकालना । (२) रोने कां नखरा करना ।

ठिया—संज्ञा पुं. [ सं. स्थित ] (१) गाँव की सीमा या हद का पत्थर। (२) चाँड, थूनी, टेक। (३) टिकने का ठीहा, चबूतरा।

ठिर—संशा स्त्री. [ सं. स्थिर ] कड़ा जाड़ा, पाला। िठरना—क्रि. स. [ हिं. ठिर ] सरदी से ठिठुरना

कि. श्र.—बहुत ज्यादा सरदी पड़ना।
ठिलाना—िक. श्र. [हिं. ठेलना] (१) ठेला-ठकेला जाना। (२) घुसना, धँसना। (३) बँठना, जमना।
ठिलाठिल—िक. वि. [हिं. ठिलना] धकेलते हुए।
ठिलिया—संशास्त्री, [हिं. स्थाली, प्रा.ठाली] छोटा घड़ा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ठेला] छोटा ठेला।
ठिलुत्र्यो—वि. [हिं. निठल्ला] बेकाम, बेरोजगार।
ठिल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. ठिलिया] घड़ा, गगरी।
ठिल्ली, ठिल्ही—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठिल्ला] छोटा घड़ा।
ठिहार—वि. [सं. स्थिर] विश्वास करने योग्य।
ठिहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहरना] करार, ठहराव।
ठीक—वि. [हिं. ठिकाना] (१) सच, यथार्थ, जैसा हो वैसा। (२) भला, ग्रच्छा, उचित, योग्य।

मुहा.-ठीक लगना-भला या उचित जान पड़ना।

(३) जिसमें भूल या अशुद्धि न हो, सही। (४) जो बिगड़ा या खराब न हुआ हो, दुरुस्त। (४) जो दीला या कसा न हो, अच्छी तरह बैठा या जमा हुआ।

मुहा.—ठीक आना—ढीला या कसा न होना।

(६) सीधा, नम्र, श्रच्छे श्राचरणवाला।
मुहा.—ठीक करना (बनाना)—(१) (सुधारने के
उद्देश्य से) दंड देना। (२) मारना-पीटना।

- (७) जो आगे-पोछे, इधर-उधर घटा-बढ़ा न हो।
  मुहा.—ठीक उतरना—तौल में कम-बढ़ न होना।
  (८) ठहराया हुआ, निश्चित या पक्का किया हुआ।
  कि. बि.—जैसे चाहिए वैसे, उचित रीति से।
  संशा पुं—(१) निश्चय, पक्की या दृढ़ बात।
  मुहा.—ठीक देना—दृढ़ निश्चय करना।
- (२) ठहराव, करार, निश्चित प्रबंध, पक्का भ्रायोजन। (३) जोड़, योग।

मुहा. —ठीक देना (लगाना) — जोड़ या योग निकालना।

ठीकठाक—संज्ञा पुं. [हिं. ठीक] (१) निश्चित प्रबंध, पक्का श्रायोजन। (२) जीविका का प्रबंध। (३) पक्की बात।

वि.—बनकर तैयार, काम देने योग्य।
ठीकड़ा, ठीकरा—संशा पुं. [हिं. दुकड़ा] (१) मिट्टी के बरतन का टूटा-फूटा टुकड़ा।

मुहा, —ठीकरा फोड़ना — दोष या कलंक लगाना।
ठीकरा समभना — तुच्छ या बेकार समभना, कुछ
न मानना। (किसी वस्तु का) ठीकरा होना — पानी
की तरह श्रंधाधंध खर्च होना।

(२) बहुत पुराना बरतन। (३) भिक्षापात्र।
ठीकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठीकरा] (१) मिट्टी के फूटे
बरतन का टुकड़ा। (२) बेकार या तुच्छ चीज।
ठीका—संज्ञा पुं, [हिं. ठीक] (१) धन लेकर किसी
काम को पूरा कर देने का जिम्मा। (२) कुछ धन
देकर श्रायवाली किसी वस्तु की श्रामदनी वसूलने
का काम सौंपना, इजारा।

ठीकेदार — संज्ञा पुं. [हिं.] ठीका लेनेवाला।
ठीठी — संज्ञा स्त्री. [अनु.] हँसी का शब्द।
ठीलना — कि. स. [हिं. ठेलना] जबरदस्ती भेजना।
ठीले — कि. स. [हिं. ठीलना] जबरदस्ती भेजने (से)। उ. — मैं तो भूलि ज्ञान को आयो गयउ तुःहारे ठीले।

ठीवन—संशा पुं. [ सं. ष्ठीवन ] थूक, खखार। ठीहँ—संशा स्त्री. [ अनु. ] घोड़ों की हिनहिनाहट। ठीहा—संशा पुं. [ सं. स्था ] (१) जमीन में गड़ी लकड़ी।

(२) लकड़ी छीलने, काटने या गढ़ने का कुंदा। (३) गद्दी। (४) हद, सीमा।

ठुंठ, ठुंड—संज्ञा पुं. [हिं. ठूँठ] (१) सूखा पेड़। (२) कटे हुए हाथवाला या लूला मनुष्य।

ठुकना—िक. श्र. [ श्रवु. ] (१) ठोका-पीटा जाना। (२) चोट पड़ने से गड़ना या धँसना। (३) मारा-पीटा जाना। (४) कुश्ती में हारना। (४) हानि होना। (६) कैंद होना। (७) दाखिल होना। ठुकराना—िक. स. [हिं. ठोकर ] (१) ठोकर या लात मारना। (२) तुच्छ या बेकार समक्त कर पैर से किनारे करना।

ठुकवाना—क्रि. स. [हिं. ठोकना का प्रे.] (१) ठोकने का काम कराना, पिटवाना। (२) मरवाना। (३) गड़वाना, धँसवाना।

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड ] चिबुक, ठोड़ी। संज्ञा स्त्री. [हिं. ठड़ा = खड़ा ] वह भुना हुग्रा ग्रनाज जो फूटकर खिला न हो, टोरीं।

ठुनकना—कि. श्र. [हिं. ठिकना ] ठिठकना, रुकना। कि. स. [हिं. ठोंकना ] घीरे घीरे ठोकना। ठुनकाना—कि. स. [हिं. ठोकना ] घीरे से ठोकना। ठुनठुन—संशा पुं. [श्रनु. ] (१) घातु के टुकड़े या बरतन बजने का शब्द। (२) बच्चों के रुक रुक कर ोने का शब्द।

दुमक—ित्र, [श्रनु, ] (चाल) जो ठिठक या पटक की ध्वित के साथ हो। (२) ठसक भरी (चाल)। दुमक दुमक —िक्र, वि. [श्रनु, ] उमंग से पैर पटकते, ठिठकते या धीरे-धीरे कृदते हुए।

टुमकना — कि. श्र. [ श्रनु. ] (१) उमंग से पैर पटकते, ठिठकते या धीरे-धीरे कूदते हुए चलना। (२) पैर पटककर घुँघरू बजाते हुए नाचना।

ठुमका — वि, [ श्रनु. ] छोटे डील-डौल का, नाटा।
संशा पुं. [ श्रनु. ] भटका, ठुमका (पतंग)।
ठुमकारना—कि, स. [ श्रनु. ] (पतंग को) ठुमका देना।
ठुमकी—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] (१) भटका, थपका(पतंग)।
(२) ठिठक, रकावट। (३) छोटी खरी पूरी।

वि. स्त्री, — छोटे डोल-डोल की, नाटी।
ठुमिक, ठुमुक, ठुमुक, ठुमुक, कि. वि. [ अनु. ठुमुकठुमुक ] जल्दी-जल्दी (बच्चों का) पैर पटकते हुए
या कूदते हुए चलना, ठुमुक ठुमुक कर चलना।
उ.—(क) चलत देखि जसुमित सुख पावै। टुमुकिठुमुकि पग घरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै—१०१२६। (ख) ललित आँगन खेलै, ठुमुकि ठुमुकि
डोले, भुनुक भुनुक बोले पैजनी मृदु मुखर—
१०-१४१।

दुमरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) दो बोलों का छोटा गीत। (२) गप, श्रफकाह, उड़ती खबर। ठुरियाना-कि. स. [हिं ठिठुरना ] सरदी से श्रकड़ना। ठुरी—संज्ञा स्त्री. [हि. ठड़ा=खड़ा ] वह भुना हुम्रा दाना जो भूनने पर खिला-फुटा न हो, टोरी। ठूसकना - कि. श्र. िहिं. ठिनकना टिसक से रोना। दुसना-कि. श्र. [हिं. ठूँसना ] (१) ठूँस-ठूँसकर या दबा-दबाकर भरा जाना। (२) कठिनता से दबना। दुसवाना - कि. स. [हिं. दूसने का प्रे.] कसकर भरवाना । दुसाना - क्रि. स. [हिं. टूँसना] (१) कसकर भर वाना। (२) खूब पेट भर खिलाना। दूँग, दूँगा—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चोंच।(२) चोंच से मारना। (३) उँगली की पिछली हड्डी की चोट। दूँठ—संज्ञा पुं. [सं. स्थागु ] (१) सूखा-साखा पेड़ । (२) कटा हुम्रा हाथ, ठुंड। (३) एक कीड़ा। हूँठा-वि. [हिं. ठूँठ] (१) सूखा-साखा (पेड़)। (२) बिना हाथ का (मनुष्य), लूला। टूँठिया—वि. [हिं. ठूँठ] (१) लूला। (२) नपुंसक। दूँठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठूँठ ] पौधों का डंठल जो खेत कटने पर रह जाय, खूँटी। दूसना, दूसना—कि. स. [हिं. ठसे, दूसना ] (१) दबा दबाकर मारना । (२) जोर से घुसेड़ना। (३)

खूब खाना, छककर खाना।
दूँसा—संज्ञा पुं. [हिं. ठोसा] ग्रँगूठा, ठेंगा।
ठेंगना—वि. [हिं. ठिगना] नाटा, ठिगना।
ठेंगा—संज्ञा पुं. [हिं. ग्रँगूठा] (१) ग्रँगूठा।
मृहा.—ठेंगा दिखाना—(१) ग्रँगूठा दिखाकर,
धृष्टता के साथ किसी बात को ग्रस्वीकार करना।
(२) ग्रँगूठा दिखाकर चिढ़ाना।

(२) चुंगी का कर। (३) सोंटा, डंडा।
मुहा,—ठेंगा बजना—(१) मार पीट होना। (२)
प्रयत्न करने पर भी कुछ काम न होना।
ठेंगुर—संज्ञा पुं. [हिं. ठेंगा—सोंटा] लंबी लकड़ी जो
प्रायः नटखट चौपायों के गले में बाँध दी जाती है।
ठेंगे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. ठींगा] ग्रॅगूठे, सींगे।

मुहा—ठेंगे से—बला से, कुछ परवाह नहीं।
ठेंघा—संज्ञा पुं. [हिं. टेघा] चाँड़, टेक, थूनी।
ठेंठ—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चने के दाने का कोश।
(२) पोस्ते की ढोंढी।

वि. [हिं. ठेठ] (१) निरा, बिलकुल। (२) खालिस। (३) निर्मल। (४) शुरू, ग्रारंभ। ठेठी, ठेपी—संश्रा स्त्री. [देश. ठेठी] (१) कान का मैल। (२) रुई या कपड़ा जो कान का छेद मूँदने के लिए खोंसा जाय।

मुहा.—कान में ठेंठी लगना—न सुनना।
(३) शीशी-बोतल ग्रादि की काग या डाट।
ठेक—संशा स्त्री. [हिं, टिकना] (१) सहारा। (२) टेक,
चाँड़। (३) पच्चड़। (४) पेंदा, तल। (५) छड़ी या
लाठी की सामी।

ठेकना—िक. स. [हिं. टेक] (१) सहारे या ग्राश्रय की चीज। (२) टिकना, ठहरना।
ठेका—संज्ञा पं [हिं टिकना, टेक] (१) सहारे की

ठेका—संज्ञा पुं. [हिं. टिकना, टेक] (१) सहारे की बीज, टेक। (२) रुकने-ठहरने का स्थान। (३) बाँयों तबले का ताल। (४) बाँयाँ तबला। (४) ठोकर, धक्का।

संशा पुं. [हिं. ठीक ] कुछ धन के बदले में काम करने का जिम्मा, ठीका। (२) श्रामदनी की चीज से श्राय वसूलने का पट्टा, इजारा।

ठेकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. टक ] (१) टेक, सहारा। (२) विश्राम के लिए बोभ को टिकाने की किया। ठेगड़ी—संज्ञा पुं. [देश, ] कुत्ता। ठेगना, ठेघना—कि. स. [हिं. टेकनां] (१) टेकना, सहारा लेना। (२) रोकना, बरजना, मना करना। ठेगनी, ठेघनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठेगना] टेकने की लकड़ी। ठेघा—संज्ञा पुं. [हिं. टेक] सहारे की टेक चाँड़। ठेघुना—संज्ञा पुं. [हिं. टेहुना] घुटना, टखना। ठेठ—वि. [देश.](१) निरा, बिलकुल। (२) जिसमें बाहरी या दूसरी चीजों का मेल न हो, खालिस। (३) निर्मल, शुद्ध। (४) श्रारंभ।

संज्ञा स्त्री,—सीधी-साबी श्रमगढ़ बोली। छेप संज्ञा पुं. [सं. दीप ] दीपक, चिराग। ठैपी—संशा स्त्री. [ देश. ] बोतल की काग ।
ठेलत—कि. स. [ हिं. ठेलना ] ठेलते हैं, ढकेलते हैं।
उ.—इक को आनि ठेलत पाँच—१-१६६।
ठेलना—कि. स. [ हिं. टलना ] ढकेलना, रेलना।
ठेलमठेल—कि. थि. [ हिं. ठेलना ] ढकेलते हुए।
ठेला—संशा पुं. [ हिं. ठेलना ] (१) बगल से लगाया
हुआ धक्का या आघात। (२) ढेल कर चलायो
जानेवालो गाड़ी। (३) भीड़ का धक्कमधक्का।
ठेलोठेल—संशा स्त्री [ हिं. ठेलना ] रेल पेल, धक्कमधक्का।
ठेलोठेल—कि. आ. [ हिं. ठेलना ] आगे बढ़े। उ.—आगे
को रथ नेकु न ठेले ३३८०।
कि. स. [ हिं. ठेलना ] आगे बढ़ाये।
ठेस—संशा स्त्री. [ हिं. ठस ] आघात, चोट, धक्का,
ठोकर। उ.—कहयो लंकेस दै ठेस पग की तबै,

जाहि मित-मूढ़, कायर डरानो—६-१११।
ठेसना—िक. स. [हिं. ठूसना ] घुसेड़ना, भरना।
ठेहुना—संज्ञा पुं. [सं. ऋष्ठीवान ] घुटना।
ठेन—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थान, हिं. ठाँय ] जगह, स्थान,
ठोर। उ.—क्रीड़त सघन कुंज वृंदाबन बंसीबट
जमुना की ठैन—२०८७।

ठैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठाई ] (१) ठौर, स्थान। (२) तई, प्रति। (३) निकट, पास, समीप।
ठैरना—कि. त्र्र. [हिं. ठहरना ] रुकना, ठहरना।
ठैराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठहराई ] ठहरने की किया।
ठैराना—कि. स. [हिं. ठहराना ] रोकना, टिकाना।
ठोंक—संज्ञा स्त्री. [हिं. ठोंकना ] प्रहार, श्राधात।
कि. स.—थपेड़ा देकर, थपथपाकर।

मुहा.—ठोंक ठोंक कर लड़ना—डटकर या ताल ठोंककर लड़ना, जबरदस्ती भगड़ा करना। ठोंक बजाकर—जाँच करके, परखकर।

ठोंकना—कि. स. [ श्रनु. ठकठक ] (१) जोर से चोट मारना, पीटना। (२) लात, घूँसे से मारना पीटना। (३) चोट या प्रहार करके गाड़ना। (४) (दावा, नालिश) दायर करना। (४) बेड़ियों से अकड़ना। (६) हाथ से थपथपाना।

मुहा. —ठोंकना बजाना — परीक्षा करना, परखना।

पीठ ठोंकना—शाबाशी देना। रोटी (बाटी) ठोंकना। श्रपने हाथ से रोटी बनाना।

(७) हाथ से मारकर (बाजा ग्रादि) बजाना । (८) जड़ना, लगाना, ग्राँटकाना । (६) 'खटाखट' शब्द करना, खटखटाना ।

ठोंकि कि. स. [हिं. ठोंकना] थपथपाकर, थपेड़ा देकर। उ.—कर सौं ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाई बैठे श्रतुराने—१०-१५७।

मुहा,—ठोंकि बजाय—ग्राच्छी तरह परखकर, परीक्षा करके, जाँचकर । उ.—नंद ब्रज लीजै ठोंकि बजाय । देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहेँ गोकुल के राय — २७००।

ठोंकी—कि. स. [हिं. ठोंकना ] ऊपर से चोट मारी, धंसाई, गाड़ दी। उ.—ले देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी—१-७१।

ठोंग—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] (१) चोंच। (२) चोंच की चोट। (३) उँगली की पिछली हड्डी की ठोकर। ठोंगना, ठोंचना—कि. स. [हिं. ठोंग] (१) चोंच की चोट मारना, (२) उँगली की पिछली हड्डी से प्रहार करना।

ठोंठी—संज्ञा स्त्री, [सं. तुंड] (१) चने के दाने का कोशा। (२) पोस्ते की ढोंढी।

ठो-- अव्य. [हिं. ठौर ] संख्या, अदद।

ठोकना – कि. स. [हि. ठोंकना] (१) ठोकर देना।

(२) मारना। (३) गाड़ना। (४) थपथपाना। (५) जड़ना। (६) हाथ से बजाना।

ठोकर—संशा स्त्री. [हिं. ठोकना ] (१) चोट जो किसी पड़ी या गाड़ी हुई चीज से टकराने पर लग जाय।

मुहा.—ठोकर उठाना—हानि या दुख सहमा।
ठोकर खाना—(१) किसी पड़ी हुई चीज से टकराना
या टकराकर गिरना।(२) भल से दुख या हानि
सहना।(३) भूल-चूक करना।(४) इधर उधर
मारे-मारे फिरना।ठोकर खाते फिरना—इधर-उधर
मारे मारे फिरना।ठोकर लगना—(१) किसी पड़ी
हुई चीज से दकराकर चोट खाना।(२) दुख या
हानि पहुँचना।ठोकर लेना—किसी चीज से टकरा-

कर चोट खाना।

(२) रास्ते में पड़ा या गड़ा हुआ कंकड़- पत्थर जिससे पैर में चोट लगने का डर हो। (३) पैर का श्राघात या प्रहार।

मुहा.—ठोकर देना (जड़ना)—ठोकर मारना।
ठोकर खाना—लात का भ्राधात या प्रहार सहना।
ठोकर पर पड़ा रहना—भ्रापमान या तिरस्कार सहकर
भी सेवा या निर्वाह करना।

(४) कड़ा स्राघात, धक्का ।

ठोका—संज्ञा पुं. [ देश. ] कलाई का एक गहन।।
ठोट—िव. [ हिं. ठूँठ ] (१) जड़, मूर्ख, गावदी। उ.—
पतित जानि तुम सब जन तारे, रहयौ न कोऊ
खोट। तौ जानों जो मोहिं तारिही, सूर कृर किंब
ठोट—१-१३२। (२) तत्व या सारहीन।

ठोठरा—वि. [हिं. ठूँट] पोपला, खाली। ठोड़ी, ठोढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. तुंड] चिबुक, ठुड़ी। उ.—मैं बिल जाउँ लिलत ठोड़ी पर—६६४।

मुहा,—ठोड़ी पर हाथ धरकर बैठना—चितित होना। ठोड़ी पकड़ना (में हाथ देन।)—(१) प्यार करना। (२) मीठी बातें कहकर क्रोध शांत करना। ठोड़ी तारा—सुंदर ठुड़डी पर काला तिल।

ठोप—संशा पुं. [ त्रानु. टपटप ] बूँद, बिंदु। ठोर—संशा पुं. [ देश. ] एक तरह की भिठाई। संशा पुं. [ सं. तुंड ] चोंच, चंचु।

ठोला—संशा पुं. [देश.] श्रादमी, मनुष्य।

संशा पुं. [देश.] रेशम बनाने का एक भ्रौजार।

ठोली—संश स्त्री. [हि. ठठोली ] हँसी-दिल्लगी। संशा स्त्री. [देश.] उपपत्नी।

ठोस—वि, [हिं, ठस] जो पोला या खोखला न हो।

(२) दृढ़, मजबूत । (३) बहुत धनी ।

ठोसनि—संज्ञा पुं. [हिं. ठोस+नि] कुढ़न, डाह। उ.—इक हरि के दरसन बिनु मरियत श्रक कुबिजा के ठोसनि—१० उ. ८८।

ठोसा—संज्ञा पुं, [देश, ] (हाथ का) ग्रॅगूठा । मुहा,—ठोसा दिखाना—ग्रॅगूठा दिखाकर इनकार करना।

ठोसे—संज्ञा पुं. बहु. [हं. ठोसा ] भ्राँगूटे, सींगे।

महा.—ठोसे से—बला से, कुछ परवाह नहीं।
ठोहना—िक. स. [हं. दूँ दना ] खोजना, ढूं दना।
ठोहर—संज्ञा पुं. [हं. निठोहर ] भ्रकाल, महगी।
ठौन—संज्ञा स्त्री. [हं. ठवन ] खड़े होने की मुद्रा।
ठौर—संज्ञा पुं. [सं. स्थान, प्रा. ठान, हिं. ठाँव+र]
जगह, स्थान, ठिकाना। उ.—छुद्र पतित तुम तारि
रमापति, श्रव न करो जिय गारो। सर पतित कों
ठौर नहीं, तो बहत बिरद कत भारो—१-१३१।
यौ.—ठौर-ठिकाना—(१) रहने या बसने का

यौ.—ठौर-ठिकाना—(१) रहने या बसने का स्थान।(२) पता-ठिकाना।

मुहा,— श्राइ होइ इक ठौर— एक स्थान पर एकत्र हों। उ.—यह सुनि जहाँ तहाँ तें सिमिटें, श्राइ होइ इक ठौर। श्रव कें तो श्रापुन ले श्रायो, वरे बहुर की श्रीर—१-१४६। कहूँ ठौर निहं कहीं श्राक्षय नहीं है। उ.—कहूँ ठौर निहं चरनकमल बिनु भृंगी ज्यों दसहूँ दिसि धावै—१-२३३। ठौर न श्राना—पास न जाना। ठौर न श्रावे— समीप नहीं श्राता, पास नहीं फटकता। उ.—हिर को भजे सो हिर पद पावै। जन्म मरन तेहि ठौर न श्रावे। ठौर-कुठौर—(१) शरीर के कोमल-कठोर श्रंग। (२) भली-बुरी जगह। (३) बेमोका, बिना श्रवसर। ठौर रखना—(१) गुंजाइश रखना। (२) मार डालना। ठौर रहना—(१ गुंजाइश होना। (२) जहां का तहाँ रह जाना। (३) मर जाना। किसी के ठौर—किसी के समान या स्थानापन्न।

(२) मौका, घात, श्रवसर ।
ठौर ठिकाना — संज्ञा पुं. [हिं. ठौर+ठिकाना ] (१)
सुरक्षित स्थान । (२) (बात या निश्चय की) दृद्धता ।
ठ यापा—वि. [देश.] उपद्रवी, शरारती ।

ड—टवर्ग का तीसरा श्रौर देवनागरी वर्णमाला का तेरहवाँ व्यंजन; इसका उच्चारण जिह्नामध्य को मूर्द्धा में स्पर्श करने से होता है।

डंक—संशा पुं. [सं. दंश] (१) बिच्छू, भिड़ श्रादि कीड़ों का जहरीला काँटा जिसे वे कोध में प्राणियों के शरीर में गड़ोते हैं। (२) कलम की जीभ। (३) डंक लगा हुआ स्थान।

डंकना—िक. त्र. [त्रानु,] जोर से गरजना। डंका—संज्ञा पुं. [सं. ढका=दुंदुभि का शब्द] (१) एक बड़ा बाजा जो प्रायः युद्ध के ग्रवसर पर बजाया जाता था।

मुहा. - डंका देना (पीटना, बजाना) - (१) सब पर प्रकट करना, घोषित करना। (२) डौंडी फेरना, मुनादी करना। किसी का डंका बजना—किसी का शासन या भ्रधिकार चजना। डंका बजाकर (डंके की चोट) कहना—सबको जता-जताकर कहना। डंकिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाकिनी.] पिशाची, डाइन। डॅंकियाना-कि. स. [हिं. डंक+श्राना] डंक मारना। डंका-वि. [हिं, डंक ] जिसके 'डंक' हो, डंकवाला। डॅकीला—वि. [हिं, डंक+ईला (प्रत्य.)] डंकवाला। डंकुर—संज्ञा पुं. [हिं. डंका ] एक पुराना बाजा। डॅकोरी—संज्ञा स्त्री. [हं. डंक+श्रीरी (प्रत्य.)]भिड़, बरं। डंग—संज्ञा पुं. [देश.] छुहारा जो अधपका हो। डंगम—संज्ञा पुं. [ देश. ] एक पहाड़ी वृक्षा। हुंगर – संज्ञा पुं. [देश.] चौपाया। डँगरा—संज्ञा पुं. [ सं. दशांगुल ] खरबूजा। हँगरा—संश स्त्री. [हिं. हँगरा ] लंबी ककड़ी। संज्ञा स्त्री. [ हिं. डॉगर ] चुड़ेल, डाइन।

संज्ञा स्त्री. [ देश. ] एक पहाड़ी बेंत। हैंटैया—संज्ञा पुं. [ हि. डॉटना ] डॉटने-धमकानेवाला। हँठरा, डंठी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. डंठल ] छोटी टहनी। हंठल—संज्ञा पुं. [ सं. दंड ] छोटे पौधों की टहनी। हंड, हँड़—संज्ञा पुं. [ सं. दंड ] (१) डंडा, सोंटा। (२) बाहुदंड। उ.—कृष किट सबल डंड—१६६७।

(३) व्यायाम की एक रीति। (४) दंड, सजा। (४) जुरमाना। (६) घाटा हानि। (७) घड़ी, दंड। डंडक—संज्ञा पुं. [सं. दंडक] (१) दंड देनेवाला। (२)

डंडा। (३) दंडक नामक वन। डंडपेल—संज्ञा पुं, [हिंडंड+पेलना] (१) खूब डंड पेलने या व्यायाम करनेवाला, कसरतो। (२)

बलवान श्रादमी।

डंडवत—संशा पुं. [ सं. दंडवत् ] प्रणाम की एक रोति । डंडवारा—संशा पुं. [ हिं. डाँड + वार=किनारा ] नीची दोवार या चारदीवारी ।

संज्ञा पुं, [हिं, दिनखन + वायु] दक्षिणी वायु। छँड़वी—संज्ञा पुं, [देश.] दंड या कर देनेवाला। छंडा—संज्ञा पुं, [सं, दंड] (१) लकड़ी का सीधा टुकड़ा, मोटी छड़ी। (२) बच्चों के खेलने की छोटी रंगीन छड़ी। (३) नीची चारदीवारी।

खंडाकरन—संज्ञा पुं, [सं, दंडकारणय] दंडकवन।
ढंडाल—संज्ञा पुं, [हिं, डंडा] नगाड़ा, दुंदुभी।
ढंडिया—संज्ञा स्त्री. [हिं, डाँड़ी=रेखा] (१) कुग्रांरी
लड़िकयों की साड़ी जिसमें गोट टाँककर लकीरें बनी
हों। उ.—(क) लाल चोली नील डाँड़या संग
जुवतिन भीर। (ख) नख-सिख सिज सिगार ब्रज
जुवती तन डाँड़िया कुसुमें बोरी की। (२) गेहूँ की
लंबी सींक जिसमें बाल लगती है।

संज्ञा पुं. [हिं. डाँड=ग्रथंदंड] कर वसूलनेवाला। इंडी—संज्ञा स्त्रो. [हिं. इंडा] (१) पतली छड़ी। (२) हथिया, मुठिया, दस्ता। (३) तराजू की डाँड़ी। (४) पौधे का लंबा इंठल या नाल। (४) फूल का निचला भाग। (६) हर्सिगार का फूल। (७) ग्रारसी नामक गहने का छल्ला। (८) इंड में बँधी भोली की पहाड़ी सवारी। (६) दंडधारी सन्यासी।

वि.—[ सं. दंद ] भगड़ा करने या चुगली खानेवाला।

डँड़ीर—संश स्त्री, [हिं, डाँड़ी] सीधी लकीर। डँडोर—कि, स, [श्रनु,] ढूंढ़ने-खोजने के लिए उलड़ पलटकर। उ.—हरि सों हीरा खोइ के हम रहीं समुद्र डँडोर।

हडोरना—िक. स. श्रिन. ] उलट-पलटकर ढूँढ़ना। हँडोत—संज्ञा पुं. [सं. दंडवत्] प्रणाम की एक रीति। हंबर—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) ग्रायोजन, धूमधाम। (२)

विस्तार (३) विलास । (४) एक तरह का चँदोवा ।
यो. —श्रंबर-डंबर—संध्या की लाली जो श्राकाश
में दिखायी देती है । मेघ डंबर—बड़ा शामियाना ।

डँवाडोल -वि. [ हिं. डॉव डॉव+डोलना ] चंचल, विचलित, डांवांडोल, घबराया हुग्रा।

डंस—संशा पुं. [सं. दंश] (१) जंगली मच्छर, डाँस।

(२) डंक चुभने का स्थान। डँसना—क्रि. स. [हिं. डसना] डंक मारना।

डिकड्त—संज्ञा पुं. [हिं. डकैत ] लुटेरा, डाक् । डकराना—कि. श्र. [श्रनु.] गाय-भेंस श्रादि चौपायों का पीड़ा या कष्ट से चिल्लाना ।

डकवाह—संज्ञा पुं. [हैंहें, डाक ] डाकिया।

खकार—संशा स्त्री. [ श्रनु. ] मुंह से निकला हुआ वायु का उद्गार जो प्रायः पेट भरने या भोजन पचने का सूचक माना जाता है।

मुहा,—(साँस) डकार न लेना—(१) चुपचाप दूसरे की धन-संपत्ति या माल हजम कर जाना। (२) काम का पता न देना।

(२ सिंह, बाघ ग्रादि की गरज, दहाड़ या गुर्राहट। डकारना—क्रि. ग्रा. [हिं. डकारना (प्रत्य.)](१) डकार लेना।(२) धन संपत्ति चुपचाप हजम कर लेना।(३ सिंह, बाघ ग्रादि का गरजना या गुर्राना। डकेत—संज्ञा पुं. [हिं. डाका+ऐत (प्रत्य.)] लुटेरा, डाका डालनेवाला।

डकैती—संशा स्त्री. [हिं. डकैत ] लूट-मार, डाका। डकौत—संशा पुं. [देश.] ज्योतिकी श्रादि का ढोंग रचनेवाला, भड़डरी।

खग-संज्ञा पुं. [सं. दक्=चलना ] चलने में श्रागे बढ़ने के उद्देश्य से पर उठाकर पुनः रखने का क्रिया की समाप्ति, कदम। उ.—(क) ज्यों को उद्दि चलन को करे। क्रम क्रम किर डग डग पग धरे—३-१३।

(ख) मुरि-मुरि चितवत नंद गली। डग न परते ब जनाथ साथ-बिनु बिरह - ब्यथा मचली। (ग) नित उठि जाइ प्रात ले बन सँग ग्रागे-पाछे चलि न सकति सखी डग एकु—२८७१।

मुहा.—डग देना (भरना)—चलने में पैर ग्रागे बढ़ाना। डग मारना (बढ़ाना)—लंबे लंबे कदम बढ़ाना। (२) जहाँ से पैर उठाया जाय ग्रीर जहाँ रखा जाय, उन दोनों स्थानों की दूरी, पैंड़।

डगडगाना—कि, श्र. [श्रन.] हिलना-डोलना। डगडोलना—कि, श्र. [हिं, डग+डोलना] हिलना, काँपना।

खगडोले—िक. श्र. [हिं. डगडोलना ] हिलती-कांपती है। उ.—भीषम, द्रोन करन सुनै कोउ मुखहु न बोलै। ए पांडव क्यों काहिये धरनी डगडोले।

डगडोर—िव. [हं, डग+डोलना ] हिलती-डुलती, डाँवाडोल, काँपती हुई। उ.—स्याम को एक तही जान्यो दुराचारनी श्रोर। जैसे घट पूरन न डोले श्रध भरो डग डौर।

खगगा—संज्ञा पुं. [सं.] चार मात्राश्रों का एक गण। खगना—कि. श्र. [हिं, डग] (१) विसकना, जगह छोड़ना। (२) भूल-चूक करना, चूकना (३) विचलित होना।

डगमग — कि. श्र. [हिं, डग+मग] हिलना - डुलना, स्थर न रहना। उ. — बिहरत बिबिध बालक संग। डगिन डगमग पगिन डोलत, धूरि, धूसर श्रंग—१०-१८४।

डगमगाइ—कि. श्र. [हिं. डगमगाना ] हिलडुलकर, थरथराकर, डगमग होकर। उ.—सिखबति चलन जसोदा मैया। श्ररबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ घरनी धरै पैया—१०-११५।

डगमगात—कि. ग्र. [हिं. डगमगाना] हिलते-डुलते (हें), थरथराते (हें), स्थिर नहीं रहते। उ.—(क) चलन चहत पाइनि गोपाल। ""। डगमगात गिरि परत पानि परि, भुन भ्राजत नँदलाल—१०-११८। (ख) डगमगात डोजत ग्राँगन मैं, निरिख बिनोद-मगन सुर-मुनि-नर—१०-१२८।

डगमगाना कि अ [हिं डग+मग] (१) हिलना-डोलना, थरथराना। (२) किसी बात पर दृढ़ न रहना। डगमगी—कि. श्र. स्त्री. [हिं. डग+मग] हिलने-डुलने लगी, स्थिर न रह सकी। उ.—भूमि श्रिति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहसफन सेस की सीस काँप्यौ--१-१०६।

डगमगे—वि. [हिं. डगमग ] चंचल, डाँवाडोल, ग्रस्थिर, कांपते हुए। उ.—सूर सों मनसा भई पाँगुरी निरिख डगमगे गोड़--१३१७।

डगर, डगरा, डगरिया, डगरी, डगरी—संशा पुं. [ हिं. डग, डगर ] पथ, मार्ग, पेंड़ा। उ.—(क) भोरहिं नित प्रति ही उठि, मोसौं करत भगरौ। ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहै डगरौ--१०-३३६ । (ख) श्रावत जात डगर नहिं पावत गोबर्धन पूजा संजोग—११६।

मुहा.—डगर (डगरा, डगरी) बताना—(१) ः रास्ता बताना । (२) उपाय या तदबीर बताना । डगरना—कि. स. [ हिं. डगर ] भीरे-धीरे चलना। डगराना कि. स. [हिं डगरना] (१) ले चलना, ्र चलाना। (२) हाँकना।

डगा—संशा पं. [हिं. डागा ] डुग्गी या नगाड़ा बजाने की 'लकड़ी, चोब।

डटना—कि. अ. [सं. स्थातृ, हिं. ठाट या ठाढ़] (१) श्रड़ना, जमकर खड़ा होना, ठहरना। (२) छू 🚃 े जाना, लगना ।

कि. स. [ सं. दिंट, हिं. डीठ ] देखना, ताकना। डटा—िक. श्र. [ हिं. डटना ] ग्रड़ा, ठहरा।

मुहा.—डटा रहना— शत्रु का सामना करने या कठिनाई भेलने से मुँह न मोड़ा।

डटाई—संशा स्त्री. [हिं. डाटना ] डांटने की किया। डटाना—कि. स. [िहिं, डटना ] (१) सटाना, भिड़ाना ।

(२) ठेलना। (३) जमाकर खड़ा करना। डगाना-कि. स. [हिं, डिगाना ] विचलित करना। - डगे - संज्ञा पुं. सवि. [हिं. डग] डग या कदम को। मुहा, --मारि डगै-लंबे-लंबे कदम बढ़ाकर। उ,—मारि हमे छव फिरि चली सुंदर बेनि दुरै इफला—संशा पुं. [ अ. दफ ] डफ नामक बाजा।

सब ऋंग।

डगगर—संज्ञा पुं. [सं. तच् ] एक मांसाहारी पशु। डगगर, डगगा—संज्ञा पुं. [ हि. डग ] दुबला-पतला घोड़ा। डट-संज्ञा पुं. [देश.] निशाना ।

कि. श्र. [हिं, डटना] (१) जमकर। (२) तृप्त होकर, श्रघाकर, संतुष्ट होकर। डट्टा-संशा पुं. [हिं. डाटना ] (१) डाट, काग। (२)

बड़ी मेख। (३) छींट छापने का ठप्पा या साँचा। डड्ढार-वृ. [हिं, डाढ़ी ] बड़ी दाढ़ीवाला।

वि. [ सं. दृढ़ हिं डिढ़ ] दृढ़ हृदय का, वीर। डड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. डढ़ना ] जलन, ताप । डढ़ना—कि. श्र. [ सं. दग्ध, प्रा. डड्ड+ना (प्रत्य.) ] जलना, बलना, सुलगना।

डढ़ार, डढ़ारा —िव. [ हिं. डाढ़ ] (१) जिसके डाढ़ हो। (२) जिसके डाढ़ी हो, डाढ़ीवाला। डिंद्यल-वि. [हिं डाढ़ी ] लंबी डाढ़ीवाला ।

डढ़ें—िक. श्र. [सं. दग्ध, प्रा. डड्ट, हिं, डढ़ना] जलती (है), जलाकर। उ.—श्रॅंचवत पय ताती

जब लाग्यी, रोवत जीभि डढ़ै--१० १७४। **डढ्ढना**—कि. स. [ हिं. डढ्ना ] जलाना, बलाना । डढ़्यौरा—वि. [हि. डाढ़ी ] डाढ़ीवाला। डपट-संज्ञास्त्री. [सं, दर्प] डाँट, घुड़की।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रपट ] तेज चाल या दौड़ । डपटना-कि. स. [ हिं. डपट ] डाँटना, घुड़कना । ं कि. स. [ हिं. रपटना ] तेज दौड़ना।

डपोरसंख—संज्ञा पुं. [ अनु. डपोर=बड़ा + संख ] (१) वह जो कहे तो बहुत-कुछ, परंतु करे कुछ नहीं। (२) वह जो देखने में तो बड़ी श्रायु का हो, पर बुद्धि में पिछड़ा हो।

डप्पू-वि. [देश.] बहुत बड़ा या मोटा। डफ-संज्ञा पुं. [ त्र्य. दफ ] चमड़ा मढ़ा हुन्ना एक प्रकार का बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। उ.— (क) डफ-भाँक मृदंग बजाइ, सब नंद-भवन गए-१०-२४। (ख) डिमिडिमी पटह ढोल डफ बीगा मृदंग उमंग चंग तार—२४४६।

डफली—संज्ञा स्त्री. [ त्र्य, दफ़ ] छोटा डफ, खँजरी।
मुहा.—श्रपनी श्रपनी डफली श्रपना श्रपना
राग—जितने लोग उतनी ही राय, सब लोगों का
श्रपनी श्रपनी बात पर जोर देना।

डफार—संज्ञा स्त्री. [ अनु. ] चिंत्लाहट, चिंघाड़। डफारना—क्रि. अ. [ अनु. ] जोर से रोना-चिंत्लाना। डफालची, डफाली संज्ञा पुं. [ हिं. डफला ] (१) डफला बजानेवाला। (२) डफला बजाकर भीख माँगनेवाला। डफोरना—क्रि. अ. [ अनु. ] चिंत्लाना, ललकारना।

डफोरना—िक. श्र. [ श्रनु.] चित्लाना, ललकारना। डब—संज्ञा पुं. [ हिं. डब्बा ] जेब, थैला।

खबकना—कि. श्र. [ श्रनु.] (१) पीड़ा करना, दर्द होना। (२) लँगड़ाकर चलना।

डबकोंहाँ, डबकोंहें—वि. पुं. [ अनु. ] आंसू भरा हुआ, डबडबाया हुआ।

डबकौंही—िव. स्त्री. [हं. डबकौंहाँ] ग्रांसू भरी हुई। डबडबाइ—िक. ग्रा. [हं. डबडबाना] ग्रांसू भरकर, डबडबा कर। उ.—जब जब सुरित करत तब तब

डबडबाई दोउ लोचन उमँग भरत—२०३६।
डबडबाना—िक. अ. [अनु.] आंसू भर आना।
डबरा—संज्ञा पुं. [सं. दभ=भील, समुद्र] कुंड, हौज।
डबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डबरा] छोटा गड्ढा या ताल।
डबला—संज्ञा पुं. [देश.] पुरवा, कुल्हड़, चुक्कड़।
डबा—संज्ञा पूं. [हिं. डिब्बा] संदुकची।
डिबया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डिब्बा] छोटी डिबिया।
डबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डिब्बा] छोटी संदुकची।
डबी—संज्ञा स्त्री. [हें. डिब्बा] छोटी संदुकची।
डबी—संज्ञा स्त्री. [देश.] कुल्हिया, छोटा पुरवा।
डबीना—कि. स. [अनु. डबडब] (१) डुबाना, बोरना,
गोता बेना। (२) बिगाड़ना, चौपट करना।

मुहा.—नाम डबोना—नाम में धब्बा लगाना। वंश डबोना—कुल में धब्बा लगाना। लुटिया डबोना-

(१) प्रतिष्ठा या मान खोना। (२) काम बिगाड़ना। खडबा—संज्ञा पुं. [तैलंग। या सं. डिब=गोला] धातु का छोटा ढक्कनदार पात्र, संपुट।

डभकता—िक, श्र. [श्रनु, डभडभ ] इबना-उतराना। डभका—संज्ञा पुं, [हि, डभकना ] कुएँ का ताजा पानी। संज्ञा पुं, [देश, ] भुना हुश्रा साबुत श्रनाज। डमकौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डमकना] उरद की पीठी की बरी जो कड़ी में बिना तले ही डाली जाती है। उ.—पानौरा राइता पकौरी। डमकौरी मुंगछी सुठि सौरी।

डमकोहाँ — वि. [ अनु. ] श्रांसू भरा हुग्रा। डम—संशा पुं. [ सं. ] डोम, चांडाल।

डमर—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) भय से भागना, भगवड़। (२) हलचल, उपद्रव।

डमरु, डमरू—संज्ञा पुं. [सं. डमरु] (१) डमरू नाम का बाजा जो शिव जी को बहुत प्रिय माना गया है। ड.—खुनखुना कर हँसत हिर, हर हँसत डमरु बजाइ—१०-१७०। (२) डमरू के श्राकार की कोई चीज। (३) एक वृत्त।

डमरुआ - संज्ञा पुं. [सं. डमरु ] गठिया रोग ।

डमरुमध्य—संज्ञा पुं, [सं, डमरु + मध्य ] धरती का पतला भाग जो दो बड़े भूखंडों को मिलाता है।

डयन—संज्ञा पुं. [ सं. ] उड़ने की किया, उड़ान। डर—संज्ञा पुं. [ सं. दर ] (१) भय, भीति, त्रास। (२)

्र श्रानिष्ट की संभावना, श्राशंका।

डरई—िक. श्र. [हिं. डरना ] डरता है, भयभीत होता है। उ.—उड़् परिवार पिसुन सभा श्रपजसिंह न डरई—२८६१।

डरत—िक. श्र. [हिं. डरना ] डरते हैं, भयभीत होते हैं, ग्राशंकित होकर। उ.—(क) ब्रह्म-छद्र डर डरत काल कें, काल डरत भ्रू-भँग की श्राँची—१-१८। (ख) हरि सीता ले चल्यो डरत जिय, मानौ रंक महानिधि पाई—६-५६।

डरित – कि. श्र. [हिं. डरना] डरती है, भयभीत होती है। उ.—ढीठ, निटुर, न डरित काहूँ, त्रिगुन हैं समुहाइ — १-५६।

डरती—िक. श्र. [हि. डरना] डरता, भयभीत होता। उ.—कबहुँक राज-मान-मद-पूरन, कालहु तें निहं डरती। मिथ्या बाद श्राप-जस सुनि सुनि, मूँ छहिं पकरि श्रकरती—१-२०३।

डरना—िक. त्रा. [हिं. डर+ना (प्रत्य.)] (१) भयभीत होना, ग्रनिष्ट के भय से शंकित होना। (२) ग्राशंका करना, ग्रंदेशा करना ।

हरपत—िक. श्र. [हिं, डरपना ]डरता है, भयभीत होता है, श्राशंकित होता है। उ. (क) चिंल निहें सकत गरुड़ मन डरपत, बुद्धि बल बलिहें बढ़ावत—द-४। (ख) तोहिं देखि मेरी जिय डरपत, नैनिन श्रावत नीर—१-८६। (ग) राजहेतु डरपत मन माहीं—१२-५।

डरपाइ, डरपाई—कि. श्र. [हिं. डरपना ] डरकर, भयभीत होकर । उ.—(क) उठयो श्रकुलाइ, डरपाइ तुरतिहं धाइ, गयो पहुँचाइ तट श्राइ दीन्हो—५८४। (ख) भूलीं कहा, कहीं सो हमसों, कहित कहा डरपाई। सूरदास सुरपित की पूजा, तुम सबिहिन बिसराई—८१२।

कि. स.—डरा-धमकाकर, भयभीत करके। उ.— सूर स्थाम हैं चोर तुम्हारे छाँड़ि देहु डरपाइ—१५१४। डरपाउँ—कि. श्र. [हिं. डरपना] डरता हूँ, भयभीत होता हूँ। उ.—मोहिं नहीं जिय की डर नैकहुँ, दोड सुत कों डरपाउँ—५२८।

डरपायत — कि. स. [हिं, डरपाना ] इराते हैं। उ.— जो लायक तो श्रपने घर को बन भीतर डरपावत— ११०४।

खरपायन संशा पुं. [हिं. डर] डरानेवाले। उ.— तीनि भुवन+त्रानंद, कंस-डरपावन रे—१०-२८। क्रि. स. [हिं. डरपना, डरपाना ] डराने (लगे), भय दिखाने (लगे)। उ.—श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहों नॅद-श्रागे। गेंद लेहु तुम श्राइ, मोहिं डर-पावन लागे – ४८६।

खरपावहु—िक. स. [हि. डरपाना] डराग्रो, भयभीत करो। उ.—काली उरग रहे जमुना में, तहँ तैं कमल मँगावहु। दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर, नंदिहं श्रित डरपावहु—१०-५२२।

डरपावें कि. स. [हिं. डरपाना] भयभीत करते हैं, डरपाते हैं। उ.—मैं घर आवन कहीं, सखा सँग कोड निहं आवें। देखत बन अति अगम डरीं, वे मोहिं डरपावें—४३७।

डरपाहिं—कि. स. [हिं. डरपना] डरते हैं, भयभीत होते हैं। उ.—सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरी सौ कहुँ नाहिं। हाटनि-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीं, डरपाहिं—१०-३२८।

डरिप कि. श्र. [हि. डरपना] डरकर, भयभीत होकर। उ.—ग्वाल डरिप डिर पें कहाँ। श्राइ। सूर राखि श्रब त्रिभुवनराइ—६१४।

डरपी—कि. श्र. स्त्री. [हिं. डरपना ] डर गयी, भयभीत हुई। उ.—मो देखत वह परी धरनि गिरि, मैं डरपी श्रपने जिय भारी—६६७।

डरपे—िक. श्र. [हिं. डरपना] डरे, भयभीत हुए। उ.—सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे, श्रबन उबरे स्याम—४२७।

डरपोक, डरपोकना—वि. [हिं. डरना + पोंकना ] बहुत डरनेवाला, कायर, भीरु।

डरपों—िकि. श्र. [हिं. डरपना ] डरता हूँ, भयभीत होता हूँ। उ.—हों डरपों, काँपों श्रक रोवों, कीड नहिं धीर धराऊ—४८१।

डरपौ—िक. श्र. [हिं. डरना ] डरो, भयभीत हो। उ.—मैं बरज्यो जमुना-तट जात। सुधि रहि गई न्हात की तेरें, जिन डरपौ मेरे तात—५१८।

डरप्यो—कि. श्र. [हिं. डरपना ] डरा, भयभीत हुग्रा। ड.—चरन का छित्र देखि डरप्यो श्रक्त, गगन छपाइ—१०-२३४।

डरवाई—िक. स. [हिं. डरवाना] डराया, मयभीत किया। उ.—जाहु जाहु घर तुरत जुवति जन खिमत गुरुजन कहि डरवाई—१६६७।

डरवाए—कि. स. [हिं. डरवाना] डराया, भयभीत किया। उ.—महर कह्यों हम तुम डरवाए—१००५। डरवाना—कि. स. [हिं. डराना] भयभीत करना।

कि. स. [हिं. डलवाना] डालने का काम कराना। डराइ—िक. श्र. [हिं. डरना] डरकर, डर (गये)। उ.—सुर सब गये ड़राइ—३-११।

डराउँ, डराउँ—कि. श्र. [हि. डरना] डरता हूँ, भयभीत होता हूँ, श्राशंकित हूँ। उ.— (क) अव-समुद्र श्राति देखि भयानक, मन मैं श्राधिक डराउँ— १-१६४। (ख) साधु-साधु सुरसरी-सुवन तुम, निहं प्रन लागि डराऊं। सूरजदास भक्त दोऊ दिसि, कापर चक्र चलाऊँ—१-२७४। (ग) रिच्छप तर्क बोलिहे मोसों, ताकों बहुत डराउँ—१-७५।

हराडरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डर ] डर, भय, ग्राजंका।
हरात—कि. श्र. [हि. डरना ] डरता है, भयभीत होते
हें। उ.—क) कामना करि कोटि कबहूँ किए बहु
पसु-घात। सिंहसावक ज्यौं तकें ग्रह, इंद्र श्रादि
डरात—१-१०६। (ख) देखि री नंद-नंदन श्रोर।
"वार बार डरात तोकों, बरन बदनहिं थोर--३६४।
डराति—कि. श्र. स्त्री. [हिं. डरना ] डरती (है),
भयभीत होतो (है)। उ.—(क) ग्रह को काज इनहुँ
तें प्यारी, नैकहुँ नाहिं डराति—१०-७६। (ख)
गवालिनी डराति जियहिं, सुनै जिन जसोवे—
१०-२८४ !

डराना—िक. स. [हिं. डरना] भयभीत करना।
डरानी—िक. श्र. स्त्री. [हिं. डरना] डर गयी, भयमीत
हुई। उ.—(क) लिछमन, धनुष देहु, कि उठे
हार, जसुमित सूर डरानी—१०-१६६। (ख) श्रव
लों सही तुम्हारी ढीठो, तुम यह कहत डरानी—१०४६।(ग) में श्रपने कुल-कानि डरानी—१४६२।
डराने—िक. श्र. [हिं. डरना] डर गये, भयभीत हुए।
उ.—(क) भीतर देखत श्रति डराने दुहुँनि दीन्यौ
रोह—१० २८६। (ख) हरि सब माजन फोरि
पराने। हाँक देत पैठे दै पेला, नेंकु न मनिहं
डराने—१०-३२८।(ग) देखि तरु सब श्रति डराने,
हैं बड़े बिस्तार—३८७। (घ) पाती बाँचत नंद
डराने—४२६।

डरानी—वि. [हिं. डर] डरा हुग्रा, भयभीत, ग्राशं-कित। उ.—कह्यी लंकेस दे ठेस पग की तबे, जाहि मति-मूढ, कायर, डरानी— ६-१११।

हरान्यो—कि. श्र. [हिं. हरना ] हर गया, भयभीत हुश्रा। उ.—(क) मथुरापित जिय श्रातिहिं हरान्यो। सभा माँभ श्रमुरिन के श्रागें, सिर धुनि-धुनि पिछतान्यो—१०-६०। (ख) कहत स्याम में श्रितिहिं हरान्यो। ऊखल तर में रह्यो छपान्यो—३६१। डरायो-कि. श्र. [ हिं. डराना ] डराया, भयभीत किया, श्राशंकित किया। उ.—यह सुनत परजरयो, बचन नहिं मन धरयो, कहा तें राम सों मोहिं डरायो— ६-१२८।

डरावन—वि. [हिं. डरावना] भयभीत करनेवाला, जिससे डर लगे, भयानक, भयंकर। उ.—सुनहु सूर ए मेघ डरावन—१०४८।

संशा पुं. [हिं. डर] डर, भय। उ.—बल-मोहन को नाम धरथो कहथो पकरि मँगावन। तातें श्रति भयो सोच लगत सुनि मोहिं डरावन—५८६। डरावना—वि. [हिं. डर] जिससे डर लगे, भयानक। डरावा—संशा पुं. [हिं. डराना] लकड़ी जो फसों की पिक्षयों से रक्षा करने के लिए पेड़ों से बाँधी जाती हैं; इसके खींचने से खटखट का शब्द होता है, खटखटा, भड़का।

डराहुक—िव. [हिं. डरना] डरपोक, कायर। डिए—िक. इ. [हिं. डरना] (१) डरो, भय करो। उ.— शहलाद-हित जिहिं ऋसुर मारयो, ताहि डिए डिए डिए—१-३०६। (२) डरकर।

डिरिपहु—िक. अ. [हिं. डरना] (१) डरना, मयभीत होना। उ.—डिरपहु जिनि तुम सघन कुंज महँ, तहँ के तरु हैं भारी—२६४२। (२) डरोगे, भयभीत होगे। डिरयाँ, डिरया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डार, डाल] डाल, जाला। उ.—(क) हों अनाथ बैठयों द्रुम-डिरया, पारिध साधे बान—१-६७। (ख) सीतल छहियाँ स्थाम हैं बैठे, जानि भोजन की बिरियाँ। बाम भुजाहिं सखा अँस दीन्हे, दिन्छिन कर द्रुम-डिरयाँ—४७०। डिरहे—िक. अ. [हिं. डरना] भयभीत होगा, सर्वक होगा। उ.—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डिरहे—१-२६।

कि. स. [हिं, डालना ] डाल देगा।
डिरहों—िक. स. [हिं, डालना ] डाल दूँगा, फॅक दूँगा।
उ.—ग्रमुर कठोर जमुन ले डिरहों—११६१।
डिरी कि. ग्र. स्त्री. [हिं, डरना ] भयभीत हुई, ग्राशंकित
हुई। उ.—नृप कन्या सो देखत डरी—६-३।
संज्ञा स्त्री. [हिं, डली ] स्त्रोटा टुकड़ा, डली।

डरीला—िव. [हिं. डार ] डाल-शाखा वाला। डरेंगे—िक. श्र. [हि. डरना ] डर जायँगे, भयभीत होंगे। उ. —यह सुनि के ब्रज लोग डरेंगे, वे सुनिहें यह बात—५२२।

हरे—िक. श्र. [हि. डरना] डरता है, भयभीत होता है। उ.—श्रधम कौन है श्रजामील तैं, जम तहँ जात डरे—१-२५।

डरेला—िव. [हिं. डर ]डरावना, भयानक। डरेहों— क्रि. श्र. [हिं. डरना] डरूँगा, भयभीत हूँगा। ड.—सेया हों गाइ चरावन जैहों। तू किह महर नंद बाबा सों, बड़ी भयों न डरेहों—४१२।

डरगो—िक. श्र. [हं. डरना] डरा, भयभीत हुगा। उ.—(क) इहिं श्रवसर कत बाँह छुड़ावत, इहिं डर श्राधिक डरगो—१-१५६। (ख) जिय श्राति डरगो, मोहिं मत साप, ब्याकुल बचन कहंत—६-८३।

डल-संशा पुं. [हिं. डला = दुकड़ा ] दुकड़ा, खंड। मुहा. = डल का डल — ढेर का ढेर, बहुत सा

संज्ञा स्त्री. [सं. तल्ल ] भ्रील ।

डलई—संश स्त्री. [हिं. डिलिया] छोटा टोकरा। डलना—िक. श्र. [हिं. डालना] डाला जाना, पड़ना। डलवा—संशा पुं. [हिं. डला] टोकरा।

डलवाना—कि. स. [हिं. डालने का पे.] डालने देना। डला—संज्ञा पं. [सं. दल] दुकड़ा, खंड।

संज्ञा पुं. [सं. डलक] टोकरा, दौरा। डिलिया, डली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डला] छोटा टोकरा। डली—संज्ञा स्त्री [हिं. डला] (१) छोटा टुकड़ा या खंड, कंकड़ी। (२) सुपारी।

डल्लक—संशा पुं. [सं.] डला, दौरा, टोकरा। डवँरू—संशा पुं. [हिं. डमरू ] डमरू नामक बाजा। डस—संशा स्त्री. [देश.] (१) एक तरह की शराब।

(२) तराजू की डोरी जिसमें पलड़े बँधते हैं, जोती। डसन— संज्ञा स्त्री. [सं. दंशन] उसने की किया, भाव या ढंग। उ.—यह स्त्रपराध को उन कीन्हो। तच्छक डसन साप में दीन्ही— १-२६०।

डसना—कि. स. [ सं, दंशन ] (१) किसी जहरीले कीड़े का दांत से काटना। (२) डंक मारना। संज्ञा पं. [हिं. डासन] बिछौना, बिछावन। डसवाना—िक. स. [हिं. डसना का प्रे.] (१) जहरीले कीड़े से कटवाना। (२) डंक मरवाना। डसा—संज्ञा पुं. [सं. दंश] डाढ़, चौभड़।

डसाइ—कि. स. [ हिं. डासना ] बिछाकर, बिछा (दी) । उ.—ग्रपनी ग्रपनी कंघ कमरिया ग्वालन दई डसाइ—२३२४।

कि. स. [हिं. डसाना ] दांत से कटाकर।

डसाए—िक. स. [हिं. डासना ] बिछाये। उ.—(क) पाटंबर पाँवड़े डसाए—१००१। (ख) एक दिवस वृंदाबन भीतर कर करि पत्र डसाए—३०८३।

डसाना - क्रि, स. [हिं. डसना का प्रे.] (१) जहरीले कीड़े से कटवाना। (२) डंक मरवाना।

क्रि. स. [हिं. डासना] (बिस्तर) बिछाना। डसायो—क्रि. स. [हिं. 'डसना' का प्रे.] बांत से कटवाया। उ. सरदास भगवंत-भजन-बिनु, काल-ब्याल पे श्रापु डसायो —१-३२६।

डसावें—िकि. स. [हिं. डासना ] बिछाते हैं, रखते हैं; धरते हैं। उ.—हा हा राम, लखन अरु सीता, फल भोजन जु डसावें पात—६-३८।

डिस अत—िक. स. [हिं. डासना] (बिस्तर आदि) बिछाते हैं। उ.—श्रोढ़िश्चत हैं की डिस अत हैं की घों कहिश्चत की घों जु पती जत—१४४१।

डसी—िक. त. स्त्री. [हिं. डसना] जहरीले कीड़े ने काट लिया, (विषेले कीड़े द्वारा) काटी गयी है। उ.—(क) डसी री स्थाम भुत्रंगम कारे। मोहन-मुख-मुस्क्यानि मनहुँ बिष, जात मैन सौं मारे—७४७। (ख) ताहि कल्लू उपचार न लागत डसी कठिन श्राहि-मैन—७४६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. इसी] (१) कपड़े के छोर का सूत, छीर। (२) कपड़े या थान का पल्ला। (३) पता, चिन्ह, निशानी, सहदानी।

डसै—कि. स. [हिं. डसना ] विषेला कीड़ा काट ले। उ.—कोड कहति श्रिह काम पठयो, डसै जिनि यह काहु । स्याम-रोमावली की छवि, स्र नाहिं निबाहु—६३६। डस्यो-कि. स. [हिं. डसना ] (विषेले की ड़ेन) काटा, उस लिया। उ. - (क) सुमिरत ही ऋहि इस्यौ पारधी, कर छूटयौ संधान — १-६७। (ख) स्याम-भुत्रांग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाइ--७४३। (ग) प्रात खरिकहिं गई, आइ बिहवल भई, राधिका क्वरि कहुँ डस्यौ कारौ--७५१।

डहकत-- क्रि. ग्र. [ हिं. डहकना ] ठगते या धोला देते हैं। उ.—डहकत फिरत आपने स्वारथ पार्लंड अप्र दये—३०६३ ।

डहकना-कि. स. [हिं. डाका ] (१) छल करना, धोखा देना, ठगना। (२) कोई वस्तु दिखाकर या देने को कहकर मुकर जाना या न देना।

कि. आ. [हिं. दहाड़, याड़ ]•(१) विलख विलख कर रोना, विलाप करना। (२) हुंकरना, दहाड़ना। क्रि. श्र. [ देश. ] फैलना, छिटकना।

डहकाना—कि. स. [ हिं, डाका ] गँवाना, नष्ट करना। स्वनिन, जलज जुग डहडहत—१०-१८४। कि. ग्र. — ठगा जाना, धोखा खाना ।

कि. स.—(१) धोला देना, ठगना । (२) देने के लिए कोई चीज दिखाकर भी न देन।

डहकानौ — कि. स. [ हिं. उहकना ] घोखे में पड़ गया, डहडहाट—संज्ञा स्त्री, [ हिं. डहडहा ] (१) हरापन । छला गया। उ.—सुत-बित-बिनता-प्रीति लगाई, (२) प्रफुल्लता, प्रसन्नता। (३) ताजगी। - भूठे भरम भुलानौ । लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यों डहकानी--१-३२६।

डहकायौ-कि. स. [हिं. डहकाना ] ठगा गया, धोखा खाया, छला गया । उ.—धोर्खें ही घोर्खें डहकायौ । (२) ग्रानंद, हर्ष । (३) ताजापन । समुक्ति न परी, बिषय रस गीध्यो, हरि-हीरा घर माँभ गँवायौ---१-३२५।

**डहकावै**—कि. स. [हिं, डहकाना ] खोता है, व्यर्थ गुँवांता है, नष्ट करता है। उ.—बाद-बिवाद, जज्ञ ब्रत-साधन, कितहूँ जाइ, जनम डहकावै--१-२३३। कि. श्र.—ठगा जाये, धोखा खाये। उ.—इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अजानी—३३४०। डहिक-कि, स. [हिं. डाका, डहकना ] किसी वस्तु से (दूसरों को) ललचाते हुए भी न देकर, देने को दिखाते हुए न देकर। उ.—स्याम सबनि मिलि

दिग, डहिक ऋापु मुख् नाइ—४३७। कि. श्र. हिं दहाड़, धाड़, डहकना ] बिलख-कर, बिलाप करके। उ.—सूर गोपिन सब ऊधी त्रागे डहिक दीन्हीं रोई--३२-६।

**डहके**—क्रि. स. [हिं. डाका, डहकना] **छल किया,** घोखा दिया, ठगा, जटा। उ.—इहिं बिधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय-जेते (हो) -- १-४४ । **डह्डह**—कि. वि. [हिं. डहडहा ] प्रफुल्लित होकर, प्रसन्नता से, भ्रानंदित होकर । उ.—चलित कुंडल, गंड-मंडल, भलक ललित कपोल । सुधा-सर जनु मकर क्रीइत, इंदु डह इह डोल-६२७।

वि. – प्रसन्न, प्रफुल्लित । उ. – हरष डहडह मुसुकि फूले प्रेम फलिन लगाइ—१६६०।

**डहडहत**—कि. य. [हिं. डहडहाना ] लहलहाते हें, खिलते हैं, हिलते हैं। उ.—दुर दमंकत सुभग

डहडहा—वि. [अनु.] (१) हरा-भरा, लहलहाता हुम्रा । (२) त्रसन्न, प्रफुल्लित, म्रानंदित । (३) तुरंत का, ताजा।

**डह्डहाना**—कि. श्र. [हिं. डहडहा ] (१) हरा-भरा होना, लहलहाना (२) प्रसन्त या भ्रानंदित होना ।

**डह्डहाव—सं**ज्ञा पुं. [हिं. डहड्हा] (१) **हरापन।** 

डहन-संशा पुं. [ सं. डयन = उड़ना ] पंख, पर, डेना। संशा स्त्री. [ सं. दहन ] दाह, जलन ।

डहना - संज्ञा पुं. [हिं. डहन ] यंख, पर, डेना। कि. श्र. [ सं. दहन ] (१) जलना, भस्म होना । (२) कुढ़ना, चिढ़ना, द्वेष या ईर्ध्या करना।

कि. स.—(१) जलाना, भस्म करना (२) कुढ़ाना, चिढ़ाना, संतप्त या दुखी करना ।

डहर—संज्ञा स्त्री. [हिं, डगर ] (१) रास्ता, मार्ग, पथ ।

(२) श्राकाशगंगा।

डहरना—कि, अ. [हिं, डहर ] चलना-फिरना। स्वात हैं लै लै कोर छुड़ाइ। अरिनि लेत बुलाइ इहराइ, इहराई—कि. स. [हिं. इहराना ] चलायी,

दौड़ाकर, फिराकर। उ.—कोऊ निरिख रही भाल चंदन एक चित लाई। कोऊ निरिष्ठ बिथुरी भृकुटि पर नैन डहराई।

डहराना-कि. स. [हिं. डहरना ] घुमाना-फिराना । **उहारे**—संशा स्त्री. दिश. दहरी ] मिट्टी का बरतन, मटकी। उ. - हरेषे नंद टेरत महरि। श्राइ सुत-ः मुख देखि त्रातुर, डा र दै दिध-डहरि---१०-६७ । ् इंश स्त्री. [हिं, डगर] रास्ता, पथ, मार्ग। उ.—(क) देखी उरहिं बीचहीं खाई, माटी भई जहरि। सूर स्थाम बिषधर कहुँ खाई, यह कहि चली डहरि—७५०। (ख) जल भरन कोउ नहीं पावति रोकि राखत डहरि – ८६०।

डहार—संज्ञा पूं, [हि. डाहना ] दुखी करनेवाला। ह्रहु हरू संशा पुं, [सं, ] बड़हर का पेड़ । र्ह्या—संज्ञा स्त्री. [ सं. डा ] डाकिनी, डाइन। डॉक—संज्ञा स्त्री. [हिं. दमक, दबॅक] ताँबे जैसी धातु का बहुत पतला पत्तर।

संशा स्त्री. [हिं. डॉकना] के, वमन, उलटी। डाँकना-कि. स. [हिं. लाँघना ] फाँदना, पार करना। हाँग संज्ञा पुं. [सं. टंक - पहाड़ी किनारा और चोटी] (१) पहाड़ी चोटी । (२) पहाड़ के ऊपर का जंगल।

रिक्त अस्ता पूं. [ सं. दंक, हिं. डागा ] लट्ठ, डंडा । संज्ञा पं. [हिं, डॉकना ] क्द-फाँद।

हाँगर—वि. दिश. ] (१) चौपाया, ढोर, पशु। (२) मरे हुए चौपाये की लाश। (३) एक नीच जाति। वि.—(१) दुबला-पतला । (२) मूर्ख, गावदी । डॉट-संज्ञा स्त्री. [स. दांति = दमन, वश] (१) ज्ञासन। (२) वरा, दबाव। (३) डॉटने-डपटने की किया।

महा.—डाँट में रखना—वश में रखना, इपट से रखना । डाँट रखना—दबाव रखना, स्वच्छन्द न होने देना।

(३) डराने के लिए दी हुई घुड़की, डपट। हिंहै-इपट-संज्ञा स्त्री हिं डॉटना - डपटना कि कोब-पूर्वक श्रौर घुड़की के साथ कही जानेवाली बात। डॉंटत-कि. स. [हिं. डॉंटना] घुड़कते या डपटते (रहो)। उ. - जैसे मीन किलकिला दरसत ऐसे रही प्रभु हाँड़ी - संशा स्नी. [हिं. डॉड़] (१) लंबी पतली सकड़ी।

डॉटल-१-१०७। डॉटना—कि, स. [हि, डॉट+ना ] घुड़कना, डपटना। डॉट-फटकार—संज्ञा स्त्री. [ हिं. डॉट+फटकार ]

डॉट-डपट, घुड़की, दब्राव।

डाँटी-कि. स. [हिं. डाँटना ] डाँटा, घुड़का, डपटा। उ.—(क) वारों कर जु कठिन ऋति, कोमल नयन जरह जिनि डाँटी-१०-२४६। (ख) सूनैं घर बाबा नँद नाही, ऐसैं करि हरि डाँटी — ३७५।

डाँटै-कि. स. [हिं. डाँटना ] डाँटती है, डपटती है, घुड़कती है। उ. जाको नाम लेत अम छूटै, कर्म-फंद सब काटै। सोई यहाँ जेंवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटै--३४६।

डाँटयौ-कि. स. [ िं. डाँटना ] घुड़का, डपटा । उ.-छाँ इ देस मम यह किह डाँटयौ--१-२६०।

डाँठ—संशा पुं. [ सं. दंड ] डंठल ।

डाँड़—संशा पुं. [ सं. दंड ] (१) डंडा, लाठी। (२) 'गतका' खेलने का डंडा। (३) श्रंकुश की मूठ्र। (४) सीधी लकीर। (४) रीढ़ की हड्डी। (६) ऊँची मेड़ जो सीमा या हद के लिए बनती है। मृहा,—डाँट मारना—मेड़ उठाना।

(७) छोटा टीला। (८) समुद्र का ढलुम्रा रेतीला किनारा। (६) सीमा, हव। (१०) म्रर्थदंड, जुर-माना। (११) नुकसान के बदले में लिया जानेवाला धन या वस्तु, हरजाना। (१२) नाव खेने का डंडा। डाँड़ना-कि. श्र. [हिं. डाँड़] जुरमाना करना। डाँड्र—संज्ञा पुं. [ हिं. डाँठ ] बाजरे की खूंटी। डाँड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. डाँड़ ] (१) डंडा। (२) 'गतका' खेलने का डंडा। (३) नाव खेने का डंडा। (४)

समुद्र का ढलुग्रा रेतीला किनारा । (४) हद, सीमा, मेड़ ।

मुहा. होली का डाँड़ा लकड़ी श्रादि कर ढेर जो होली जलाने के लिए इकट्ठा किया जाता है। डाँड़ामेंड़ा, डाँड़ामेड़ी—संज्ञा पं. [हिं. डाँड़ + मेड़ ] (१) एक ही मेड़ का ग्रंतर, लगाव। (२) ग्रनबन, भगड़ा, नोक्सोंक।

(२) किसी वस्तु की लंबी हत्थी जिसे पकड़कर काम किया जाता है, डंडी। उ.—हिर जू की आरती बनी। कच्छिप अध आसन अनूप अति डाँडी सहस फनी—२-२८। (३) तराजू की डंडी जिसमें पलड़े लटकाये जाते हैं।

मुहा.—डाँड़ी मारना—कम सौदा तौलना।

(४) टहनी, पतली शाखा। (१) फूल या फल की नाल। (६) भूले की लकड़ियां या डोरियां जिनमें बैठने की पढ़री फँसायी जाती है। उ.—पढ़लो लगे नग नाग बहु रंग बनी डाँड़ी चारि। भौरा भँवे भिंज केलि भूले नवल नागर नारि। (७) डाँड खेने वाला (८) सुस्त श्रादमी। (६)लीक, मर्यादा। (१०) फूल का निचला पतला भाग। (११) पालकी का डंडा। (१२) पालकी। (१३) डंड में बँधी भौलियों की सवारी, भणान।

हाँदरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाढ़ा] मटर की भुनी फली। हाँवरा—संज्ञा पुं. [सं. डिंब] लड़का, बेटा। हाँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाँवरा] लड़की, बेटी। डाँवरू—संज्ञा पुं. [सं. डिंब] बाघ का बच्चा। हाँवाडोल—वि. [हिं. डोलना] चंचल, हिलता हुम्रा। डाँस—संज्ञा पुं. [सं. देश.] (१) बड़ा मच्छड़। (२) एक तरह की बड़ी मक्खी।

डाँसर—संज्ञा पुं. [ देश. ] इमली का बीज, विश्रां। डाइन—संज्ञा स्त्री. [ सं. डाकिनी ] (१) भुतिनी, चुड़ैल।

(२) कुरूपा या हरावनी स्त्री। (३) जादू टोना करनेवाली स्त्री।

डाक — संज्ञा पुं. [हिं. डॉकना] (१) यात्रा की टिकानों में सवारी के जानवर बदलने का प्रबंध।

मुहा,—ड क बैठाना (लगाना)—सवारी के जानवर बदलने के लिए चौकी नियत करना।

(२) पत्र ग्राने - जाने की व्यवस्था । (३) चिट्ठी-पत्री।

संज्ञा स्त्री. [ श्रानु. ] वमन, उलटी, कै। डाकना—कि. ग्र. [ हि. डाक ] वमन या कै करना।

कि. स. [हिं. डाक+ना] लाँघना, पार करना। डाका—संज्ञा पुं. [हिं. डाकना या सं. दस्यु] श्रात्रमण

करके जबरदस्ती लूटना, बटमारी, लूट-मार। डाकानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाका+फ़ा. ज़नी] डाका डालने या बटमारी करने का काम।

डाकिन, डाकिनी — संज्ञा स्त्री. [सं. डाकिनी] (१) एक पिशाची जो काली के गणों में मानी जाती है।

(२) चुड़ैल, डाइन। डार्की—संशा स्त्री. [हिं. डाक] वमन, के, उलटी। वि.—बहुत खानेवाला, पेटू।

वि.—सबल, प्रचंड।

डाकू—संशा पुं. [हिं≉डाकना ] (१) लुटेरा, बटमार ।

्(२) बहुत खाऊ, पेटू।

डाकोर—संज्ञा पुं. [सं. ठक्कर, हिं. ठाकुर] (१)

ठाक्रजो। (२) विष्णु भगवान।
डाख—संज्ञा पुं. [हिं. ढाक] ढाक, पलाश।
डागार—संज्ञा स्त्रो. [हिं. ढंगर] मार्ग, रास्ता।
डागा—संज्ञा पुं. [सं. दंडक] नगाड़ा श्रादि बाजे बजाने का डंडा, चोब।

डागुर—संज्ञा पुं. [ देश. ] जाटों की एक जाति । डाट—संज्ञा स्त्री. [ सं. दाँति ] (१) टेक, रोक, चांड़ ।

(२) छेद बंद करने की चीज (३) काग, ठेठी। संज्ञा पु. [हिं. डाँट] डाँट-डपट, घुड़की।

डाटत—िक. स. [हिं. डॉटना] घुड़कते या डपटते (रहो)। उ.—जैसें मीन किलकिला दरसत, ऐसें रही प्रभु डाटत—१-१०७।

डाटना कि. स. [हिं. डाट] (१) दो चीजों को सटाकर दबाना। (२) टेकना, चाँड़ लगाना। (३) ठेंठी लगाकर छेद बंद करना। (४) कस कर घुसेड़ना। (४) खूब डंट कर खाना। (६) ठाठ से गहना कपड़ा पहनना। (७) भिड़ाना, मिलाना।

डाटे—िक. त्रा. [हिं, डाटना ] खूब डट कर खाया।
मुहा.—भोडन करि डाटे—भर पेट खाया, छककर खाया। उ.—ग्रानित तरु फल-सुगंध-मृदुल-

मिष्ठ खाटे। मनसा करि प्रसुहि ऋपि, भोजन करि डाटे—६-६६।

डाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. डाँड, डाँड़ी ] हिडोरे में लगी हुई चार सीधी लकड़ियाँ (या डोरियाँ) जिनसे

पटिरयां लटकतो रहती हैं। उ.—कंचन खंभ, मयारि, मश्वा-डाड़ी, खचि हीरा बिच लाल प्रबाल। रेसम बनाइ नव रतन पालनी, लटकन बहुत पिरोजा लाल—१०-८४।

डाढ़—संज्ञा स्त्री. [सं. द्रष्टा, प्रा. डड्ढ] (१) चबाने के दांत, चौभड़। (२) बट जैसे वृक्षों की जटाएँ। डाढ़ना—कि. स. [सं. दर्भ, प्रा. डड्ढ+ना (प्रत्य.)] जलाना, भस्म करना।

डाढ़ा—संशा स्त्री. [हिं. डाढ़ना] (१) ग्राग, ग्राग्न। (२) वन की ग्राग, दावाग्नि। (३) ताप, जलन। वि. पुं.—जलाया हुग्रा, तप्त।

डाढ़ी—िव. स्त्री. [हिं. डाढ़ना] जली हुई, दन्ध, तपायी हुई, तप्त । उ.—(क) सखी संग की निरखित यह छिब, भई ब्याकुल मन्मथ की डाढ़ी—७३६। (ख) नैन नींद न परे निसि दिन बिरह डाढ़ी देह—३२७५। (ग) कंघिन बाँह घरे चितवित द्रुम मनहु बेलि दव डाढ़ी—२५३५। (घ) ज्यों जलहीन दीन कुमुदिन बन रिव-प्रकास की डाढ़ी—३४७७।

संशा स्त्री. [हिं. डाढ़, दाढ़ी ] (१) ठोड़ी, चिबुक, ठुड़डी। (२) ठोड़ी ग्रीर गाल के बाल, दाढ़ी।

मुहा,—डाढ़ी का एक एक बाल करना—(१) डाढ़ी उखाड़ लेना। (२) दुर्वशा करना। डाढ़ी को कलप लगाना—बूढ़े और भले आदमी को कलंक लगाना। पेट में डाढ़ी होना—बहुत कांइयां और चालाक होना। डाढ़ी फटकारना—संतोष और हर्ष प्रकट करना।

डाब—संश स्त्री, [सं, दर्भ] (१) डाभ नामक घास। (२) कच्चा नारियल।

डाबक—िव. [हिं. डाभक] कुएं का ताजा पानी। डाबर—संज्ञा पुं. [सं. दभ्र = समुद्र, भील] (१) नीची भूमि जहां पानी जमा रहे। (२) पोखरी, तलया जिसमें बरसाती पानी हो। (३) हाथ घोने का पात्र। (४) मेला या गंदा पानी।

डाब—संज्ञा पुं. [हिं. डब्बा ] डिब्बा, संपुट। डाभ—संज्ञा पुं. [सं. दर्भ] (१) एक घास। (२) कुश घास। (३) ग्राम का बीर। (४) कच्चा नारियल। डाभक—ि [ अनु, डभक ] कुएँ का ताजा पानी । डामचा—संज्ञा पुं. [ देश. ] मचान, माचा । डामर—संज्ञा पुं. [ सं, ] (१) एक तंत्र । (२) हलचल, धूम । (३) ठाटबाट, सजावट, (४) चमत्कार । संज्ञा पुं. [ देश. ] (१) गोंद । (२) राल नाचक गोंद । (३) मक्खी जो राल बनाती है । डामाडोल—ि [ हिं. डाँवाडोल ] चंचल, अस्थिर । डायँडायँ—ि कि. वि. [ अनु. ] व्यर्थ मारे मारे फिरना ।

डायन—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाइन ] (१) पिशाचिनी,

खुंल, भुतिनी। (२) कुरूपा झौर भयानक स्त्री।
ढार—संज्ञा स्त्री, [सं. दारु—लकड़ी] (१) डाल, शाला।
ड.—(क) धरनि पत्ता गिरि परे तें फिरिन लागे
डार—१-८८ । (ख) रत्नजटित कंकन बाजूबंद
गगन मुद्रिका सोहै। डार-डार मनु मदन बिटप तह
बिकच देखि मन मोहै। (ग) जोइ जोइ द्यावत वा
मथुरा ते एक डार के से तोरे—३०५६। (घ)
इतनी कहत सुकाग उहाँ तें हरी डार उड़ि बैठ्यो—
६-१६४। (२) बरगद जंसे पेड़ों की नयी डालियां
जो पूजा के काम अपती हैं, हरी पत्तियों से युक्त
टहनियां। उ.—आजु बधायी नंदराइ कें, गावहु
मंगलचार। आई मंगल-कलस साजि के, दिध-फल
नूतन-डार—१०-२७।

संशा स्त्री. [सं. डलक] डिलया, चॅगेर।

क्रि. स. [हिं. डालना — फेंकना] फेंककर, डाल

कर। उ.—डार सस्त्र सर-सैया सोये हिर चरनन
चित लायो—सारा. ७८६।

प्र.—दीन्ही डार—फॅक दिया। उ.—सर्प-सर्प कह्यो बारंबार। तब रिषि दीन्ही ताकों डार-६-७। डारत—क्रि. स. [हं. डारना, डालना] डालता है। उ.—ग्रापुन तरि तरि श्रोरनि तारत। श्रस्म श्रचेत श्रगट पानी में, बनचर ले ले डारत—६-१२३।

प्र.—डारत हित—(१) तोड़ डालता है। उ.— ज्यों गज फटिक सिला में देखत दसनिन डारत हित—१-३००। (२) मार डालता है।

डारति—कि. स. [हिं, डालना] (१) डालती है। म.—डारति वारी—वारती है, निछावर करती है। उ.—दोड माता निरखत आलस मुख, छुबि पर तन-मन डारित वारी —१०-२२८।

(२) जादू-टोनाः ग्रादि करती है। उ.—कौन मंत्र जानति तू प्यारी, पढ़ि डारति होरे गात—७२१।

डारना—कि, स. [हिं, डालना] (१) गिराना। (२) छोड़ना। (३) घुसाना। (४) त्याग करना। (४) भ्रांकित करना।

डारा—संज्ञा स्त्री. [हिं. डार, डाल ] डाल, शाख, शाखा। उ.—(क) पौरि सब देखि सो असोक बन में गयौ, निरिष्त, सीता छप्यौ बृच्छ-डारा—१-७६। (ख) सबै समाने तरुवर डारा—७६१।

कि. स. भूत. [ हिं. डालना, डाला ] छोड़ा, डाला, त्याग दिया, गिरा दिया।

डारि—िक. स. [हिं. डालना] (१) छोड़ कर, निकाल कर, प्रलग करके, फेंक कर। उ.—-उमा कों छाँड़ि श्रह डारि मृगचर्म कों जाइके निकट रहे छद्र जोई—-द-१०।

प्र.—डारि देत—ग्रलग कर देते हैं। उ.—रस लै लै श्रोटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६३। दीन्हें डारि—फॅक दिये, गिरा दिये। उ.— कागद दीन्हें डारि—१-१९७।

(२) (सिंहासन, चौकी आदि) बिछा कर । उ.—
इंद्र एक दिन सभा में भारि । बैठे हुते सिंहासन
डारि—६-५।(३) जादू-दोना आदि करके । उ.—
लहर उतारि राधिका सिर तें दई तहनिनि पै
डारि—७६४।(४) त्याग करके । उ.—(क) स्थाम
हँसि बोले प्रभुता डारि—१७१९। (ख) मनहुँ सूर
दोउ सुभग सरोवर उमँगि चले मर्यादा डारि—
२७६५।(५) फेंक कर, शिरा कर।

प्र.—डारि दिये—फॅंक दिया, गिरा दिया। उ.— डारिन दिये कमल कर तें गिरि दिब रहतीं ब्रज-बाल—३१५६ ।

डारियास— संज्ञा पुं. [देश, ] अंदर की एक जाति। डारिहों — क्रि. स. [हिं, डालना ] डालूंगा।

प्र.—उपारि डारिहों— उलाड़ डाल्गा । उ.— कंस उपारि डारिहों भूतल, सूर सकल सुख पावत--१-१३३।

डारिहो-कि. स. [हिं. डारना, डालना] डालोगो। उ.—सूर तबहुँ न द्वार छाँड़े, डारिहो कढ़िराइ— १-१०६।

डारी—कि. स. [हिं. लिना] (१) डालकर, फेंककर, छोड़कर। उ.—दुरबासा दुरजोधन पठयो पांडव-श्रहित बिचारी। साक-पत्र ले सबै श्रधाए, न्हात भजे कुस डारी—१-१२२।

प्र.—रहत डारी—पड़ी रहती है। उ.—फलन मौं कर के तोमरि रहत घुरे पर डारी— २६३५। (२) डाल दी, छोड़ दी, रख दी, फेंक दी। उ.—पांडु कुमार पावन से डोलत, भीम गदा कर तैं मिंड डारी—१-२४८१। (३) भुला दी, विस्मृत कर दी। उ.—बन ही में बेंचित फिरै घर की सुधि डारी—११६३।

संशा स्त्री. [हिं. डाल ] डाल, शाखा। डारे-कि. स. [हिं. डालना] (१) डाल दिये, छोड़

विये, फेंक दिये । उ.—इन्द्रजितं बलनिधि जब ग्रायौ, ब्रह्म श्रम्न उन डारे—सारा. २८४।

प्रतित् श्रामिल, दासी कुडजा, तिनके कलिमल डारे घोई—१-६५।

(२) गिरा दिये, तोड़ दिये। उ.— ऊरध स्वांस समीर तेज श्राति सुख श्रानेक द्रुम डारे— २७६१। डारें—संज्ञा स्वी, सिंव, [हिं, डाल ] डाल पर। उ.—

बोलत मोर सेल द्रुम चिंद चिंद बन जु उड़त तह डारें—र⊏२०।

खारै—िक, स. [हं, डालना] (१) डाल देने पर, छोड़ देने पर । उ.—जैसे मीन दूध में डारे जल बिनु सचु निहं पाने हो—२८०४। (२) संपादित करता है, रचता है। उ.—बागर तें सागर किर डारे चहुँ दिसि नीर भरे—१-१०५। (३) वमन करता है, उलटी करता है। उ.—बमनिहं खाइ, खाइ सो डारे, भाषा किह किह टेरा—१-१८६।

खारों—िक. स. [हिं. डारना, डालना ] डालूं, रखूं। ड.—होड़ा होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट। ते सब पतित पाय-तर डारों, यहै हमारी भेंट-

डारो—कि. स. [ हिं. डारना, डालना ] (१) सम्मिलत कर लो, मिला लो। उ.—गीध-न्याध-गज-गनिका उधरी, ले ले नाम तिहारी। स्रदास प्रभु कृपावंत हाँ, ले भक्ति में डारो—१-१७८। (२) डाल लो, पड़ा रहने दो। उ.—स्र क्रर की याही बिनती, ले चर-नि में डारो—१-१२८। (३) छोड़ो, डाल दो। उ.—नाम लेइ गम श्राहुति डारो—४-११।

डारगो — कि. स. [हिं. डारना, डालना] (१) डाला, रखा। उ. — पतित-समूह सबै तुम तारे, हुतौ जु लोक भरथो। हों उनतें न्यारो किर डारथो, इहिं दुख जात मरथो — १-१५६। (२) किया, संपादित किया।

प्र.—बिताइ डारथौ — बिता दिया। उ. —या बिधि डारथौ जनम बिताइ—५-३।

(३) डाल दिया, फेंक दिया, छोड़ दिया। उ.— स्त-दारा को मोह श्रेंचे बिष, हरि श्रमृत-फल डारथी—१-३३६।

डाल—संशा स्त्री. [सं. दारु=लकड़ी, हिं, डार ] (१) शाखा, डाली।

मुहा.—डाल का दूटा—(१) डार्ल से पककर गिरा हुन्ना ताजा फल। (२) बढ़िया, म्रानोखा। (३) नया (ब्यक्ति)। डाल का पका — पेड की डाल में लगा रहकर पकनेवाला फल।

(२) तलवार का फल। (३) एक गहना।
संज्ञा स्त्री, [सं, डलक, हिं, डला] (१) डलिया।
(२) फल-फूल की भेंट जो डलिया में सजा कर
दी जाय।

कि, स, [हिं. डालना] गिराकर, छोड़कर।
मुहा.—डाल रखना—(१) किसी चीज को लेकर
रख छोड़ना। (२) किसी काम को लेकर भी उसमें
हाथ न लगाना।

डालना—िक. स. [सं. तलन=(नीचे) रखना ] (किसी चीज को गिराना, फेंकना, छोड़ना। (२) एक चीज को दूसरो पर गिराना। (३) किसी चीज को दूसरी में मिलाने के लिए उसमें गिराना।
(४) घुसेड़ना, भीतर करना। (४) खोज-खबर न
लेना, भुला देना। (६) चिह्न लगाना, ग्रंकित
करना। (७) फैलाना, एक चीज को फैलाकर दूसरी को
ढकना। (६) शरीर पर धारण करना, पहनना। (६)
किसी के जिम्मे छोड़ देना। (१०) के करना, उलटी
करना। (११) किसी स्त्री को पत्नी की तरह रख
लेना। (१२) लगाना, उपयोग करना।

डाली—संशा स्त्री. [हिं. डला, डाल ] (१) डिलया, चँगेरी। (२) फल फूल श्रादि से सजी डाली जो भेंट में दी जाय। (३) शाखा, डाल।

डावड़ा, डावरा—संशा पुं. [ मं. डिंब ] पुत्र, बेटा। डावड़ी, डावरी—संशा स्त्री. [ हिं. डावरी ] बेटी, पुत्री। डास—संशा पुं. [ देश. ] चमड़ा साफ करने का श्रीजार। डासन—संशा पुं. [ सं. डाभ+श्रासन ] बिछावन, चटाई, बिछोना, बिस्तर।

डासना—िक, स. [हं. डासन ] (बिछौना) बिछाना।

कि. स. [हं. डसना ] (जहरीले कीड़े का) काटना।
डासनी—संज्ञा स्त्री. [हं. डासन ] खाट, चारपाई।
डासि—िक. स. [हं. डासन, डासना ] बिछाकर, डाल
कर, फैलाकर। उ.—इहं बिधि बन बसे रघुराइ।
डासि के तृन भूमि सोवत, द्रुमिन के फल खाइ—
६-६०।

डांसी — कि. स. [हिं. डालना] उसी हुई। उ. — भूलि न उठत जमोदा जननी मनो भुग्रंगम डासी — ३४३६। डाह—संज्ञा स्त्री. [सं. दाह] (१) जलन, ईष्यां, देष। (२) बेर, पीछे। उ. — एते पर संतोष न मानत परे हमारे डाह— २८६८।

डाहति—िक, स. [हिं. डाहना] जलाती हैं। उ.—ए सब भई चित्र की पुतरी सून सरीरिहं डाहत—३०६५। डाहन—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाहना] सताने की किया।

कि. स. [सं. दाहन ] जलाने, सताने, तंग करने। उ.—काहे को मोहिं डाहन ग्राए रैनि देत सुख वाको। डाहना—कि. स. [सं. दाहन] जलाना, सताना। डाहिन—संज्ञा स्त्री, सवि. [हं, डाह+नि (प्रत्य.)] डाह

से, ईर्घा से। उ.—सूर डाहिन मरत गापी कूबरी के

े भूरि---१६८२ । डाहीं-कि. स. [हिं. डाहना] जलायीं, दग्ध कीं। उ.—मुरछ्यौ मदन तरुनि सब डाहीं—पृ. ३३८। डाही-वि. [ हिं. डाह ] ईर्ध्या करनेवाला। डाह्क —संशा पं. [ देश. ] एक छोटा पक्षी। हिंगर--संहा पूं. [ सं. ] (१) मोटा आदमी। (२) दुष्ट, ठग। (३) दास। (४) नीच मनुष्य। संशा पं. [देश.] वह मोटा डंडा जो नटखट चौपायों के गले में बाँधा जाता है, ठिंगुरा। डिंगल—वि. [ सं. डिंगर ] नीच, दोषपूर्ण । संज्ञा स्त्रो .- राजपूताने की काव्य-भाषा। डिंडिम, डिंडिमी—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) चमड़ा मढ़ा एक प्राचीत बाजा, डुगडुगी। (२) कशैंदा नाभक फल। डिंडिर—संशा पुं. [सं. ] समुद्रफन । डिंब — संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) लड़ाई-दंगा। (२) भ्रंडा। (३) फेफड़ा।(४) की ड़े का छोटा बच्चा। (५) बच्चा। डिंबाहव—संशा पुं. [ सं. ] मामूली लड़ाई। डिंबिका—संशास्त्री. [ सं. ] मदमाती स्त्री। र्डिंभ—संशा पुं. [सं. ] (१) छोटा बच्चा । उ.—महि मनि-खंभ डिंभ डग डोलैं। कलबल-बचन तोतरे बोलैं-१०-११७।(२) मूर्क व्यक्ति। संज्ञा पूं. [सं. दंभ ] (१) पालंड, ग्राडंबर । (२) घमंड, श्रभिमान। डिंभक—संशा पुं. [सं.] छोटा बच्चा। डिंभिया—वि. [सं. दंभ, हिं. डिंभ ] (१) पालंडी, अप्राडंबरप्रिय। (२) घमंडी, श्रभिमानी। डिकी-संशा स्त्री, [हिं. धका ] धक्का, चपेट। डिगना—िक स्र [हिं. डग] (१) हटना, सरकना, जगह छोड़ना। (२) बात पर दृढ़ न रहना। डिगवा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का पक्षी। डिगाना—िक. स. [ हिं. डिगना ] (१) सरकाना, खिस-काना। (२) बात या सिद्धांत से विचलित करना। डिग्गी—संज्ञा स्त्री. [ सं. दीर्घिका ] तालाब, बावली । डिठार—वि. [हिं, डीठ = नजर ] श्रांखोवाला । डिठियारा—वि. [हिं. डीठि+श्रारा (प्रत्य.)] श्रांखों-वाला, जिसको ग्रच्छी तरह सुभायी देता हो।

डिठोहरी—संश स्त्री. [हिं.डीठ + हरना ] एक जंगली फल के बीज जो नजर से बचाने के लिए बच्चों को पहनाये जाते हैं। डिठौना, डिठौरा—संज्ञा पुं. [ हिं. डीठ ] काजल टीका जो बच्चों को नजर से बचाने के लिए लगाया जाता है। उ. -सिर चौतनी, डिठौना दीन्हौ, श्राँखि श्राँजि पहिराइ निचोल-१०-६४। डिंढ़--वि. [सं. दृढ़ ] पक्का, मजबूत । डिढ़ाना—कि. स. [हिं हढ़] (१) पक्का या मजबूत करना। (२) संकल्प करना, निश्चय ठानना। डिटया—संज्ञा स्त्री. [देश.] लालच, तृष्णा। डित्थ—संज्ञा पुं. [ सं. ] विशेष गुणवाला व्यक्ति । डिंबिया-संज्ञा स्त्री. [हिं. डिब्बा ] छोटा डिब्बा। डिब्बा—संज्ञा पुं. [हिं. डब्बा] छोटा ढक्कनदार पात्र, संपुट । डिभगना--क्रि. स. [देश.] मोहित करना। डिम-संज्ञा पुं, [सं.] नाटक का एक भेद। डिमंडिंमी—संशा स्त्री, [सं, डिडिम] चमड़ा मढ़ा एक प्राचीन बाजा, डुगडुगी । उ.—डिमडिमी पटह ढोल े डफ बीना मृदंग उपँग चँगतार। डिल्ला—संज्ञा पूं. [ सं. ] एक छंद । संज्ञा पूं [ हिं टीला ] बेलों का कूबड़ । डींग—संशा स्त्री. [ सं. डीन = उड़ान ] खूब बढ़ बढ़कर कही हुई बात, शेखी।

मृहा.—डींग की लेना—शेखी बघारना। डीकरी—संज्ञा स्त्री. [ सं. डिंबक ] बेटी, पुत्री। डीठ—संज्ञा स्त्री. [ सं. दृष्टि, प्रा. दिट्ठि, डिंटिठ ] (१) दृष्टि, निगाह, नजर।

मुहा,—डीठ चुराना (छिपाना )—ग्नांख न मिलाना, सामने न ताकना । डीठ जोड़ना—नजर मिलाना, सामने देखना । डीठ बाँधना—ऐसा जादू-टोना करना कि सामने की चीज भी ठीक ठीक न दिखायी दे । डीठ मारना—नितवन से मोह लेना । डीठ रखना—देख-रेख रखना । डीठ लगाना— नजर लगाना ।

(२) देखने की शक्ति। (३) समभ, बुद्धि।

डीठना—िक, श्र. [हिं, डीठ+ना ] दिखायी देना। डीठबंध—संज्ञा पुं. [सं. हिंटबंध ] (१) ऐसा जादू-टोना कि सामने की चीज भी साफ साफ न दिखायी दे। (२) ऐसा जादू-टोना करनेवाला।

डीर्ठ—संज्ञा स्त्री. [हं. डीठ] (१) नजर का कुप्रभाव। उ.—(क) बाहर जिनि कबहूँ खैथे सुत डीठि लगेगी काहू की—१०४। (ख) डीठि लगावित कान्ह को जरें बरें वे आँखि—-१०-६६। (२) दृष्टि। (३) देखने की जिन्त। (४) समभ, बुद्ध। डीठिमूठि—संज्ञा स्त्री. [हं. डीठि+मूठ] नजर, टोना। डीन—संज्ञा स्त्री. [सं.] पक्षियों की उड़ान।

डीबुआ—संशा पुं. [ देश. ] पैसा। डीमडाम—संशा पुं. [ सं. डिंब = धूमधाम ] (१) ऐंठ, ठसक। (२) धूमधाम, ठाटबाट, ग्राडंबर।

डील—संज्ञा पुं. [देश.] (१) शरीर की ऊँचाई या विस्तार, कद, उठान।

यौ.—डील डौल—(१) शरीर की लंबाई-चौड़ाई। (२) शरीर का ढांचा या श्राकृति, काठी। (२) शरीर, देह। (३) प्राणी, मनुष्य।

डीह—संज्ञा पुं, [फ़ा, देह ] (१) गाँव, श्राबादी। (२) उजड़े हुए गाँव का टीला। (३) ग्राम-देवता।

हुंग—संज्ञा पुं. [ सं. तुंग = ऊँचा ] (१) हेर, ग्रंबार । (२) टीला, भीटा, पहाड़ी ।

डंगरिन—संज्ञा पुं. [सं, तुंग=पहाड़ी, हिं, डूँगर ] टीला, भीटा, ढूह। उ.—बृंदा आदि सकल बन इंद्र्यो, जहँ गाइनि की टेर। सूरदास प्रभु दुरत दुराए, डुँगरिन ओट सुमेर—४५८।

र्डुड—संज्ञा पुं, [सं. दंड ] पेड़ या उसकी डाल जिसमें पत्ते श्रादि न हों।

संज्ञा पुं. [हिं. डोंड़ी] डुगडुगी, डोंड़ी। डुंड, डुंडु, डुंडुभ—संज्ञा पुं. [सं.] पानी का साँप। डुंडुल—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा उल्लू। डुक, डुका—संज्ञा पुं. [अनु.] घूंसा, मुक्का। डुकिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोकिया] काठ का कटोरा। डुकियाना—कि. स. [हें. डुंक] घूंसे मारना। डुगडुगाना—कि. स. [अनु.] डुगडुगी बजाना।

डुगडुगी, डुग्गी—संज्ञा स्त्री. [ त्रातु. ] चमड़ा मढ़ा एक छोटा बाजा, डोंगी, डोंड़ी।

मुहा. — डुगडुगी पीटना — चारों ग्रोर प्रकट करना। डुड़ — संज्ञा पुं. [सं. दादुर] मेढक।

डुपटना—कि. स. [हिं. दो+पट] (किसी वस्त्र श्रादि को) तहाना, चुनियाना, चुनना।

डुपट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. दुपट्टा] दो पाट की चादर। डुबकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डूबना] (१) पानी में डूबने की किया, गोता, बुड़की। (२) पीठी की बिना तली बड़ियाँ। (३) एक तरह की बटेर,

डुबवाना—कि, स. [हिं. डुबाना का पे.] पानी में डुबाने का काम दूसरे से करना।

डुबाना—िक,स.[हिं.डूबना](१) पानी या किसी द्रव पदार्थ में गोता देना, बोरना।(२) चौपट या नष्ट करना। मुहा,—नाम डुबाना—नाम या यश को कलंकित

करना, नाम या यश पर धब्बा लगाना। लुटिया डुबाना—(१) महत्व या बड़ाई खोना। (२) काम बिगाड़ना। वंश डुबाना—कुल की प्रतिष्ठा खोना।

डुबाव—संशा पुं. [हिं, ह्रबना ] पानी की इतनी गहराई जिसमें कोई प्राणी डूब जाय।

डुबोना—िक. स. [हिं. डबोना] डुबकी देना। डुब्बी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डुबकी] गोता, डुब्बी।

डुभकोरी—तंज्ञा स्त्री. [हिं. डुबकी+बरी.] पीठी की बिना तली बड़ियाँ जो पीठी के भोल में पकायी जाती हैं।

डुलत-कि. श्र. [हिं. डुलना, डोलना] हिलती है, चलायमान होती है। उ.—डुलत नहिं द्रुम-पत्र बेली, थिकत मंद-समीर—६५८।

डुलिति—िक. अ. [ हिं. डोलना ] हिलती-डुलती है, चलायमान होती है। उ.—डोलत तन सिर-अंचल उधरथी, बेनी पीठि डुलित इहिं भाइ—१०-२६८।

डुलना—िक. त्र. [हं. डोलना] हिलना-डोलना। डुलाए—िक. स. [हं. डोलना] हिलाया, चलायमान किया। उ.—िलिखि लिखि मम त्रपराघ जनम के चित्रगुप्त त्र्राकुलाए। भृगु रिषि क्रादि सुनत चिक्रत भए, जम सुनि सीस डुलाए—१-१२५। डुलाना—िक. स. [हिं. डोलना ] (१) हिलाना, गित में लात्रा। (२) भगाना। (३) घुमाना, टहलाना। डुलाय—िक. स. [हिं. डुलाना ] घुमाकर। उ.—द्वारे पैठत कुंजर मारयो डुलाय घरनी डारयो—२६१०। डुलावत—िक. स. [हिं. डुलाना ] हिलाती-डुलाती है, चलायमान करती है। उ.—(क) दिध ले मथिति ग्वालि गरवीली। रुनक-मुनक कर कंकन बाजै, बाँह डुलावत ढीली—१०-२९६। (ख) स्रदास मानहु करमा-कर बारंबार डुलावत—६३२। (ग) मानहुँ मूक गिठाई के गुन, कि न सकत मुख, सीस डुलावत—६४८।

डुलावित — कि. स. स्त्री. [हिं. डुलाना] हिलाती-डुलाती है, चलायमान करती है। उ.—मुरली तक गुपालिहें भावित। ""।सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, घर तैं सीस डुलावित—६५५।

डुलावन—कि. स. [हिं डुलाना] चलाना-फिराना, घुमाना, टहलाना। उ.—जसुमित बाल-बिनोद जानि जिय, उहीं ठौर लै आई। दोड कर पकरि डुलावन लागी, घट मैं नहिं छिब पाई—१०-१५६।

डुलावे—िक. स. [हं. डुलाना] (१) हिलाता है, चलायमान करता है। उ.—(क) बहत पवन, भर-मत सिस - दिनकर, फनपति सिर न डुलावे—१-१६३। (ल) असुर-सुता तिहि व्यजन डुलावे—६-१७४। (२) चंचल करता है, विचलित करता है। उ.—ऐसें सूर कमल-लोचन तें चित नहिं अनत डुलावे हो—२-१०।

डुलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा कछ ग्रा, कछ ई। डुले—िक. ग्रा. [हिं. डुलना, डोलना] हिलता-डुलता हे, चलायमान होता है। उ.—डुले सुमेर, शेष-सिर कंपे, पिच्छिम उदे करे बासरपति—६-८२।

हूँगर—संशा पुं. [सं. तुंग = पहाड़ी] (१) टीला, भीटा, दूह। उ.—स्रदास प्रभु रिसक सिरोमिन कैसे दुरत दुराय कही घों हूँगर श्रोट सुमेर। (२) छोटी पहाड़ी। उ.—छिन ही मैं ब्रज घोइ बहावै। हूँगर को कहुँ पार न पावै।

डू गरी—संज्ञा पुं. [हिं. डूँगर ] छोटी पहाड़ी।

डूँ ज—संग स्त्री, [देश.] ग्रांधी, तेज हवा।
डूँ डा—िव. [सं. त्रुटि, हिं. टूटना] एक सींगवाला।
डूकना—िक. स. [सं. त्रुटि+करण] भूल करना।
डूब—िक. श्र. [हिं. डूबना] पानी ग्रादि में डूबकर।
मुहा.—(चुल्लू भर पानी में) डूब मरना—शर्म

या लाज से मुँह छिपाना।

दूबता—वि. [हिं. डूबना] जो डूब रहा हो। दूबते—वि. [हिं. डूबता] जो डूब रहे हों।

मुहा.—डूबते को तिनके का सहारा—विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति को जरा सी सहायता भी बहुत होती है।

हूबना—कि. श्र. [ श्रनु, हुबहुव ] (१) पानी या श्रन्य द्रव पदार्थ के भीतर जाना, गोता खाना, बूड़ना।

मुहा.—हूबना-उतराना—(१) सोच या चिंता में पड़ जाना। (२) घबराना। जी हूबना—(१) जी घबराना। (२) बेहोशी होना।

(२) पह-नछत्र श्रादि का श्रस्त होना। (३) चौपट, नष्ट या बरबाद होना।

मुहा, —नाम ह्रबना — सान-सर्यादा नष्ट होना।

(४) पूँजी नष्ट होना। (४) लड़की का बुरे घर ब्याहा जाना। (६) विचार था ध्यान में लीन होना।

डेड़ हा—संज्ञा पुं [सं, डुंडुभ ] पानी का साँप।
डेढ़ —िवि. [सं, अध्यद्धं, प्रा. डिइयढ] एक भ्रौर ग्राधा।
मुहा.—डेढ़ ईट की जुदा मसजिद खड़ी करना
(बनाना)—ऐंठ ग्रौर ग्रकड़ के कारण सबसे ग्रलग काम
करना। डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना—ग्रपना
मत या काम सबसे ग्रलग रखना।

डेढ़ा—िव [हिं, डेढ़] डेढ़ गुना, डेवढ़ा। डेबरा—िव [देश.] बायें हाथ से काम करनेवाला। डेर—संज्ञा पुं. [हिं, डर] भय, ग्राज्ञंका। डेरा—संज्ञा पुं. [हिं, डालना या ठहराना] (१) टिकान, पड़ाव, ठहरने का काम या भाव।

मुहा.—डेरा दयो (दियो)—ठहरे, दिके, रह गये।
उ.—(क) ता श्रास्त्रम स्रजात नृप गयो। तहाँ
जाइके डेरा दयो—६-३। (ख) लंकपुर
श्राइ रघुराइ डेरा दियो, तिया जाकी सिया मैं लै

श्रायौ-- ६-१४२ ।

(२) टिकने का सामान या आयोजन। यौ,---डेरा-डंडा-- बोरिया-बँधना, माल श्रसबाब। महा,—डेरा डालना—टिकना, ठहरना, रकना। डेरा पड़ना-टिकान होना, छावनी पड़ना । डेरा परे-छावनी छायी गयी, टिकने का श्रायोजन किया गया। ड.—भरि चौरासी कोस परे गोपन के डेरा । डेरा-डंडा उखाइना (हटाना ) — टिकने या ठहरने का सामान समेटना ।

(३) ठहरने का स्थान। (४) खेमा, तंबू। (५) नाचने-गानेवालों की मंडली । (६)घर, निवासस्थान। वि. [ सं. डहर ] बायाँ।

संशा पूं. [देश.] एक छोटा जंगली पेड़ । डेराई—कि. श्र. [हिं. डरना] डरती है, भयभीत होती है। उ.—सुनहु सूर माता रिस देखत राधा सकुचि डेराई।

डेराऊँ — कि. श्र. [हिं. डरना] डरता हूँ। उ \_ जब परतीति होइ या जुग की परमिति छुटत डेराऊँ --१२३१।

डेराना—कि. अ. [हिं. डरना ] भयभीत होता। डेरानी-कि. श्र. [हिं. डेराना ] डरी, भयभीत हुई। उ.—मैं कछू कपट सबन भौं कीन्ही अपजस तैं न डेरानी--१००८।

डेराने—कि. ग्र. [हिं. डरना] डरे, भयभीत हुए। ठ.-देव भोग को रहत डेराने-१००८।

डेरानो-कि. स्र. [हि. डरना ] डरा, भयभीत हुन्ना। उ.—सूर सोच मुख देख डेरानो ऊर्घ लेत उसाँस---२४६५।

डेरे-संज्ञा पुं [ हिं. डेरा ] डेरा, टिकान।

मुहा.—दए श्रानि डेरे—डेरा डाला, ठहरे, श्राकर टिके। उ.—सुनि श्ररे सठ, दसकंठ कों कौन डर, राम तपसी दए ऋानि डेरे-- १-१२६।

डेरो, डेरौ-संज्ञा पुं. [हिं. डेरा] पड़ाव, जमाव, टिकान। उ.—(क) कहा भयी जी संपति बाढ़ी, कियो बहुत घर घेरों। कहुँ हरि-कथा, कहूँ हरि- डोक—संज्ञा पुं. [देश.] पकी हुई खजूर। पूजा, कहुँ संतिन की डेरी—१-२६६। (ख) कोटि

छ यानवे मेघ नुलाये आनि कियो बज डेरो—६५६।

(२) टिकने का आयोजन या सामान । महा,--डेरो परयो-टिके, छावनी डाली। उ.—डेरो परयौ कोस चौरासी—१०३६।

डेल-संज्ञा पुं. [सं. डंडुल ] उल्लू पक्षी।

संज्ञा पुं. [ सं. दल, हिं. डला ] पत्थर या ईंट का टुकड़ा, रोड़ा, ढेला। उ.—नाहिंन राम रसिक रस चाख्यौ तातें डेल सो डारो।

डेला- संज्ञा पं. [सं. दल ] आँख का कोया।

संज्ञा पं [हिं. ठेलना ] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँधा जाता है, ठेंगुर।

डेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डला ] बाँस की डलिया, भाँपी। डैंबढ़ — वि. [ हिं. डेबढ़ा ] डेढ़ गुना, डेबढ़ा। डेवढ़ना-कि. स. [ हिं. डेवढ़ा ] (१) श्रांच पर रोटी

फुलाना। (२) कपड़े तहाना। डेवढ़ा-वि. [हिं. डेढ़ ] डेढ़ गुना। डेवद़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ड्योढ़ी ] दरवाजा, पौरी। डेहरी, डेहल--संशा स्त्री. [ सं. देहली ] दहलीज। डैना—संज्ञा पुं. [ सं. डयन=उड़ना ] पंख, पर, पक्ष । डोंगर--संज्ञा पुं. [सं. तुंग=पहाड़ी ] पहाड़ी, टीला, भीटा। उ.—(क) एक फूँक बिष ज्वाल के जल डोंगर जिर जाहि। (ख) डोंगर को बल उनिहें बताऊँ—१०४३। (ग) वै बरखत डोंगर बन धरनी

सरिता कूप तड़ाग - पृ. ३३०। डोंगरि, डोंगरी—संशा स्त्री. श्रल्प. [हिं. डोंगर ] छोटी पहाड़ी, टीला। उ.—वृंदाबन ढँढयौ जमुना तट देख्यौ बन डोंगरी मँभारी - १५७७।

डोंगा—संज्ञा पुं. [सं. द्रोण] बिना पाल की नाँव। डोंगी—संशा स्त्री. श्रल्प, [सं. द्रोणी ] छोटी नाँव। डींड़ा—संज्ञा पुं. [ सं. तुंड ] (१) बड़ी इलायची। (२) ें टोंटा, कारतूस।

डोंड़ी—संशा स्त्री. [ सं. तुंड ] टोंटी।

संज्ञा स्त्री. [ सं. द्रोणी ] छोटी नाँव, डोंगी। संशा स्त्री. [हिं. डौंड़ी ] दिंढोरा।

ड़ोकर, डोकरड़ो, डोकरा, डोकरो—संज्ञा पुं. [ सं.

दुष्कर ] (१) बूढ़ा या शक्तिहीन मनुष्य। (२) पिता, बाप।

डोकरिया, डोकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोकरा] (१)

बूढ़ी या शक्तिहीन स्त्री। (२) माता। डोकिया, डोकी—संज्ञा स्त्री. [सं. द्रोणक=काठ का

कटोरा ] काठ की छोटी कटोरी।
डोगर—संज्ञा पुं. [हं. डोंगर ] पहाड़ी, टीला।
डोड़हथी — संज्ञा स्त्री. [हं. डाँड़ा+हाथ ] तलवार।
डोड़हा—संज्ञा पुं. [सं. डुंडुभ ] पानी का साँप।
डोब, डोबा— संज्ञा पुं. [हं. डूबना ] गोता, डुबकी।
डोभरी—संज्ञा स्त्री. [देश. ] ताजा महुग्रा।
डोम, डोमड़ा—संज्ञा पुं. [सं. डम ] एक नीच जाति।
डोमनी, डोमिन—संज्ञा स्त्री. [हं. डोम ] डोम स्त्री।
डोमा—संज्ञा पुं. [देश. ] एक तरह का साँप।
डोस—संज्ञा स्त्री. [सं ] डोरा, तागा, धागा, सूत। उ.—

(क) रतन जटित बर पालनो रेसम लागी डोर, बलि हालरु रे—१०-४७। (ख) देत छबि श्राति गिरत उर पर श्रंबु-कन के जोर। ललित हिय जनु मुक्त-माला, गिरति टूटें जोर—३५८। (ग) श्रालकाविल मुकुताविल गूँथी डोर सुरंग बिराजै—स√रा. १७३।

मुहा.—डोर पर लगाना—ठीक रास्ते या ढंग पर लगाना । डोर मजबूत होना—जिंदगी बाकी होना । डोर होना—मोहित होना ।

कि. स. [हं. डोलना] हिलता-डुलता (है), चलायमान होता (है)। उ.—सजल चंपल कुनीनिका पल श्रारन ऐसें डोर (ल)। रस भरे श्रांबुजनि भीतर भ्रमत मानौ भौर—१७३।

होरक—संज्ञा पुं. [सं. ] डोरा, तागा, सूत।
होरा—संज्ञा पुं. [सं. डोरक] (१) सूत, तागा, धागा।
उ.—ग्रासा करि-करि जननी जायो, कोटिक लाइ
लड़ायो । तोरि लयो कटिहू को डोरा, तापर बदन
जरायो—२-३०। (२) धार्रा, लकीर। (३) ग्रांखों
की महीन लाल नसें। (४) तलवार की धार। (४)
तपे हुए घी की धार उपर से डालना। (६) खड़े
फल की कलछीं। (७) प्रेम का बंधन, लगन।

मुहा,—डोरा डालना—प्रेम में फंसाना। डोरा

लगना-प्रेम में फैसना।

(८) किसी चीज के खोजने का पता या सुराग। (६) काजर या सुरमें की रेखा।

संशा पुं. [हिं, ढोंड़ ] पोस्ते भ्रादि का डोडा। डोरि, डोरी-संज्ञा स्त्री. [हिं. डोरा, डोरी ] (१) डोरी, रस्सी। उ.—ज्यों कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कों चौहटें नचायौ--१-३२६। (२) पतला तागा या धागा, डोर । उ.—ऋति ऋाधीन भई सँग डोलत ज्यों गुड्डी बस डोरि- ए. ३३३। (३) मंगलसूत्र, सुत की बटी हुई डोरी। (४) पाश, बंधन, बाँधने की डोरी। उ.—तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू जब कौसिल्या माता श्रावै—६-२५। (४) पाश, बंधन, बांधने की डोरी। उ.—(क) जनम सिरानी श्रटकें-श्रटक। राज-काज, सुत-बित की डोरी, बिनु बिवेक फिरथौ भटकैं--१-२६२। (ख) मैं-मेरी करि जनम गँवावत जब लगि नाहिं परति जम डोरी-१-३०३ । (४) प्रेम का बंधन, स्नेह-सूत्र । उ.—(क) बात कहीं तेरें ढोटा की सब ब्रज बाँध्यो प्रेम की डोरि-१०-३२७। (ख) काके मये कौन के हैं बँधे कौन की डोरी---२८६३। (ग) काको मान परेखो कीजै बँधी प्रेम की डोरी—३१११।

डोरिया - संज्ञा पुं. [हिं. डोरा] मोटे सूत की धारियों वाला: सूती कपड़ा।

डोरियाना—िक, स. [हिं, डोरी + ऋाना (प्रत्य.)] पशुग्रों को डोरी से बांधकर ले चलना।

खोरिहार—संज्ञा पुं [हिं. डोरी + हारा ] रंगीन सूतों से बिनने का काम करनेवाला, पटवा।

डोरिहारिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोरिहार] पटवे की स्त्री। डोरे—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोर, डोरी] डोर, तागा। उ.—ज्यों डोरे बस गुडी देखियत डोलत संग श्रधीने—ए. ३३५।

कि, वि,—साथ-साथ, संग-संग, एक साथ। डोल-कि, स. [सं, दोल, हिं, डोलना] हिलता-डुलता (है), चलायमान होता (है)।

> वि.—[हिं. डोलना] चंचल, हिलता हुग्रा। संज्ञास्त्री, [हिं. डोलना] हिलने-डुलने की ऋया

या भाव, हिलना-डुलना । उ.—कीघों मोर मुदित नाचत की घरहि मुकुट की डोल—१६२८ ।

संज्ञा पुं. [सं. डोल — भूलना, लटकना] (१)
कुएँ से पानी भरने का लोहे का पात्र। (२) हिंडोला,
भूला, पालना। उ.—सघन कुंज में डोल बनायो भूलत
हैं पिय प्यारी। (३) डोली, पालकी, शिविका।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की काली मिट्टी। डोलक—संज्ञा पुं. [सं.] ताल देने का एक बाजा। डोलची—संज्ञा स्त्री. [हिं. डोल] (प्रत्य.) (१) छोटा डोल। (२) डोल के ग्राकार की बास की पिटारी।

डोलडाल—संज्ञा पुं. [हिं. डोलना ] चलना-फिरना।
डोलत—क्रि. स. [हिं. डोलना ] (१) धूमते-फिरते
हें । उ.—(क) भक्त-विरह-कातर करुनामय
डोलत पाछें लागे—१-८। (ख) ग्रानंद मगन भए
सब डोलत कछू न सोध सरीर—१-१८। (२)चलताफिरता है, सजीव है। उ.—जब लिंग डोलत बोलत
चितवत ६न-दारा हैं तेरे—१-३१६।

होलित कि. स. स्त्री. [हिं. डोलना] घूमती-फिरती है। उ.—दर-दर लोभ लागि लिये डोलित, नाना स्वाँग बनावे—१-४२।

डोलन—क्रि. स. [हिं. डोलना ] हिलने-डुलने (लगे), चलायमान (हुए)। उ.—सेष सहस फन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ—१०-६४।

संज्ञा स्त्री.—घूमने-फिरने की क्रिया या भाव। उ. —संभा समय घोष की डोलन वह सुधि क्यों बिसरे —रद०३।

डोलना—संज्ञा पुं, [सं. दोलन=लटकना, हिलना, हिं. डोला विच्चों का पालना, ढोलना । उ.—अगरु चंदन को पालनो (रॅगि), इंगुर ढार सुढार। ले आयो गढ़ि डोलना (हो), बिसकर्मी सुतहार—१०-४०। कि. स.—(१) हिलना, चलायमान होना। (२) चलना, फिरना, टहलना। (३) हटना, दूर होना। (४) चित्त विचलित होना या डिगना।

डोलिन—संज्ञा पुं. [हिं. डोलना ] डोलने या हिलने-डुलने की किया। उ.—(क) बदन सरोज तिलक गोरोचन, लट लटकिन मधुकर-गति डोलिन— १०-१२१। (ख) सोभित ऋति कुंडल की डोलिन, मकराकृति श्री सरस बनाई-—६३०।

डोलरी—संज्ञा स्त्री. [हं. डोल] (१) पलेंग, खाट, चार-पाई ! (२) भोली।

डोला—संज्ञा पुं. [सं. दोल] (१) पालकी, शिविका। मुहा,—डोला लेना—भेंट में कन्या लेना।

(२) भूले का भोंका या पेंग।

क्रि. स.—(१) हिला-डुला। (२) चंचल हुग्रा। डोलाइ—क्रि. स. [हिं. डोलना] हिला-डुलाकर, चला कर, गित देकर, पेंग या भोंका देकर। उ.—कन्हैया हालर रे। गढ़ि-गुढ़ि ल्यायो बाढ़ई, घरनी पर डोलाइ, बिल हालरु रे—१०-४७।

डोलाना—िक, स. [हिं, डोलना] (१) हिलाना, चलाना, गित में करना। (२) दूर करना, भगाना। डोली—संज्ञा स्त्री. [हिं, डोला] पालकी या शिविका की सवारी जिसमें प्रायः स्त्रियाँ बैठती हैं।

क्रि. स. स्त्री. भूत,—(१) हिली-डुली। (२) हटी, सरकी। (२) विचलित या चंचल हुई।

डोले, डोले—िक, स. भूत. [हिं. डोलना] (१) घूमें-फिरे। उ.—पांडव-कुल के सहाय भये हिर जह तह संगहिं डोले—सारा. ७७३। (२) हिले डुले। उ.— डोले गगन सहित सुरपित अरु पुहुमि पलटि जग परई—६-७८।

डोलो—कि, स. [हिं, डोलना] घूमते-फिरते हो।
उ.—(क) भये त्रिया के बस निसि जागे सरबस
भोर भए उठि श्राए भूले काहे डोलो—२६५६।
(ख) सूर जोग ले घर घर डोलो लेहु लेहु ज्यों
सूप—३२२३।

डोहरा—संज्ञा पुं. [ देश, ] काठ का एक पात्र। डोही—संज्ञा स्त्री, [ हिं. डोकी ] काठ की बड़ी कलछी। डोंड़ी—संज्ञा स्त्री, [ सं, डिंडिम ] (१) ढिंढोरा पीटने का डोल या डुगडुगिया।

मुहा.—डोंड़ी देना—(१) घोषणा करना, मुनादी करना। (२) सबसे कहते फिरना। डोंड़ी बजना—(१) घोषणा होना। (२) जयजयकार होना। डोंड़ी बाजी—दुहाई फिरी, जयजयकार हुई। उ,—

लौड़ी के घर डौंड़ी बाजी जब बढ़थी स्याम अनुराग —३०६५।

(२) जनता को दी जानेवाली सूचना, घोषणा। डोंक, डोंक, चोंक, संशा पुं. [हिं. डमक,] डमक। उ.— खुनखुना करि हँसत मोहन नचत डोंक बजाइ। डोंग्रा—संशा पुं. [देश.] काठ का चमचा या करछुल। डोर, डोल—संशा पुं. [हि. डोल] (१) ढांचा, रूपरेखा। मुहा.—डोल डालना—ढांचा या रूपरेखा तयार करना। डोल पर लाना-काट-छांटकर ठीक करना।

(२) बनावट या रचना का ढंग।

मुहा,—डौल से लगाना—उचित क्रम से सजाना।

(३) तरह, प्रकार, भांति। (४) उपाय, ब्यौंत।

मुहा,—डौल पर लाना—राजी करना, साध
लेना। डौल बाँधना (लगाना)—उपाय या युक्ति
बैठाना, जुगत लगाना।

(५) रंग-ढंग,लक्षण । (६) श्राय का श्रनुमान, तखमीना।

संशा स्त्री.—खेतों की मेड़, डाँड़। डोलडाल—संशा पुं. [हिं. डोल] उपाय, ब्योत। डोलदार—िव. [हिं. डोल+फ़ा. दार] सुडोल, सुंदर। डोलना—िक. स. [हिं. डोल] काटछाँट से ठीक करना, सुडोल बनाना।

डोलियाना—कि. स. [हिं. डोल] (१) ढंग पर लाना, साध लेना। (२) काट-छाँट कर ठीक करना।

ड्योढ़ा—वि. [हिं. डेढ़ ] डेढ़गुना। ड्योढ़ी—संज्ञा स्त्रो. [सं. देहली] (१) चौखट, दरवाजा,

फाटक। (२) बाहरी कमरा, दहलीज, पौरी। ड्योढ़ीदार—संज्ञा पुं. [हं, ड्योढ़ी+फ़ा, दार] द्वारपाल। ड्योढ़ीवान—संज्ञा पुं. [हं, ड्योढ़ी + वान् (प्रत्य.)] ड्योढ़ी का सिपाही, द्वारपाल, दरबान।

चौथा व्यंजन; इसका उच्चारण-स्थान मूद्धो है।
ढँकन—संज्ञा पुं. [हिं. ढक्कन | ढकना, ढक्कन।
संज्ञा स्त्री,—ढँकने की किया या भाव।
ढँकना—कि. स. [हिं. ढकना ] मूदना, ढाँपना।
संज्ञा पुं.—मूँदने की चीज, ढक्कन।
ढँकुजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढेंकली ] ढेंकी, ढेंकली।
ढंख—संज्ञा पुं. [सं. त्रापाडक ] ढाक, पलाञ्च।
ढँग, ढंग—संज्ञा पुं. [सं. तंग (तंगन)=चाल, गित ]
(१) ढब, रीति, तौर-तरीका। (२) प्रकार, भांति,

ह—देवनागरी वर्णमाला का चौदहवाँ ग्रौर टवर्ग का

मुहा, — ढंग पर चढ़ना — काम निकलने या मतलब पूरा होने के भ्रनुकूल होना । ढंग पर लाना - काम निकालने या मतलब पूरा करने के किसी को भ्रनुकूल करना । ढंग का — कुशल, चतुर, उपयुक्त । (५) चाल-ढाल, भ्राचरण, व्यवहार, बर्ताव ।

किस्म, तरह। (३) बनावट, गढ़न, ढाँचा। (४)

युक्ति, उपाय, तदबीर ।

उ.—(क) गज कों कहा अन्हवाएँ सरिता बहुरि घरें वह ढंग—१-३३२। (ख) बारे तें सुत ये रॅंग लाए मनहीं मनिहं सिहाति—१०-३२८। (ग) राधे ये ढँग हैं री तेरे—७१८। (घ) अबहीं तें त् करित ये ढँग, तोहिं अबही होन—७१८। (ङ) लें करि चीर कदम पर बैठे, किन ऐसें ढँग लाए— ७६४। (च) उघी हिर के अवरे ढंग—३३२७। महा.—ढंग बरतना--दिखावटी व्यवहार करना।

(६) धोखा देने का बहाना, हीला-बहाना, पाखंड। उ.—सुनहु सूर नृप यहि ढँग आयो, बल मोहन पर घात—५२७। (७) लक्षण, आभास, आसार।

यौ.—रंग-ढंग—(१) ग्राभास, लक्षण, ग्रासार।

(२) काम्, करतूत, व्यवहार की रीति-नीति।

(द) दशां, श्रवस्थां, स्थिति । हँगलाना — कि. स. [हैं. ढाल ] लुढ़काना । हँगियां, हंगी — वि. [हैं. ढंग ] चालबाज, काँइयां । हँहरच – संज्ञा पुं. [हैं. ढंग + रचना ] धोखा देने का

6

हीला या बहाना, पालंड का श्रायोजन । ढंढार-वि. [देश.] बड़ा श्रीर बेढंगा। ढँढेर- कि. स. [हिं. ढँढोरना ] हाथ से टटोलकर, इधर-उधर ढूँढ़कर। उ.—हिर सों हीरा खोइके, हीं रही समुद्र ढँढोर—३३८३। संशा पुं. [ अनु. धायँ धायँ ] (१) आग की लौ, लपट या ज्वासा । (२) काले मुँह का बंदर, लंगूर । ढढोरची—संशा पुं. [हिं. ढिढोरा+फ़ा. ची (प्रत्य.)] ढिंढोरा पीटनेवाला, मुनादी फेरनेवाला। ढँढोरना-कि. स. [हिं. ढूँढ़ना] हाथ डाल कर टटोलना, हाथ से इधर-उधर ढूँढ़ना या खोजना। ढँढोरा—संज्ञा. पुं. [ अनु. ढम 🕂 ढोल ] (१) घोषणा करने का छोल, डुग्गी, डॉड़ी। मुहा.—ढँढोरा पीटना—डुग्गी पीट कर सबको सूचना देना, मुनादी फेरना। (२) वह घोषणा जो डुग्गी पीटकर की जाय। ढँढोरि-कि. स. [हिं. ढूँढ़ना, ढँढोरना ] टटोलकर, हाथ से (इधर-उधर) ढूँढ़कर । उ.—तेरें लाल मेरी माखन खायौ। दुपहर दिवस जानि घर सूनौ, ढूँढ़ि ढँढोरि आपही आयौ--१०-३३१। ढँढोरिया—संज्ञा पुं. [ हिं. ढँढोरा ] डुग्गी पीटनेवाला। हँपना-कि. श्र. [हिं. हँकना ] किसी चीज के नीचे छिपना, किसी चीज की श्राड़ या श्रोट में होना। संज्ञा पं. — ढकने की चीज, ढक्कन। ढ--संशा पृं [सं.] (१) बड़ा ढोल। (२) कुता। (३) कुत्ते की पूँछ। (४) ध्वनि। (४) साँप। ढई-संशा स्त्री. [हिं. ढहना ] देर तक रुकना। मुहा. — ढई देना — धरना देना। ढकई—वि. [हिं. ढाका ] ढाके का। ढकना—संज्ञा पुं. [ सं. ढक = छिपना ] ढक्कन। क्रि. श्र,—छिपना, श्रोट में होना। हकिनयाँ, हकिनयां—संज्ञा स्त्री. [हिं. हकिनी] हाँकिन का छोटा या हल्का ढक्कन, ढकनी। उ.—सुभग दक्तियाँ दाँपि बाँधि पट जतन राखि छीके समदायो-११७६। दक्ती—संशा स्त्री, [हिं, दक्ता ] (१) दक्ते की छोटी

चीज, उक्कन। (२) हथेली के पीछे का गोदना। ढका—संशा पं. [सं. ढका] बड़ा ढोल। संशा पुं. [ त्रानु. ] धक्का, टक्कर। ढिकि-कि. श्र. [हिं. ढकना ] (१) ढककर, श्रोढ़ाकर। प्र.—हिक लइ—-हक लिया, भ्रोढ़ा कर छिपा लिया। उ.—पकरथौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ डोलै। जाकें मीत नंदनंदन से, ढिक लइ पीत पटोलै-१-१५६। (२) छिपाकर, भ्रोट या भ्राड़ में रखकर। उ.— तुम चुप करि रही ज्ञान ढिक राखो कत हो बिरह बढ़ावत---३११५। ढिकल—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढकेलना ] धावा, श्राक्रमण। ढकेलना—कि. स. [हिं, धका ] (१) धक्के से गिराना। (२) ठेल कर हटाना या सरकाना। ढकेला ढकेली — संज्ञा स्त्री, [हिं. ढकेलना ] धक्मधक्का। ढकोसना—कि, स. [ अनु, ढकढक ] एक बार में ढेर का ढेर या बहुत सा पानी पीना। ढकोसला—संज्ञा पुं, [हिं, ढंग + कौशज ] बोखा देने या मतलब निकालने का कपट व्यवहार, पाखंड। ढकन-संशा पुं. [सं. ] ढाँकने की चीज। ढका—संशा स्त्री. [सं. ] ढोल, नगाड़ा, डंका । दकी—संशा स्त्री. [हिं, दाल ] पहाड़ी ढाल। ढखनी—संशा स्त्री. [हिं. ढकना ] ढक्कन। ढगण-संज्ञा पुं. [सं. ] तीन मात्राभ्रों का एक गण।

ढचर—संज्ञा पुं. [हिं. ढाँचा] (१) ढाँचा, आयोजन।
(२) भगड़ा-बखेड़ा, जंजाल। (३) कार-बार, धंधा।
(४) आडंबर, पाखंड, ढकोसला।
ढटींगड़, ढटींगड़ा, ढटींगर—िव. [सं. डिंगर = मीटा आदमी](१) बड़े डीलवाला। (२)मोटा-ताजा, मुस्तंडा।
ढट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. डाढ़] बड़ा साफा या मुरेठा।
संज्ञा पुं. [हिं. डाढ़] छोद बंद करने की डाट।
ढट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. डाढ़] डाढ़ी बाँधने की पद्टी।
संज्ञा स्त्री. [हिं. डाढ़] छोटी डाट, ठेंपी।
ढड्डा, ढड्ढा—िवं. [देश.] बहुत बड़ा और बेढंगा।
संज्ञा पुं. [हिं. ठाट] (१) ढाँचा, ठटरी। (२)
भूठा ठाट-बाट या आडंबर।

ढंडढो—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढड्ढा] (१) बहुत बुड्ढी श्रीर दुबली स्त्री। (२) बकवाद करनेवाली स्त्री। वि.—(१) मूखं, उजड्ड। (२) ढीठ। ढनमनाना -- क्रि. श्र. [ श्रनु. ] लुढ़कना, ढुलकना। ढप-संज्ञा पुं. [ हिं. डफ ] चमड़ामढ़ा एक बाजा। ढपना—संज्ञा पं. [हिं. ढाँपना] ढकने की चीज। कि. अ. - दक जाना, श्रोट में हो जाना। ढपला — संज्ञा पुं. [हिं. डफला ] डफ नामक बाजा। ढपली—संज्ञा स्त्री. [हिं. डफली ] छोटा डफ, खँजरी। ढप्पू वि. [देश.] बहुत बड़ा श्रौर बेढंगा। ढफ—संज्ञा पुं. [हिं. डफ ] डफ नामक बाजा। उ.— रंज मुरज ढफ ताल बाँसुरी भालर की भंकार। ढब—संज्ञा पुं. [सं. धव=चलना, गति ] (१) रीति, तौर, तरीका! (२) प्रकार, भाँति, किस्म। (३) रचना, बनावट, गढ़न, ढाँचा । (४) युक्ति, उपाय । मुहा—ढब पर चढ़ना—मतलब निकलने के श्रनुकूल होना । ढब पर लगाना (लाना)—मतलब निकालने के लिए अनुकूल बनाना। (५) गुण, स्वभाव, बान, श्रादत। मुहा.—ढब डालना—(१) श्रादत डालना । (१) म्राचार-विचार की भ्रच्छी बातें सिखाना। ढबरा—वि. [हिं. ढाबर ] मटमैला, गॅवला। ढबीला —ित्र. [हिं. ढब] (१) श्रच्छे ढंग का, श्रच्छी भादतोंवाला। (२) चतुर, चालाक, काँइयाँ। ढबुत्रा—संशा पुं. [ देश. ] पैसा। ढबैला-वि. [ हिं. ढाबर ] मटमेला, गँदला । ढमढम—संज्ञा पुं. श्रिनु. ] ढोल या नगाड़े का शब्द। ढमलाना-कि. स. दिश. ] लुढ़काना, ढुलकाना। ढयना—क्रि. ग्र. [ हिं. ढहना ] गिरना, ध्वस्त होना। ढरक—संज्ञा स्त्री. [हं. ढरकना (१) ढरकने की किया या भाव। (२) दयानुता। ढरकना — कि. ग्र. [हि. ढार या ढाल ] (१) द्रव पदार्थ का गिर कर बहना। (२) नीचे लुढ़कना। मुहा,—दिन ढरकना—सूर्यास्त होना। ढरका—संज्ञा पुं. [हिं. ढरकना ] बाँस की नली। ढरकाइ—कि. स. [हिं. ढरकान।] ढरकाकर, धिस-

लाकर, लुढ़काकर। उ.—बटा धरनी डारि दीनौ, लै चले ढरकाइ--१०-२४४। ढरकाए-कि. स. [हिं. ढरकाना ] (पानी जैसे द्रव पदार्थ) गिराये या बहाये। उ. कौसिल्या सुनि परम दीन है, नैन-नीर ढरकाए---१-३१। ढरकाना—कि. स. [हिं. ढलकाना ] (१) (पानी ग्रादि द्रव पदार्थ) गिराकर बहाना। (२) लुढ़काना। ढरकायो, ढरकायौ-कि. स. [हिं. ढरकाना ] गिराया, (गिराकर) बहाया । उ.—(क) खोलि किवार, पैठि मंदिर मैं, दूध-दही सब सखिन खवायी। ऊखल चिढ़, सीकें की लीन्ही, अनभावत सुर मैं ढरकायी-१०-३३१। (ख) भली करी हरि माखन खायो। इहो मानि लीनी अपने सिर, उबरो सो ढरकायो-११२८ । ढरिक - कि. श्र. [हि. ढरकना] गिरकर, बहकर। उ.—ब्याकुल मथति मथनियाँ रोती, दिध भुव ढरिक रह्यौ--१०-१८२। ढरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढरकना ] जुलाहों का श्रीजार। कि. श्र. भूत. स्त्री - गिरी, बही, लुढ़की। ढरकों हा - वि. [ हिं. ढरकना ] ढरकनेवाला। ढरको - क्रि. थ्र. [हिं. ढरकना ] ढरकता रहता है, पड़ा रहता है, बहा करता है। उ.—सूर स्याम कितनौ तुम खैही, दिध-माखन मेरें जहँ-तहँ ढरकी -१०-३३३। दरत, दरतु—कि. श्र. [हिं. ढलना] (१) बहता है। उ.—मोसों कहत होइ जिनि ऐसी, नैन ढरत नहिं भरत हियौ---२६४७। (२) भर कर खाली होता है। उ.—बारंबार रहँट के घट ज्यों भरि भरि लोचन ढरतु--२२५३। ढरन—संज्ञा पुं. [हिं. ढरना] (१) दीनों पर द्रवीभूत होनेबाले, दयाशील, कृपालु । उ.—दूरि देखि सुदामा त्रावत, धाइ परस्यौ चरन। लच्छ सौं बहु लच्छ दीन्ही, दान अबढर-ढरन-१-२०२। (२) शिरने या पड़ने की किया, पतन । उ. - छल कियौ

पांडवनि कौरव, कपट-पासा ढरनं-१-२०२।

ढरना—क्रि. त्र्य. [हिं. ढलना ] (१) गिरकर बहना।

(२) धीतना, गुजरना । (३) लुढ़कना । (४) म्राक-षित होना । (५) रीभना, प्रसन्न होना ।

हरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढरना] (१) गिरने या बहने की किया या रीति। उ.— (क) लिति श्री गोपाल- लोचन लोल श्राँस-ढरिन।—३५१। (न्त) स्याम- सिंधु सरिता ललनागन च्या की ढरिन ढरीं—३३६- (८२)। (२) हिलने-डोलने की किया, गित। (३) चित्त की श्रवृत्ति, भुकाव। उ.— रिस श्रक रुचि हों समुभि देखिहों वाके मन की ढरिन वाकी भावती बात चैलाइहों--२२०६। (४) द्रवीभूत होने की किया या भाव, दयाज्ञीलता, कृपालुता।

ढरहरना—कि. श्र. [हिं. ढरना ] खसकना, सरकना। ढरहरा—वि. [हिं. ढरारा ] ढालू, ढलुहा। ढरहरि—संज्ञा स्त्री. [हिं ढरहरी ] पकौड़ी।

क्रि. श्र. [हिं. ढरहरना] सरककर, भुककर, चलकर। उ.—दीनदयाल, गोपाल, गोपपति, गावत गुन श्रावत ढिग ढरहरि—१-३१२।

ढरहरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पकोड़ी। उ.—राय भोग लियों भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई—२३२१। कि. श्र. [हिं. ढरहरना] सरकी, खिसकी। ढराइ—कि. स. [हिं. ढरकाना] गिराकर, बहाकर। उ.—श्रब देहों ढराइ सब गोरस तबहिं दान तुम देहीं—ए. २४१।

ढराई—संज्ञा स्त्री. [ हिं. ढलाई ] ढालने की किया, भाव या मजदूरी।

कि. स. [हिं. ढरकाना ] गिरायी, बहायी। ढराना—कि. स. [हिं. ढहाना ] ढालने का काम करने में दूसरे को प्रवृत्त करना।

क्रि. सं. [हिं. ढरकाना] लुढ़काना, गिराना।
ढराने—िक्र. श्र. [हिं. ढलना] बहने लगे। उ.—यहै
कहत दोउ नैन ढराने, नंद-घरिन दुख पाइ—५२६।
ढरायो—िक्र. श्र. [हिं. ढरकना] ढरक गया, लुढ़क गया।
उ.—सुनि मैया, दिध माट ढरायो—११७४।
ढरारा—िव. [हिं. ढार या ढाल] (१) गिरकर बहने
वाला। (२) लुढ़कनेवाला। (३) शीझ ही श्राकषित
था प्रवृत्त होनेवालां, चलायमान होनेवाला।

ढरारी—वि. स्त्री. [हिं. ढरारा] (१) बहनेवाली। (२) लुढ़कनेवाली। (३) शीघ्र ही ग्राकित होनेवाली। ढिरि—क्रि. श्र. [हिं. ढलना] (१) बीतकर, समाप्त होकर। त्र.—गई ढिरि—समाप्त हो गयी, बीत गयी। उ.—काहु न प्रगट करी जदुपित सों दुसह दुरासा गई श्रविध ढरि—२८६३।

(२) गिरकर, सरककर, खिसककर। उ.— सिर तें गई दोहनी ढिर कें, श्रापु रही मुरफाई—७४३। ढिरिश्राना—िक. श्र. [हिं. ढारना ] गिराना, बहाना। ढिरी—िक. श्र. [हिं. ढलना ] बहीं, प्रवाहित हुईं, खिचीं। उ.—स्याम सिंधु सरिता ललनागन जल की ढरिन ढरीं—३३६। (८६)।

ढरी—िक. श्र. [हं. ढलना] (१) बहो, प्रवाहित हुई। उ.—रिधर धार रिषि श्राँखिनि ढरी—६-३। (२) ढोली पड़ी, रोष तज दिया, प्रसन्न हुई। उ.—पाती लिखि कछु स्थाम पठायी यह सुनि मनहिं ढरी—३०६२। (३) ढल गयी, श्रनुरूप हो गयी। उ.— जैसें नारि भजे परपुरुषहिं ताके रंग ढरी—ए. ३२६। ढरे—िक. स. [हिं. ढरना] (१) गिरे, बहे। उ.— १नज कर चरन पखारि प्रम-रस श्रानँद-श्राँस ढरे—६-१७१। (२) द्रवित हुए, दया दिखायी। उ.—जिन जो जाँच्यो सोइ दीन श्रस नँदराइ ढरे—१०-२४। ढरे—िक श्र [हिं ढाल ढलना] (१) प्रवस्त के

ढरें—िक. श्र. [हिं. ढाल, ढलना] (१) श्रनुकूल हो, प्रसन्न हो, रोभे, दया करे। उ.—उ.—(क) जापर दीनानाथ ढरें। सोइ कुलीन, बड़ी सुंदर सोइ, जिहिं पर कृपा करें—१-३५। (ख) सूर पतित तरि जाय छिनक में, जो प्रभु नेंकु ढरें—१-१०५। (२) रंग जाय, ढल जाय, श्रनुरक्त हो जाय, श्रनुरूप हो जाय। उ.—सूर स्थाम के रस पुनि छाकति वैसे ही ढंग बहुरि ढरें—११६५।

ढरैया—संज्ञा पुं. [हिं. ढारना] ढालनेवाला। ढरी—संज्ञा पुं. [हिं. ढरना] (१) मार्ग, रास्ता। (२) काम करने का ढंग। (३) युक्ति, उपाय, तदबीर। (४) चाल-चलन, व्यवहार। ढलकना—कि. श्र. [हिं. ढाल] (१) किसी द्रव पदार्थ का पात्र से नीचे गिरना। (२) लुढ़कना।

ढलकाना—िक, स. [हिं. ढलकना ] (१) द्रव पदार्थ पात्र के बाहर गिराना । (२) लुढ़काना । डलकी—संशा स्त्री. [हिं. ढरकी ] जुलाहों का ग्रीजार । ढलना—िक. त्र्य. [हिं. ढाल ] (१) द्रव पदार्थ का गिर कर बहना । (२) बीतना, गुजरना, समाप्त हो जाना । मुहा.—जवानी ढलना—युवावस्था समाप्त होने लगना । छाती ढलना—स्तन लटक जाना । जोबन ढलना—युवावस्था का उतार पर होना । दिन ढलना—संध्या होना । चाँद-सूरज ढलना—चाँद-सूरज का ग्रस्त होना ।

(३) द्रव का एक पात्र से दूसरे में उँडेला जाना।
मुहा—बोतल(शराब) ढलना—शराब पी जाना।

(४) लुढ़कना। (४) हिलना-डोलना, लहराना। (६) किसी की ग्रोर ग्राकित होना, ग्रनुरक्त होना।

(७) अनुकूल होना, रीभना। (८) ढाला जाना। ढलवाँ—िव. [हिं. ढालना] ढाल कर बनाया हुआ। ढलवाना—िक. स. [हिं. ढालना का प्रे.] ढालने का काम किसी दूसरे से कराना।

ढलाई—संशा स्त्री. [हिं. ढालना ] ढालने का काम, भाव या मजदूरी।

ढलाना — कि. स. [हिं, ढालना ] ढलवाना। ढलुवाँ—िव. [हिं, ढलवाँ ] ढला हुग्रा। ढले—िक. श्र. [हिं, ढलना ] बीते, समाप्त हुए।

मुहा.—दिन ढले—साँभ को।
ढलैत—संशा पुं. [हिं. ढाल ] ढाल रखनेवाला।
ढवरी—संशा स्त्री, [देश.] धुन, लो, लगन, रट।
ड.—हरि दरसन की ढवरी लागी—३४४२।

ढहना—क्रि. श्र. [सं, ध्वंसन] (१) गिरना, ध्वस्त होना। (२) नष्ट होना, मिट जाना।

ढहराना—िक. स. [हिं, ढाइ] लुढ़काना।
ढहरि, ढहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. देहली, हिं. ढहरी]
देहली, दहलीज, डेहरी। उ.—सूर प्रभु कर सेज
टेकत कबहुँ टेकत ढहरि—१०-६७।

संज्ञा स्त्री, [देश, ] मिट्टी का गगरा, मटका। उ.—डगर न देत काहुहिं फोरि डारत ढहरि। इहवाना—क्रि. स. [हिं, ढहाना का प्रे.] गिरवाना।

ढहाई—कि. स. भूत. [हिं. ढहाना ] ढा दिया, गिरा दिया, ध्वस्त कर दिया। उ.—एक ही बान को पाषान को कोट सब हुतो चहुँ श्रोर सो दिया ढहाई—१०३.३१।

ढहाना—िक. स. [ सं. ध्वंसन ] गिराना, ध्वस्त करना। ढहायो—िक. स. [ हिं. ढहाना ] ढा दिया, ध्वंस किया। उ.—रे पिय, लंका बनचर आयो। करि परपंच हरी तें सीता, कंचन-कोट ढहायो-—६-११६।

ढहावत—िक, स. [हिं, ढहाना] गिराते हैं। उ.— महा प्रलय-जल गिरिहिं ढहावत—१०५४।

ढही—कि. श्र. भूत. [हिं, ढहना] (१) गिर पड़ी। उ.—सोचित श्रित पछितानि राधिका मूर्छित धरनि ढही—२८६। (२) मिट गयी, नष्ट हुई। उ.—श्रब सुनि सूल सहित सब सूरज कुल गरजाद ढही—३३७०।

ढहेहों—कि. स. [हिं. ढहाना ] ध्वस्त कहाँगा, हा दूँगा। उ.—छिन इक माहिं गढ़ तोरों, कंचन-कोट ढहेहों—६-११३।

ढाँकति—िक्र. स. [हि. ढाँकना ] ढकती है, मूंदती है। उ.—खन खोलत खन ढाँकति नागरि मुख रिसि मन मुसुकाइ—पृ. ३१८।

ढाँकना—िक. स. [सं. ढक = छिपाना ] (१) ढक देना। (२) ऐसे फैलाना कि नीचे की चीज ढक जाय। ढाँकि—िक. स. [हिं. ढाँकना ] (कपड़े ग्रादि से) ढककर, कपड़े के नीचे छिपाकर। उ.—श्रॅचरा तर लै ढाँकि, सर के प्रभु को दूध पियावति—१०-११०। ढाँख—संज्ञा पं. [हिं. ढाक] पलाश का पेड़।

ढाँग—वि. [ देश. ] ढालू, ढालुवाँ।

ढाँच, ढाँचा—संज्ञा पुं. [ सं. स्थाता, हिं. ठाट, ढाँचा ] (१) ठाट, टट्टर। (२) ठटरी, पंजर। (३)चौखटा।

(४) गढ़न, बनावट । (४) प्रकार, भांति, तरह । ढाँप—िक. स. [हिं. ढाँपना ] ढककर, छिपाकर । उ.—यह उपदेस आपुनो ऊधौ राखो ढाँप सवारो—३२०५।

ढाँपना—िक. स. [हिं. ढाँकना ] ढकना, छिपाना। ढाँपि—िक. स. [हिं. ढाँपना ] ढककर, छिपाकर। उ,—सुभग ढकनियाँ ढौंपि बाँघि पट जतन राखि छीके समदायो—११७६।

हाँ प्यो—िक, स. [हिं. ढाँकना ] (१) ढक लिया, छिपा लिया, श्रोट में किया। उ.—स्वन मूँ दि, मुख श्राँचर ढाँप्यो, श्ररे निसाचर चोर—६-८३। (२) किसी वस्तु के ऊपर दूसरों का इस तरह फैलकर श्रावरित कर लेना कि नीचेवाली छिप जाय। उ.—कटक श्रागिनित जुरथों, लंक खरभर परथों, सूर को तेज, धर-धूरि ढाँप्यो—६-१०६।

ढाँस—संशा स्त्री. [ त्रानु. ] खाँसी का ठसका। ढाँसना — कि. त्रा. [ हिं. ढाँस ] सूखी खाँसी खाँसना। ढाई—वि. [ सं. त्राड द्वितीय, प्रा. त्राड्ठाइय, हिं. त्राड़ी दो ग्रीर ग्राधा।

ढाक—संज्ञा पुं. [सं. त्र्याषाढक = पलाश, हिं. ढाक]
पलाश। उ.—सेमर-ढाकहिं काटि के, बाँधौं तुम
बेरौ—९-४२।

मुहा.—ढाक के तीन पात—सदा एक सा (निर्धन), ज्यों का त्यों (निर्धन)। ढाक तले की पूहड़ महुए तले की सहड़—धनहीन मूर्ख ग्रोर धनवान चतुर समभा जाता है।

संज्ञा पुं. [सं. ढका] लड़ाई का डंका या ढोल। ढाकिति—कि. स. [हिं. ढकना] ढकती है। उ.— ढाकित कहा प्रेम हित सुंदरि सारंग नेक उघारि —२२२०।

ढाकन—संज्ञा पुं. [हिं. ढकना ] ढककन, ढकना। ढाक्यो—कि. स. [हिं. ढकना ] ढक लिया, छिपा लिया। उ.—वारौं लाज भई मोको बैरिनि मैं गँवारि मुख ढाक्यो—२५४६।

ढाड़—संज्ञा स्त्री. [ श्रवु ] चोख, चिल्लाहट।
ढाढ़—संज्ञा पुं. [ हिं. ढाढी (देश.) ] ढाढ़ियों का बाजा
जिसको बजाकर वे बधाई गाते हैं। उ.—ढाढ़िन
मेरी नाचै-गावै, होंहूँ ढाढ़ बजाऊँ—१०-३७।
ढाढ़ना—क्रि. स. [ हिं. दाढ़ना ] दुखी करना, जलाना।

ढाढ़स—संज्ञा पुं. [ सं. दढ़, प्रा. डिढ] (१) धंर्य, धीरज, शांति। (२) दृढ़ता, साहस, हिम्मत। ढाढ़िन, ढाढ़िनि—संज्ञा स्त्री, [ देश, पुं, ढाढ़ी] नीची जाति की गानेबाली स्त्रियों जो प्रायः जन्म के प्रवसर पर बघाई गाती हैं। उ.—हँसि ढाढ़िन ढाढ़ी सों बोली, त्रब तू बरिन बघाई। ऐसी दियों न देहि सूर कोउ, जसुमति हों पहिराई—१०-३७।

ढाढ़ी—संज्ञा पुं. [ देश. ] नीची जाति के गवैये जो प्रायः जन्मोत्सव के प्रवसर पर बधाई के गीत गाने प्राते हैं। उ.—(क) ढाढ़ी श्रौर ढाढ़िनि गावैं, ठाड़े हुरके बजावैं, हरिष श्रसीस देत मस्तक नवाइ कैं—६४६। (ख) हों तो तेरे घर को ढाढ़ी स्रदास मोहिं नाऊँ —१०-३५।

ढाना—कि. स. [ सं. ध्वंसन, हिं, ढाहना ] (१) तोड़-फोड़कर गिराना। (२) गिराकर जमीन पर डालना। ढापना - कि. स. [ हिं. ढाँपना ] ढकना।

ढाबर—वि. [देश.] मटमैला, गँदला।

ढाबा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) जाल। (२) रोटी की दूकान। (३) ग्रोलती।

ढामक—संशा पुं. [ श्रनु. ] ढोल नगाड़े का शब्द । ढार—संशा पुं. [ सं. धार ] (१) ढाल, उतार । (२) पथ, मार्ग । (३) प्रकार, ढांचा, ढंग, रचना, बनावट । उ.—श्रागक चँदन की पालनी (रँगि) ईंगुर ढार सुढार । लैं श्रायो गढ़ि डोलना (हो), बिसकमां सुतहार—१०-४० ।

संज्ञा स्त्री.—कान का एक गहना, बिरिया।

क्रि. स. [हिं. धारना] धारण करना। उ.—
राज्य दीन्हो उग्रसेनहिं चँवर निज कर ढार—
३०७५।

ढारत—िक. स. [हिं. ढारना] (पानी जैसे द्रव पदार्थ) गिराकर बहाते हैं। उ.—हा सीता, सीता, कहि सियपति, उमिंड नयन जल भरि भरि ढारत —-१-६२।

ढारतिं—िक. स. [हिं. ढारना] (पानी जैसे द्रव पदार्थ को) गिराती या बहाती हैं। उ.—उरग नारि आगें भई ठाढ़ी, नैनिन ढारतिं नीर—५७५। ढारना—िक. स. [हिं. ढार+ना (प्रत्य.)] (१) द्रव पदार्थ गिराकर बहाना। (२) ऊपर से छोड़ना या डालना। (३) हिलाना-धुलाना। हारस—संज्ञा पुं. [हिं. ढाढ्स ] (१) धर्य। (२) साहस। ढारि—क्रि. स. हिं. ढारना ] (पानी जैसे द्रव पदार्थ को) गिराया, बहाया। उ,--तृन-ग्रंनर दे हिंट तरौंधी, दियो नयन जल ढारि—६-७६।

ढारे—िक. स. [हिं. ढारना] (पानी आदि द्रव पदार्थ) गिराकर बहाये। उ.—भरत गात सीतल है आयी, नन उमँगि जल ढारे—६-५४।

क्रि. स. [हिं, धारना ] <mark>घारण करे। उ.—छ</mark>त्र सिर धराइ चमर निज कर ढारे-—१०-३१६।

हारे—िक. स. [हिं. ढारना] (किसी द्रव पदार्थ को) गिराता या बहाता है। उ.—रीते भरे, भरें पुनि ढारे, चाहै फेरि भरे—१-४०५।

ढारों—िक. स. [हिं. घारना ] धारण करूं। उ.— उग्रसेन सिर छत्र चमर श्रपने कर ढारों-—११३८। ढारों —िकि. स. [सं. घार,हिं. ढारना ] (द्रव पदार्थ को) शिराकर बहाग्रो । उ.—(क) स्रदास भगवंत भजन बिनु, चल्यो पछिताइ नयन जल ढारों—— १-८०। (ख) कहियो जाइ जसोदा श्रागे नैन नीर जिनि ढारों—१०-३५३।

ढारयो — क्रि. स. [हिं. ढारना] (पानी ग्रादि द्रव पदार्थ को) गिराकर बहाया। उ.—यह विपरीत सुनी जब सबहीं, नैननि ढारयो नीर—६४४।

ढाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (तलवार ग्राविका) वार रोकते की फरी या चर्म, श्राइ, फलक ।

संज्ञा स्त्री, [सं, धार ] (१) उतार। (२) ढंग, प्रकार, तौर-तरीका। (३) उगाही, चंदा।

हालना—िक. स. [सं. धार ] (१) द्रव पदार्थ गिराना, उँडेलना। (२) शराब पीना। (३) बेच देना। (४) सस्ता बेचना। (४) चंदा उगाहना। (६) साँचे में हालकर बनाना।

ढालवाँ, ढालुश्राँ—िव. [हिं. ढाल ] ढाल् । ढालिया—िव. [हिं. ढालना ] ढालकर बनानेवाला । ढाल्—िव. [हिं. ढाल ] ढाल या उतार का । ढावना—िक. स. [देश.] गिराना, ढाना । ढास—संज्ञा पुं. [सं. दस्य ] ठग, लुटेरा, डाक् । ढासना—संज्ञा पुं. [सं. धारण+श्रासन ] (१) सहारा, टेकः। (२) सहारे का तकिया। ढाहन—क्रि. स. [हिं. ढाहना] गिराना।

प्र.—हाहन लाको—गिराने या ढाने लगा। उ.—वृद्ध बन काटि महलात ढाहन लायो नगर के द्वार दीनो गिराई—१० उ. ५६।

ढाहना—िक. स. [ हिं. ढाना ] गिराना, ढाना ! ढाहा—संज्ञा पुं. [हिं. ढाहना ] नदी का ऊँचा किनारा। ढिंढोरना—िक. स. [ अनु. ] (१) मथना, बिलोना।

(२) हाथ डालकर ढूँढ़ना, टटोलकर खोजना। हिंढोरा—संज्ञा पुं. [ अनु. ढम + ढोल ] (१) घोषणा करने का ढोल। (२) ढोल बजाकर जन-साधारण को वी जानेवाली सूचना।

ढिग—िक. वि. [सं. दिक् = श्रोर ] पास, समीप, निकट। उ.—(क) तब नारद तिनकें ढिग श्राइ। चारि स्लोक कहे समुभाइ—१-२३०। (ख) जैसें राहु नीच ढिग श्राएं, चंद-किरन भक्भोले— १-२५६। (ग) मुरली धुनि सुनि सबै ग्वालिनी हरि के ढिग चिल श्राई (घ) चाहत हों ताही पै चिढ़ क हरि जी के ढिग जाब—२७६८।

संज्ञा स्त्री.—(१) पास, सामीत्य । (२) तट, किनारा। (३) कपड़े का किनारा, पाड़, कोर।

ढिगन, ढिगनि—संशा स्त्रा. [हिं. ढिग = कपड़े का कोर + न, नि (प्रत्य.)] कपड़े का किनारा, पाड़, कोर । उ.—(क) पीत उड़नियाँ कहाँ विसारी। यह तो लाल ढिगनि की स्त्रोरे, है काहू की सारी—६६३। (ख) लाल ढिगनि की सारी ताकों पीत उड़नियाँ कीन्ही—६६४।

हिठाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीठ + ग्राई (प्रत्य.)] (१) व्यवहार की श्रनुचित स्वच्छंदता, घृष्टता, गुस्ताखी । उ.—बामुदेव की बड़ी बड़ाई। जगत पिता, जगदीस, जगतगुरु, निज भक्तन की सहत ढिठाई—१-३। (ख) हमको ग्रपराध छमहु करी हम ढिठाई—२६१६। (ग) पालागों यह दोस बक्रांसयो सनमुख करत ढिठाई—३४३। (२) लोक लाज-होनता, निलंज्जता। (३) श्रनुचित साहस।

ढिठान—संशा स्त्री. [ हिं. ढोठ ] ढोठता, ढिठाई, धुष्टता,

चपलता। उ.—हों जु कहत, ले चली जानकी, छाँ इौ सबै ढिठान। सनमुख होइ सूर के स्वामी, भक्तिन कुपानिधान—६-१३४। ढिठौना—संज्ञा पुं. [हिं. ढोटा ] दुलारा पुत्र । उ.— कहा कहत तू नंद ढिठौना-- १०-३७। ढिपुनी— संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) फल-पत्ते से जुड़ा टहनी का कोमल भाग। (२) कुच का श्रग्र भाग, बोंड़ी। ढिमका—सर्व. [हिं. श्रमका का श्रनु.] श्रमुक, फलाना । ढिलढिला—वि. [ हिं. ढीला ] ढीला ढाला । ढिलाई—संज्ञा स्त्री. [ हिं. ढीला ] (१) ढीला होना, कसा न रहना। (२) शिथिलता, सुस्ती, भ्रालस्य। संज्ञा स्त्री. [हिं. ढीलना ] ढीला कराना। ढिलाना - क्रि. स. [ हिं. ढीलना का प्रे.] ढीला कराना। कि. स.—,(१) ढीला करना। (२) खोलना। कि. श्र.—(१)ढीला हो जाना।(२) खुल जाना। ढिल्लंड़—वि. [ हि. ढीला ] सुस्त, ग्रालसी, शिथिल। ढिसरना - क्रि. श्र. [सं. ध्वंसन ] (१) फिसल पड़ना, सरकना। (२) भुकना, प्रवृत्त होना। (३) फल का डाल में लगे लगे ही पकने लगना। ढींगर—संज्ञा पुं. [ सं. डिगर ] (१) बड़े डील-डौल का या मोटा-ताजा भ्रादमी । (२) पति । (३) उपपति । ढींढ़—संज्ञा पुं. [सं. ढुंढि = लंबोदर, गरोश] बड़ा पेट। ढींगर-संज्ञा पुं. [सं. डिंगर] (१) हट्टा-कट्टा म्रादमी। (२) पति । (३) उपपति, श्रेमी । ढींगे-कि. वि. [हिं. हिंग ] पास, समीप। ढीट—संज्ञा स्त्री. [देश.] रेखा, लकीर। हीठ, हीठक—वि. [ सं. धृष्ट, हिं. हीठ ] (१) व्यवहार में भ्रनुचित स्वच्छंदता प्रकट करनेवाला, धृष्ट । उ.—(क) लंगर, ढीठ गुमानी ढूँडक, महा मसखरा रूखा—१-१८६।(ख) श्रहो ढीठ मेतिमुग्ध निसिचरी बैठी सनमुख आई—६-७७। (२) अनुचित साहसी, न डरनेवाला। उ.—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दिध गिराय मटकी सब फोरी। (३) साहसी, हिम्मतवर। ढीठता—संश स्त्री. [सं. धृष्टता ] ढिठाई। ढीठा—वि. [ हिं. ढीठ ] (१) धृष्ट । (२) साहसी । संशा स्त्री,—दिठाई, धृष्टता।

हीठि, टीठी—वि. स्री. [हिं. टीठ] होठ, पृष्ट, बड़ों का संकोच था डर न रखनेवाली। उ.—(क) ब्रज की टीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि, स्कुचै न देत गारि, अगरत हूँ—१०-२६५। (ख) (माई री) मुरलो त्रांत गर्व काहुँ बदित नाहि त्रांज। """ बैठत कर-पं.ठि टी ठ, त्राधर छत्र छाहिं। राजित त्रांत चँवर चिकुर, सुरद सभा माँहिं—६५३। टीठो, टीठो—संशा स्त्री. [हिं. टीठ] धृष्टता, दिठाई। उ.—(क) महर बड़ी लंगर सब दिन की, हँसित देति मुख गारि। राधा बोलि उठी, बाबा क्छु तुमसों टीठो कीन्हो—७०३। (ख) डारि बसन भूषन तब भागे। स्याम करन त्रांव टीठो तागे—७६६। (ग) त्रांव लों सही तुम्हारी टीठो तुम यह कहत डरानी—१०४६।

ढोठ्यो—संज्ञा स्त्री. [हैं. ढोठा] ढिठाई, घृष्टता। ढीम, ढीमा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) पत्थर का बड़ा ढोका। (२) मिट्टी की बड़ी पिंडी। ढीमड़ो—संज्ञा पुं. [देश.] कूप, कुआं।

ढील—संशा स्त्री. [हिं. ढीला] (१) उत्साहहीनता, शिथलता, श्रतत्परता, सुस्ती। उ,—सत्य भक्ति हिं तारिबे कों, लोला बिस्तारी। बेर मेरी क्यों ढील कीन्ही, सूर बलिहारी—१-१७६।

मुहा.—ढील देना — लापरवाही करना।

(२) बंधन ढीला करना, कड़ा बंधन न रखना। मुहा.—ढील देना—(१) पतंग की डोर बढ़ाना।

(२) मनमाना करने की पूरी स्वतंत्रता देना। वि.—ढीला, जो कसा न हो। संशा पं.—बालों में पड़नेवाली जूँ।

ढीलत—िक स. [हि. ढीलना ] बंधन खोल देते हैं। छोड़ देते हैं। उ.—ता पर सूर बछक्वन ढीलत बन-बन फिरतिं बही—१०-२६१।

ढीलना—कि. स. [हिं. ढीला] (१) ढीला करना, कसा न रखना।(२) बंधन मुक्त करना, छोड़ देना। (३) डोरी-रस्सी बढ़ाना या डालना। (४) गाढ़ी चीज को पतला करना।

दीला—वि. [सं. शिथिल, प्रा. सिदिल ] (१) जो कसा,

तना या खिना हुआ न हो। (२) जो कस कर जमा, जड़ा या बैठा न हो। (३) जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो। (४) जो बहुत गाढ़ा या कड़ा न हो। (४) जो अपने हठ या संकल्प पर अड़ा न रहे। (६) जिसका कोध शांत या कम हो जाय, नरम। (७) मंद, सुन्त, शिथिल, धीमा।

मुहा, — ढीली श्राँख—रस या मद ग्रादि के कारण ग्रधखुली श्रांख।

(द) श्रालसी।(६) जिसे काम की प्रेरणा न हो।
संज्ञा पुं. [देश.] पत्थर, इंट या मिट्टी का टुकड़ा।
ढीलापन—संज्ञा पुं. [हिं. ढीला + पन (प्रत्य.)] ढीला
होने का भाव, कस।पन न रहने का भाव, शिथिलता।
ढीली—वि. [हिं. ढीला] बहुत हल्का, जो तेज न हो।
कि. वि—हल्के-हल्के, धीरे-धीरे। उ.—दिध लै
मथित ग्यालि गरबीली। रुनक भुनक कर कंकन
बाजे, बाँह डुलावित ढोली—१०-२६६।

कि. स. भूत. स्त्री. [हिं. ढीलना] बंधनमुक्त की, खोल दी। उ.—िनिसि भई छोन बोलि तमचुर खग गवालन ढोली गाई—२१२७।

ढोह—संशा पुं. [सं. दार्व, हिं. दीह ] ऊँचा टीला, दूह। दुंढ-संशा पुं. [हिं. दूँढ़ना ] ठग, लुटेरा। उ—चोर दुंढ बटपार अन्यायी अपमारगी कहावैं जे।

दुंढपाणि, दुंढपानि—संज्ञा पुं. [सं. दंडपाणि] (१) शिव के एक गण। (२) वंडपाणि भैरव।

ढुँढवाना—िक. स. [हिं. द्वढ़ना का प्रे.] तलाश कराना। ढुंढा—संश्रास्त्री. [सं.] हिरण्यकशिपु की बहिन होलिका जिसे वरदान था कि तू ग्राग में न जलेगी।

हुं हि—संज्ञा पुं. [ सं. ] गणेश का एक नाम, क्योंकि सारे विषय इन्हीं के ढूँढ़े या अन्वेषित माने जाते हैं।

खुंढी—संज्ञा स्त्रो. [देश.] बाँह, भुजा।
मुहा,—ढंढी चढ़ाना—मुक्कें बाँधना।

हुकना—क्रि. स. [देश.] (१) घुसना, प्रवेश करना। (२) टूट पड़ना, पिल पड़ना। (३) देखने सुनने के लिए ग्राड़ में छिपना।

दुकाइ—कि. थ्र. [हिं. दुकाना ] धावा करने को प्रेरित किया, पिल पड़ने को उत्साहिस किया, टूट पड़ने का संकेत किया। उ.—बहुरी दीन्हे नाग दुकाई। जिनकी ज्वाला गिरि जरि जाई—७२। दुकाना—कि. स. [हिं. दुकना] घुसाना, छिपाना। दुकास—संज्ञा स्त्री. [ अनु. दुकदुक] जोर की प्यास। दुकि—कि. वि. [हिं. दुकना] छेड़कर, पिल पड़कर। उ.—दिन-दिन देन उरहनी आग्रति दुकि दुकि करति लरैया—३७१।

दुकी—िक. श्र. [हिं. दुकना ] कोई बात देखने सुनने के लिए ग्रोट या श्राड़ में लुकी या छिपी।

दुका—संज्ञा पुं. [हिं. द्वका] किसी बात को देखने-सुनने के लिए भ्रोट या भ्राड़ में छिपाना।

हुक्यों--कि. त्र. [हिं. हुकना] घात में नैठा या छिपा था, टूट पड़ा। उ.—हों त्रानाथ बैठ्यों द्रम-डिरया, पारिध साधेबान। ताकें डर में भाज्यों, ऊपर हुक्यों सचान—१-६७।

दुच-संज्ञा पुं. [देश.] घूँसा, मुक्का।

खुटोना—संज्ञा पुं. [हं. ढोटा ] पुत्र, बेटा । उ.—(क)
गृह-संपित दे तनक दुौना, इनहीं लों मुख-भोग—
प्रश् । (ख) त्राति संदर नद महर-दुटौना—६०१।
दुन गुनिया—संज्ञा स्त्रो. [हं. ठनमनाना ] (१) लुढ़कने
की किया या भाव । (२) एक मंडल में भूम भूमकर
कलजो गाने का ढंग ।

दुरकना—कि. श्र. [हिं. दुलकना] (१) फिसलना, लुढ़कना, सरक कर गिरना। (२) भुकना।

हुरकी—िक. श्र. [हिं. दुलकना] भुक भूमकर। उ,— हँसत नंद, गोपी सब बिहँसीं, भमिक चलीं सब भीतर दुरकी—१०-१८०।

हुरति—कि. श्र. [हिं. हुरना] हिलती-डुलती है, लह-राती है। उ.—देखी हरि मर्थात ग्वालि दिघ ठाड़ी। जोबन मदमाती इतराती, बेनि हुरति कटि लौं, छिब बाढ़ी—१०-३००।

हुरना—िक. त्र. [हिं. ढार] (१) गिरकर बहना, टपकना। (२) लुढ़कना, सरकना। (३) इधर-उधर डोलना, डगमगाना! (४) हिलना, लहराना। (५) भुकना, प्रवृत्त होना। (६) अनुकूल या प्रसन्त होना। हुरहुरी—संशा स्त्री. [हिं. दुरना] (१) लुढ़कने या फिसलने की ऋया या भाव। (२) पगडंडी। (३) नथ में जड़ी सोने के दानों की पंक्ति।

हुराना—कि. स. [हिं. हुरना] (१) गिराकर बहाना, टपकाना, लुढ़काना। (२) हिलाना, लहराना।

हुरावत—कि, सं [हिं. दुराना](१) गिराकर बहाते हैं, टपकाते हैं। उ.—पलक न लावत रहत ध्यान धरि बारंबार दुरावत (दुरावित) पानी—३०३७! (२) इधर उधर हिलाते-डुलाते हैं, लहराते हैं। उ.—आनंद मगन सकल पुरवासी चमर दुरावत श्रीब्रजराज—१०-२०।

हुरुश्रा—संज्ञा पुं. [हिं. हुरना] गोल मटर। हुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हुरना] पगडंडी।

ढुलकना—िक. श्र. [हिं. ढाल ] लुढ़कना, फिसलना। ढुलकाना—िक. स. [हिं. ढुलकाना] लुढ़काना, ढेंगलाना। ढुलना—िक. श्र. [हिं. ढाल ] (१) गिरकर बहना, ढरकना। (२) फिसलना, लुढ़कना। (३) भुकना, प्रवृत्त होना। (४) श्रनुकूल या प्रसन्न होना। (४) इधर-उधर हिलना-डोलना। (६) लहराना।

दुलवाई—संशा स्त्री. [हिं. ढोना ] ढोने का किया, भाव या मजदूरी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. दुलना ] हुलाने की क्रिया, भाव, या मजदूरी।

दुलवाना—कि. स. [हिं.ढोने का प्रे, ] बोक्त ग्रादि होने का काम कराना।

कि. स. [हिं. दुलाना का पे ] दुलाने का काम कराना।

ढुलाना—िक. स. [हिं. ढाल ] (१) गिराकर बहाना, ढरकाना। (२) नीचे गिराना। (३) लुढ़काना। (४) भुकाना, प्रवृत करना। (४) प्रनुकूल या प्रसक्ष करना। (६) इघर-उघर हिलाना। (७) चलाना- फिराना। (८) फेरना, पोतना।

कि. स. [हिं. ढोना] बोभ ढोने का काम करना। ढूँकना—कि. श्र. [हिं. डुकना] (१) घुसना। (२) घावा करना। (३) देखने सुनने या भेद लेने को छिपना। हुँका—संशा पुं. [हिं. डुकना] देखने सुनने या भेद लेने को श्रोट या श्राइ में छिपने की किया या भाष।

ढूँकी—कि. श्र. [हि. हुकना] भेद लेने को श्रोट या श्राड़ में छिपी, घात में लुकी। उ.—ढूँकी रहीं जहाँ तहें गोरी—२४१७।

ढूँढ़—संज्ञा स्त्री. [ हि. ढूँढ़ना ] खोज, तलका । यौ.—ढँढ़ ढाँढ़—खोज-तलाज, छान-बीन।

हुँ इत—कि. स. [हि, हुँ इना ] स्रोजता है, पता लगाता है। उ.—ज्यों कुरंग-नाभी कस्त्री, हुँ इत फिरत भुलायों—६-२३।

ढँढ़ित-कि. स. [हिं. ढूँढ़िना [ खोजती है, पता लगाती है, ढूँढ़िता है। उ.—देखे जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यों कहुँ हेरि। चिकित भई ग्वालिनी मन अपनें, ढूँढ़ित घर फिरि फेरि—१०-२७१।

ढूँढ़न—संशा पुं. [हिं. ढूँढ़ना] खोजने की किया, ढूँढ़ना। उ.—संध्या समय निकट नहिं आयौ। ताके ढूँढ़न कों उठि धायौ—५-३।

हूँढ़ना—कि. स. [सं. ढुंढ़न] खोजना, तलाशना। यो.--हूँढ़ना - ढाँढ़ना—पता लगाना, खोजना, श्रन्वेषण करना।

ढूढ़ला—संज्ञा स्त्री. [सं. ढंढा ] हिरण्यकशिपु की होलिका नामक बहन जिसे ग्रांग में न जलने का वरदान था। ढूँढ़ि—कि. स. [हिं. ढूँढ़ना ] खोजकर, पता लगाकर, तलाश करके। उ.—मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मों। "" ढूँढ़ि फिरे घर कोउन बतायी, स्वपच कोरिया लौं— १-१५१।

हुँदी—िक, स. स्त्री, [हिं. ढूँढ़ना] खोज की, पता स्याया, तलाश की। उ.—लंका पौरि पौरि में ढूँढ़ी श्रर बन-उपवन जाइ—६-१०४।

ढूँढ़ैं—िकि. स. [हिं. ढूँढ़न!] खोजते हैं, पता लगाते हैं। उ.—बानर बीर चहूँ दिसि धाए, ढूँढ़ैं गिरि-बन-भार—६-८३।

हुँ हैं — कि. स. [हिं. हुँ हुना ] खोजता है, पता लगाता है। उ.—अमत हीं वह दौरि हुँ है, जबहिं पावै बास—१-७०।

ढूँढ़यौ—िक. स. [हिं. ढूँढ़ना] ढूँढ़ा, खोजा, पता लगाया। उ.—१ दा आदि सकत बन ढूँढ़यौ, जहँ गाइनि की टेर—४५८। दूह, दूहा—संशा पुं. [सं. स्तूप](१) ढेर, राशि, ग्रटाला ।

(२) टीला, भीटा । (३) सीमा या हद सूचक दोवार । हेंफ—संज्ञा स्त्री [सं. हेंक] लंबी चोंचवाली एक चिड़िया। हेंकली, हेंकी, हेंकुर, हेंकुली—संज्ञा स्त्री. [हिं हेंक]

(१) कुएँ से पानो निकालने का लकड़ी का देशी यंत्र।

(२) घान कूटने का लकड़ी का यंत्र।
हेंका—संज्ञा पुं. [हिं. ढेकली] बड़ी हेंकली।
हेंढ़, हेंढ़ा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) कौग्रा। (२) एक
नीच जाति। (३) मूर्ख या उजड्ड मनुष्य।

संज्ञा पुं. [सं. तुड, हिं. ढोढ़] कपास का डोडा।
ढेढ़वा—संज्ञा पुं. [देश.] काले मुंह का बंदर।
ढेंढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढेंढ़] (१) कपास या पोस्ते का
डोडा। (२) कान का तरकी नामक गहना।
ढेंप, ढेंपी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) फल-पत्ते के साथ
लगा टहनी का पतला भाग। (२) स्तन की घुंडी।
ढेडुआ, ढेडुक, ढेडुवा—संज्ञा पुं. [देश.] पंसा।
ढेउ—संज्ञा पुं. [देश.] पानी की लहर, तरंग।
ढेर—संज्ञा पुं. [हिं. धारना] (१) ग्रंबार, राज्ञि।
मुहा.—ढेर करना—मार कर गिराना। ढेर हो
जाना—(१) मर कर गिरना। (२) ढह पड़ना।
वि.—बहुत, ग्रधिक, ज्याटा।

हैरि, हेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. देर] राज्ञि, समूह। ट.— (क) तऊ कहुँ त्रिपितात नाहीं रूप रस की देरि— पृ. ३३४। (ख) प्रानन के बदले न पाइयत सेंति बिकाय सुजस की देरी—रूद्धर।

ढेल, ढेला—संशा पुं. [सं. दल या हिं. डला] (१) इंट, पत्थर का टुकड़ा। (२) टुकड़ा, खंड। (३) एक तरह का धान।

देलवाँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. देला + सं. पारा ] रस्सी का फंदा जिससे ढेला फेंका जाता है, गोफना ।

हैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. ढाई] (१) दो ग्रीर ग्राधा।

(२) ढाई सेर का बाँट। (३) ढाई गुने का पहाडा। ढोंकना—कि. स. [ अनु. ] पी जाना। ढोंग—संशा पुं. [ हिं. ढंग ] ढकोसला, पाखंड। ढोंगी—वि. [ हिं. ढोंग ] ढकोसलेबाज, पाखंडी। ढोंटा, ढोंटा, ढोंटा, ढोंटाना—संशा पुं. [ सं. दुहित = लड़की,

हिं. ढोटा ] (१) पुत्र, बेटा । उ.—(क) कबहुँक बैठ्यो रहिस-रहिस के, ढोटा गोद खिलायो । कबहुँक फूलि सभा में बैठ्यो, मूँछिन ताव दिवायो—१-२०१ । (ख) पूँछो जाइ कवन को ढोटा तब कह उत्तर देहें—३४३६ । (२) लड़का, बालक । उ.—(क) गोकुल के ग्वेंड़े एक साँवरो सो ढोटा माई ग्रॅंखियन के पैंड पैठि जी के पैड़े परयो है—८७२ । (ख) स्थाम बरन एक मिल्यो ढोटोना तेहि मोकों मोहनी लगाई।

ढोढ़—संशा पुं. [सं. तुंड ] (१) डोडा। (२) फली। ढोढो—संशा स्त्री. [हिं. ढोंढ़ा ] नाभि, तोंदी। ढोटी—संशा स्त्री. [मं. दुहितृ ] लड़की। ढोड़—संशा पुं. [देश.] ऊँड।

होना—कि. स. [सं. वोट = वहन करना] (१) बोभ ले चलना। (२) (सामान) उठा ले जाना।

होर, होरा—संज्ञा पुं. [हिं. दुरना] चौपाये, पालतू पशु। उ.—जब हरि मधुबन को जु सिधारे धीरज धरत न होर—३०८४।

होरना—क्रि. स. [हिं, ढारना] (१) द्रव पदार्थ बहाना या हरकाना। (२) लुढ़काना।

ढोरी—कि. स. [हि. ढोरना] (१) बही, गिशी, टपकी, ढरकी। (२) लुढ़की।

संज्ञा स्त्री.—(१) बहाने, गिराने या ढरकाने का भाव। उ.—कनक कलस-केसरि गहि ल्याई डारि दियो हरि पर ढोरी की। (२) रट, धुन, लौ, लगन। उ.—सूरदास गोपी बङ्गागी। हरि दरसन की ढोरी लागी।

होरे—कि. स. [हिं. ढोरना ] गिराये, बहाये। उ.—वै श्रक्र कर कत जिनके रीते भरे भरे गहि ढोरें —३१७६।

होरें—िक, स. [हिं. ढोरना] (१) गिराते, बहाते या डपकाते हैं। उ.—श्रिति ही सुंदर कुमार जसुमिति रोहिन बार बिलखित यह कहित सबै लोचन जल ढोरें—२६०४। (२) हिलाती-डुलाती हैं।

होरै—कि. स. [हिं, ढोरना] (पानी सा द्रव पदार्थ) गिराता है, बहाता है, दरकाता है। उ.—(क) जननी श्रति रिस जानि बँधायो, निरिष्त बदन लोचन जल होरै—३४४। (ख) रीते भरै भरै पुनि ढोरै (ढारै) चाहै फेरि भरै—१-१०५।

ढोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक चमड़ा मढ़ा बाजा।
यो.—ढोल-ढम्का—गाना-बजाना, बाजा गाजा।
मुहा.—ढोल पीटना (बजाना)—घोषणा करना,
सबको जताना। ढोल बजाइ—सबको जताकर,
घोषणा करके, सब पर प्रकट करके, खुल्लमखुल्ला।
उ.—जनु हीरा हरि लिए हाथ तें ढोल बजाइ
ठगी—२७६०।

(२) कान की भिल्ली या परदा।

द्धोलक, ढोलकी—संशा स्त्री. [हिं. ढोल] छोटा ढोल जो प्रायः उत्सवों ग्रीर मंगलकार्यों में स्त्रियाँ बजाती है। ढोलिकथा—संशा स्त्री. [हिं. ढोलक] (१) छोटी ढोलक। (२) ढोलक बजानेवाला।

ढोलन, ढोलना—सं गं पुं. [हिं. ढोल ] ढोलक के आकार का छोटा जंतर जिसे तागे में पिरोकर बच्चे के गले में पहनाया जाता है। उ,—अनगढ़ सोना ढोलना (गढ़। ल्यापु चतुर सुनार। बीच-बीच हीरा लगे, (नद) लाल गरे को हार—१०-४०।

संज्ञा पुं. [सं. दोलन] बच्चों का भूला या पालना। कि. स. [सं. दोलन] (१) ढरकाना, ढालना। (२) इधर-उधर हिलाना-डुलाना।

होलनी—संशा स्त्री. [सं. दोलन ] अच्चों का भूला या पालना। उ.—ले श्रायो गढ़ि होलनी बिसकर्मा सो सुत धार।

होला—संशा पुं. [हं. ढील ] (१) एक कीड़ा। (२) हव या सीमा सूचित करने का चबूतरा। (३) गोल मेहराव बनाने की डाट। (४) शरीर। (४) पति, प्रियतम। (६) मूर्ख व्यक्ति। (७) एक गीत। होलिनी—संशा स्त्री. [हं. ढोलिया ] ढोल बजानेवाली। ढोलिया—संशा पुं. [हं. ढोल ] डोल बजानेवाला। ढोली—संशा स्त्री. [हं. ढोल ] २०० पान की गड्डी।

संशा स्त्री. [हिं, ठठोली, ठोली ] हँसी-ठठोली। उ.—सूर प्रभु नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहिं करति ढोली—१२६ =।

होव—संज्ञा पुं. [हिं. ढोवना ] भेंट, उपहार। होवना—क्रि. स. [हिं. ढोना ] (१) भार या बोभ ले चलना। (२) धन संपत्ति उड़ा ले जाना। होवहिं—क्रि. स. [हिं. ढोवना ] भार ग्रादि ले नलते

हैं। उ — मेघ छ्यानबे कोटि सब जल ढोवहिं प्रति बार — ११२८।

ढोंचा—संज्ञा पुं. [सं. श्रद्धं, प्रा. श्रड्ढ + हिं. चार] साढ़े चार का पहाड़ा।

होंसना—कि. त्र. [हिं. घोंस से त्रानु.] श्रानंद-ध्वनि करना, किलकारी मारना।

ढोकन—संज्ञा पुं. [ सं. ] घूस, रिश्वत । ढोरि, ढोरी—संज्ञा स्त्रो. [ देश. ] रट, धुन, लो, लगन। उ.—रिसक शिरमौर ढोरि लगावत गावत राधा राधा नाम।

संज्ञा स्त्री, [हिं, दुरीं ] पगडंडी।

ग्

गा—देवनागरी वर्णमाला का पन्द्रहर्वा श्रीर टवर्ग का पांचवां व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है। गा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राभूषण। (२) निर्णय।

(३) ज्ञान । (४) शिव का एक नाम । (५) दान ।
वि.—गुणहीन, जिसमें विशेषता न हो ।
गागा—संशा पुं. [सं.] दो मात्राश्रों का एक गण ।

त वेशनागरी वर्ण जाला का सोलहवां ग्रौर तवर्ग का पहला व्यंजन जियका उच्चारण-स्थान दंत है।

तं—संज्ञा स्त्री. [सं ] (१) नाव। (२) पुण्य। तँई—प्रत्य. [हिं. तई ] से।

प्रत्य. [प्रा. हुंतो ] (१) प्रति, को। (२) से। श्रव्य. [सं. तावत् ] लिए, वास्ते।

तंक —संजा पु. [स.] (१) भय, डर। उ.—जब रथ साजि वढ़ों रन-सन्मुख, जीय न त्र्यानों तंक। राघव सैन नमेत सँहारों, करों रुधिरमय पंक—६-१३४।

(२) वियोग का दुख। (३) पत्थर काटने की टांकी। तंग -- संज्ञा पं. [फ़ा.] घोड़ों की पेटी या तस्मा।

वि.—(१) कसा। (२) हैरान। (३) कम बौड़ा।
मुहा. तंग त्राना (होना —(१ घबरा जाना।
(२) हैरान हो जाना। तंग करनः—हैरान करना।
हाथ तंग होना—पास में पैसा न होना।

तंगहाल--वि. [फ़ा.] (१) गरीब। (२) दुखी। तंगी-संज्ञा स्त्रा. [फ़ा.] (१) सँकरा या कम चौड़ा

होने का भाव। (२) हुख। (३) गरीबी। (४) कमी। तंड — संज्ञा पुं. [सं. तांडव] नाच, नृत्य। तंडक — पंजा पुं. [सं.] (१) खंजन पक्षी। (२) समास-

युक्त वाक्य। २ बहुरूपिया, ग्राडंबरिय। तंडव —संज्ञा पुं. [सं. तांडव] एक तरह का नाच। तंडुल —संज्ञा पुं. [सं.] (१) चावल। (२) एक साग। तंडुलजज —संज्ञा पुं. [सं.] चावल का पानी।

तंत—संज्ञा पुं. [सं. तंतु ] (१) सूत, तांगा, रेजा। (२) संतान। () विस्तार, फेलाव। (४) तांत। संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरत] स्त्रातुरता, उतावली। संज्ञा पुं. • [सं. तत्व] (१) वास्तविकता। (२) जगत का मूल कारण। (३) पृथ्वी, जल, ग्राग्न, गगन, वायु—ये पांच तत्व। (४) सार।

संज्ञा पुं [सं, तंत्र] (१) तारवाला बाजा। (२) किया। (३) तंत्रशास्त्र। (४) प्रबल इच्छा। (४) प्रधीनता।

वि. जो तौल या वजन में ठीक हो। तंतमंत—संशा पुं. [हिं, तहमंत्र ] जादू-टोना। वृंतरी—संज्ञा पुं. [सं. तंत्री ] तारवाले बाने बजानेवाला। तिति—संज्ञा स्त्री. [सं. ] गाय, गौ।

तंतु—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) सूत, डोरा, तागा, रेजा। (२) ग्राह। (३) संतान, संतित। (४) विस्तार।

(४) वंश परंपरा। (६ ताँत। (७) मकड़ी का जाला। तंतुक, तंतुकी--संज्ञास्त्री [सं.] नाड़ी।

तंतुर, तंतुल—संज्ञा पं. [सं.] कमल की जड़ या नाल। तंतुवादक—संज्ञा पं. [सं.] तारवाले बाजे, (जैसे बीन, सितार) तजानेवाला, तंत्री।

तंतुवाय संा पुं. [सं.] (१) कपड़ा जुनने-वाला, ताती। (२) मकड़ी।

तंत्र — संज्ञा पुं [सं.] (१) तांत। (२) सूत, डोरा।
(३) जुलाहा। (४) कपड़ा। ११) परिवार का
भरण-पोषण। (६) सिद्धांत। (७) प्रमाण। (६)
दवा। ६) भाड़-फूँक। (१० कार्य। (११)कारण।
(१२) उपाय। (१३) राज्य-प्रबंध। (१४) सेना।
(१५) ग्रधिकार। (१६) समूह। (१७) प्रसन्नता।
(१८) घर। (१६) धन। (२०) परवज्ञता। (२१)
वर्ग, श्रंणी। (२२) कुल, वंज्ञ। (२३) ज्ञपथ। (२४)
उपासना-संबंधी एक ज्ञास्त्र।

तंत्रमंत्र—संशा पुं. [हिं. तंत्र+मंत्र ] जादू-टोना। उ.— यह कछु तंत्र मंत्र जानत है ऋति ही सुंदर कोमल गात— ५५४।

तंत्री संग स्त्री. [ सं. ] (१) बीन, सितार ग्रादि तार-वाले बाजे। (२) शरीर की नस। (३) रस्सी। (४) वीणा।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो तारवाले बाजे बजाता हो। (२) गवया, गानेवाला। उ.—तंत्री (मंत्री) काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति। दुबिधा दुंदुभि है निसि बासर उपजावति बिए-रीति—१-१४१।

वि.—[सं.] (१) श्रालसी। (२) परवश। तंद्रा—संज्ञा स्त्रो. [सं. तद्रा] ऊँघ, खुमारी। तंदुरुस्त—वि. [फा.] स्वस्थ, नौरोग। तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्रो. [फा.] स्वस्थता, नौरोगता।

तंदुल—संशा पुं. [सं. तंदुल ] चावल । उ.— (क) रोर के जार तें सोर घरनी कियो, चल्यो द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ो । जोरि ऋंजिल मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के बिभव तें ऋधिक बाढ़ो-—१-५ । (ख) तंदुल माँगि दों चिलाई सो दीन्हों उपहार । फाटे बसन बाँध के द्विजवर ऋति दुर्बल तनहार—सारा ८०६ । (ग) तीनि लोक विभव दियो तंदुल के खाता— १-१२३ ।

तंदेही— संज्ञा स्त्री. [फा. तनदिही] (१) परिश्रम, मेहनत। (२)कोशिश, प्रयत्न। (३)ताकीद, चेतावनी। तंद्रा, तंद्रिः तंद्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऊँघने की प्रवस्था, उंघाई। (२) हलकी भूर्छा या बेहोशी।

तंद्रालु—िव. [सं.] जिसे ऊँघ लगती हो। तंद्री— संशास्त्री. [सं.] (१) ऊँघ। (२) भौंह। तंत्री—संशास्त्री. [सं.] गाय।

संज्ञा पुं. फा. तंबान] चौड़ो मोहरी का पायजामा। तंबीह—संज्ञा स्त्री. [ अ. ] (१) उपदेश। (२) दंड! तंबू—संज्ञा पुं [ हिं. तनना ] डेरा, शामियाना, शिविर। तंबूर—संज्ञा पुं. [ फा. ] एक तरह का छोटा ढोल। तंबूरची—संज्ञा पुं. [फा. तंबूर+ची] तंबर बजानेवाला। तंबूर, तंबूरा—संज्ञा पुं. [ हिं. तानपूरा ] बीन की तरह का एक पुराना बाजा, तानपूरा।

तबोल—संज्ञा पं. [सं. तांबूल] (१) पान का पत्ता। (२) पान का बीड़ा।

मुहा—िलयौ तँबोल—बोड़ा लिया, काम करने को कटिबद्ध हुए। उ.—िलयौ तँबोल माथ घरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात—६-७४।

(३) वह धन जो बरात के मार्गव्यय के लिए कन्या पक्षवालों की श्रोर से भेजा जाता है। तँबोलिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. तँबोली ] तँबोली की स्त्री। तँबोली—संज्ञा पुं. [हिं. तँबोल + ई] पान बेचनेवाला। तंभ, तंभन—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभ ] श्रृंगार रस का स्तंभ नामक सात्विक भाव।

तंवाई—संज्ञा स्त्री. [ सं. ताप, हिं, ताव ] ताप, जलना। तंवार, तँवारी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. तव ] (१) सिर का चकर, घुमटा, घुमेर। (२) हरारत, ज्वर।

त:—प्रत्य. [सं.] एक संस्कृत प्रत्यय को ज्ञान्दों के अंत में लगकर ये अर्थ बहाता है—रूप से और के अनुसार। त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाव। (२) पुण्य। (३) चोर। (४) भूठ। ४) गोद। (६) रत्न। (७ अमृत। क्रि. वि. [सं तयुं, हिं. तो] तो तईं, तई—प्रत्य. [हिं. ते] से। प्रत्य. [प्रा. हुंतो] (१) अति, को। (२) से। श्रव्य. [सं. तावत्] लिए, वास्ते।

तई—कि. श्र. [हिं. तपना ] संतप्त या दुखी हुई। उ.— (क) राधे कत रिसि सरस तई—२२५५। (ख) ध्यान धरत (धरत हृद्य) न टरत मूर त त्रिबिध (तिहूँ) ताप तई—३१०७ श्रीर ३१३१।

प्रत्य [पा. हुंतो ] प्रति, को, से। उ. —को ज कहै हरि रीति सब तई।

तड—अव्य [हिं, तऊ] तब भी, तिस पर भी, इतने पर भी। उ.—(क) अष्ट-दस-यट नीर अँचवति, तुषा तउ न बुभाइ—१-५६। (ख) ख्वाय बिष गृह लाय दीन्हों, तउ न पाए जरन—१-२०२।

तऊ—श्रव्य. [हिं. तब+ऊ (प्रत्य.)] तो भी, तिस पर भी, तब भी। उ.—(क) देखत-सुनत सबै जानत हों, तऊ न श्रायो बाज —१-१०८। (ख) वेद पुरान रहत जस जाको तऊ न पावत पार-—सारा. ६१३। (ग) निसि दिन रहत सूर के प्रभु बिनु मरिबो, तऊ न जात जियो—२५४४।

तए—िक. श्र. [हिं. तपना] तपे, संतप्त हुए, उसी हुए।

उ.—(क) बूड़ि नुए के कहुँ उठि गए। जिनकें
सोंच नृपित बहु तए—१-२८४। (ख) महादेव
बैठे रहि गए। दच्छ देखि श्रातिसय दुख तए -४-५।
तक—श्रव्य. [सं. श्रंत+क] सीमा या ध्रवधि सुबक
विभिक्त, पर्यंत।

संशा स्त्री. [सं. लकड़ी] तराजू, तराजू का पलड़ा। संशा स्त्री. [हिं. टक] स्थिर दृष्टि।

तकित—िक, श्र. [हिं. ताकना ] देखती है, निहारती है। उ.—लरिकनी सबिन घर, तोसी नहिं को उ निडर, चलित नभ चिते, नहिं तकित घरनी-६६८। तकदीर—संशा श्री. [श्र. तकदीर ] भाग्य, किस्मत। तकन—संशा स्त्री. [हिं. ताकना ] देखना, दृष्टि । तकना — क्रि. श्र. [हिं. ताकना] (१) देखना, निहारना। (२) शरण या ग्राथय लेना।

तकरार—संज्ञा स्त्री. [ श्र. ] लड़ाई-फगड़ा, हुज्जत।
तकरीर—संज्ञा स्त्री. [ श्र. तकरीर ] (१) बातचीत,
वार्तालाप। (२) वक्तृता, भाषण, व्याख्यान।
तकला—संज्ञा पुं. [ सं. तकुं ] सूत कातने का टेकुग्रा।
तकली—संज्ञा स्त्री. [ हिं. तकला ] छोटा तकला।
तकलीफ—संज्ञा स्त्री. [ श्र. तकलीफ़ ] (१) कष्ट, दुल।

(२) विपत्ति, मुसीबत।
तकल्लुफ—संज्ञापुं. [त्र्रा,तकल्लुफ] दिखावटी शिष्टाचार।
तकवाना—िक. स. [हिं. ताकना ] ताकने में लगाना।
तकवाही,तकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताकना+ई (प्रत्य.)]
ताकने की किया, भाव या मजदूरी।

तकसीम—संज्ञा स्त्रीं. [ ऋ, तकसीम ] (१) बांटने की किया या भाव। (२) भाग करने की किया। तकाजा—संज्ञा पुं. [ऋ. तकाज़ा] (१) ऐसी चीज मांगना जिसके पाने का श्रधिकार हो। (२) वह काम करने को कहना जिसके लिए वचन मिल चुका हो। (३)

तकान—संज्ञा स्त्री. [हिं, थकान ] थकने का भाव। तकाना—क्रि. स. [हिं, ताकना का प्रे.] ताकने, देखने या निगरानी रखने में लगाना।

उत्तेजना, प्रेरणा ।

कि. श्र.— किसी ग्रोर को भागना या जाना।
तकावी—संशा स्त्री. [श्र. तकावी] वह धन जो किसानों
को उनके व्यवसाय को उन्नति के लिए दिया जाय।
तिक—िक. स. [हिं. ताकना] सोच-विचार कर, चाह-कर, देखकर। उ.—जे रघुनाथ-सरन तिक श्राए.
तिनकी सकल श्रापदा टारी—१-३४।

तिकए—कि. स. [हिं. ताकना ] ताकिए, देखिए, इच्छा की जिए। उ —कैसो कठिन कर्म केसो बिन काकी सूर सरन तिकए—३०७३।

तिकया—संशा पुं. [फ़ा.] (१) सिरहाने रखने का रुई या कपड़े से भरा थेला। (२) विश्वाम का सहारा। (३) ग्राक्षय, ग्रासरा। (४) मुसलमान फकीर का निवास स्थान।

तिकया कलाम—संज्ञा पुं. [फ़ा, तिकया+कलाम ] वह शब्द या पद जो अभ्यास वज्ञ बार-बारं लोगों के मुख से निकलने लगता है।

तिकयो—िक. स. [हिं. ताकना ] देखना, ग्राश्रय लेना।
उ.—ठकुराई तिकयो गिरिघर की सूरदास जन
जानी—२५४८।

तकुत्रा—संशा पुं. [हिं. तकला] सूत कातने का टेकुग्रा।
संशा पुं. [हिं. ताकना + उत्रा] ताकनेवाला।
तके—िकि. त्रा. [हिं. ताकना] देखता है, निहारता है,
ताकता है। उ.—सूर त्रवगुन भरथी, त्राइ द्वारें
परथी, तक गोपाल त्राव सरन तेरी—१-११०।
तकेया—संशा पुं. [हिं. ताकना+ऐया] ताकनेवाला।
तकों—िकि. त्रा. [हिं. ताकना] देखूँ, निहारूँ। उ.—
करनासिंधु कृपाल, कृपा बिनु काकी सरन तकों—
१-१५१।

तक—संशा पुं. [सं.] मठा, छाछ। उ.—छलकत तक उफिन श्रॅग श्रावत निहं जानित तेहिं कालिहं सों। तक्क—संशा पुं. [सं.] (१) कश्यप का पुत्र एक नाग जिसने राजा परीक्षित को काटा था। (२)साँप, सपं। (३) विश्वकर्मा। (४) सूत्रधार। (५) दस वायुओं में एक, नागवायु। उ.—प्रान श्रपान व्यान उदान श्रीर कहियत प्रान समान। तक्क धनंजय पुनि देवदत्त श्रीर पोंडक संख द्युमान—सारा. १।

वि.—छेदनेवाला, छेदक ।
तत्त्रण,तत्ता--संशा पुं. [सं. तत्त्न्] बढ़ई ।
तत्वमीना—संशा पुं. [श्र. तात्रमीना] ग्रंदाज, श्रनुमान ।
तत्वित्या—संशा पुं. [श्र. तात्रिया] एकांत स्थान ।
तत्वत्त—संशा पुं. [फ्रा. तत्व्तः] (१) सिहासन । (२) चौकी ।
तत्व्ता—संशा पुं. [फ्रा. तत्व्तः] (१) लकड़ी का

बड़ा पटरा।

मुहा,—तख्ता उलटना—-(१) बना बनाया काम बिगड़ना। (२) प्रबंध नष्ट-भ्रष्ट होना। तख्ता ही जाना—ऐंठ या श्रकड़ जाना।

(२) काठ की बड़ी चौकी। (३) श्रारथी, टिखटी। सख्ती — संख्य स्त्री. [हिं. तख्ता ] (१) छोटा तख्ता। (२) लिखने की पटिया। (३) छोटी पटरी। त्राड़ा-वि. [हिं. तन+कड़ा] (१) बलवान, ताकतवर। (२) ग्रन्छा ग्रौर बड़ा।

तगड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तागड़ी ] करधनी, तागड़ी।

वि. स्री. [हिं. तगड़ा] (१) बली। (२) बड़ी। तगण-संशा पुं [सं..] तीन वर्णी का एक गण। तगा—संशा पुं. [ हिं. तागा ] तागा, डोरा, सूत, धागा। उ.—(क) प्रमुलित हैं के आनि, दीनी है जसोदा रानी, भोनीय भगुलि तामें कंचन-तगा-१०-३६। (ख) जाकें नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग ब्रत साध्यो (हो)। ताको नाल छीन ब्रज-जुवती, बाँटि तुगा सौं बाध्यौ (हो)--१०-१२८। (ग) अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी-- ३३३५। संशा पुं. -- रहेलखंड की एक ब्राह्मण जाति। तगाई—संशा स्त्री. [हिं. तागना ] मोटी सिलाई करने

का काम, भाव या मजदूरी। तकादा, तगादा—संज्ञा पुं. [हिं. तकाजा ] (१) प्राप्य

थन भ्रदा करने का तकाजा। (२) प्रेरणा। तगाना—कि. स. [हिं. तागना ] मोटी सिलाई कराना। तगार, तगारी—संज्ञा स्त्री. [देश.] गड्ढा। नांद। तिगियाना - कि. स. [हिं. तागना] मोटी सिलाई करना। ्रतगीर—संज्ञा पुं. [ अय्र. तग्रय्युर = परिवर्तन ] परिवर्तन । तगीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तगीर ] बदली, परिवर्तन। तचना-कि. आ. [हिं. तपना -] तप्त होना, तपना। तचा - संशा स्त्री, [ सं, त्वचा ] चमड़ा, खाल। तचाई—संशा स्त्री. [हिं. तचाना ] जलाने की किया।

कि. स. भूत.—जलायी, तपायी, तप्त की। तचाना-क्रि. स. [हिं. तपाना] जलाना, तप्त करना। तिचबौ-कि. श्र. [हिं. तपना, तचना ] जलना होगा, जलेगा। उ.—तिज श्रिभमान, राम कहि बौरे, नतरक ज्वाला तचिबौ--१-५६।

संशा पं. — तचने की क्रिया या भाव। तची-कि. श्र. [हिं, तचना ] तपी, जली, तप्त हुई। उ.—मानो बिधि सब उलट रची री। जानत नहीं सखी काहे ते वही न तेज तजी री।

तच्छक संशा पुं, [सं, तक्क ] (१) तक्षक नाग। (२) साँप। (३) नागवायु। (४) विश्वकर्मा।

तच्छिन—क्रि. वि. [सं. तत्त्रण ] उसी समय। तच्यो--क्रि. श्र. [हिं. तचना ] तपा, तप्त हुन्ना। कि. स. [हिं तचाना ] तपाया, तप्त किया। तजिरा—संशा पुं, [ श्रा, तज़िकरा ] चर्चा, जिन्न । तजत-कि. स. [हिं. तजना ] त्यागता है, छोड़ता है। उ.—(क) त्यों सठ बृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत बिषय-श्राधीन-१-१०२। (ख) कहा होत पय पान कराएँ, बिष नहिं तजत भुजंग--१-३३२। (ग) एते

पर नहिं तजत ऋघोड़ी कपटी कंस कुचाली-२५६७। तजतौ-कि. स. [हिं. तजना ] त्यागता, छोड़ता। तजन - संशा पुं. [ सं. त्यजन ] त्याग, परित्याग । तजना—कि. स. [सं. त्यजन ] त्यागना, छोड़ना। तजिन-संज्ञा स्त्री. [हिं, तजना ] तजने की किया या भाव, त्याग । उ.—-सूरदास-प्रभु-प्रेम-मगन भई ढिग न तजिन बजबाल की-१०-१०५।

तजरबा—संज्ञा पुं. [ श्र. ] श्रनुभव, तजुरबा । तजबीज—संशा स्त्री. [ श्र. तजवीज़ ] (१) सम्मति, राय। (२) फैसला, निर्णय। (३) प्रबंध, भ्रायोजन। तजि-कि, स. [हिं, तजना ] छोड़कर, त्यागकर। उ.-छाँड़ि सुखधाम श्ररु गरुड़ तिज साँवरी पवन के गवन तें ऋधिक घायौ--१-४।

तजी-कि, स, [हिं, तजना ] त्याग दी। उ,-भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी--१-५।

तजे-कि. स. [हिं. तजना ] छोड़ा, त्यागा। उ.-मम गृह तजे मुरारे-१-२४२।

तजैं -- क्रि. स. [हिं. तजना ] छोड़ता है, त्यागता है। उ.—सिंह-सावक ज्यों तजें ग्रह इंद्र ऋादि डरात— १-१०६।

तजै—क्रि. स. [हिं. तजना ] छोड़े, त्यागे। उ.—कैसैं कूल-मूल आश्रित कों तजे आपु अकुलाइ--१-१-१। तजौं - कि. स. [हि. तजना ] छोड़ दूँ, त्याग दूँ। उ.-तन दैबे तैं नाहिंन भजौं। जोग धारना करि इहिं तजौं—६-५।

तजोंगी-कि. स. स्त्री. [हिं. तजना ] छोड़्ंगी, त्याग दूंगी । उ.—प्रान तजौंगी आपनो देखि असुर सिरमौर-३५०८।

तंजींगो — कि. स. [हिं. तजना ] तज दूंगा, छोड़ दूंगा। उ.—में निज प्रान तजोंगी सुनि कपि, तजिहि जानकी सुनिकै—६-१४६।

तजौ—कि. स. [हिं. तजना ] त्याग दो, छोड़ दो। उ.—(क) तजो बिरद के मोहिं उधारो, सूर कहै किस फेंट—१-१४५। (ख) तजो मन, हिर बिमुखन को संग—१-३३२।

तज्यो—कि. स. भूत. [हिं. तजना ] त्याग [दिया, छोड़ दिया। उ.—सुतनि तज्यो, तिय तज्यो, भात तज्यो, तन तें त्यच भई न्यारी—१-११८।

तज्ञ —िव. [सं.] (१) तत्व का ज्ञाता। (२) ज्ञानी। तटंक — संज्ञा पुं. [सं. ताटंक] कर्णफूल नःमक कान का गहना। उ. —चिल चिल त्रावत स्ववने निकट त्राति सकुचि तंटक फँदा ते।

तट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तोर, किनारा, कूल। उ.— हारी जानि परी हिर मेरी। माया-जल बूड़त हों, तिक तट चरन-सरन धरि तेरी—१-२१३। (२) क्षेत्र, खेत। (३) शिव, महादेव। कि. वि.—समीप, पास, निकट।

तटका — वि. [हिं. टटका] (१) हाल का, ताजा, तत्काल का। (२) नया, कोरा।

तटकी —िव. स्त्री. [हिं, तटका ] हाल की, तुरंत की।
उ.—िनिस के उनीं दे नैन तैसे रहे टिर टिर।
किथों कहूँ प्यारी को तटकी लागी नजरि।

तटक —िक, वि. [हिं. तटका] तुरंत, शीघ्र । उ.— लीजो जोग सँभारि ऋापुनो जाहु तहीं तटके—३१०७। तटग — संज्ञा पुं. [सं.] तालाब, सरोवर, तड़ाग।

तटनी—संज्ञा स्त्री. [सं. तटिनी] नदी, सरिता।

तटस्थ—िव, [सं, ] (१) तीर या किनारे पर रहने-वाला। (२) समीप या निकट रहनेवाला। (३) म्रलग रहनेवाला।(४) जो किसी के पक्ष में न हो, उदासीन। तटस्थता—संज्ञा स्त्री. [सं. ] तटस्थ रहने या होने का कार्य या भाव, उदासीनता।

तटस्थीकरण—संज्ञा पुं. [सं. तटस्थ + करण] (१) तटस्थ करने की किया या भाव। (२) किसी वस्तु का गुण हटाकर इसके प्रभाव को नष्ट करने की किया।

तटाक—संशा पुं. [ तं. ] तालाब, सरोवर, तड़ाग ।
तटिनी—संशा स्त्री. [ सं. ] नदी, सरिता ।
तटी—संशा स्त्री. [ सं. ] (१) तीर, कूल, किनारा । (२)
नदी, सरिता । उ.—सर मुजल सीचिय कृपानिधि,
निज जन चरन-तटी—१-६८ । (३) तराई, घाटी ।
तड़—संशा पुं. [ सं. तट ] विभाग, पक्ष ।

संज्ञा पुं. [ श्रनु. ] पटकने या पीटने का शब्द । यौ.—तड़ पड़—चटपट, तुरंत, तत्काल ।

तड़क—संशा स्त्री. [हिं. तड़कना](१) तड़कने की क्रिया या भाव।(२) तड़कने या टूटने का चिह्न।(३) चटपटे पदार्थ, चाट।

तड़कना—िक. श्र. [श्रनु.] (१) तड़ शब्द के साथ टूटना। (२) सूखी चीज का फटना। (३) जोर का शब्द करना। (४) भुँभलाना, बिगड़ना। (४) उछलना-कूदना।

कि. स.—छौंकना, बघारना, तड़का देना।
तड़क-भड़क—संज्ञा स्त्री. [ ऋतु. ] ठाट-बाट।
तड़का—संज्ञा पुं. [हिं. तड़कना] (१) सबेरा। (२) छौंक।
तड़काना—कि. स. [हिं. तड़कना] (१) तड़ से तोड़ना।

(२) सुलाकर फाड़ना। (३) जोर का शब्द करना।

(४) खिजाना, ऋोध दिलाना।

तड़कीला—वि. [हिं. तड़कना + ईला (प्रत्य.)] (१) चमक भड़कवाला। (२) तड़कने, फटने या टूटनेवाला। तड़का—संज्ञा पुं. [हिं. तड़का] सबेरा, प्रातःकाल। क्रि. वि. [हिं. तड़ाका] चटपट, तुरंत। तड़तड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] तड़तड़ शब्द होना।

कि. स.—तड़तड़ शब्द उत्पन्न करना।
तड़तड़ाहट—संशा स्त्री, [अनु, ] तड़तड़ाने की किया।
तड़ता—संशा स्त्री, [सं. तड़ित] बिजली, विद्युत।
तड़प—संशा स्त्री, [हिं, तड़पना](१) तड़पने की किया

या भाव। (२) चमक-दमक।
तड़पदार—िव. [हं. तड़प+फ़ा. दार] चमकीला।
तड़पना, तड़फना—िक. छा. [अनु.] (१) कच्ट या
वेदना से छटपटाना। (२)घोर शब्द करना, गरजना।

तड़पाना, तड़फाना—कि. स. [हि. तड़पना] (१) कष्ट या वेदना से पीड़ित करना (२) घोर शब्द करने को

बाध्य करना। तङ्गक—संज्ञा पुं. [ सं. ] तालाब, सरोवर । संशा पुं, [ अनु, ] तड़ाके का शब्द । कि. वि.--(१) तड़ाक से। (२) चटपट, तुरंत। यौ.—तड़ाक-फड़ाक—चटपट, तुरंत ! तङ्का—संज्ञा पुं. [ अनु. ] तड़तड़ का शब्द । क्रि. वि.—चटपट, तुरंत, तत्काल। तंड़ाग, तंड़ागा — संशा पुं. [सं.] तालाब, सरोवर। ज,-एकबार ताकें मन आई। न्हावन-काज तड़ाग सिघाई—६-१७४। तड़ातड़—कि. वि. [ अनु. ] तड़तड़ शब्द के साथ। तङ्गाना—कि. स. [हिं. ताङ्ना का पे. ] किसी दूसरे को ताड़ने या भापने में प्रवृत्त करना। तङ्गवा—संज्ञा स्त्री. [हिं. तङ्गना = दिखाना] (१) अपरी या दिखावटी चमक-दमक। (२) धोखा, छल। तिङ्त, तिङ्ता—संशास्त्री. [सं. तिङ्त्] बिजली, विद्युत। तिङ्त-बसन--संशा पुं, [सं, तिङ्त्+वसन ] बिजली के समान उज्ज्वल या चमक-दमकवाले वस्त्र । उ,---तिकत-बसन घन-स्याम सहस तन तेज-पुंज तम कौं त्रासै---२-६६। तड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़ ] (१) चपत । (२)बहाना । तद—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) वायु । (२) विस्तार, फैलाव (३) पिता। (४) पुत्र। (४) तारवाला बाजा। वि [ सं. तप्त ] तपा हुआ, गरम। संज्ञा पूं. [ सं, तत्व ] (१) पंचतत्व । (२) सार। ततकाल - कि. वि. [सं. तत्काल ] तुरंत, उसी समय। उ.—(क) सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि, बसन-प्रवाह बढ़ायौ--१-१०६। (ख) ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उवारयौ--१-१०६। ततञ्जन—क्रि. वि. [ सं. तत्व्या ] उसी समय, तत्काल। उ.—(क) ब्रह्मा बाल बछ्छ्या हरि गयी, सो तत-छन सारिखे सँवारी-१-२८। (ख) हति गज-सत्रु सूर के स्वामी ततछन सुख उपजाए—८-६। त्तपर वि, [सं, तत्पर ] तैयार, कटिबद्ध । सत्तबाउ, ततबाउ, तत्वाय, ततुबाउ, ततुबाउ—संशा पुं, [सं, तंतुवाय ] (१) जुलाहा । (२) मकड़ी ।

ततबीर—संज्ञा स्त्री. [अ. तदबीर] युक्ति, उपाय । उ.— कोउ गई जल-पैंठि तरुनी श्रीर ठाढ़ी तीर। तिनहिं लई बोलाइ राधा करति सुख तदबीर। ततसार—संशा स्री, [सं, तप्तशाला] तपान का स्थान। तताई—संज्ञा स्त्री, [हिं. तत्ता ] ताप, गरमी। ततारना-कि. स. [हिं, तत्त ] जल-धार से धोना। तति—संशा स्त्री. [सं. ] (१) श्रेणी, पंक्ति, ताँता। (२) भुंड, समूह। (३) विस्तार, फैलाव। तिहर--संज्ञा पुं. [हिं. तत्ता + हाँड़ी ] जल गरमाने का पात्र । उ.—मोहन आउ, तुम्हें अन्हवाऊँ । जमुना तें जलभरि ले श्राऊँ,ततिहर तुरत चढ़ाऊँ-१०-१८५। ततैया-संज्ञां स्त्री.[सं,तिक्त] (१) बरं। (२) कड़ ई मिर्च। वि. [हिं. तीता ] (१) फुरतीला। (२)चालाक। तत्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्म । (२) वायु । सर्वं.—उस तत्काल-कि. वि. [ सं. ] तुरंत, उसी समय। तत्कालीन-वि. [सं.] उसी समय का (की)। तत्त्रग्-िकि. वि. [ सं. ] उसी क्षण, फौरन। तत्त—संज्ञा पुं. [सं. तत्व ] तत्व, सार । तत्ता—वि, [सं, तप्त ] जलता या तपता हुन्ना। तत्व-संज्ञा पुं. [ सं. ] (१)यथार्थता, वास्तविक स्थिति । (२) जगत के मूल कारण जो २४ माने गये हैं-- पुरुष, प्रकृति, महतत्व या बुद्धि, ग्रहंकार, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिहवा, त्वक, वाक्, पाणि, वायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पृथ्बी, जल, तेज, वायु श्रौर श्राकाश। सूरदास ने इनमें सत्, रज श्रौर तम तीनों गुणों को सम्मिलित करके २ म तत्व ... लिखे हैं। उ. कीन्हें तत्व प्रकट तेही छन सबै श्रष्ट. श्रर बीस। तिनके नाम कहत कवि सूरज निगुन., सबके ईस । पृथिवी श्रप तेज वायु नभ संज्ञा शब्द परस श्रर गंध। रस श्रर रूप श्रीर मन बुधि चित श्रहंकार मतिश्रंध। पान श्रपान व्यान उदान श्रह कहियत प्रान समान । तक्क धनंजय पुनि देवदत्त श्रर पौंड्क संख द्युमान। राजस तामस सात्विक तीनों जीव ब्रह्म सुख्धाम । श्राटठाइस तत्व यह कहियते सो कवि सूरज नाम—सारा. ७, ८, १०। (३)

पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, भ्राकाश)। उ.— जाके उदर लोक-त्रय, जल-थल, पंच तत्व चौ-खानि-४८७ (४) परमात्मा। (४) सार, सारांश। तत्वज्ञ, तत्वज्ञानी—संज्ञा पुं, [ सं, ] (१) ईश्वर या ब्रह्म को जानेवाला, ब्रह्मज्ञानी। (२)दर्शनशास्त्र का ज्ञाता। तत्वज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म, जीव और आत्मा का ज्ञान जिससे मनुष्य की मुक्ति हो जाय। तत्वविद्, तत्ववेत्ता—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) ईश्वर या ब्रह्म का ज्ञान रखनेवाला। (२) दार्शनिक। तत्वावधान—संशा पुं, [सं, ] निरीक्षण, देखभाल। तत्त्वावधानक—संज्ञा पुं. [सं. ] निरीक्षक । तत्थ—वि. [ सं. तत्व ] मुख्य, प्रधान । संज्ञा पुं. - शक्ति, बल, सामर्थ्य । तत्पद्—संशा पुं. [ सं. ] परमपद, निर्वाण, मोक्ष । तत्पर—िव. [ सं. ] (१) तैयार, मुस्तैद । (२) चतुर । तत्परता—िव. [ सं. ] (१) मुस्तैदी । (२) चतुरता । तत्पुरुष—संशा पुं. [सं.] (१) ईश्वर। (२) समास का एक भेद। (३) एक रुद्र का नाम। तत्र—कि, वि. [ सं. ] उस जगह, वहां। तत्रभवान—वि. [ सं. ] माननीय, पूज्य, श्रेष्ठ। तत्रापि---श्रव्य. [सं. ] तथापि, तो भी। तत्सम संज्ञा पुँ. [सं. ] (१) संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार हिंदी में उसके शुद्ध रूप में हो। (२) शब्द का शुद्ध या मूल रूप। तथा—अव्य. [सं.] (१) श्रौर। (२) उसी तरह, ऐसे या वसे हो। उ.—(क) कहथी, कहीं इक नुप की कथा। उन जो कियो, करौ तुम तथा—४-१२। (ख) बहुरि कही अपनी सब कथा। हरि जो कहा, कह्यी पुनि तथा-६-५। यौ.—तथास्तु—ऐसा ही हो। संज्ञा पुं. — (१) सत्य । (२) सीमा (३) समानता । संज्ञा स्त्री, - शक्ति, सामर्थ्य, क्षमता । तथागत-संज्ञा पुं. [ सं. ] गौतम बुद्ध का एक नाम।

तथापि-श्रव्य. [सं.] तो भी, तिस पर भी, तब भी।

तथ्य-संज्ञा पं. [सं.] (१) सच्चाई, यथार्थता। (२)

तथैव — अञ्य [ सं. ] वैसा ही, उसी प्रकार।

सत्य घटना। (३) वह बात जिसका ज्ञान विशेष श्रवस्था या स्थिति में हुग्रा हो। तथ्यभाषी, तथ्यवादी—वि. [सं. तथ्य+हिं, भाषी, वादी] साफ भ्रौर सच्ची बात कहनेवाला। तदंतर—कि. वि. [ सं. ] इसके बाद या उपरांत। तद्नंतर-कि, वि, [सं, ] उसके बाद या उपरांत। तद्नु-कि. वि. [सं.] (१) उसके बाद। (२) उसी तरह। तदनुरूप--वि. [ सं. ] उसी के रूप रंग का । तदनुसार—वि. [ सं. ] उसी के भ्रनुसार। तद्पि—श्रव्य. [ सं. ] तो भी, तिस पर भी, तथापि। उ.—तदिप सूर मैं भक्त बछल हों, भक्ति हाथ बिकानौ---१-२४३। तद्बीर--संज्ञा स्त्री. श्रि. ] युक्ति, उपाय, तरकीब। तदा-कि वि. सं. उस समय, तब। तदाकार-वि. [सं. ] (१) वैसा हो। (२) लवलीन। तद्पि—सर्व. [सं.] उसका, उससे संबंधित। तदुपरांत-कि. वि. [ सं. ] उसके पीछे या बाद। तद्गत-वि. [सं. ] (१) उससे संबंधित। (२) उसमें व्याप्त । तद्गुण—संज्ञा पूं. [सं.] एक अर्थालंकार जिसमें एक वस्तु का अपना गुण त्यागकर समीपवर्ती श्रेष्ठ वस्तु का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित हो। तद्धित-संशा पूं. [ सं. ] (१) एक प्रत्यय जिसे संज्ञा के श्रंत में लगाकर नया शब्द बनाते हैं। (२) इस प्रत्यय के लगते से बतनेवाला नया शब्द । तद्भव-संज्ञा पूं. [सं.] तत्सम शब्द का विकृत, परि-वर्तित या ग्रपभंश रूप्। तद्यपि—श्रव्य. [सं. ] तथापि, तो भी। तद्र प-वि. [ सं. ] समान, वैसा ही, सदृश। तद्रूपता—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] सादृश्य, समानता । उ.— जानि जुग जूप मैं भूप तद्रपता बहुरि करिहें कलुष भूमि भारी-१० उ. ५०। तद्वत-वि. [सं.] उसके समान, ज्यों का त्यों। तधी-कि, वि. [सं. तदा ] तभी। तन—संज्ञा पुं. [सं. तनु ] (१) शरीर, गात। उ.— (क) लाज के साज में हुती ज्यों द्रौपदी, बढ़्यी

तन-चीर निहं अन्त पायौ—१-५। (ख) अब हीं देखे नवल किसोर। घर आवत ही तनक भये हैं ऐसे तन के चोर—१३६४। (२) योनि। उ.—काहू के कुल तन न बिचारत। अबिगत की गति कहि न परित है, ब्याध-अजामिल तारत—१-१२। यौ.— तन ताप—(१) शारीरिक कष्ट। (२)

यौ. — तन ताप—(१) शारीरिक कटा।(२) भूख, क्षुघा।

कि. वि.—तरफ, श्रोर। उ.—(क) तिज कुल-लाज सूर के प्रभु के मुख-तन फिरि फिरि चितवत— ७३०। (ख) सुनत टाढ़ो भयो हाँक तिनकों दयो दनुज कुल-दहन ता तन निहारे—२६११। (ग) मधुबन तन ते श्रावत सखी री देखहु नैन निहारि —३०५१।

तनक—वि. [हिं. तिनक] (१) थोड़ा, कम। उ.— कब घों तनक तनक कछु खेहै, अपने कर सों मुखिंहं भरें—१०-७६। (२) छोटा। उ.—(क) तनक तनक सी दूध-दँतुलिया, देखों, नैन सफल करों आइ—१०-८२। (ख) अब ही देखे नवल किसोर। घर आवत ही तनक भये हैं ऐसे तन के चोर-१३६४। तनकि—कि. अ. [हिं. तिनकना] कठकर, खोजकर। उ.—तनक सी बात कहै, तनक तनकि रहे, तनक सो रीभि रहे तनक से साधन—१०-१५०। तनकीह—संशा स्त्री. [अ.] जांच, खोज।

तनखाह—संज्ञा स्त्री. [फा, तनख़्वाह] वेतन।
तनगना—कि. त्र्रा. [हिं. तिनकना] चिढ़ना, भल्लाना।
तनगि—कि. त्र्रा. [हिं. तिनकना] भल्लाकर, भुंभला-कर। उ.—सुनहु सूर पुनि तो कहि ग्रावै तनगिग्ये ता पास।

तन-चीर—संशा पुं. [सं. तनु + चीर ] शरीर का वस्त्र, धोती, साड़ी। उ.—लाज के साज में हुती ज्यों द्रोपदी, बढ़ियों तन-चीर निहं श्रांत पायों—१-५। तनज्जुली—संशा स्त्री. [फा.] श्रवनित। तनत—कि. स. [हिं. तानना ] तानती है।

मुहा,—भौह तनत—गुस्सा दिखाती है। उ.— बार-बार बुक्ताइ हारी भौह मो पर तनत-पृ० ३२६। तनतना—संज्ञा पुं. [हिं, तनतनाना] (१) रोबदाब, दबदबा। (२) क्रोध, गुस्सा।

तनतनाना—कि, अ. [हिं. तनना या श्रनु.] (१) रोब या शान दिखाना। (२) क्रोध या गुस्सा दिखाना। तनत्रागा—संशा पुं. [सं. तनुत्रागा] (१) वह चीज जो शरीर की रक्षा करे। (२) कवच।

तनधर—संज्ञा पुं. [सं. तनधारी ] शरीरधारी। तनना—क्रि. श्र. [सं. तन या तनु ] (१) खिचना।

(२) कस जाना। (३) श्राकिषत था प्रवृत्त होना।

(४) ऐंठना, कष्ट होना।

तनमय—वि. [सं. तन्मय] लीन, लवलीन, मग्न । उ.— (क) अपनो अपनो भाग सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे। (ख) कबहूँ कहित कौन हिर को मैं तौं तनमय हुँ जाहीं।

तनमात्रा—संश स्त्री, [सं, तन्मात्रा] पंचभूतों का श्रादि रूप।

तनय—संशा पुं. [सं.] पुत्र, बेटा।
तनया—संशा स्त्री. [सं.] बेटी, पुत्री।
तनराग—संशा पुं. [सं. तनुराग] सुगंधित उबटन।
तनरह—संशा पुं. [सं. तन्रह] (१) रोम, लोम, रोग्रां।

(२) पक्षियों का पर या पंख। (३) पुत्र।
तनवाना—क्रि.स. [हिं. तानना का प्रे.] तामने में लगाना।
तनसुख—संशा पुं. [हिं. तन + सुख] एक बढ़िया कपड़ा।
तनहा—िव. [फ़ा.] प्रकेला, एकाकी।
तनहाई—संशा स्त्री. [फा.] (१) प्रकेला होने की दशा

या भाव। (२) एकांत स्थान।

तना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वृक्ष का निचला मोटा भाग। कि. वि. [हिं. तन] भ्रोर, तरफ।

तनाई—संशा स्त्री. [हिं. तनना] तनने का भाव, तनाव। तनाउ, तनाऊ—संशा पुं. [हिं. तनना] तनने का भाव। तनाकु—क्रि. वि. [हिं. तनिक] जरा, दुक।

तनाजा—संज्ञा पुं. [श्रा. तनाज़ा](१) भगड़ा।(२) शत्रुता। तनाना—िक्र. स. [हिं. तानना] दूसरे को तानने में

प्रवृत्त करना या लगाना।
तनायी—कि. स. भूत. [हिं. तनाया (पे.)] तनाया,
(छत्र श्रादि) फेलाया। उ.—देखि रे, वह सार्गघर श्रायो। सागर-तीर भीर बानर की, सिर पर

छत्र तनायौ — १-१२५। तनाव—संशा पुं, [हिं. तनना ] (१) तनने की श्रिया या भाव। (२) रज्जु, रस्सी। संशा पूं. [हिं. तनना ] रूठने या बुरा मानने का भाव। तिन, तिनक, तिनकौ-कि. वि. [सं. तनु = ग्रल्प, हिं. तिनक ] जरा भी, दुक । उ. — भूख प्यास ताकों नहिं ब्यापै। सुख दुख तिनकौ तिहिं न सँतापै---३-१३। वि.—(१) थोड़ा, कम। (२) छोटा। उ.—इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नुप श्राइ छरथी। तनियाँ—संशा स्त्री. [हिं. तनी ] (१) कछनी, जाँधिया। उ.—कनक-रतन-मनि-जटित-रचित कटि-किंकिनि क्रनित पीत-पट तनियाँ—१०-१०६। (२) लॅगोट, कौपीन। (३) चोली। तनिष्ठ-वि. [सं. ] दुबला-पतला, कमजोर। तनी—संशा स्त्री. [सं. तनिका, हिं. तानना ] (१) ग्रॅगरले या चोली का बंद जो उस वस्त्र का पल्ला तानकर बाँधने के काम आता है। उ.—(क) सिर स्वेत पट कटि नील लहँगा लाल चोली बिन तनी — १० उ. २४। (ख) कंचुिक ते कुचकलस प्रगटहाँ टूटि न तरक तनी--१० उ. १२२। (२) बंधन, डोरी, फंदा । उ.—श्रानँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी—१-३६। संज्ञा स्त्री. [हिं. तिनया ] (१) लॅगोट, कौपीन। (२) कछनी, जाँधिया। (३) चोली। कि, वि, [हिं, तिनक] जरा, दुक, तिनक। वि.—(१) थोड़ा, कम। (२) छोटा। कि. श्र. [हिं. तनना ] ग्रप्रसन्त हुई, रूठी। तनु—संशास्त्री. [सं.] (१) शरीर, देह। उ,—(क) छैलिन के संग यों फिरे, जैसें तनु सँग छाई (हो)— १-४४। (ख) निरिष पतंग बान निहं छाँडत जदिप जोति तनु तावत-१-२१०। (ग) सूरदास श्रक्र कृपा तें सही बिपति तनु गाढ़ी---२५३५। (२) चमड़ा, खाल। (३)स्त्री, श्रौरत। (४) केंचुली। वि.—[सं.] (१) दुबला-पतला । (२) थोड़ा, कम। (३) कोमल, नाजुक। (४) सुंदर।

तनुक-वि. [हिं, तिनक] (१) थोड़ा। (२) छोटा। कि. वि. जरा, टुक, तनिक। संशा पुं. — (१) शरीर। (२) चमड़ा। (३) केंचुल। तनुज—संशा पुं. [ सं. ] पुत्र, बेटा । तनुजा—संज्ञा स्त्री, [ सं. ] पुत्री, बेंटी । तनुता—संज्ञा स्त्री, [ सं. ] (१) छोटाई। (२) दुर्बलता। तनुधारी—वि. [ सं. ] शरीर या देहधारी। तनुभव—संशा पुं. [ सं. ] पुत्र, बेटा । तनुराग संज्ञा पं. [ सं. ] सुगंधित उब्रटन । तनुरुह - संशा पुं. [ सं. ] रोम, लोम, रोग्राँ। तनू — संशा पुं. [ सं. ] (१) पुत्र। (२) शरीर। तनूज—संशा पुं. [ सं. तनु ज ] पुत्र, बेटा। तनूजा—संशा स्त्री. [ सं. तनुजा ] पुत्री, बेटी। तनूरुह—संशा पुं. [ सं. ] (१) रोम, रोग्रां, लोम। (२) पक्षियों का पंख या पर (३) पुत्र, बेटा। तनेना, तनैना—वि. [हिं. तनना+एना(प्रत्य.)](१) विचा हुआ, टेढ़ा, तिरछा। (२) ऋद्ध, ग्रप्रसन्त। तनेनी, तनैनी—वि. स्त्री. [तनेना] (१) टेढ़ी, तिरछी खिची हुई। (२) भ्रप्रसन्न, रूठी हुई, तनी हुई। तने — संशा पुं. [ सं. तनय ] पुत्र, बेटा । तनैया-संशा स्त्री. [ सं. तनया ] पुत्री, बेटी । तनोज - संशा पुं. [ सं. तन्ज ] (१) रोग्नां। (२) पुत्र। तनोरुह—संशा पुं. [तनूरुह ] (१) रोग्ना । (२) पुत्र । तन्नाना - क्रि. श्र. [हिं. तनना ] ऐंठना, बिगड़ना। तन्मय—वि. [सं.] लीन, लवलीन, लिप्त। उ.— स्रदास गोपी तनु तजिकै तन्मय भई नँदलाल सौं-८०४। तन्मयता—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] लिप्तता, लीनता, लगन। तन्मयासक्ति—संज्ञास्त्री. [सं.] भक्ति में अपने को भूलकर स्वयं को भगवान समभना। तन्मात्र, तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री, [सं. तन्मात्र ] पंचभूतों का ग्रादि, ग्रमिश्र ग्रौर सूक्ष्म रूप, रस ग्रौर गंध। उ.—रजगुन तें इंद्रिय बिस्तारी। तमगुन तें तन्माचा सारी--३-१३। तन्वि, तन्वी—वि. [ सं. तन्वी ] कोमल अंगवाली।

तप-संशा पुं. [सं. तपस् ] (१) चित्त-शुद्धि सथवा

मानसिक निग्रह के उद्देश्य से किये गये कत ग्रथवा नियम, तपस्या। उ.—सुरपित बिस्वरूप पे जाइ। दोउ कर जोरि कहयो सिर नाइ। कृपा करो मम प्रोहित होहु। कियो बृहस्पित मो पर कोहु। कहयो, पुरोहित होत न भलो। बिनसि जात तेज-तप सकलो —६-५। (२) मन, वचन ग्रादि को वश में रखने का धर्म। (३) ग्राग्न।

संशा पुं.—(१) गरमी, ताप। (२) ग्रीष्म ऋतु। (३) ज्वर, हरारत।

तपकना—कि. श्र. [हिं. टपकना ] धड़कना, उछलना। तपड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] छोटा टीला, दूह। तपत—वि. [हिं. तप्त ] तपता या जलता हुश्रा।

क्रि, श्र, [हिं, तपना] कष्ट सहता है। उ,— सूर स्थाम बिनु तपत रैनि दिन मिले भलेहिं सचु-पावहि—३४२७।

तपित—संज्ञा पुं. [सं. तपन ] (१) ताप, जलन, दाह। उ.—(क) गिह बहियाँ हों लेके जहाँ, नैनिन तपित बुक्तान दे—१०-२७४। (ख) लोचन तृप्त भए दर-सन तें, उर की तपित बुक्तानी—७७८। (२) ताप, गरमी। उ.—धन्य ब्रत इन कियो पूरन, सीत तपित निवारि—७८३।

वि.—तप्त, तपे हुए। उ.—नैन सिथिल, सीतल नासापुट, ऋंग तपति, कळु सुधि न रहाई—७४८।

कि, त्र्र.—(१) तपती है। (२) कष्ट सहती है। तपन—संज्ञा पुं. [सं.](१) ताप, जलन, दाह। (२) सूर्य। (३) ग्रीष्म, गरमी। (४) एक ग्रीग्न। संज्ञा स्त्री. [हं. तपना] तपने का भाव।

मुहा, -- तपन का महीना -- गरमी की ऋतु।

तपना—कि. श्र. [ सं. तपन ] (१) खूब गरम होना।
(२) कष्ट सहना, मुसीबत भेलना। (३) तेज या
गरमी फैलाना। (४) प्रताप या श्रातंक दिखाना।
(४) तप-तपस्या करना।

तपनि—संज्ञा पुं. [सं. तपन ] ताप, जलन, दाह। उ.— को जाने हरि की चतुराई। नैन-सैन संभाषन कीन्ही, व्यारी की उर-तपनि मिटाई—७०१।

तपनी—संशास्त्री, [हिं, तपना ] (१) स्राग तापने का

स्थान, कौंड़ा, अलाव। (२) तप, तपस्या। उ.— मेरो कह्यो करि मान हृदय धरि, छौंड़ि दे अति तपनी—१६६२।

तपभूमि— संज्ञा स्त्री, [सं. तपंभिभूमि] तप करने का स्थान।
तपराशि— संज्ञा पुं. [सं. तपोराशि ] बड़ा तपस्वी।
तपलोक— संज्ञा पुं. [सं. तपोलोक ] एक लोक जहां
अपने कठिन तप से भगवान को प्रसन्न करनेवाले
लोग भजे जाते हैं। यह लोक जनलोक और सत्यलोक
के बीच में स्थित माना गया है। उ.— सत्यलोक
जनलोक, तपलोक और महर निज लोक। जहें
राज्ञत ध्रुवराज महानिधि निसि दिन रहत असोक—
सारा. २२।

तपवाना—िक, स. [हिं, तपाना ] गरम कराना। तपवृद्ध—िव. [सं. तपोवृद्ध ] तपित्वयों में श्रेष्ठ। तपश्चरण—संज्ञा पुं. [सं. ] तप, तपस्या। तपश्चरण—संज्ञा स्त्री. [सं. तपश्चर्या ] तपस्या। तपस्या। तपस्या—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) सूर्य। (२) चंद्र।

संशा स्त्री. [सं. तपन ] ताप, तपन।
तपसा—संशा स्त्री. [सं. तपस्या ] तप, तपस्या।
तपसाली—संशा पुं. [सं. तप:शालिन् ] तपस्वी।
तपसियनि—संशा पुं. बहु. [सं. तपस्वी] तपस्वियों।
उ.—तपसियनि देखि कहथी, क्रोध इनमें बहुत,
शानियनि मैं न आ्राचार पेखों—८-८।

तपसी—संशा पुं, [सं, तपस्वी] तपस्या करनेवाला, तपस्वी। उ.—(क) बहुतक तपसी पिच पिच मुए। पै तिन हरि-दरसन निह हुए—४-६। (ख) तपसी तुमकों तप करि पावें। सुनि भागवत गृही गुन गावें। (ग) तीनि लोक सें पकरि मँगाऊँ वै तपसी दोड भाई—६-१४०।

तपस्या—संज्ञा स्त्री [ सं. ] तप, व्रतचर्या। तपस्विता—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] तपस्वी होने का भाव, स्थिति या श्रवस्था।

तपस्विनी—संशास्त्री. [सं. (१) तप करनेवाली। (२) तपस्वी की स्त्री। (३) सती। (४) दीन स्त्री। तपस्वी—संशा पुं. [सं. तपस्विन् तप करनेवाला। तपा—संशा पुं. [हं, तप तपस्वी।

वि.—तप या तपस्या में लीन। तपाक—संशाप्, पा.] (१) जोश। (२) तेजी। तपाकर—संज्ञा पु. सं. तप+श्राकर = खान] (१) सूर्य। ...(२) बहुत बड़ा तपस्वी। तपानल-संज्ञा पुं. [सं. तप+श्रनल ] तप के कारण ः उत्पन्न तेज या प्रताप । तपाना कि. स. [हि. तपना] (१) बहुत गरम करना। (२) कष्ट या दुख देना। (३) चिढ़ाना। तपावंत - संज्ञा पुं. [हि तप+तंत ] तपस्वी। तपाव—संज्ञा पं. [हि. तपना+त्राव ] ताप, तपन। तिपत-वि. [ सं. तप्त ] तपा हुम्रा, गरम । तिपया—संज्ञा पुं. [सं, तपस्वी ] तपस्वी । तिपश-संज्ञास्त्रः [फा.] गरमी, श्राँच, ताव। तपी— संशा पं. [हि. तप+ई (पत्य.)] (१) तप करने-बाला तपस्वी। (२ सूर्य। तपु—संज्ञा पं [सं. तपुम्] (१) आग। (२) सूर्य। ্ (३) হাসু। वि.— (१) तपा हुग्रा, तप्त । (२) तपानेवाला । सपेदिक—संशा पं. [फा. तप+अ. दिक] क्षयी रोग। तपै—कि. श्र. [हि. तपना ] तपती है, जलती है। उ,—माधो चलन वहत मधुबन को सुने तपै अति छ ती- २४६६। त्रवोधन - संशा पुं. [ सं, ] (१) तपस्वी। (२) तप। तबला-संगा पुं. [ आ. तबल: ] ताल देने का चमड़ा तपोनिधि, तपोनिष्ट—संशा पुं. [ सं. ] तपस्वी । तपोबन—संभा पुं. [ सं. तपोवन ] तपस्वयों का स्थान। तपोबल-सज्ञ पुं. [ सं. ] तप का प्रभाव। तपोभूमि—संज्ञास्त्रः. [सं.] तप का स्थान। तपोमय—संज्ञा पुं. [ स. ] परमेश्वर । तपोमूर्ति—संज्ञा पु. [सं.] (१) परमेश्वर। (२) तपस्वी। तपोराशि—संज्ञा पं. [ सं. ] बहुत बड़ा तपस्वी। तपोलोक—संज्ञा पं. [ सं. ] जनलोक श्रौर सत्यलोक के तबाह—िन. [ फ़ा. ] नष्ट, बरबाद, चौपट। बीच एक लोक जहाँ कठिन तपस्या से भगवान को संतुष्ठ करनेवाले लोग जाते हैं। तपोवन-सज्ञा पुं. [ सं. ] तपस्वियों का स्थान। तपोवृद्ध—वि. [स.] तपस्वयो में श्रेष्ठ । तपौना संशा छा [ हिं तपनी ] तप, तपस्या ।

तप्त-वि. [सं. ] (१) जलता हुग्रा, तापित, गरम, उष्ण। उ.—(क) जनु सातल सौ तप्त सिल्ल दे साखत समोइ करे— ६-१७१। (ख) भूलिहु जिनि स्रावहिं यहि गोकुल तप्त रान भी चंद - ३४२०। (२) ु दुखित, पीड़ित । तप्तमुद्रा संज्ञास्त्रो. [सं.] द्वारका के शंख-चक ग्रादि के छापे जिन्हें वैष्णव लोग धार्मिक चिन्ह-रूप में भुजा श्रादि श्रंगों में दाग लेते हैं। तप्प संज्ञा पुं. [हिं. तप] तपस्या। तप्य-वि. [स.] जो तपने या नपाने योग्य हो। तफरी, तफरे ह — संज्ञा स्त्रा. [ त्रा. तफरो: ] (१ खुक्ती, प्रसन्नता ।(२) मनब्हलाव।(३) संर। (४) ताजापन। तफसील संशा स्त्री. [ त्रा. तफ़सील ] (१) विस्तृत विवरण। (२) टीका। (३) सूची। (४ इयोरा। तब—श्रव्य. [सं. तदा] (१) उस समय। (२) इस कारण। तद्दील-वि. [ ग्र. ] बदला हुग्रा, परिवर्तित। तबदीली - संज्ञा स्त्री. [ ग्रा. ] बदली, परिवर्तन । तबर—संज्ञा पूं, [फा.](१) कुल्हाड़ी।(२) कुल्हाड़ी की तरह का एक हथियार। तबल-संशा पुं. [ फ्रा. ] छोल, नगाड़ा, डंका। तबलची—संशा पुं. [ अ. तबल: + ची (प्रत्य.)] तबला बजानेवाला, तबलिया। मढ़ा एक बाजा। मुहा. तबला खनकना (ठनकना) (१ तबला बजना। (२) नाच-रंग होना। तबलिया - संज्ञा पं. [हिं. तबला + इया ] तबलची। तबादला संशा पुं. [अ.] (१) चीओं का बदला जाना। (२) कर्मचारी का एक स्थान से दूसरे को भेजा जाना । तबाही—संशा स्त्रा. [फ़ा.] नाश, बरबादी। त्राब्यत, तबीश्रत—संशास्त्रा । य्र तबायत ] (१) मन, चित्त, जी। मुहा,—तिबयत श्राना—(१) प्रेम होना । (२)

पाने की इच्छा होना । तिबयत उछलना-जी

घवराना । तिबयत फड़कना (फड़क उठना) -- (१) जी मैं उमंग और उत्साह होना। (२) जी खुश होना । तिबयत फिरना—जी हस्ता । तिबयत भरना—(१) संतोष होना। (२) संतोष करना। (३) इच्छा या उमंग न रहना। तिबयत लगना--(१) जी में इच्छा या उमंग पैदा होना, प्रेम होना। (२) ध्यान बना रहना । तिबयत लगाना— (१) मन को किसी काम में लगाना । (२) प्रेम करना। तिबयत होना-जी चाहना, इच्छा होना। (२) बुद्धि, समभ, भाव। मुहा.—तिवयत पर जोर डालना (लड़ाना)— विशेष ध्यान देना, मन लगाना । तिबयतदार—वि. [ अ. तिबयत + फा. दार ] (१) समभदार, बुद्धिमान । (२) रसिक, भावुक । तबे - अव्य सिव [ सं तदा, हिं. तब ] उस समय ही, उसी वक्त । उ.—उचित श्रपनी कृपा करिही, तबै तौ बनि जाइ-१-१२६। तभी—अव्य. [हिं. तब + ही ] (१) उसी समय, उसी घड़ी। (२) इसी कारण, इसी वजह से। तमंचा-संशा पुं. [ फ़ा. ] छोटी बंदूक, पिस्तौल। तम—संज्ञा पुं. [सं, तमः, तमस् ] (१) श्रंधकार, श्रंधेरा। (२) तमाल वृक्ष । (३) राहु । (४) पाप । (४) कोध। (६) प्रज्ञान। (७) कालिख। (८) नरक। (६) मोह। (१०) अविद्या। (११) प्रकृति का एक गुण जिसकी श्रधिकता होने पर काम, क्रोध, हिंसा श्रादि बातों में प्राणी श्रधिक रुचि लेने लगता है। तमक—संज्ञा स्त्री, [ हिं. तमकना ] (१) जोश, श्रावेश। (२) तेजी, तीवता। (३) कोध, गुस्सा। तमकना—कि. अ. [ अनु. ] (१) क्रोध या आवेश में ग्राना। (२) कोध से लाल होना। (३) चमकना। तमकि-कि. श्र. [हिं. तमकना ] क्रोध या श्रावेश में भरकर। उ,—देखि नुप तमिक हरि चमिक तहाँई गये, दमिक लीन्हों गिरह बाज जैसे—२६१५। तमके-- कि. अ. [हिं, तमकना] क्रोध में भर गये। उ, सरदास यह सुनि घत तमके - १०४६।

तमगा — संशा पूं, [तु. तमगा ] पवक । तमग्न - संजा पं. [ सं. तमोगुण ] 'तम' नामक प्रकृति का गुण जिससे काम, कांध, हिंसा स्रादि बढ़ जाते हैं। तमच्र, तमचोर-संज्ञा पं. [सं. तामचूइ] मुरगा, कुक्कूट। उ. - (क) आज भीर तमचुर के रोल। गोकुल मैं श्रानंद होत है. मंगल-धुनि महराने टोल--१०-६४। (ख) जागियै, ब्रजराज कुँवर, कमल-कुसुम फूले। " । तमचुर खग-रोर सुनहु, बोलत वन-राइ-१०.२०२। (ग) श्रहन गगन, तमचुरनि पुकारथौ--१०-२३३। तमतमाना-कि. त्र. [सं. ताम्र] (१) धूप या कोध से चेहरा लाल होना। (२) चमकना। तमतमाहट—संशा स्त्री. [हिं. तमतमाना ] (१) भूप या कोघ से चेहरा लाल होने का भाव। (२) चमकने का भाव। तमता—संज्ञास्त्री. [सं.] (१) तम का भाव। (२) श्रॅंधेरा। (३) कालिमा। उ-—बोले तमचुर चारों यामको गजर मारघो पोन भयो सीतल तम तम्ता गई--१६०८। तमन्ना - संशास्त्री. [ श्र. ] कामना, इच्छा । तमयी—संज्ञा स्त्री. सं. तम+मयी ] रात । तमर—संज्ञा पुं. [सं. तम] ग्राधरा, ग्राधकार। तमस--संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) श्रॅंधकार । (२) श्रज्ञान का श्रंघकार । (३)पाप । (४)कूप,कुश्राँ । (४)तमसा नदी । तमसा--संश स्त्री. [ सं. ] एक प्रसिद्ध नदी। तमस्वनी, तमस्विनी—संज्ञा क्री [सं.] रातः।

तमस्वनी, तमस्विनी—संश स्त्री [सं.] रातः।
तमस्वी—वि. [सं. तमस्विन्] श्रंधकारपूर्णः।
तमहर—संशा पुं. [सं. तमोहर ] (१) चंद्रमा। (२)
सूर्यः। (३) श्रान्ति, श्रागः। (४) ज्ञातः।
तमहाया—वि. [सं. तम+हाया (प्रत्यः)] (१)
श्रंधकार से युक्तः। (२) तमोगुण युक्तः।
तमा—संशा पुं [सं तमाः, तमस्] राहुः।
संशा स्त्रीः,—रात, रात्रिः।
संशा स्त्रीः, [श्रः, तमश्र](१) लोगः। (२) इच्छाः।
तमाइ, तमाई—संशा स्त्रीः, [हिं. तम] श्रंधकार, कालिमाः।
संशा स्त्रीः, श्रिः, तमश्र] (१) लालचः। (२) चाहः।

तमाक्र, तमाख्—संज्ञा पुं. [पुर्त. टबैको ] एक पौधा जिसके पत्ते विषावत श्रीर नशीले होते हैं।

तमाचा—संज्ञा पुं. [फा. तवान्च:] थप्पड़ ।

तमाचारी— संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस, निश्चिर ।

तमाम—वि. [अ.] (१) कुल, सारा। (२) समाप्त ।

मुहा.—(काम) तमाम होना—समाप्त होना,

मर जाना।

तमारि संज्ञा पुं. [हिं. तम+न्त्रारे ] सूर्य, रिव ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. तँवार ] सिर का चक्कर, घुमटा ।
तमाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पौधा जिसके पत्ते गहरे हरे
श्रीर फूल लाल रंग के होते हैं । उ.—सुरसरी कैं
तीर मानी लता स्थाम तमाल–१-३०७ । (२) तिलक
का पेड़ । (३) एक तरह की तलवार ।

तमाशागीर, तमाशबीन—संज्ञा पुं. [ त्र्य. तमाशा:+फा. ग़ीर, बीन] (१) तमाशा देखनेवाला। (२) विलासी। तमाशा, तमासा, तमासी—संज्ञा पुं. [ त्र्य. तमाशा] त्रम्भत व्यापार, मनोरंजक दृश्य या खेल, प्रनोखी बात। उ.—मैया बहुत बुरी दलदाऊ। कहन लग्यी बन बड़ी तमासी, सब मीड़ा मिलि त्र्याऊ—४८१। तमाशाई—संज्ञा पुं. [ त्र्य.] तमाशा देखनेवाला।

तमाशाई—संज्ञा पुं, [ श्र. ] तमाञ्चा देखनेवाला ।
तमि—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) रात । (२) मोह, ममता ।
तमिनाथ—संज्ञा पुं. [ सं. ] चंद्रमा ।
तमिस्र—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) ग्रंधकार । (२) क्रोध ।
तमिस्रा—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] ग्रँधेरी रात ।
तमी—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] रात, रात्रि ।
तमीचर—संज्ञा पुं. [ सं. ] निञ्चाचर, राक्षस ।
तमीज—संज्ञा स्त्री. [ श्र. तमीज़ ] (१) विवक, बुद्धि ।

(२) जानकारी, परिचय। (३) ग्रदब, कायदा।
तमीपति—संज्ञा पुं. [सं. तमी + पित ] चंद्रमा।
तमीश—संज्ञा पुं. [सं. तमी+ईश ] चंद्रमा।
तमु—संज्ञा पुं. [सं. तम ] ग्रंधकार, तम।
तमूरा—संज्ञा पुं. [हिं. तंजूरा ] तानपूरा नामक बाजा।
तमूल—संज्ञा पुं. [सं. तांजूल ] पान।
तम्ले—संज्ञा पुं. [सं. तांजूल ] पान।
तमोध—बि. [सं. तम+श्रंध] (१) ग्रज्ञानी। (२) कोशी।
तमोगुरा, तमोगुन—संज्ञा पुं, [सं. तमस्] प्रकृति का
'तम' नामक गुण जिसकी श्राधकता होने पर प्राणी

कोधी, कामी, हिंसक प्रादि हो जाता है।
तमोगुणी, तमोगुनी—वि. [सं. तमोगुणी] प्रधमे
वृत्तिवाला, तामस प्रकृति का। उ.—तमोगुनी चाहै
या भाइ। मम बेरी क्यों हूँ मिर जाइ
तमोगुनी रिषु मिरबी चाहै—३-१३।

तमोहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राग्नि। (२) चंद्रमा। (३) सूर्य। (४) विष्णु। (४) ज्ञान। (६) दीपक। वि.—जिससे श्रंधकार का नाश हो।

तमोमय—वि. [सं.] (१) जिसमें तमोगुण की अधिकता हो। (२) श्रज्ञानी। (३) क्रोधी। संज्ञा पं. [सं.] राहु।

तमोर—संज्ञा पुं. [सं. तांबूल ] पान, पान का बीड़ा।

उ.—(क) धार तमोर दूब दिध रोचन हरिष जसोदा
लाई। (ख) कंचन धार दूब दिध रोचन सिज
तमोर ले आई—१००१। (ग) अंजन अधर ललाट
महाउर, नैन तमोर खवाए—१६७३। (ध) सोभित पीत
बसन दोड राते अधरन अंजन नैन तमोर—२०३१।

तमोरि—संज्ञा पं. [सं.] सूर्य।
तमोरी—संज्ञा पं. [हं. तँबोली ] पान येचनेवाला।
तमोल—संज्ञा पं. [सं. तांबूल, हिं. तंबोल ] पान, पान
का बीड़ा। उ.—(क) गोकुल में श्रांनद होत है,
मंगल-धुनि महराने टोल। फूले फिरत नंद श्रांत
सुख भयी, हरिष मँगावत फूल-तमोल—१०-६४।
(ख) तब तमोल रिच तुमहिं खवावौं। सूरदास
पनवारी पावौं—१०-२११। (ग) तज्यो तेल तमोल
भूषन श्रंग वसन मलीन—३४५१।

तमोलन, तमोलनि, तमोलिन—संज्ञा स्त्री. [ हिं. तबोलिन ] तँबोली की स्त्री। उ.—तमोलिन हैं जाउँ निरित नेनन सुख देउँ—१७६१।

तमोली—संज्ञा पुं [हि. तँबोली ] पान बेचनेवाला। तमोहर, तमोहरि-—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) सूर्य। (३) ग्रग्नि, ग्राग। (४) ज्ञान।

वि,—(१) ग्रंधकार दूर करनेवाला। (२) ग्रज्ञान दूर करनेवाला। (३) मोह दूर करनेवाला। स्थ—वि, [ग्र्य.] (१) समाप्त। (२) निश्चित।

(३) निर्णीत।

नयना -- कि. अ. सं. तपन (१) तपना, बहुत गरम होनः। (२) दुखी या पीड़ित होना। तयार—ित्र [हि. तेपार] १) ठीक। (२) त्रस्तुत।

(३ उद्यत, मुस्तंद । १४, मोटा-ताजा। तयारी—संग स्रो, [हिं, तैयारी ] (१) ठीक होने का भाव। (॰) तत्परता। (३) मोटाई। (४) धूमधाम। ः ५: सजावह ।

तयों - कि. ग्र. भूत. [हिं, तयना ] संतप्त हुन्ना, दुली हुग्रा, पीड़ित हुन्ना। उ.— (क) भरत मोह वस ताकें भयौ । सब दिन बिरह-ग्रामिन श्रांत तयौ-प्-३। (ख) पे इंद्रहि संतोष न भयो। ब्राह्मन-हत्या कें चुख तयौ-६-५। (ग) ताके बिरह नुपति बहु तयौ। नगन पगन ता पाछ यौ-ह-२।

तरंग--संज्ञा स्त्री. [सं.] (१, लहर, हिलोर। उ.-(व) ऋंग-अग-प्रति-छिबि तरंग-गति सूरदास क्यों कहि श्रावै - १-६६। (ख) गया ब्रजनारि जलना तीर देख लहरि तरग हरषीं रहति नहि मन धीर— १२६१। (ग) या संसार समुद्र मोह-जल, तुष्ना-तरँग उठति ऋति भारी--१-२१२। (२) चित्त की उमंग, मन की मौज । उ.—सदा ब्रज की ध्यान मेरे रास-रंग-तरंग- ३०१०। (३ संगीत में स्वर का उतार-चढ़ाव, स्वरलहरी। (४) वस्त्र, कपड़ा।

तरंगक— संज्ञा पु. [सं. ](१) पानी की लहर, हिलोर।

(२) स्वर का उतार-चढ़ाव, स्वरलहरी। तरंगवती तरंगालि—संज्ञा स्त्रां. [सं.] नदी। तरंगिणी, तरंगिनि, तरंगिनी—संज्ञा स्त्री. [ सं. तरंगिणी ] नदी, सारता । उ.—मन-कृत-दोष अथाह तरांगान, तरि नाह सबयौ समायौ-- १-६७।

वि.— जिसमें तरंगें हों, तरंगवाली । तरंगित-—वि. [सं.] लहराता हुआ, हिलोरें लेता हुआ। सरंगो-वि. [सं. तरंगन् ] (१) जिसमें लहरें हों।

(२) मनमौजी, जैसा मन मे श्रावे वैसा करनेवाला। तर—वि. [फा.] (१) भीगा हुन्ना, गीला। (२) शीतल, ठंडा। (३) जो सूला न हो, हरा। (४) मालदार। संज्ञा पं. [स.] (१) पार करने की किया। (२) आगा (३) बुक्षा (४) नाव की उत्तरम्ही

प्रत्य. [सं ] एक प्रत्यय जो दो चीजों में एक को विशेषता सूचित करने के लिए जोड़ा जाता है।

कि. वि. [सं. तल] तले, नीचे। उ.-., क) श्रीर पतित अभित न श्रांनिनतर देखत श्रपनी साज-१-६६ । (ख) ने सब पतित पाय-तर डागै, यहै हमारी भेंट- -११६। (1) का धेनु चितामनि दीनहों, कलपबुच-तर छाउँ १-१६४। (घ) कही ती परवत चॉप चरन-तर नीर-खार मैं गारी-६-१०७। (ङ) कर ।सर तर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सोभावं—१०६५। (च) मानौ मनि-घर मिन ज्यों छाँड्यो फन तर रहत धुराए ६७५। (छ) मनी जलधर तर बाल कलानि धि कबहूँ प्रगटि दुरि दे । दरस -- २१०८।

संज्ञा पुं. [सं. तल ] नीचे का भाग, तल। तरई - संजा स्त्रीं. [हिं. तारा ] नक्ष -, तारा । तरक—संज्ञा स्त्री. [सं. तड़कना ] तड़कने की किया। संशा पु. [सं. तर्क ] (१) सोच-विचार, उधेड़-बुन। (२) चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुरता की बात, चतुराई का वचन। उ.—(क) सुनत हाँसे चले हिर सकुचि भारी। यह कहथी आज हम आइहें गेह तुव तरक जिनि कहै, हम समुक्ति डारी—२१५५। (ख) प्यारी को मुख धोड़ के पट पीछि सँवारयी। तरक बात बहुतइ कही कछु सुधि न सँवारथी। (३) व्यंग्य, ताना। उ.—ते सब तरक बं लिहें मोकी तासों बहुत डेराऊँ।

संशा पुं. [सं. तर्क=सोच-विचार ! (१) बाधा, श्रड्चम । (२) भूल-चूक, ऋम का उलट-फेर । तरकना - क्रि. श्र. [ हिं. तड़कना ](१)टूटना, चटकना। (२) जोर का शब्द करना। (३) कूदना, तड़पना। क्रि. श्र. [ सं. तर्क ] सोच-विचार करना, तर्क-

वितर्क करना, श्रनुमानना।

तरकश, तरकस—संशा पुं. [फ़ा, ] तीर रखने का चोगा, भाया, तूणीर।

तरकसी सत्रा ओ, [हिं, तरकश ] छोटा तरकश । तरका—संज्ञा पं. [हिं, तड़का] (१) संबेश। (२) छीम। तरकारी—संजा स्त्री. [फ़ा. तरः = सब्ज़ी + कारी ] शाक, भाजी, सब्जी।

सरिक — कि. श्र. [हिं. तड़कना (श्रनु.) (१) भड़ककर, उछल कूद कर । उ. — रिन मग तज्यों, तरिक ताके हय उत्पथ लागे जान — ६-२६ । (२) तड़तड़ शब्द करके, तड़तड़ाकर । उ. भरहरास बन-पात गिरत तरु, धन्नी तरिक तरिक सुनाई — ५६४। (३) फट कर, मसक कर । उ. — सुनत सु बनन सखी के मुख ते पुलकित प्रेम तरिक गई चोली — १०उ. १०६। तरकी — संज्ञा स्त्री. [सं० ताडंकी] कान का एक गहना । तरकी ब — संज्ञा स्त्री. [श्र.] १) संयोग, मिलन । (२) बनावट, रचना । (३) युक्त, उपाय । (४) रचना-प्रणाली, तौर-तरीका ।

तरकुलो — संज्ञास्त्रो. हिं. टाल+कुल ] कान की तरकी।
तरको — संज्ञास्त्रो. [ श्र ] वृद्धि, बहुती, उन्नति।
तरखा — संज्ञा पं. [ सं. तरंग ] पानी का तेज बहाव।
तरछाना — कि. श्र. [ हि. तिरछा ] तिरछी-ग्रांख से
वेखकर इज्ञारा करना।

तरज—संगा पुं. [ श्रा. तज़ ] (१) प्रकार, किस्म, तरह। (२) रीति, ढंग, ढब। (३) रचना-प्रणाली, तौर-तरीका। तरजना—ि श्रा. [ सं. तर्जन ] (१) डाँटना-डपटना, ताडना देना। (२) भला-बुरा कहना. बिगड़ना।

तरजनो — संज्ञा स्त्रः. [हिं. तर्जना] ग्राँग्ठे के पास की उँगली।
संज्ञा स्त्रो. [सं. तजन] भय, डर। उ.— ग्रहो रे
बिहंगम बनबासी। तेरे बोज तरजनी बाढ़ित स्त्रन
सुनत नींदऊ नासी — १=४३।

तरजुमा—तंता पृ. [ त्र्र. ] श्रनुवाद, भाषांतर।
तरण —संज्ञा पुं. [सं. ] (१) नदी पार करना । (२)
तल्ता, बेड़ा। (३) निस्तार, उद्धार। (४) स्वर्ग।
तरिण, तरिणा—संज्ञा पुं. [सं. ] (१, सूर्य। (२) मदार।
(३) करण।

संज्ञा स्त्री. [सं. तरणी] नाव, नौका। तरणिजा, तरिवतनथा, तरिवतन्त्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य-पुत्री जमुना नदी।

सरत—िक, ग्रा. [हिं, तरना ] तरता है, (पानी पर) उतराता है। उ.—रामचद्र-परताप दसौ दिसि, जल

पर तरत पखानी—१०-१२१।
तरतरात — किं. ग्र. [हिं. तइतड़ाना] तड़तड़ शब्द करके। उ—बहरात तरतरात गररात हहरात पर-

रात भारतात माथ नाये।
तरतराना—कि. श्र. [ श्रनु ] तड़तड़ शब्द करना।

तरते ब—संज्ञा स्त्री. [ ग्रा.] कम, सिलसिला। तरद्युद—संज्ञा पुं. [ श्रा.] सोच, चिता।

तरन—संज्ञा स्त्री [सं. तरण, ] तरने के लिए, पार जाने के लिए। उ. (क पाततपावन जानि सरन श्रायो। उद्धि-संसार सुभ नाम-नौका तरन श्राटल स्थान निजु निगम गायो—–१-११६। (ख) सूर-प्रभु को सुजस गावत, नाम-नौका तरन—१-२०२।

संज्ञा पुं. [हिं. तरीना] (१) कान का तरकी नामक गहना। २) कान का कर्णफूल नामक गहना।

तरनतार—संज्ञा पुं. [सं. तरण] मोक्ष, मुक्ति। तरनतारन –सज्ञा पु. [सं. तरण, हि. तरना] (१)

उद्धार, मोक्ष। (२) उद्धार करनेवाला। तरना-कृ. स. [सं, तरण] पार करना। क्रि. य.—उद्धार होना।

कि. स. [हिं, तलना ] घी-तेल में पकाना। तरनि—संज्ञा पुं. [सं. तरिण ] (१) सूर्य। उ. – दई

श्रमीस तरिन-सन्मुख है, चिरजीवो दोउ श्रता— ६-८७। (२, मदार। (३) किरण। उ.—तिनकी नख सोभा देखत हो तरिन-नाथ हूँ की मिति भोरी—२३६३।

तिर्नजा, तरनितजूजा—संज्ञा स्त्री. [सं. तरिण + जा, तनूना] सूर्य की पुत्री जमुना नदी।

तरिन-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं. तरिण + सुता ] सूर्य की पुत्री, यमुना नदी। उ.—जे तप ब्रत किये तरिन-सुता-तट पन गहि पीठिन दीन्हो—६५६।

तरनी - संशा स्त्रो. [सं. तरणी] नाव, नौका। उ.— व्रज-जुवती सब देखि धकित भई, सुंदरता की सरनी। चिरजीवहु जसुदा की नंदन, स्रदास की तरनी—१०-१२३।

तरप-संज्ञा स्त्री, [हिं, तड़प ] (१) तड़पने की किया या भाव। (२) समक-दमक। तरपत — संशा पुं. [सं. तुनि] (१) आराम। (२) सुबीता। क्रि. श्र. [हिं. तड़पना] (१) छटपटाता है। (२) गरजता है।

तरपन—संशा स्त्री. [सं. तङ्यन ] तङ्यने का भाव।
संशा पृं. [सं. तर्पण] (१) तृप्त या संतुष्ठ करना।
(२) तर्पण करना।

तरपना—कि. श्र. [हिं. तड़पना] (१) छटपटाना। (२) गरजना।

तरपर—िक. वि. [हिं. तर - पर] (१) ऊपर-नीचे। (२) एक के बाद दूसरा।

तरफ—संशा स्त्री. [ त्रा. तरफ़ ] (१) ग्रोर, दिशा। (२) किनारा, बगल। (३) पक्ष।

तरफत—िक. श्र. [हिं. तड़पना ] तड़पता है, छटपराता है। उ.—(क) चमकत, तरफत स्नोनित मैं तन, नाहिं परत निहारो—६-१४६ । (ख) ज्यों जलहिन मीन तरफत ऐसे बिकल प्रान हमारो—२७३२।

तरफदार—िव. [हिं. तरफ + फा. दार ] पक्षपाती।
तरफदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तरफदार ] पक्षपात।
तरफरात—िक. त्र. [हिं. तड़फड़ाना ] छटपटाते हैं,
तड़पते हैं। उ.—(नैन) स्थाम सिंधु से बिछुरि परे
हैं तरफरात ज्यों मीन—२७६७।

तरफराना—कि. श्र. [हिं. तड़फड़ाना] छटपटाना। तरबतर—वि. [फ़ा] भीगा हुग्रा, खूब तर।

तरबूज, तरबूजा—संशा पुं. [फा. तबुज, हिं. तरबूज] तरबूज। उ.—सफरी, सेब, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूजा नाम—१०-२१२।

तरबूजिया—िव. [हिं. तरबूज ] गहरे हरे रंग का। तरमीम—संश स्त्री. [अ.] संशोधन, सुधार। तरराना—िक. अ. [अनु.] ऐंडना, ऐंडाना।

तरल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हार के बीच का मणि। (२) हार। (३) हीरा। (४) लोहा। (४) तल, पेंदा। (६) घोड़ा।

वि. [सं, ] (१) हिलता-डुलता, चलायमान, चल, चंचल। उ.—सुभ स्वनिन तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही—१०-२४। (२) श्राह्थिर, क्षण-भंगुर। (३) व्रव, बहनेचाला। (४) चमकदार, कांतिवान। (५)

खोखला, पोला।

तरलता—संश स्त्री. [सं.] (१) चंचलता। ब्रवत्व। तरलभाव—संश पुं. [सं.] (१) पतलापन। (२)चंचलता। तरलाई—संश स्त्री. [सं. तरल + श्राई (प्रत्य.)] (१) चंचलता, चपलता। (२) बहने का भाव।

तरवन—संशा पुं. [हिं. ताङ + बनना ] (१) तरकी। (२) कर्णफूल।

तरवर—संज्ञा पुं. [सं. तरवर ] बड़ा पेड़, वृक्ष । उ.— फूलो फिरैं धेनु धाम, फूली गोपी ख्राँग ख्राँग, फूले फरे तरवर ख्रानद लहर के—१०-३४।

तरविरया, तरविरहा, तरवारी—संज्ञा पुं. [हिं. तलवार+ वार] (१) तलवार चलानेवाला। (२) तलवार चलाने में दक्ष या कुशल।

तरवा—संशा पुं. [हं. तलवा] पैर का तलुग्रा।
तरवाना—कि. स. [हं. तारना] तारने की प्रेरणा देना।
तरवार, तरवारि—संशा पुं. [सं.] खड्ग का एक भेव,
तलवार। उ.—जाने किन किलकाल कुटिल नृप,
संग सजी श्रध-सैनी। जनु ता लिश तरवारि त्रिबिकम
धिर करि कोप उपैनी—६-११।

तरस—संशा पुं. [सं. त्रस = डरना ] दया, रहम। उ.— सूर सखी बूभेहु न बोलते सो किह धीं तोहिं को न तरस—२००८।

तरसत—कि. श्र. [हिं. तरसना ] दुली है श्राकुल हैं,
तरसता है। उ.—(क) जसोदा कान्इ तें दिशि
प्यारों। डारि देहि कर मथत मथानी, तरसत नंददुलारों—३७=। (ख) हरि दरसन को तरसत
श्रॅंखियाँ—२७६६। (ग) तरसत रहे बसुदेव देवकी
नहिं हिंदु मात-पिता को—३२४६।

तरसना—कि. श्र. [सं. तर्षण = श्रभिलाषा ] किसी चीज को पाने के लिए बेचैन या श्राकल होना।

तरसनि—संशा स्त्री. [हिं तरसना ] तरसने की किया, (किसी वस्तु ग्रादि के) ग्रभाव की बेचेनी। उ.— कंचन-मनि-र्जाट-थार, रोचन, दिध, फूल-डार, मिलिबे की तरसनि—१०-६६।

लरसाना - कि. स. [हिं. तरसना ] (१) किसी चीज के ग्रभाव का दुख या कंद्र देना। (२) बेकार ललचाना।

तरसायौ - कि. स, [हिं, तरसाना] पीड़ित किया, कुम्हला विया। उ. - कान्ह बदन श्रितिहीं कुम्हिलायौ । मानौ कमलिहें हिम तरसायौ - ३६१।

तरसावित—िक. स. [हिं. तरसाना] दुख देती है, पीड़ित करती है। उ.—तब तैं बांधे ऊखल आनि। बाल-मुकुदहिं कत तरसावित, आति क़ोमल आंग जानि—३६५।

तरसे—िक. स. [हिं. तरसना] (१) बेचेन होता है, घबराता है, दुखी होता है। उ.—देखत सुतप्त जल तरसे। जसुदा के पाइनि परसे। (२) श्रभाव के कारण दुखी होता है। उ.—िबनु देखे ताके मन तरसे—१० उ. ११६।

तरसौंहाँ—िव. [हं. तरसना] तरसनेवाला।
तरह—मंश्रा स्त्री. [त्र्य.] (४) भाँति, प्रकार। (२) ढाँचा,
बनाबट, रूप-रंग। (३) ढब, प्रणाली। (४) युक्ति।
मुहा.—तरह देना—(१) ख्याल न करना, जाने
देना। (२) टालटूल करना।

(५) हाल, दशा, ग्रवस्था।

तरहदार—वि. [फा.] (१) संदर बनावट का, ग्रच्छी चाल का। (२) शौकीम, सज-धजवाला। तरहदारी—वि. [फा.] सजावट, सजधज।

तरहर, तरहुँड़—कि. वि [हिं. तर+हर] तले, नीचे। वि.—(१) नीचे का, निचला।(२) बुरा. निकृष्ट।

तरहरना—कि. स. [हिं. तरह ] ध्यान न देना, त्याग देना, तरह दे जाना, छोड़ देना।

तरहरि—कि. स. [हिं. तरहरना] त्यागकर, छोड़कर। उ.—चरन प्रताप श्रानि उर श्रंतर, श्रौर सकल सुख या सुख तरहरि—३३१२।

तरहेल नि [हिं. तर + हेर, हेल (प्रत्य,)] (१) श्रधीन। (२) जो वश में हो, पराजित। क्रि. वि.—नीचे, तले।

तरा— संशा पुं. [ देश. ] पटुग्रा, पटसन।
संशा पुं. [हिं, तला ] नीचे का भाग, तलवा।
तराई—संशा स्त्री, [हिं, तर=नीचे ] (१) पहाड़ के
नीचे की भूमि। (२) पहाड़ की घाटी।
संशा स्त्री, [सं. तारा ] नक्षत्र, तारा।

तराकि - संशा पुं. [हिं, तड़ाक ( अनु, )] तड़ाके का शब्द, सड़ाक से किसी चीज के दूरने का शब्द । उ. क्रास्त बन पात, गिरत तक, घरनी तरिक तराकि सुनाइ—५६४।

तराजू—संज्ञा स्त्री., पुं. [फा. ] तौलने की तुला।
तराटक—संज्ञा पुं [सं. त्राटिका] योग का एक साधन।
तराना—संज्ञा पुं. [फा. ] अच्छा गीत।
तराप—संज्ञा स्त्री. [अनु. ] तड़ाक का बाब्द।
तरापा—संज्ञा पुं. [अनु. ] हाहाकार, कोहराम।
तराबोर—वि. [फा. तर+हिं. बोरना] खूब भीगा हुआ।
तरायला—वि. [हिं. तरल (१) तरल । (२) चंचल।
तरारा —संज्ञा पुं. [हिं. तरतर से अनु. ] (१) छलांग।

(२) पानी की अटूट धार।
तरावट—संज्ञा स्त्री, [फ़ा, तर+आवट (प्रत्य,)](१)
गीलापन, नमी। (२) ठंडक, शीतलता। (३) शरीर
की गर्मी शांत करनेवाली चीज। (४) तरमाल,
स्निग्ध या पुष्टिकारक भोजन।

तराश—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) काटने का ढंग। (२) काट-छाँट। (३) ढंग, तर्ज।

तराशना—िक, स. [फा, काटना, कुतरना।
तरास—संज्ञा पुं. [सं. त्रास] (१) डर। (२) कच्ट।
तरासना—िक, स. [सं. त्रसन] त्रास या कच्ट देना।
तराहि—त्रव्य. [सं. त्राहि] रक्षा करो, बचाग्रो।
तराहीं—िक, वि. [हिं. तले] तले, नीचे।
तरि—संज्ञा स्त्री. [सं.] नौका, नाव।

कि. स. हिं. तरना ] पार होकर।
प्र.—गये तरि—तर गये, पार हो गये। उ.—गये तरि लै नाम केते पतित हारे-पुर-घरन १३०८। तरि सक्यौ-पार कर सका, पार जा सका।
उ.—मन-कृत-दोष श्रथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यो
समायौ—१-६७।

तिरक-संज्ञा पुं [सं.] मल्लाह, माँभी।
तिरका-संज्ञा स्त्री. [सं.] नाव, नौका।
संज्ञा स्त्री. [सं. तिइत] बिजली।
तिरको-संज्ञा पुं. [हिं. तरकी] कान का तरकी या
तरौना नामक गहना। उ, तें कत तोरबी हार

नौसरि कौ मोती बगरि रहे सब बन भें गयो कान को तरिको—१०५३।

तरिता—संश स्त्री, [सं.] तर्जनी उँगती।
संश स्त्री, [सं. तिडत्] जिजली।
तरिया—संश पुं. [हिं. तरना | तैरनेवाला।
तरियाना—कि. स. [हिं. तर, तर=न चे ] (१) नीचे
डाल देना। (२) छिपा देना, ढाँक देना।

हाल दना। (२) छिपा दना, ढाक दना। कि. श्र.—नीचे या तले बैठ जाना।

तिश्वन, तिश्वना—संशा पु. [हिं. ताड़] (१) कान का तरकी नामक गहना। उ.— (क) तारवन खवन फाँस गर डारित केंसहूं नहीं सकत निरवारि— ११६४। (ख) तिश्वन खवन नेन दोउ आँ जित नासा बेसि साजत—२०८०। (ग) पीक कपालन तिश्वन के दिग कलमलात मोतिन छ ब जोए— २०१२।(२) कर्णकूल नामक गहना।

तरिवर—संज्ञा पु. [सं. तस्वर] (१) श्रेष्ठ वृक्ष । (२) कल्पवृक्ष ।

तिरहित—िक. वि. [हिं. तर+हंत ] नीचे, तले।
तिरहे—िक. श्र. [हिं. तरना ] तरेगा, मुक्त होगा,
सद्गति को प्राप्त होगा। उ.—महादेव हित जो
तप कारहै। सोऊ भव-जल तैं निहं तिरहै—४-५।
तरी—िक. श्र. [हिं. तरना ] (१) पानी के ऊपर
उतरायी। उ.—िसला तरी जल माहिं सेत बाँधे,
बिल वह चरन श्रिहित्या तारी— १-३४। (२) भवसागर के पार हो गयी, मुक्त हो गयो। उ.—गौतमा
की नारि तरी नेक परस लाता—१-१२३।

संशास्त्रा [सं.] (१) नाव, नौका। (२) पिटारी। (३) घुआँ। (४) कपड़े का छोर, दामन।

संज्ञा स्त्रो. [फ़ा. तर] (१) ढीलापन। (२) ठंडक, शीतलता। (३) तराई, तरहटी। (४) वह नोचा स्थान जहाँ पानी इकट्ठा रह।

संज्ञा स्त्री. [हि. तर=नीचे ] (१) जूते का तला।

(२) पर का तलवा। (३) तलछट, तरौंछ।
संज्ञा स्त्रा. [हिं. ताड़] (१) तरकी। (२) कर्णफूल।
तरीका—संज्ञा पुं. [ श्रा. तरीका] (१) ढंग, बिधि, प्रकार।

(२) चाल-व्यवहार । (३) युक्ति, उपाय ।

तरीनि -संशास्त्री, [हिं, तर = तले] पहाड़ के नीचे का भाग, तलहटी।

तरु—संशा पुं. [सं ] वृक्ष, पेड़। उ.—तरु में बीज कि बीज माँह तरु, दुहुँ में एक न न्यारों री—१०-१३५। तरुण, तरुन—वि. [सं. तरुण] (१) युवा, युवक। उ.—देख्यों भरत तरुन श्रति सुंदर—५-३१। (२) नया, नतन।

तरुगई, तरुगाई, तरुनई, तरुनाई—संज्ञा स्त्री. [सं.
तरुग+त्रार (प्रत्य.)] युवावस्था, जवानी। उ.—
(क) दखहुरी ये भाव कन्हाइ। कहाँ गया तब की
तरुनाई—७६६। (ख) तरुनाई तनु-ग्रावन दीजें
कित जिय होत बिहाला—१०३८।

तरुणाना, तरुनाना—ंक. त्र. [सं. तरुण + त्राना (प्रत्य, ] युवावस्था में प्रवेश करना।

तरुणिमा—संश स्त्राः [स.] तरुण होने की दशा या भाव, तारुण्य, यौवन।

तरुगि, तरुणा—संश स्त्रा. [ सं. ] युवती।
तरुन।पो—संश पुं. [ सं. तरुण+त्रापा (पत्य.) ] युवावस्था या जवानी में । उ.--वालापन खेलत ही खोयौ
तरुनापै गरुवानी।

तरुनापौ—संज्ञा पुं. [सं. तरुण ] युवावस्था, जवानी । उ.—लघु सुत नृपात-बुढ़ापौ लयौ । श्रापनौ तरुनापौ तिहिं दयौ— ६-१७४ ।

तरुनि, तरुनी — वि. स्त्रो. [सं. तरुणी ] युवती, जवान (स्त्री) । उ — क) लाल कु यर मरी कल्लू न जाने, तू है तरुनि किसोर—१०-३१०। (ख) में तो बृद्ध भयो वह तरुनी सदा वयस इकसारी—१-१७३। (ग) इकटक रही निहारि के तरुना मन भाए—२५७६।

तरुवाँही -- संशास्त्रों, सं. तर्+ हिं. + बाँह | पेड़ की शाखा। तरुराज -- संशा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष। तरुवर -- संशा पुं. [सं.] श्रेष्ठ वृक्ष। कल्प वृक्ष। तरुव -- संशा पुं. [सं.] कमल की जड़, भसींड़। तरेदा -- संशा पुं. [सं. तरंड] (१) पानी का बेड़ा।

(२) वह चीज जिसके सहारे पार हो सकें। तरे—िक. वि. [सं. तल ] नीचे, तले। कि. स. [हि. तलना ] घी-तेल में पकाये। कि. ग्र. [हिं. तरना ] तर गये, मुक्त हो गये। उ.—ऐसे ग्रीर पतित ग्रावलंबित, ते छिन माँहि तरे—१-१६८।

तरेटी—संज्ञा स्त्री. [हं. तर] तराई, तलहटी।
तरेरना—िक. स. [सं. तर्ज=डॉटना + हं. हेरना] ग्रांख
के इशारे से ग्रसहमित या ग्रसंतोष प्रकट करना।
तरें—िकि. वि. [हं. तले] नीचे, तले। उ.—(क)
सीत घाम घन बिपति बहुत बिधि भार तरें मिर जैही -- १-३३१। (ख) लोह तरें, मधि रूपा लायी—
७-७। (ग) कठुला कठ चित्रुक तरें मुख दसन
बिराजें—१०-१७४।

कि. श्र. [हिं. तरना] तर जायँ, मुक्त हो जायँ। तरें याँ—संशा स्त्री [सं. तारा] तारे, नक्षत्र। उ.—तुम चाहित हो गगन-तरें याँ, माँगों केसी पावहु—७७३। तरें—कि. श्र. [हिं. तरना] भवसागर के पार हो जाय, सद्गति प्राप्त कर ले, मुक्त हो जाय। उ.—सूरज-दास स्थाम सेए पें दुस्तर पार तरें—१-८२।

तरैत्रा, तरैया—संज्ञा पुं. [हिं. तारा] तारा, नक्षत्र। उ.—िकन त्र्यकास तें तोरि तरैत्रा त्रानि घरी घर माई—३३४३।

तरोवर—संज्ञा पु. [सं. तरुवर ] श्रेडठ वृक्ष, कल्पवृक्ष । उ.—कल्प तरावर तर बंसीबट राधा रितगृह धाम--१७२४ ।

तरों—िक. श्र. [हिं. तरना] मुक्त होऊं, उद्धार पाऊँ, सद्गति प्राप्त करूँ। उ.—काकै बल हों तरों गुसाई, कञ्ज न भिनत मो मों—१-१५१।

तरोंछ—संशा स्त्री. [हिं. तल+छट] तल का मैल।
तरोंधी—वि. स्त्रो. [हिं. तिरछा] तिरछी, टेढ़ी। उ.—

कठिन बचन सुनि खवन जानकी, सकी न बचन सँभारि। तृन-त्रांतर दे हिष्ट तरौंधी, दियौ नयन जल ढारि—६-७६।

तरों स—संज्ञा पुं. [हिं. तर+श्रोंस (प्रत्य.)] तट, किनारा।
तरोन, तरोना – संज्ञा पुं. [हिं. तरोना=ताड़+बनना]
तरकी या कर्णफूल ताम का श्राभूषण। उ.—सुम
स्वनिन तरल तरों।, बेनी सिथिल गुही—१०२४।
तक – संज्ञा पुं. [सं] (१) विकेचना, दलील, बहस।

(२) चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुराई भरी बात । उ.— प्यारी को मुख धोइके पट पोछि सँवारथी । तर्क बात बहुते कही कछु सुधि न सँभारथी । (३) व्यंग्य, ताना । उ.—ते सब तर्क बोलिहें मोकों तासों बहुत डेराऊँ ।

संज्ञा पुं. [त्र्याः, छोड़ने का भाव। तकक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तर्क करनेवाला। (२) याचक, माँगनेवाला, मँगता।

तकेणा, तर्कना—संज्ञा स्त्री. [ सं. तर्कणा ] (१) विवेचना, सोच-विचार, ऊहा। (२) दलील, बहस।

तर्कना—कि. श्र. [सं. तर्क] तर्क करना। तर्क-वितर्क—संज्ञा पुं [सं.] (१) सोचविचार, ऊहापोह।

(२) वाद-विवाद, बहस।
तर्कश— संज्ञा पुं. [फ़ा.] तीर रखने का चोगा, तूणीर।
तर्कसी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. तरकश] छोटा तरकश।
तर्कि—संज्ञा पुं. [सं. तर्किन] तर्क करनेवाली।
तर्कि—संज्ञा पुं. [सं.] तकला, टेकुग्रा।
तकुटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] तकला, टेकुग्रा।
तक्ये—वि. [सं.] विचार के योग्य।
तर्ज—संज्ञा पुं. स्त्री. [ग्रा.] (१) प्रकार, किस्म। (२)

रीति, ढंग। (३) रचना-प्रणाली, बनावट। तर्जन—संशा पुं. [सं. तर्जन] (१) धमकाना। (२)

कोध। (३) डाँट-डपट, तिरस्कार,फटकार।
तर्जना—कि. त्र्य. [सं. तर्जन] डाँटना, धमकाना।
तर्जनी— संज्ञा स्त्री. [सं. तर्जनी] श्रॅगूठे के पास की
उँगली जो बिचली से छोटी होती है।

तर्जुमा—संज्ञा पुं. [अ.] भाषांतर, अनुवाद! तर्पण, तर्पन— संज्ञा पुं. [सं.] (१) तृप्त या संतुष्ट करने की िकया। (२) पितरों को पानी देने की कर्मकांड को रीति। उ,—कबहूँ स्राद्ध करत पितरन की तर्पन किर बहु भाँति—सारा. ६७३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तड़पना ] तड़पने की किया। तर्पित—िव. [सं. ] तृप्त या तुष्ट किया हुग्रा। तर्पी—िव. [सं. तर्पिन् ] (१) तुष्ट या तृप्त करनेवाला। (२) तर्पण करनेवाला।

तरयो कि. श्र. [हिं. तरना] सांसारिक क्लेशों से

मुक्त हुए, सद्गति पायी। उ. (क) की की न तरशे हरि-नाम लिएं—१-८६। (ख) स्रदास कहै, सब जग बूड्यो, जुग जुग मक तरयौ-१-२६१। कि. श्र. [ हिं. तैरना ] उतराने लगे। उ.—नल श्रर नील बिस्वकर्मा-सुत छुवत पषान तरयौ-६-१२२। तरयोना—संज्ञा पुं. [हि, तरौना] (१) तरकी नामक गहना। (२) कर्णफूल नामक गहना। तषे—संशा पुं. [ सं. ] (१) श्रभिलाषा । (२) श्रसंतोष । (३) बेड़ा। (४) समुद्र। (४) सूर्य। तर्षेगा--संशा पुं. [सं. ] (१) प्यास। (२) इच्छा। तर्षित—वि, [सं. ] (१) प्यासा। (२) इच्छुक। तल संशा पुं. [ सं. [ (१) नीचे का भाग। (२) पेंदा, तला। (३) जल के नीचे की भूमि। (४) किसी चीज के नीचे की भूमि। (५) पर का तला। (६) हथेली। (७) किसी वस्तु का बाहरी फैलाव, सतह। उ.—(क) कहै सूरदास देखि नैनिन की मिटी प्यास, कृपां कीन्ही गोपीनाथ, आए सुव-तल मैं— प्रा (ख) पलिट धरौं नव खंड पुहुमि तल जौ बल भुजा सम्हारौं— ६-१३२। (८) थप्पड़। (६) स्वभाव। (१०) जंगल, वन। (११) गड्ढा। (१२) घर की छत, पाटन। (१३) मुठिया। (१४) श्राधार। तलक-श्रव्य [हिं तक] तक, पर्यंत। तलछट—संज्ञा स्त्री. [हिं. तल+छँटन। ] तलौंछ। तलना—कि. स. [ सं. तरण=तिराना ] खौलते हुए घी-तेल में कुछ पकाना। तलप—संशा पुं. [हिं. तलप ] (१) पलंग। उ.—तिज बह जनक-राज-भोजन-सुख कत तृन-तलप बिपिन फल खाहु—६-३४। (२) श्रटारी। तलपट-वि. [देश.] नाश, बरबाद, चौपट। तलफ-वि. [ श्र. तलफ ] नष्ट, बर्बाद। संज्ञा स्त्री.—छटपटाहट, बेचैनी, पीड़ा। उ.—

(क) मनु पर्यंक तें परी धरनि धुकि तरँग तलफ

बूँदिन की भमकिन सेज की तलफ कैसे जीजियत

तलफत-कि. ग्र. [हिं. तलफना (ग्रनु.)] तड़पते हैं,

माई है - २८२७।

नित भारी--२७२८। (म्ह) दामिनि की दमकिन

गई, दास देखें बिनु, तलफत हैं नैननि के तारे— १०-२९६। (ख) इते मान तन तलफत वहि ते जैसे मीन तट बिन पानी—२७८७। (ग) मृगमद मलय परस तनु तलफत जनु बिष बिषम पिए-३४४६। वि.—तड़पता हुमा। उ.—तलफत छाँड़ि गये मधुबन को बहुरि न कीनी सार—२७१७। तलफित-कि. अ. [हिं. तलफना ] छटपटाती है, बेचैन होती है। उ. - ज्यों जलहीन मीन तनु तलफित ऐसी गति अजबालहिं - २८००। तलफना-कि, अ. [ अनु. ] छटपटाना, बेचैन होना। तलिफ-कि. अ. [हिं, तलफना] छटपटाकर, तड़पकर। उ.—तलिफ तलिफ जिय िक्सन लागे पापी पीर ं न जानी--३०५६। तलफी—संज्ञा स्त्री, [फ़ा, तलफ़ी] (१) खराबी, बुराई, दोष। (२) हानि, नुकसान। तलब—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) खोज, तलाज। (२) बाह, इच्छा । (३) माँग, ग्रावश्यकता । (४) बुलावा, बुलाहट। (४) वेतन, तनख्वाह। तलबगार - वि. [ फ़ा, ] चाहने या मांगनेवाला। तलबी-संशा स्त्री [ श्र. ] (१) बुलाहट । (२) माँग । तलबेली—संशा स्त्री. [हिं. तलफना ] स्रातुरता, बेचैनी, छटपटाहट, उत्कंठा। उ.—(क) कान्ह उठे श्राति प्रात ही तलबेली लागी। (ख) फिरि फिरि अजिरहि भवन ही तलबेली लागी—१५४१। तलमल—संशा पुं. [ सं.] तलछट, तरौंछ। तलमलाना — कि. श्र. [देश.] तड़पना, छटपटाना । तलमलाहट संशा स्त्री, [हिं, तलमलाना ] बेचेनी। तलवा-संश पुं. [ सं. तल ] पर का निचला भाग। महा .-- तलवा न टिकना (भरना)-एक जगह भ्रधिक देर तक रहा न जाना। तलवार - संज्ञा स्त्री. [ सं. तरवारि ] खड्ग, श्रसि । मुहा, तलवार का खेत लड़ाई का मैदान । तलवार का घाट-तलवार की टेढ़ी घार। तलवार के घाट उतारना—तलवार से मार डालना । तलवार का पानी—तलवार की चमक जो उसके बढ़िया

व्याकृत होते हैं, बेचैन होते हैं। उ.—(क) हों बिल

होने का लक्षण है। तलवार का हाथ—तलवार का वार या ग्राघात। तलवार की ग्राँच—तलवार के वार का सामना। तलवार तौलना—वार करने के लिए तलवार सम्हालना। तलवार पर हाथ रखना—(१) तलवार निकालने को तैयार होना। (२) तलवार की कसम खाना। तलवार सौतना—वार करने के लिए तलवार खींचना।

तलवे, तलवों—संज्ञा पुं, बहु, [हिं, तलवा ] दोनों पैरों के निचले भाग।

मुहा.—तलवे चाटना—बहुत खुशामद करना।
तलवे छलनी होना—बहुत दौड़-घूप से पैर धिस
जाना: तलवे तले आँखें मलना—(१) बहुत दीनता
दिखाना। (२) बहुत प्रेम जताना। (३) कुनल कर
नड्ट करना। तलवे धो धोकर पीना—बहुत श्रद्धाभिवत दिखाना, बहुत प्रेम जताना। तलवे सहलाना—
(१) बहुत सेवा करना। (२) बहुत खुशामद करना।
तलवों में आग लगना—बहुत कोध आना।

तलहटी—संशा स्त्रो. [सं. तल+घटट ] पहाड़ की घाटी।
तला—संशा पुं. [सं. तल ] नीचे का भाग, पेंदा।
तलाई—संशा स्त्रो. [हिं. ताल ] छोटा ताल, बावली।
संशा स्त्रो. [हिं. तलना ] तलने या तलाने की
किया, भाव या मजदूरी।

तलाउ—संज्ञा पुं. [हिं. तर्जाब] सरोवर, तालाब। तलाक—संज्ञा पुं. [श्रा. तलाक] पति-पत्नी का संबंध-त्याग।

तलातल—संशा पुं [सं. ] सातं पातालों में एक का नाम । उ.—श्रतल वितल श्रक हतल तलातल श्रीर महातल जान । पाताल श्रीर रसातल मिलि सातों भुवन प्रनान —सारा, ३१।

तलाबेली—संशा स्त्री. [हिं, तलबेली ] बंचेनी, उत्कंठा।
तलाब—संशा पुं. [सं. तल्ल ] तालाब, ताल।
तलाश—संशा स्त्री. [फ़ा, ] (१) खोज। (२) चाह।
तलाशना—कि. स, [फ़ा, तलाश] ढूढ़ना, खोजना।
तलाशी—संशा स्त्री. [फ़ा, विधी या छिपाई हुई चीज
के लिए पहने हुए कपड़ों, पास की चीजों या घरबार की देखभाल।

तिल — कि. स. [हिं, तलना ] घी-तेल म तल कर।

उ.—-लोन लगाइ तुरत तिल लीने—२३२१।
तिलत — वि. [हिं, तलना ] तला हुग्रा।
तिलन — वि. [सं. ] (१) दुबला-पतला। (२) बिखरा
हुग्रा। (३) थोड़ा, कम। (४) स्वच्छ, साफ।
संज्ञा स्त्री. [सं. ] शैषा, सेज, पलँग।
तिलिया, तली—संज्ञा स्त्री. [सं. तल ] (१) निचला भाग,
सतह। (२) तलछट, तलौंछ। (३) पर की एडी।

तालया, तला—संशा स्त्रा, [स. तल](१) निचला भाग, सतह। (२) तलछट, तलौंछ। (३) पैर की एड़ी। तले—िक, वि. [सं. तल] नीचे, निचले भाग में।

मुहा.—तले अपर—(१) एक के अपर दूसरा।
(२) उलट-पलट किया हुग्रा। तले अपर के—ग्रागे
पीछे के, एक के बाद का दूसरा। जी तले अपर
होना—(१) जी मचलाना। (२) जी घबराना।
तले की साँस तले श्रीर अपर की साँस अपर रह
जाना—स्तब्ध या भौचक्का रह जाना। तले की
दुनिया अपर होना—(१) बहुत उलट-फेर या
परिवर्तन हो जाना। (२) श्रसंभव बात संभव हो
जाना। तले बचा होना—हाल हो का जनमा
बच्चा होना।

तलेटी-—संज्ञा स्त्री. [ सं. तल ] (१) पेंदी। (२) तलहटी। तलेया—संज्ञा स्त्री. [हिं, ताल ] छोटा ताल। तलोंछ—संज्ञा स्त्री. [सं. तल ] तल का मेल। तलप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पलँग, संज्ञ। (२) प्रदारी। तल्ला—संज्ञा पुं. [सं. तल] (१) नोचे की परत, प्रस्तर।

(२) नीचे का भाग। (३) पास, निकट।
तल्ली—संशा स्त्री, [सं, ] (१) युवतो। (२) नौका।
तल्लीन—वि, [सं, ] किसी विषय में लीन, निमनन।
नव—सर्व, [सं, ] तुम्हारा। उ,—फूटि गईं तब
चारयौ—१-१०१।

तवज्जह—संज्ञा स्त्री, [आ,] (१) ध्यान। (२) कृपाभाव। तवना—कि. आ, [सं. तपन] (१) गरम होना। (२) ताप या दुख से पीड़ित (३) प्रताप, तेज या आतंक फैलना। (४) क्रोध या गुस्से से जलना।

तवा—संशा पं. [हिं. तवना = जलना ] (१) लोहे का छिछला पात्र जिस पर रोटी सेंकी जाती है।

मुहा.—तवा सा मुँह—बहुत काला मख,

बहुत काला और चित्तीदार मुख । जैहै छनिक तवा त्यों पानी—गरम तवे में पड़े पानी की तरह क्षण भर में छनछना कर खत्म हो जायगा, प्रचंड शक्त के कोध की तीव्रता के सामने बहुत जल्द ठंडा हो जायगा। उ.—श्रव नहिं बचे कोध नृप कीन्हो जैहै छनिक तवा ज्यों पानी—२४६६। तवा सिर से बाँधना—प्रहार या चोट सहने के लिए तैयार होना। तवा पर (तवे) की बूँद—(१) बहुत शोध्र नष्ट हो जाने वाली। (२) जिससे जरा भी संतोष न हो।

(२) चिलम का छोटा ठिकरा।

तवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताव = ताप] (१) गरमी, ताप। (२) लू, गरम हवा।

तवाजा—संज्ञा स्त्री, [ श्रा. तवाज़ा ] (१) श्रादर, मान, श्राव-भगत। (२) खातिर, मेहमानदारी।

सवाना कि. स. [हिं, ताना ] तप्त या गरम करना। कि. स. पात्र का मुँह बंद करना।

तवारा, तवारो—संज्ञा पुं. [सं, ताप, हिं. ताव] जलन, बाह, ताप। उ.—तवतें इन सबहिन सच्च पायो। जब ते हिर संदेस तुम्हारो, सुनत तवारो आयो-३४८० तवारीख—संज्ञा स्त्री. [आ. तवारीख़] इतिहास। तवालत—संज्ञा स्त्री. [आ. ] (१) लंबाई, दोर्घता। (२) प्रधिकता (२) बखेड़ा, भंभट।

तशरीफ—संज्ञा स्त्री. [ श्रा. तशरीफ ] बुजु ीं, बड़प्पन।
मुहा.—तशरीफ रेखना—श्रादर से बैठना। तशरीफ लाना—सादर श्राना। तशरीफ ले जाना—
चला जाना।

तश्तरी—संशा स्त्री. [फ़ा.] छोटी थाली, रकाबी।
तष्ट — वि. [सं.] छिला या कुटा पिटा हुम्रा।
तष्टा—संशा पुं. [सं.] छीलने या गढ़नेवाला।
तस—वि. [सं. ताहश, प्रा. तारिस, पुं. हिं. तहस]
तसा, वैसा।

कि, वि.—तंसा, वंसा।
तसकर—संज्ञा पुं. [सं. तस्कर] चोर। उ.—ज्यों सपने
में रंक भूप भयो, तसकर ऋरि पकरयों—२-२६।
तसकीन—संज्ञा स्त्री. [श्र.] तसल्ली, धीरज।
तसदीक—संज्ञा स्त्री. [श्र.] (१) सच्चाई। (२) सच्चाई

का समर्थन या पुष्टि। (३) शवाही, साक्ष्य।
तसदीह—संज्ञा स्त्री. [श्रा. तसदीह] (१) सर-दर्द। (२)
तकलीफ, दुख, कष्ट।
लसनीफ—संज्ञा स्त्री. [श्रा. तसनीफ़] ग्रंथ की रचना।
तसबीह—संज्ञा स्त्री. [श्रा. तसनीफ़] ग्रंथ की रचना।
तसबीह—संज्ञा स्त्री. [श्रा. तस्त = छिछला पात्र+ला]

लोहे-पीतल ताँबें का बड़ा लेकिन कम गहरा पात्र। तसलीम—संशा स्त्री, [त्र्रा.](१)प्रणाम।(२) स्वीकृति। तसल्ली—संशा स्त्री, [त्र्रा.] धीरज, सांत्वना। तसवीर—संशा स्त्री, [त्र्रा.] चित्र।

वि. — चित्र सा सुंदर, मनोहर !
तस्कर — संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) चोर । उ. — गीध्यौ दुष्ट
हेम तस्कर ज्यों, त्राति त्रातुर मितमंद — १-१०२ ।
(२) श्रवण, कान ।

तस्करता—संज्ञा स्त्री. [सं. ] चोर का काम, चोरी।
तस्करी—संज्ञा स्त्री. [सं. तस्कर]। (१) चोरी। (२)
चोर की स्त्री। (३) चोरी करनेवाली स्त्री।
तस्मात्—श्रव्य. [सं. ] इसलिए, श्रतः।
तस्य—सर्व. [सं. ] उसका।
तहँ, तहँवाँ—कि. वि. [हि. तहाँ] वहाँ, उस स्थान
पर। उ.—जहाँ जहाँ सुमिरे हिर जिहिं विधि तहँ

तैसें उठि घाए (हो)—१-७।
तहँई—कि, धि. [हि. तहाँ + ही ] उस ही स्थान पर,
वहीं। उ.— (क) को इहँई पिय को न बुलावे की
तहँई चिल जाहीं—२१४५। (ख) इहि ग्रांतरि हरि
ग्राए तहँई—२६४३।

तह—संशा स्त्री. [फा.] (१) मोटाई का फैलाव, परत।

मुहा—तह पर रखना—छिपाकर रखना, न

निकालना। तह जमाना (बैठाना)—(१) परत के

ऊपर परत रखना। (२) भोजन पर भोजन करना।

तह तोड़ना—भगड़ा निबटाना। तह देना—(१)

हलकी परत चढ़ाना। (२) हलका रंग चढ़ाना। (३)

इत्र बनाने के लिए जमीन या श्राधार देना।

(२) नीचे का विस्तार, तल, पेंदा।

मुहा – तह की बात — गुप्त या छिपी हुई बात।

तह को (तक) पहुँचना — ग्रसली बात जान लेना।

(३) पानी की थाह, तल । (४) महीन भिल्ली। अखेटक-काज—६-३।

तहकोक--संग्रास्त्रो. [ त्रा. तहकोक ] (१) सत्य, वास्त- ताँई-कि. वि. [हिं. ताई'] (१) तक, पर्यंत । (२) विकता।(२) सच्चाई की जाँच।(३) पूच-ताँछ। तहकीकात—संशा स्त्री. [हिं. तहकीक] जाँच, छान-बीन। विषय में, लिए, वास्ते। तहखाना—संशा पुं. [फ़ा. तहखाना ] तलगृह भुइँहरा। ताँगी—संशा स्त्री. [फ़ा. तंग = बंद ] किसी चीज को तहजीब—संशा स्त्री. [श्र. तहजीब] शिष्टता का व्यवहार। तहरी—संज्ञा स्त्री. [देश.](१) पेठे की बरी भ्रौर चावल

की खिचड़ी। (२) मटर की खिचड़ी। तहरीर—संशा स्त्री. [ श्र. ] (१) लिखावट । (२) लेखन-शैली। (३) लिखी हुई बात। (४) लिखा हुग्रा

प्रमाण। (४) लिखने की मजदूरी। तहरीरी—वि. [फ़ा.] लिखा हुआ, लिखत। तहलका—संज्ञा पुं. [ य. ] (१) मौत । (२) बरबादी, नाश (३) खलबली, हलचल।

तहस नहस—वि. [देश.] नष्ट, बरबाद। तहसील — संज्ञा स्त्री. [ त्र्य. ] (१) वसूली, उगाही। (२) बसूल किया हुआ धन। (३) कर या मालगुजारी जमा करने का कार्यालय।

तहसीलदार—संज्ञा पुं. [हिं. तहसील + फ़ा. दार ](१) कर वसूल करनेवाला । (२) सरकारी मालगुजारी वसूल करनेवाला ग्रधिकारी।

तहसीलना-कि. स. [हिं, तहसील ] वसूल करना। तहाँ कि. वि. [सं. तत। सं. स्थान, प्राथाग, थान ] - वहाँ, उस स्थान पर । उ.—हमता जहाँ, तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यों मानौं - १-११।

तहाँई—कि. वि. [हिं. तहाँ + ही ] वहीं, उसी स्थान पर। उ.—मो सनमुख कत श्राए हो दहन पिय रसमसे नैन श्रटपटे बैननि तहाँई जाहु जाके रंग रए हो-१०८४।

तहाना-कि, स. [हिं, तह ] तह करना, लपेटना । तहियाँ - कि. वि. [सं. तदाहि ] तब, उस समय।

कि. वि. [हिं. तहाँ ] वहाँ, उसी स्थान पर। तहियाना—क्रि. स. [फ्रा. तह ] तह लगाना, लपेटना। तहियो-ग्रव्य. [सं. तद्] तो भी, तब भी। तहीं-- कि वि [हिं तहाँ] वहीं, उसी स्थान पर। उ. - छाँडि तहीं सब राज-समाज । राजा गयौ

पास, निकट, समीप । (३) किसी के प्रति । (४)

कसकर बाँधने की डोरी।

तांडव — संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुरुषों का नृत्य । (२) उद्धत नृत्य जिसमें बहुत उछल-कूद हो। (३) शिव का नृत्य।

तांत-वि. [सं. ] (१) श्रांत, थका हुआ । (२) (शब्द) जिसके भ्रांत में 'त्' हो।

ताँत—संज्ञा स्त्री. [सं. तंतु ] (१) भेंड़-बकरी की अंतड़ी या पुट्ठों को बटकर बनाया हुन्ना सूत । (२) धनुष की डोरी। (३) डोरी। (४) सारंगी स्रादि का तार। मुहा.—ताँत सा-बहुत दुबला-पतला पर चिमड़ा।

ताँतड़ी—संशा स्त्री. [हिं. ताँत ] ताँत, सूत, डोरी। तांतव-वि. [सं.] जिससे तार निकल सके। ताँता—संज्ञा पुं. [सं. तित = श्रेग्गी ] पंति, कतार।

मुहा,—ताँता बाँधना—(१) पंक्ति में खड़ा होना। (२) कम या सिलसिला न टूटना, बराबर चले ग्राना। ताँ ति—संशा स्त्री. [हिं. ताँत ] बाजे का तार। उ.—

तैसे सूर सुने जदुनंदन बजी एक रस ताँति—३३६८। ताँतिया—वि. [हिं. ताँत ] बहुत दुबला-पतला। ताँती—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँता (१) कतार । (२) बालबच्चे। संज्ञा स्त्री. [हिं, ताँत ] बाजे का तार।

तांत्रिक—वि. [ सं. ] तंत्र-संबंधी।

संज्ञा पं. -- तंत्र-मंत्र या तंत्रशास्त्र जाननेवाला। ताँवा संशा पं. [ सं. ताम ] लाल रंग की एक धातु। ताँबिया, ताँबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताँबा ] ताँबे का पात्र। तांबूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पान। (२) पान का बीड़ा। ताँबे, ताँबें — तंशा पं. [हिं. ताँबा + ऐं (प्रत्य.)] ताँबे (नामक धातु) से । उ.—(क) तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तहनी बच्छ बहीं। "। खुर ताँबें, रूपें पीठि, सोनें सींग मढ़ी—१०-२४। (ख) ताँबे रूपे सोने सजि राखी वे बनाइकै—२६२८।

ताँवर, ताँवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. ताप, हिं. ताव] (१)

ज्वर, हरारत।(२) जुड़ी। (३) मूर्छा, पछाड़, चक्कर। ताँवरना—कि. अ. [हिं. ताँवर] (१) गरम होना, तपना। (२) क्रोध के आवेश में आना।

ताँवरा, ताँवरो—संशा पं. [हिं. ताँवर ] (१) ज्वर, हरा-रत । (२) जूड़ी । (३) मूर्छा, पछाड़, घुमटा, चवकर । उ.—ज्यों सुक सेमर सेव श्रास लगि, निसिबासर हिंठ चित्त लगायों, रीतों परयों जबै फल चाख्यों, उड़ि गयौ तूल, ताँवरो आयौ--१-३२६।

ताँसना-क्रि. स. [सं. त्रास ] (१) डाँटना-धमकाना । (२) सताना, कष्ट देना ।

ता-प्रत्य. [ सं. ] एक भाववाचक प्रत्यय जो विशेषण श्रौर संज्ञा शब्दों के आगे लगता है।

अंथ, फ़ि, ] (१) तक, पर्यंत । (२) वही, वैसा ही। उ.—हय गय खोलि भँडार दिये सब, फेरि भरे ता भाँति - १८-३६।

सर्व० [सं. तद्] उस । उ.—(क) सारेंग इक सारँग हो लोट्यी, सारँग ही कें तीर। सारँग-पानि राय ता ऊपर, गए परीच्छत कीर-१-३३। (ख) मानहुँ नभ निर्मल तारागन ता मधि चंद्र बिराजत **-- १३२**८. |

वि.—उस । उ.—तब सिव उमा गये ता ठौर । ताई—अव्य. [सं. तावत् या फ़ा, ता ] (१) तक, पर्वत । उ.—मोसौं पतित न श्रीर गुसाई । श्रवगुन मोपैं अअजहुँ न छूटत, बहुत प्च्यौ अब ताई -- १ १४७। (२) पास, समीप, निकट । (३) किसी के प्रति, किसी को लक्ष्य करके। (४) लिए, वास्ते, निमित्त। उ.—दूरि गयौ दरसन के ताई, ब्यापक प्रभुता सब बिसरी--१-११५।

ताई—कि. स. [हिं, ताना = ताव + ना (प्रत्य.) ] (१) ताव देकर, ता कर, गरम करके। (२) पिघला कर। सर्व, [हिं, ता+ई] उसे। संशा स्त्री. [सं. ताप, हिं. ताय + ई (प्रत्य.)]

(१) ताप, हरारत। (२) जूड़ी।

संशा स्त्री, [हिं, ताऊ ] ताऊ की पत्नी। ताईद्—संज्ञा स्त्री, [ग्रा.](१) पक्षपाती, तरफदारी।

(२) समर्थन, पुष्टि ।

ताउ-संज्ञा पुं. [ हिं. ताव ] (१) ताव। (२) गुस्सो। ताऊ—संशा पुं. [ सं. तात ] बाप का बड़ा भाई।

मुहा, -- बछिया के ताऊ। (१) बैल। (२) मूर्ख। ताऊस—संज्ञा पुं. [अ.] (१) मोर पक्षी। (२) एक बाजा। ताक— संशा स्त्री. [हिं. ताकना] (१) देखने की किया।

(२) स्थिर दृष्टि, टकटकी । (३) मौका, घात । मुहा.—ताक में रहना—मौका देखना, घात में

रहना। (४) खोज, तलाश, फिराक। संशा पुं [ त्र्य, ताक ] स्राला, ताखा

मुहा .- ताक पर घरना (रखना) - काम में न लाना। ताक पर रहना (होना) — काम में न आना, व्यर्थ पड़ा रहना ।

वि.—(१) जो सम न हो। (२) अनुपम, अद्वितीय। ताकभाक-संशास्त्री. [हिं. ताकना + भाकना ] (१) बार-बार देखना। (२) छिपकर देखना। (३) देख-भाल, निगरानी । (४) खोज ।

ताकत-कि. स. [ हिं. ताकना ] एकटक दृष्टि से देखता है। उ,--धन-जोबन-मद ऐंड़ी ऐंड़ी ताकत नारि पराई--१-३२८।

संशा स्त्री. [ अ. ताकृत ] जोर, शक्ति, सामर्थ्य । ताकतवर — वि. [हिं. ताकत + वर ] बली, समर्थ। ताकना-कि. स. [सं. तर्कण=विचारना ] (१) सोचना-विचारना। (२) दृष्टि जमाकर या टकटकी लगाकर देखना। (३) ताड़ लेना, समक जाना। (४) देखकर स्थिर करना । (४) रखवाली करना, देखते रहना । ताकि-कि. स. [हिं. ताकना ] देखकर, दृष्टि गड़ा कर, ग्रवलोकन करके। उ. - लकुट कें डर ताकि तोहिं तब पीत पट लपटात--३६०।

श्रव्य. [फ़ा.] जिससे, इसलिए कि । ताकी—सर्वे [ हिं. ता + की (प्रत्य. ] उसकी। उ.— किल मैं नामा प्रगट ताकी छानि छवावै--१-४। ताकीद्—संज्ञा. स्त्री. [ श्र. ] चेतावनी । ताके, ताके-सर्व. [हिं. ता + के, कें (प्रत्य.)] उसके।

उ.—पट कुचैल, दुर्बल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)—१-७। (ख) ज्यों मृगा कस्तूरि भूले, सुतौ ताकें पास-१-७०।

साको, ताकों — सर्व [हिं. ता + को, कों (प्रत्य)] उसे, उसको। उ.— रावन आरि को अनुज बिभीषन ताकों मिले भरत की नाई — १-३।

ताकौ—सर्व. [हिं. ता + को (प्रत्य.)] उसका, उसके लिए। उ.—िनरभय देह, राज-गढ़ ताकौ, लोक मगन-उतसाहु—-१-४०।

ताक्यो, ताक्यो—िक. स. [हं. ताकना ](१) देखा, प्रव-लोका, निहारा। उ.—(क) स्रदास प्रभुध्यान हृदय धरि गोकुल तन को ताक्यो—२४७६। (ख) उन किछु नेक चतुरई कीनी गेंद उछारि गगन मिस ताक्यो—२५४६। (२) स्थिर किया, निश्चय किया, घात में लगा। उ.—गैयन भीतर आह समान्यों कान्हहिं मारन ताक्यो—२३७३।

ताख, ताखा— संज्ञा पुं. [हिं. ताक] म्राला, ताक। उ.—
स्रदास ऊघो की बितयाँ उड़ उड़ि बैठीं ताख—३३२१।
ताखड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं त्रि + हिं. कड़ी] तराजू।
तागड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताग + कड़ी] (१) करधनी
या किंकिणी नामक कमर का गहना। (२) कमर में
पहनने का रंगीन डोरा।

तागना— कि. स. [हिं. तागा] मोटी सिलाई करना।
तागा—संज्ञा पुं. [सं. तार्कव, प्रा. तागगो प. हिं. तागो
या पहलवी—ताक = रेशा] रुई, रेज्ञम श्रादि का सूत,
डोरा, धागा।

ताछन—संज्ञा पुं. [सं तक्ण] शत्रु के श्राक्रमण से बचने श्रीर उस पर वार, करने को बगल से बढ़ना, कावा। ताछना—क्रि. श्रा. हिं. [ताछन] वार करने के लिए बगल से बढ़ना।

ताज—संशा पुं. [फ़ा.] (१) मुकुट, राजमुकुट। उ.—
(क) कौरव-पित को पारथो ताज-१-२४५ (ख)
बिकल मान खोयो कौरवपित, पारेड सिर को ताज१-२५५। (२) कलगी। (३) मुर्गे आदि पक्षियों की
शिखा। (४) दीवार की कँगनी। (५) आगरे का
प्रसिद्ध ताजमहल।

ताजगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ताजगी] (१) ताजा या हरा-पन। (२) प्रफुल्लता, स्वस्थता (३) नयापन। ताजा- वि. [फ़ा ताज़:] (१) हरा-भरा। (२) पेड़ से तुरंत टूटकर श्राया हुग्रा। (३) जो थका-माँदा न हो, नया दमदार। (४) तुरंत का बना हुग्रा। (४) जो बहुत दिनों का या पुराना न हो।

ताजिया—संज्ञा पुं. [फा.] कागज श्रादि के बने मकबरे की श्राकृति के मंडप जो मुहर्रम में शिया मुसलमान दस दिन तक रखने के बाद गाड़ते हैं।

ताजी—संशा पुं. [फा. ताज़ी](१) अरबी घोड़ा। उ.(क) बिडरे गज-जूथ सील, सैन-लाज भाजी। घूँघट
पट कोट टूटे, छूटे हग ताजी—६८०। (ख) नव
बादल बानैत पवन ताजी चिंह चुटिक दिखायो—
रू४० (२) शिकारी कुता।

वि. [फ़ा.] ग्ररव का, ग्ररव संबंधी।

वि. स्त्री. [हिं. ताजा] (१) नया। (२) स्वस्थ।
ताज्जुब—संशा पुं. [श्र. तत्राज्जुब] ग्राचरज, ग्राश्चर्य।
ताटंक, ताडंक— संशा पुं. [सं.] कान का एक गहना,
करनफूल, तरकी। उ.— (क) जिन हिंवनन ताटंक
खुभी श्रीर करनफूल खुटिलाऊ—३२२१। (ख) कहुँ
कंवन कहुँ गिरी मुद्रिका वहुँ ताटंक वहुँ नेत—३४५।
ताड़—संशा पुं. [सं.] (१) एक शाखारहित बड़ा पेड़।

(२) ताड़ना, प्रहार । (३) शब्द, ध्वनि, धमाका । (४) हाथ का एक गहना ।

ताड़का—संज्ञा स्त्री. [सं. ताड़का] एक राक्षसी जो सुकेतु नामक यक्ष की कन्या थी। इसमें हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। प्रगस्त्य के ज्ञाप से यह राक्षसी हो गयी थी। विक्वामित्र की ग्राज्ञा से इसे श्री रामचंद्र ने मार दिया था। उ.—मारग में ताड़का जु न्त्राई घाई बदन पार। छिन में राम तुरंत सो मारी नेक न लागी वार—सारा. २०३।

ताड़न—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) मार, प्रहार । (२) डाट-डपट (३) शासन, दंड ।

ताड़ना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मार, श्राघात। (२) घुड़की, डाँट। (३) धमकी, सजा। (४)यातना, पीड़ा। कि. स.—(१) मारना-पीटना (२) डाँटना, धम-काना। (३) दंड देना। (४) यातना या पीड़ा देना। कि. स. [सं. तर्कण=सोचना] (१) किसी गुप्त बात को श्रनुमान या बुद्धि से कुछ कुछ समभ

लेना, भांपना। (२) मार-पीटकर भगाना, हाँकना।
ताड़नीय—िव. [सं.] दंड देने या डाँटने योग्य।
ताड़ित—िव. [सं.] (१) जो मारा-पीटा गया हो।
(२) जो डाँटा-घुड़का गया हो। (३) दंडित, शासित।
(४) उत्पीड़ित। उ.—काँपन लागी घरा, पाय तेँ
ताड़ित लिख जदुराई—२०७। (४) हँकाया हुग्रा।
ताड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ताड़ का छोटा वृक्ष।
(२) एक ग्राभूषण।

संज्ञा स्त्री, [हिं. ताड़ + ई (प्रत्य.)] ताड़ के डंठलों से निकाला हुग्रा एक प्रकार का नशीला रस। ताड़ का—संज्ञा स्त्री. [हिं. ताड़का] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की ग्राज्ञा से श्रीराम ने मारा था। ताड़े—िक. स. [सं. ताड़ना] मारे-पीटे, नष्ट किये। उ.—पवन-पूत दानव-दल ताड़े दिसि चारी--६-६६। तात—संज्ञा पुं, [सं.] (१) पिता। उ.—(क) कोप तात प्रहलाद भगत को, नामिह लेत जरे—१-५२। (ख) मुनि बिसिष्ठ पंडित ग्राति ज्ञानी रचि-पचि लगन धरे। तात-मरन सिय-हरन राम बन-बपु धरि बिपति भरे—१-२६४। (२) पूज्य व्यक्ति, गुरु। (३) छोटों

तात—२६२७।

वि. [हिं. तत्ता] गरम, तप्त। उ.—(क) विष
जवाला जल जरत जमुन की, याकें तन लागत नहिं
तात—५५४। (ख) एक फॅक कों नाहिं तू विषजवाला स्रति तात—५८६।

के लिए स्नेहसूचक संबोधन। (४) पुत्र, बेटा, लड़का।

उ.—रजक धनुष गज मल्ल मारे तनक से नँद-

तातकाल—कि. वि. [सं. तत्काल] तुरंत, उसी समय, उसी दम, तत्काल। उ.—श्रागिनि बिना जानें जो गहै। तातकाल सो ताकों दहै"" । हरि-पद सौं उन ध्यान लगायो। तातकाले बैंकुंठ सिधायो-—६-४।

तातगु—संशा पुं. [सं.] चाचा।
तातन—संशा पुं. [सं.] खंजन पक्षी।
तातपर्य—संशा पुं. [सं. तातपर्य] भाशय, श्रिभिशय।
ताता—संशा पुं. [सं. तात] (१) पिता, बाप। उ.—
(क) राम जू कहाँ गए री माता १ सूनो भवन,

सिंहासन स्नी, नाहीं दसरथ ताता—१-४६। (ख)

धन्य बानी गगन धरिन पाताल धनि धन्य हो, धन्य बसुदेव ताता—२६१५। (ग) श्रांतरजामी जानि नंद सौं पूँछत बाता। कहा करत हो सोच, कहो कछु मोसों ताता—५८६। (२) पूज्य व्यक्ति। (३) पुत्र-शिष्य श्रादि के लिए स्नेह-सूचक संबोधन।

वि. [सं. तप्त, प्रा. तत्त ] तपा हुग्रा, गरम।
ताताथेई—संशा स्त्री. [ग्रनु.] नृत्य का एक बोल, नृत्य
में पर गिरने का ग्रनुकरण शब्द। उ.—होड़ा होड़ी
नृत्य करें रीभि रीभि ग्रंक भरें ताताथेई उत्रटत हैं
हरिष मन—१७८१।

ताति—संशा पुं. [सं.] पुत्र, लड़का, बेटा।
ताती—वि. [हिं. तत्ता] (१) तपी हुई, गरम। उ.—
(क) गो हुल बसत नंद नंदन के कबहुँ बयारि न
लागी ताती—३०७७। (स) नैन सजल कागद श्राति
कोमल कर श्राँगुली ताती—३०८०। (२) कठिन,
भयंकर। उ.—छाता लों छाँह किए सोभित हरिछाती। लागन नहिं देत कहूँ समर-श्राँच ताती—१-२३।

तातील—संज्ञा स्त्री. [ अ. ] छट्टी या अवकाज का दिन ।
तातें, तातें—िक. वि. [ हिं. ता + तें. ( प्रत्य ) ] इसलिए, इस कारण। उ.— (क) सब बिधि अगम
बिचारहिं तातें सूर सगुन पद गावै—१-२। (ख)
तातें सेइये श्री जदुराइ। संपति विपति, बिपति तें
संपति, देह को यहै सुकाइ—१ २६५। (ग) सुनतिहें
सुगम कहत निहं त्रावत बोलि नाइ निहं तातें--२७१३।
ताते—िवं. [ हिं. ताता ] (१) तत्ते, गरम, गरमागरम।
उ.—मीठे अति कोमल हैं नीके। ताते, तुरत चभोरें
घी के—३६६। (२) बुरे, दुखदायी, कर्ष्टदायक।
उ.— समाचार ताते श्री सीरे श्रागे जाय लहै- २६०५।
कि. वि. [ हिं. ता + ते ] इसलिए, इस कारण।
उ.—नंद जिंदोदा के तुम बालक बिनती करतिं हों
ताते—२५२८।

तातो, तातो—िव. [हिं. तत्ता ] गरम, जलानेवाला, दुख-दायो। उ.—िबषयासक रहत निसि बासर सुख सियरो दुख तातो—१-३०२।

तात्कालिक—वि. [सं.] तुरंत का, उसी समय का।

तात्पर्य—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) आज्ञाय, श्राभिप्राय, मतलब। (२) तत्ररता। तात्विक—वि, [ मं, ] (१) तत्व में संबंधित । (२) तत्व के ज्ञान के युक्त। (३) यथार्थ, वास्तविक । तादात्मय—संज्ञा प. [ सं. ] एक वस्तु का दूसरी से मिलकर उसी के रूप में हो जाना। तादाद-संग स्त्रा. [ त्रा, तत्रदाद ] संख्या, गिनती। तादृश—िव. [ सं. ] उसके समान वैसा। ताधा- संग स्ना. [हि. तातांगई] नृत्य में एक बोल। नाचने में पर के गिरने का ग्रानुकरण शब्द । उ.— भृकुटा धनुष नेन सर सधे बदन बिकास अगाधा। च वल चपल चार अवलंकिनि काम नचावति ताथा। तान—संज्ञा स्त्री. [सं. ] (१) तानने का भाव, फैलाव। (५) सुर का खींचना, लय का विस्तार। उ.— काम-क्रोध-मर लाभ-मोह की तान-तरंगीन गायी-8-2041 मुहा.—तान उड़ाना (भरना, मारना, लेना)— राग श्रलापना, गीत गाना। (३) ज्ञान या बोध का विषय। (४) एक पेड़। कि. स. [हिं, तानना ] (१ फैलाने को खींचकर। मुहा. — तानकर — बलपूर्वक, जोर से। (२) खींचने के लिए फैलाकर। मृहा.—तान कर सोना—बंफिको से सोना। तानत — क. स. [हि. तानना ] खीचने या तानने (से), तानता है। उ. - छाटे गयं कुटिल कटाच् त्रलक मनो टूटि गय गुन तानत-पृ. ३३६। तानना - कि. स. [ हिं. तान=विस्तार ] (१) फैलाने के लिए खींचना। २) जोर से खींचकर फैनाना। (३) किसा परदे आदि को फैलाकर बाँच देगा। (४) एक तरफ से दूसरी तरफ तक डोरी ग्रादि बाँचना। (४) मारने के लिए हाथ या हिंथयार उठाना (६) चिट्ठी-पत्रा या स्रावेदन-पत्र भेजना । (७) जेल भजना । तानपूरा—संज्ञा प. [सं, तान+हिं. पूरा ] सितार के श्राकार का बाजा जो सुर बाँधने में सहारा देता है। तानबान संज्ञा प. [हि. तानाबाना ] कपड़ा बिनने में लंबाई श्रोर चौड़ाई के बल फेनाये हुए सूत।

तानसेन—संज्ञा पं.—सम्राट श्रकबर का समकालीन एक प्रसिद्ध गवैया जिमका नाम त्रिलोचन मिश्र था। ताना—संज्ञा पं [ हि. तानना ] (१) कपड़ा बिनने में लंगई के बल फैलाया हुआ सूत। (२) करघा। कि. स. [हि. ताय+ना (प्रत्य.)] (१) गरम करना, तपाना । (२) पिघलाना । (३) तपाकर ( धातुग्रों की ) परीक्षा करना। (४) ग्रजमाना। कि. स. [हि. तावा ताव] दक्कन मूँदना। संज्ञा पु. [ त्र्य. ] चुभती हुई बात, व्यंग्य। संज्ञास्त्रा. [हिं. तान ] तान, लय, सुर। उ.— सुन्यो चाहौ स्वयन मधुर मुरला की ताना—१८१७। तानावाना—सता पु. [हिं. ताना + व'ना ] कपड़ा बुनने मे लंबाई श्रोर चौड़ाई के बल फैलाये हुए सूत। तानारीरा - संशा स्त्रा. [हि. तान + अनु. गरी ] राग । तानी—संज्ञा स्त्रो. [हिं. ताना । कपड़ा बुनने में लंबाई के बल रहनेवाला सूत। त नूर्— संज्ञा पु. [ सं. ] पानी या वायु का भवर। तान-सजा पुं. सवि. [हिं. तान ] तान को। क्रि. स. [ हिं. तानना ] तानता है। उ.—(क) नासा पुटनि सँको नांत लोनिति बिकट भृकुटि धनु तःनै—२०५३। (ख) जैस मृगिश्रन ताकि बविक द्या कर कोदड गहि तानै—३१३६। तान्यो — कि. स. [हि. तानना ] ताना, पसारा, फैलाया। उ.—ग्रासा के सिहासन बट्यी, दंभ-छत्र सिर तान्यौ---१-१४१। तान्व —संशा पं. [ सं. ] पुत्र, लड़का, बेटा। ताप — संज्ञा पूं [ सं. ] (१ उप्णता, गरमी। उ.— जद्यपि मलय-वृच्छ जड़ कःटे, कर कुठार पकरै।

तान्व —संशा पु. [स.] पुत्र, लड़का, बटा।
ताप — संशा पुं [सं.] (१ उप्णता, गरमी। उ.—
जद्यपि मलय-वृन्छ जड़ कार्टे, कर कुठार पकरै।
तउ सुगाव सातल निहं छाँड़े, रिपु तन-ताप हरें—
१-११७। (२) श्रांच, लपट। (३) ज्वर। (४)
कष्ट, दुल, पीड़ा। उ.—(क) ताते जानि भजे बनशरी। सरनागत की ताप निवारी—१-२८।
(ख) नंद'-हृदय भयौ सुनि ताप—४५। (ग) बहुत दिनन के ताप तबन के सुफलक-मृत सब मेटे—
सारा. ५६२।
तापक—संशा पु. [सं.] (१) ताप उत्पन्न करनेवाला।

(२) रजीगुण। (३) उचर। सापती—संशा स्त्रो. [सं.](१) सूर्यं की एक कन्या, तापी। (२) सतपुरा पहाड़ से निकलनेवाली एक नदी। ताप-त्रय—संज्ञा प्. [तं. ताप+त्रय] तीन प्रकार के ग्राध्यात्मिक, ग्राधिदंविक, ग्रीर ग्राधिभौतिक; इन्हें देहिक, दिवक भीर भौतिक भी कहते है। तापत्रय-हरन — संशा पुं. [ सं. ताप+त्रय+हरण ] तीनों प्रकार के ताप—ग्राध्यात्मिक, ग्राधिदैविक, श्रीर ग्राधिभौतिक — हरनेवाला, ईश्वर । उ. — दीन जन क्यों करि आवे सरन ?-भूल्यों फिरत सकल जल-थल मग, सुनहु ताप-त्रय-हरन--१ ४८ । सापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ताप देनेवाला । (२) सूर्य । (३) कामदेव का वाण। (४) सूर्यकांत मणि। (५) मदार। (६) ढोल बाजा। (७) एक नरक। तापना - कि. अ. [सं तापन , आग से अपने आपको जाड़ा दूर करने के लिए गरमाना। ्र क्रि. स.—(१) जलाना । (२) नष्ट करना । कि. स - तपाना, गरम करना। ताप-निवारन—संज्ञा पुं. [सं. ताप + निवारण ] (१) कष्ट दूर करनेवाले। (२) ईश्वर जो श्राध्यात्मिक, ग्राधिदविक ग्रौर ग्राधिभौतिक दुखों से छटकारा दिलाता है। उ.—तान जोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक सुखकारी-१-३०। तापमान संज्ञा पूं. [सं. ] उज्जता की मात्रा। तापल-संज्ञा पुं. [ मं. ताप ] क्रोध, गुस्सा । तापस—संज्ञा पु. [सं.] (१) तप करनेवाला, तपस्वी। उ. - जती सती तापस आराधे, चारौ बेद रट-१-२६३। (२) तमाल का वृक्ष। तापसी—संज्ञास्त्राः सं. ] (१) तपस्वी की स्त्री। (२) तपस्या करनेवाली स्त्री, तपस्विनी । तापित—ित्र. [सं ] (१) जो तपाया गया हो । (२) जिसने ताप या कब्ट सहा हो, दुखित, पीड़ित। तापी-नि [ सं. तापिन् ] जिसमें ताप हो ! संज्ञा स्त्री,—(१) सूर्य की एक कन्या का नाम। (२) तापती मदा जो सतपुरा से निकलती है। तापु—संशा पुं, [सं.] कट, दुख, पीड़ा। उ.—सुंदर

बदन दिखाइ के. हरी नैन की तापु--४-३१। तापेंदु—संज्ञा पुं. [ सं. ताप + इंद्र ] सूर्य । तापें - सर्व [हिं. ता+पे (प्रत्य)] उस पर, उसके पास। उ.—(क) दुरवासा श्रवरीस सतायी, सो हरि सरन गयी। परतिशा राखी मन-मोहन, फिर्र यापै पठभी-१-३८:। (ख) भारत जुद्ध बितत जब भयो। दुर-जांधन अकेल रहि गयी। अस्वत्थामा तापै जाइ। एसी भाँति वहारे समुकाइ--१-२८६। तामी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तापती ] तापती नदी। तापता—संज्ञा पुं [फ़ा, तापती | धूप-छांह का चमक-दार रेशमी कपड़ा। ताब—सहास्त्रा [फ़ा.] (१) गरमी। (२) चमक। (३) हिम्मत, मजाल। (४) सहन्दादित। ताबड़ताड़—कि. वि. [ श्रनु. ] लगातारं. बराबर । ताबूत—संशा पुं. श्रि. । संदूक जिसमें मुर्दा रखते हैं। ताबे—वि. [अ. ताबग्र] (१) वश में, ग्रधान। (२) श्राज्ञा माननेवाला, श्राज्ञाकरी। ताबेदार-वि. [ श्र. ता अश्र + फ़ा. दार ] श्राज्ञाकारी। संज्ञा पुं ---नौकर, सेवक, दास। ताबेदारी—सज्ञा स्त्री. [हि. ताबंदार] (१) नौकरी, सेव-काई। (२) सेवा, टहल। ताम-संज्ञा पु. [सं. ] (१) मनोविकार, चित्त का उद्देग,

व्याकुलता। उ.—(क) मिट्यों काम तनु ताम तुरत ही रिभई मदनगोपाल। (ख) तरु तमाल तर तरुन कन्हाई दृरि करन जुनतिन तनु ताम—१३२७। (२) दुख, क्लेश, व्यथा, कव्ट। उ.—देखत पय पीनत बलराम। तातो लगत डारि तुम दीनो दानानल पीनत निहं ताम—४६७। (३) दोष। (४) ग्लानि। वि—(१) दुखी, व्याकुल। उ.—ग्रिति सुकुमार मनोहर मूरित, ताहि करित तुम ताम। (२) भोषण, डरावना, भयानक ग्राकृतिवाला।

संज्ञा पुं. [सं. तामस ] (१) क्रोध, रोष, गुस्सा।
उ.— (क) सूर प्रभु जेहि सदन जात न सोई करित
तनु ताम। (ख) कंस को निर्वस है है करत इन
पर ताम—२५६६। (२) ग्रंधकार, ग्रंधेरा। उ.—
(क) वही ती सूरज उगन देखें नाहि, द्विस दिसि

बाढ़ें ताम—१-१४८ । (ख) जननि कहत उठहुं स्याम । बिगत जानि रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमकों कछ खेबें।

तामजान तामजाम संज्ञा पुं. [हिं. थामना + सं. यान]
एक खुली सवारी जो लंबी कुरसी की सी होती है।
तामड़ा—िव. [हिं. ताँबा + ड़ा ] ताँबें के रंग का।
संज्ञा पुं.—(१) ऊदा पत्थर। (२) गंजी खोपड़ी।
(३) साफ श्राकाश।

तामरस—सज्ञा पुं. [ सं. ] (१) कमल। (२) सोना। (३) तांबा। (४) धतूरा।

तामस—वि. [सं.] तमोगुण युवत । उ.—ब्रह्मा राजस गुण श्रिधकारी, सिव तामस श्रिधकारी।

संशा पुं.—(१) क्रोध, गुस्सा । उ.—कहु तोकों केसे आवत है सिसु पर तामस एत । (२) साँप । (३) खल दुष्ट । (४) उल्लू नामक पक्षी । (५) अंधकार, ग्रंधेरा । (६) अज्ञ न, मोह।

तामसी—िव. स्त्री. [सं.] तमोगुणवाली, जिसकी प्रकृति तमोगुणयुक्त हो । उ.—ितन बहु सुष्टि तामसी करी—३-७।

संज्ञा स्त्री,—(१) ग्राँधेरी रात। (२) महाकाली। तामिल – संज्ञा स्त्री, [देश,](१) द्राविड जाति की एक शाखा। (२) तामिल लोगों की भाषा।

तामिस—संज्ञा पुं. [सं.](१) एक नरक का नाम।(२) श्रोध।(३) द्वेष।(४) एक श्रविद्या।

तामील—संशा स्त्री. [श्र.] श्राज्ञा का पालन।
तामें सर्व [हिं. ता + मैं (प्रत्य.)] उसमें। उ.—
नृप कन्या की ब्रत प्रतिपारथी, कपट वेष इक
धारथी। तामें प्रगट भए श्रीपति जू श्रार-जन-गर्व
प्रहारथी—१-३१।

ताम्र ताम्रक—संशा पुं. [सं.] तांबा।
ताम्रपत्र—संशा पुं. [सं.] (१) तांबे का पत्तर। (२)
तांबे का पत्तर जिस पर प्रक्षर प्रादि खुदे हों।
ताम्र वर्गा — वि. [सं.] (१) तांबे के रंग का। (२) लाल।
ताय—संशा पुं. [सं. ताप, हि. ताव (१) ताप, गरमी।
(२) जलन। (३) घूप।
सर्व,—[हिं. ताहि] उसे, इसकी। उ.—वांके

श्रासम जो कोऊ बसत है माया लगत न तायं— सारा, १६६।

तायना—कि. स. [हिं, ताव ] तपाना, गरम करना। ताया—संज्ञा पुं. [सं. तात ] बाप का बड़ा भाई।

कि. स. [हिं, ताना ] गरम किया, पिघलाया। तार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चाँदी । (२) सोने-चाँदी श्रादि धातुश्रों का बहुत पतला सूत या डोरी।

मुहा.—तार-तार करना—बिनी या बटी हुई चीज की धिजयाँ उड़ा देना । तार तार होना—बहुत फट जाना।

(४) परंपरा, चलता हुग्रा कम, सिलसिला।

मुहा — तार टूटना — चलता हुग्रा काम या अम टूटना। तार बँधना — किसी काम या बात का सिल-सिला शुरू होना। तार बँधाना (लगाना) — किसी बात या काम को बराबर करते जाना।

(१) ब्योंत, सुबीता । (६) ठीक नाप । (६) युवित, उपाय, ढब। (१६) श्री राम की सेना का एक बंदर। (११) नक्षत्र, तारा।

संशा पुं. [सं. ताल] (१) ताली, ताल। उ.— मोहि देखि सब हँसत परस्पर, दे दे तारी तार— १-१७५। (२) ताल मजीरा। (३) करताल। उ.— डिमडिमी पटह ढोल डफ बीना मृदंग उपंग चंग तार—२४४६ (१)।

संशा पुं. [सं. तल ] तल, सतह।

संशा पुं, [हि, ताड़] कान का ताटंक नामक गहना। उ.—स्वनन पहिरे उलटे तार।

वि. [सं.] (१) जिसमें से किरणें फूटी हों। (२) स्वच्छ, निर्मल।

कि. स [हिं. तारना] तार कर, उद्धार करके। उ.—इंद्रप्रस्थ हरि गये कृपा करि पांडव-कुल को तार—सारा. ६५४।

तारक संज्ञा पुं. [सं.] (१) राम का षड़ाक्षर मंत्र, 'श्रों रामायनमः' का मंत्र । उ.— गोबिंद-भ जन करों इहिं बार । संकर पारवती उपदेसत तारक मंत्र लिख्यों स्नुति-द्वार— २-३। (२) नक्षत्र, तःरा । (३) श्रांख । (४) श्रांख की पुतली। (४) एक श्रसुर। (६) पार

करनेवाला । (७) मल्लाह, केवट। (८) उद्घारक । तारका—संज्ञा स्त्रो. [सं.] (२ नक्षत्र, तारा। (२) ग्रांख की पुतलो। (३) बालि की स्त्रो तारा। उ. —सुग्रीव को तारका मिजाई बध्यो बालि भयमंत।

संज्ञा स्त्री. [हिं, ताइका] ताइका नामक राक्षसी। तारकाच् — संज्ञा पुं, [सं, ] तारकासुर का पुत्र। तारकामय—संज्ञा पुं, [सं, ] शिव, महादेव। तारकासुर—संज्ञा पं, [सं, ] एक श्रसुर जिसे देव सेनापति

कुमार कार्तिकेय ने मार था। तारिकत, तारको—िवि. [सं, तारिकत ] तारों से युक्त। तारकेश्वर—संजा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) एक शिवः

लिंग जो कलकत्ते के पास है। तारख— संगा पुं. [सं. ताद्य | गहड़। तारखी—संगा पुं. [सं. ताद्य ] घोड़ा।

तारघाट—मंत्रा पुं. [हिं. तार + घात ] मतलब गेंठने या निकलने का दांव, घात या ग्रायोजन ।

तारगा—मंजा पुं. [ सं. ] (१) पार करने की किया। (२) उद्धार, निस्तार। (३) उद्धारक। (४ विष्णु।

तारत—िक. स. [हिं, तारना] (१) पार लगाते हैं। (२) उद्धार करते हैं, सद्गति देते हैं, तारते ही, मुक्त करते ही। उ— (क) काहू के कुल नतन न बिचारत। श्रविगत की गति कहि न परित है, ब्याध-श्रजा मल तारत—१-१२। (ख) साँचे बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक श्रवाज—१-६६।

तारतम्य—संशा पुं. िसं. े (१) कम या ज्यादा का ऋम या संबंध। (२) कम-ज्यादा के श्रनुसार उत्तरोत्तर ऋम। (३) दो वस्तुश्रों के कम या ज्यादा गुण, परि-माण श्रादि का परस्पर मिलान।

तार तार — ति. [हिं, तार ] कटा-फटा, उधड़ा हुग्रा। तारतोड़—संज्ञा पुं. [हिं, तार + तोड़ना ] कारचोबी या जरदोजी का काम।

तारन—कि. स. [हि. तारना ] उद्घार करने के लिए, तारने को, मुक्त करने को। उ.—मैं जुरह्यों रार्जाव-नैन दुरि, पाप-पहार-दरी। पात्रहु मोहिं वहाँ तारन कों, गूड़-गंभीर खरी—११३०।

संज्ञा पुं. [हिं. तर ] छत या छाजन की ढाल।

तारना — क्रि. स. [ सं. तारण ] (१) पार सगाना । (२) संसार से उद्धार करना, मुक्ति देना ।

तारित—संज्ञा पं. बह, सं. तारे ] श्रांख की पुतलियां। उ. - मंजुल तारित की चपलाई, चित्त चंतुराई करवे री—१०-१३७।

तारलय—संजा पुं. [ सं. ] (१) द्रवित होने का भाव या धर्म, द्रवता। (२) चंचलता, चपलता।

तारा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नक्षत्र, सितारा।

मुहा.—तारा टूटना—उल्कापात होना। तारा

डूबना— (१) किसी नक्षत्र का श्रस्त होना। (२)

शुक्र का श्रस्त होना। तारा सी श्राँख हो जाना
(होना) श्रांख का स्वच्छ या नीरोग होना। तारा
हो जाना—(१) बहुत ऊँ वाई पर पहुंच जाना। (२)

बहुत ग्रंतर या फासले पर होना ।

(२) भाग्य, किस्मत, सितारा।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बृहस्पित की स्त्री। (२) श्रांख की पुतली। (३) एक महाविद्या। (४) बालि नामक बानर की स्त्री। (४) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कमला तारा बिमला चंदा चंद्राविल सुकुमारि—१५०।

संज्ञा. पुं. [हि. ताला] ताला, कुलुफ ।
ताराप्रह—संज्ञा पुं. [सं. पांच ग्रहों—मंगल, बुध, गुरु,
शुक्र ग्रोर शनि—का समूह।

ताराज—संज्ञा पुं. [फ़ा] (१) लूटमार। (२) नाजा।
ताराधिप, नाराधीश—संज्ञा पुं. { सं. ] (१) चंद्रमा।
(२) जिव। ३) वृहस्पति। (४) बालि। (५) सुग्रीव।
तारानाथ, तारापति—संज्ञा पुं. िहं. तारा + नाथ,
पिन ] (१) चंद्रमा। (२) वृहस्पति। (३) बालि।
(४) सुग्रीव।

तार पथ - संज्ञा पुं. [सं.] ग्राकाश।
तारापीड़ - संज्ञा पुं. [सं.] चद्रमा।
ताराभूषा - संज्ञा स्त्री. [सं.] रात, रात्रि।
तारामंडल - संज्ञा पुं. [सं.] नक्षत्रों का समूह या घेरा।
तारायण - संज्ञा पुं. [सं.] ग्राकाश।
तारायण - संज्ञा पुं. [सं.] ग्राकाश।
तारायण - कि. स. [हिं. तारना] तार कर, मृक्त करके,
उद्घार करके। उ. - हुद्र पतित तुम तारि रमापति,

श्रव न करी जिय गारी-१-१३१। तारिक - संज्ञा स्त्री. [सं ] पार उतारने की मजदूरी। तारिका—संग्रास्त्री. [सं.] ताड़ी नामक मद्य।

संज्ञास्त्री. [हि. तारका] नक्षत्र, तारा। उ.— तारिका दुरानी, तमचुर बोले, स्रवन भनक परी ललिता के तान की-१६०६।

तारिग्गी—ित्र. स्त्रा. [ सं. ] तारनेवाली। संज्ञास्त्रा. तारा देवी।

तारिबे - कि. स. [हिं. तारना] उद्धार करने (को), मुक्त करने या सद्गति देने को । उ.—(क) और को है तारिवे को कही कुपा ताता-१-१२३।(ख) सत्य भक्ति तारिबे को लीला बिस्तारी--१-१७६। तारिहों - कि. स. [हि. तारना] तारोगे, मुक्त करोगे,

उद्धारोगे, निस्तारोगे। उ. तौ जानौ जो मोहि तारिही. सूर कूर कांब छोट-१-१३२।

तारी--संज्ञा स्त्री. [ हि. तारा = त्राँख की पुतली ] (१) निद्रा। (२) ध्यान, समाधि। उ.— (क) सिव की लागी हरि-पदतारी। ताते नहिं उन श्रांखि उघारी— ४-५। (ख) बँसुरी बजाइ आछे दग से मुरारी। सुनि के धुनि छूट गई संकर की तारी—६४६। संग्रा स्त्री. [ हि. ताड़ी ] ताड़ी नामक मद्य।

कि स. [हि. तारना] (१) पार लगा दो। उ.— श्रंबर हरत सभा मैं कुष्णा सोक-िंधु तै तारी-१-२८२। (२) उद्धार कर दिया, मुक्ति दी । उ.— गौतम की पतिनी तुम तारी, देव, देवानल कौं श्रँचयौ-१२६।

संज्ञा स्त्री. [हि. ताली] ताली, करतल का परस्पर श्राघत । उ. — मोहिं देखि सब हँसत परस्पर, दें दे तारी तार १-१७५।

तारीक — वि. फिं. ] (१) काला । (२) धुँधला । तारीकी-सन्। स्ना. [फा.] (१) स्याही। (२) ग्रंधेरा। तारीख—संज्ञा स्त्रो, [फ़ा,] (१) तिथि। (२) नियत तिथि। तारंफ-संज्ञा स्त्री. [ श्र.] (१) परिभाषा, लक्षण। (२) वर्णन, विवरण। (३) प्रशंसा, बड़ाई। (४) गुण। तारु, तारू — संश पं. [हिं. तालू] तालू।

महा,-रसना तारू सों नाहिं लावत-चूपचाप नहीं

रहता। उ.—चातक के रट नेह सदा वह रितु ग्रन. रितु निहं हारत। रसना तारू सों निहं लावत पीवै पीव पुकारत-पृ. ३३० ।

तारुएय—संज्ञा पं. [ सं. ] यौवन, जवानी।

तारे कि. स. [हिं. तारना ] (१) पार पहुँचाये, पार लगाये। (२) उद्धारे, मुक्त किये, सद्गति दी। उ.— (क) कहा कहीं हिर केतिक तारे, पावन-पद पर-तंगी-- १-२१। (ख) बन में जाय बहुत मुनि तारे दूरि करें भुत्र-भार—सारा. २५२। (ग) मारग में मुनिचन तारे ऋरु बिराध रिपु मारे--सारा. २४५ । संज्ञा पुं. ब :. [सं. तारा ] १) नक्षत्र मितारे। मुहा.—तारे गिनना— चिता, दुख, श्रासरे या प्रतीक्षा म बेचैनी से रात काटना । तारे गनत-चिता, दुख या प्रतीक्षा में बेचेनी से रात कटी। उ.— (क) स्रदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु रैनि गनत गयी तारे—२७८१। (ख) तारे गन तगगन के सजनी बीते चारौ जाम-२८२३ । तारे खिलना- तारों का चमकना । तारे छिटकना—स्वच्छ श्राकाश में तारे चमकना । तारे ते इलाना— १) श्रसंभव काम कर दिखाना। (२) बड़ी चालाकी से काम करना। तारे दिखायी देना—कमजोरी के कारण श्रांखों के सामने तिरमिराहट होना।

(२) आँख की पुतलियाँ । उ.—(क) बार बार इहै कहति भरि भरि दोउ तारे—२६०१ । (ख) बिन ही रितु बरसत निसि बासर सदा मिलन दोड तारे—२७६१ । (ग) सुनि ऊधो के बचन रहीं नीचै के तारे -- ३४४३।

तारें-कि. स. [हिं. तारना ] तार दें, मुक्त कर देने से, उद्घारने से, उद्घार करें। उ.- (क) वहा भयौ गज-गनिका तारै जो न तारी जन ऐसी- १ ११६। (ख) सूर स्थाम हो पातित तिरोमनि, तारि सके ती तारें---१-१⊏३।

तारै—क्रि. स. [हि. तैराना ] (१) तैरावे, (पानी पर) उतरावै। उ.— तप बली, सत्य तापस बली, तप बिना बारि पर कौन पाषान तारै—६-१२६। (२) पार लगा दे, तार दे। उ. करी भगवान की जस

गुनीजन सदा जो जगत-सिंधु ते पार तारे—४-११ ो तारों-—कि. स. [हिं. तैराना] (पानी पर) तरा दूँ, पानी पर उतरा दूँ। उ. — कहा हो तुत्र प्रताप श्री रघुबर, उदिध पखानि तारों—६-२०८।

तारी—िक. स. [हिं. तारना] उद्धारो, मुक्त करो, तार दो। उ.—(क) कहा भयी गज गनिका तारें जो न तारों जन ऐसों—१-१२६। (ख) जो जानी यह सूर पतित नहिं, तो तारों निज हेत—१-१५६।

संज्ञा पुं. [हं. त:ला] ताला. कुल्फ। उ.—(क) बड़े पतित पासंगहु नाहीं. श्राजामिल कीन बिचारी। भाजे नरक नाम सुनि मरो, जम दीन्यो दृष्टि तारी—१-१३१। (ख) देखत श्रान सँच्यो उर श्रांतर, दै पलकिन को तारी री—१०-१३५।

तार्किक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तर्क करनेवाला। (२) तर्कशास्त्र का ज्ञाता। (३) दार्शनिक।

तारघो — कि. स. [हिं, तारना । (१) पार लगाया। (२) सांसारिक क्लेशों से मुक्त किया, उद्धारा, सदगति हो। उ.—तो हुम कोऊ तारघो नहि जो मांसों पतित न दाग्यो — १-७३।

ताल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ का तल, हथेली। (२) करतल ध्वित, ताली। (३) नाचने-गाने में काल ग्रौर क्रिया का परिमाण जिसे बीच-बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते हैं।

मुहा,— ताल बेताल—(१) जिसका ताल ठीक न हो। (२) मौके-बे मौके। ताल मे बेताल होना गाने बजाने में काल या किया का परिमाण बिगड़ जाना।

(४) करतान या भाँभ नामक बाजा। उ.—ताल-प्रवावज चले बजावत समधी से भा की—१-१५१। (५) ललकारने या चुनौती देने के लिए जांघ या बाहु पर जोर से हथेला मारने से उत्पन्न शब्द। ताल ठोंकना लड़ने के लिए ललकारना।

(६) ताड़ का पेड़ या फल। (७) हाथियों के कान फटफटाने का शब्द। (८) ताला। (६) तलवार की मूठ। (१०) एक नरक। (११) महादेव। संज्ञा पुं. [सं. तल्ल] तालाब, पोखरा। तालक—संज्ञा पुं. [हिं, ताल्लुक] संबंध, ताल्लुक।

तालकेतु, तालध्वज — संजा पृं [ सं. ] (१) वह जिसकी पताका पर ताड़ का पेड़ ग्रंकित हो। (२) भीष्म। (३) बलराम।

तालबन — सज्ञा पुं. [सं. तालवन ] वृन्दावन के समीप एक वन । उ. — (क) सखा कहन लागे हरि सौं तब चलौ तालबन को जैऐ अब—४६६ । (ख) तालबन हन बच्छ मारथौ—२५८२ ।

तालबेन — संज्ञा स्त्री. [सं. ताल + वेगु ] एक बाजा।
तालमेल — संज्ञा पुं. [हं. ताल + मेल ] (१) ताल सुर
का मिलान। (२) मेल जोल। (३) उपयुक्त अवसर।
तालरस— संज्ञा पुं. [सं. ] ताल के पेड़ का मद्य, ताड़ी।
उ.— तालरस बलराम चाख्यो मन भयी अनंद।
गोपसुन सब टेरि लीन्हें सुधि भई नदनंद।

तालवन - संज्ञा पुं. [सं.] (१) ताड़ के पेड़ों का वन। (२) व्रजमंडल के श्रंतर्गत एक वन जहाँ बलराम ने धेनुक को मारा था।

तालवाहो — वि. [सं.] ताल देने का बाजा। तालवृत — संशा पुं. [सं.] ताड़ के पत्ते का पंखा। तालव्य वि. [सं.] (१) तालु से संबंधित। (२) तालु

से उच्चरित वर्ण जैसे इ ई, च, छ, ज, भ, अ, य, श। ताला--संशा पुं. [सं. तलक] कुल्फ, कुलफ, जंदरा। उ— सहज कपार उघरि गये ताला कूँ चं। टूटि— २६२५।

तालाब—संशा पं. [हि. ताल + फ़ा. श्राब] सरोवर।
तालिका—संशा स्त्रा [सं] (१) ताली। (२) सूची।
तालिब—िव. [श्र.] चाहने या ढूँढ़नेवाला।
तालिबइल्म—संशा पुं. [श्र.] विद्यार्था।
तालम—संशा स्त्री. [सं. तल्य डांया, बिस्तर।
ताली—संशा स्त्री. [सं.] (१) कुंजी, चाबी। (२) ताड़ी।
संशा स्त्री. [सं](१) हथेलियों का परस्पर श्राघात।
स्त्री. लाली पाटना (बजाना)— हसी उड़ाना।
एक हाथ से ताली नहीं बजती— वर या प्रीति एक
श्रोर से नहीं होती।

(२) करतल-ध्वित ।
संहास्त्रा, [हिं, ताल = तालाब ] सलैया ।
संहास्त्रा, [देश, ]पैर की बिचली उंगली का
अपरी भाग।

तालीम—संशा स्त्री. [ श्रा. ] शिक्षा। तालु, तालू—संशा पुं. [ सं. तालु ] मुँह की भीतरी ऊपरी छत।

महा.—तालू में दौत जमना—बरे दिन ग्राना। तालू से जीभ न लगना - चूपचाप न रह सकना। ताल्लुक— संशा पृं. [ श्र. तश्रल्लुक ] संबध, लगाव। ताव—संजा पुं. सं. ताण, प्राताव ] (१) गरमी जो किसी चीज को तपाने या पकाने के लिए पहुँचायी जाय । उ. - जठर श्राग्नि को ब्यापै तात्र - ३-११। मुहा. — ताय आना — जितना चाहिए उतना गरम होना। ताव खाना — भ्रांच में गरम होना। ताव खा जाना—(१) ग्राग की तेजी से जल-सा जाना। (२) किसी खौलायी हुई चीज का ज्यादा ठंडा हो जाना। ताव देना—(१) गरम करना । (२) तपाकर लाल करना। ताव विगड़ना - ग्रांच का कम या ज्यादा होना । मूँ छों पर ताव देना-श्रिभमान या घमंड से मूँ छुँ ऐंठना। मूँ छ ने ताव दिवायी—गर्व या धमंड से मूँ छों पर हाथ फरा। उ. कबहुँ क फूलि सभा मैं बेठ्यों मूँछिनि ताव दियौ — १-३०१।

(२) घमंड की भोंक में क्रीध करना।

मुहा — ताव दिखाना — ग्रभिमान के कारण कोध दिखाना। ताव में श्राना — घमंड की क्षोंक में कोध मे श्रा जाना।

(३) ग्रहंकार का ग्रावेश, शेखी की भींक। (४) किसी बात के होने की इच्छा या उत्कंठा।

मुहा, — ताव चढ़ना — प्रबल इच्छा होना। ताव पर — जरूरत के मौके पर।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ता = मंख्या] कागज का तख्ता।
तावत — कि. स. [हि. तान] जलाती है, भस्म करती है।
उ.—िनरिख पतंग बात नाहिं छाँइत जदिए जोति
तनु तावत—१-२१०।

तावत्—कि. वि. [ सं. ] (१) उतने समय तक। (२) उतने दूर तक। (३) तक।

उतना दूर तक। (३) तक। तावना—कि. स. [सं. तापन] (१) तपाना, गरम करना। (२) जलाना। (३) दुख या संताप पहुँचाना। तावभाव—संज्ञा पूं. [हि. ताव+भाव] उपयुक्त श्रवसर।

वि,—थोड़ा सा, जरा सा, हलका सा।
सावर, तावरो—संज्ञा स्त्रो, [हिं, ताव + री] (१) दाह,
जलन।(२) धूप, धाम।(३) खुलार।(४) गर्मी
का चक्कर, धूमटा।

तावरो — संज्ञा पुं. [हिं. तावर] (१) ताप, जलत । (२) धूप धाम । उ.—में जमुना-जल भरि घर श्रावित मो को लागो तावरो— २४३२। (३, गर्मी से श्राया हुआ चक्कर।

तावल—संज्ञा स्त्रो. [हिं. ताव] जल्दी, उतावली।
तावा—संज्ञा पुं. [हिं. ताव] तवा।
तावान—संज्ञा पुं [फ़ा.] हानि का डाँड़।
ताविषी—संज्ञा स्त्री. [स्.] (१) देव-कन्या। २) नदी।
(३) पृथ्वी, भूमि।

तावीज—संज्ञा पुं. [ श्रां, तश्रवीज़ ] (१) गले या बांह में पहनने का यंत्र, मंत्र या कवच। (२) संपूर जिसमें यंत्र-मंत्र रखकर बाँचा जाता है।

तालीष—संज्ञा पुं, [सं.] (१) स्वर्ण। (२) समद्र।
ताशा संज्ञा पुं, [त्रा तास] (१) एक तरह का जरदोजी
कपड़ा। (२) खेलने का पत्ता। (३) ताका का खेल।
ताशा, तासा—संज्ञा पुं, [त्रा तास] चमड़ा मढ़ा एकबाजा।
तासीर—संज्ञा स्त्री. [त्रा तास] चमड़ा मढ़ा एकबाजा।
तासीर—संज्ञा स्त्री. [त्रा तास] मस्त्र प्रभाव, गुण।
तासु, तासू – सर्व. [हि. ता + सुं (प्रत्य.)] उसका।
तासो, तासों—सर्व. [हि. ता + सों, सौं (प्रत्य.)]
उससे, उसे। उ.—या विधि को व्योपार बन्यो जग,
तासों नह लगायो—१-७६।

ताह — शि. [हिं. ता ] उसका, उसके । उ, — जब सुत भयां कहेउ ब्रह्मण ते अर्जुन गये गृह ताह — सारा, ८५१।

ताहम—ग्र॰ग. [फ़ा.] तौ भी, तिस पर भी।
ताहि—सर्व. [हिं. ता + हिं (प्रत्य.)] उसे, उसको।
उ.—धाइ चक लै ताहि उब रथी, मारयी ग्राह
बिहंगी—१२१।

ताहीं --- श्रव्य. [हिं. ताई ] (१) तक, पर्यंत। (२) पास, समीप (३ किसी के प्रति। (४) संबंध में, लिए। प्रत्य. हिं. तई ] से। साही--सर्व. [हिं, ता + ही (प्रत्य.)] उसी, उस ही।

उ.—(क) कौन जाति श्रर पाँति बिदुर की, ताही कै पग धारत—१-१२ । (ख) मोसो बात सकुच ति कहियै। कत बाइत, को उ श्रीर बतावी, ताही के ह्व रहियौ—१-११६।

ताहू—सर्व. [हि. ता + हू (प्रत्य.)] उसे भी, उसमें भी। उ.—(क) स्रदास की एक श्रीख है, ताहू मैं कह्य कानी—१-४७। (क) चार चखीड़ा पर कुाचत कच, छिब मुक्ता तहू मैं—१०-१४७।

तिंतिड़, तितिड़िका, ति।तिड़ीका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, तिंतिहिका, हिंदी तिंदिका, हिंदी है। दिन्न हिंदी हिंदी हिंदी है। तिंद्रा हिंद्रा हिंद्रा हिंद्रा हिंद्रा हिंद्रा है। तिंद्रा हिंद्रा है। तिंद्रा है। त

तिकड़मा—िव [हि. तिकड़म ] चालबाज।
तिकड़ी—िव [हिं. तीन + कड़ा ] तीन कड़ियोंवाला।
तिकोन, तिकोना, तिकोनिया वि. [सं. तिकोण, हि. तिकोना ] जिसमें तीन कोने हों।

संज्ञा पुं.—(१) समोसा। (२) तिकोनी नवकासी करने या बनाने की छेनी।

तिक्ख—ाव. [सं. ताद्या प्रा. तिक्ख ] (१) तीखा, तेज । (२) तिव्र बुद्धिवाला, चालाक । तिक्त —िव. [सं. ] तीता, कड़्य्रा । तिक्ता—सक्ष स्त्री. [सं. ] तिताई, कड़्य्रापन । तिक्ता—गि. [सं. तीद्या ] (१) तेज । (२) चोखा । तिक्ता—सक्ष स्त्राः [हिं. तीद्याता ] तेजी, चोखापन । तिखाई—सक्षा स्त्राः [हिं. तीखा ] तीक्षणता, तेजी । तिखाई—सक्षा स्त्राः [सं. त्रि + हिं. ग्राखर ] बात को तिखारना—िक. ग्र. [सं. त्रि + हिं. ग्राखर ] बात को

निश्चित करने के लिए तीन बार पूछना।
तिखूँटा—िवि. [हिं. तान+खूँट] तीन कोने का, तिकोना।
तिगना, तिगूचना—िक्र. स. [देश.] भाँपना, देखना।
तिगना—ाव. [सं. त्रिगुण] तीन गुना।
तिगम—िवे. [सं.] तीक्षण, खरा, तेज।
तिगमकर—संग्रा पुं. [सं. तिगम + कर] सूर्य।
तिगमता—संग्रा स्त्री, [सं. तिगम] तीक्ष्णता, तेजी।

तिच्छ, तिच्छन — वि. [ सं. तिदण ] तीला, तेज। तिजहरिया. तिजहरी—संज्ञा पुं. [ हिं, तीन + पहर ] दिन का तीसरा पहर।

तिजारत— सङ्गास्त्री [ ऋ. ] वाणिज्य, व्यापार। तिजारती—वि, [ हि. तिजारत ] तिजारत संबंधो। तिजया—संज्ञा पुं. [हि. तीजा तिसरा विवाह करनेवाला। तिजोरी—संज्ञास्त्री. [ देश. ] धन-दौलत रखने के लिए लोहे का छोटा सदूक या श्रलमारी।

तिङ़ी बिङ़ी—ाव. [१ह. तीन.] तितर बितर, बिखरा हुमा।
तित—ांक. ांव. स. तत्र ] (१) वहाँ, तहाँ । उ.—जल-थल-नभ-कानन घर-भातर, जहलो हाष्ट पसरी री।
तित तित मेरे नैनान ग्राग निरतत नंद दुलारो री—१०-१३५। (ख) थांकत जित-तित ग्रमर मुग्नगन नंदलाल निहारि—१०-१६६।(२) उधर, उस ग्रार।
उ.— जित देखी तित स्याममय है।

तितना—िक. वि [ है. उतना ] उतना।
तितनी—िव. [हिं. तितना उतनी उस मात्रा की। उ.—
जितनी लाज गुपालहि मेरा। तितना नाहि बधू हौं
जिनकी, त्रावर हरत सर्वान तन हेरी—१-२५२।
तितन—िव. [ हिं. तितना ] उसने, उतनी सख्या में।
उ.—भुव की रज नभ के सब तारं ।ततन हैं त्रावन्तार — सारा. ६०६।

तितर जितर—िव. [हि. तिधर + अनु.] (१) जो एकत्र न हो, बिखरा हुआ २) जो कम से न हो, अस्तब्यस्त । तितला— संशा स्ट्री. [हि. तितर (१) पृ. हि. तितल] (१) एक उड़नेवाला, सुंदर कीड़ा या पतिगा । (२) एक घास । १३) सुंदर बनी-ठनी युवतो । तितलोका— सशा स्त्री. [हि. त ता+लोआ] कदुआ, कददू । तितहिं—िक. वि. [हि. तित्त + हिं] तहाँ ही, वहाँ हो, वहीं । (२) उधर ही, उसी आरे । उ.—ाजत-जित

सन ऋरजुन को तितिह रथ चलायी— १-२३।
तीतारा— संज्ञा पु. [सं. त्रि+हि. तार तीन तार का बाजा।
वि— जिसमें तीन तार लगे हों, तीन तारवाला।
तितिंबा—संज्ञा पुं. [ऋ. ति म्मा ] (१) पालंड, ढको-सला। (२) शेषांश। (३) पुस्तक को परिशिष्ट।
तितिच्न—वि. [सं. ] सहनशील, क्षमाशील।

तितिच्चा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरदी, गरमी ग्रादि सहने की शक्ति। (२) क्षमा, क्षमाशीलता।

तितिच् —िव. [सं.] क्षमाशील, सिह्णु।

तिर्तिम्मा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) बचा हुआ भाग, शेषांश। (२) पुस्तक की परिशिष्ट ।

तितीर्घा—संशा स्त्री. [सं.] (१) तैरने की इच्छा। (२) तर जाने की कामना।

तितीषु — वि. [ सं. ] (१) तैरने का इच्छक। (२) तरने का अभिलाषी।

तिते—िव. [सं. तित ] उतने (संख्यावाचक)। उ.—(क) पाप-मारग जिते, सब कीन्हे तिते, बच्यो निहं कोड जहँ सुरित मेरी—१-११०। (ख) जीव जल-थल जिते, बेष धरि-धरि तिते अटत दुरगम अगम अनल भारे—१-१२०।

तितेक—वि. [हं. तिते + एक ] उतना। तिते—क्रि. वि. [हं. तित + ऐ (प्रत्य.)] (१) वहीं, वहीं हो। (२) वहाँ। (३) उधर।

तितो—वि. [सं. तित ] उतना, उस मात्रा का। कि. वि.—उतना।

तिथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्राग्त, ग्राग । (२) कामदेव। (३) काल। (४) वर्षा ऋतु।

तिथि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंद्रकला के घटने-बढ़ने के प्रनुसार गिने जानेवाले महीने के दिन, मिति, तारीख। उ.—(क) सोइ तिथि-बार-नज्ञत्र-लगनग्रह सोइ जिहिं ठाट ठयो—१-२६८। (ख) ब्रज प्राची राका तिथि जसुमित सरद सरस रितु नंद—१३३२। (२) पंद्रह की संख्या।

तिथिपति—संशा पुं. [सं.] तिथि का गिनती में न ग्राना। तिथिपति—संशा पुं. [सं.] तिथियों के देवता। तिथिपत्र—संशा पुं. [सं.] पत्रा, पंचांग, जंत्री। तिथिप्राणी—संशा पुं. [सं.] चद्रमा। तिदरा—संशा स्त्री, [हिं. तीन-फा. दर] तीन दरवाजों की कोठरी।

तिधर—ंके, वि. [सं. तत्र] उधर, उस ग्रोर।
तिन—सर्व, [सं. तेन] 'तिस' शब्द का बहुवयन।
उ.—(क) तिन प्रभु प्रहलादिहं सुभिरत ही नरहरि-

रूप ज कीन्हों—१-१५ । (ख) सुक सों नृपति परीचित सुन्यों । तिनि सुनि भली भाँति करि गुन्यों—१-२३७।

संज्ञा पुं. [सं. तृशा ] तिनका, घास-फूस। तिनकों का ढेर या समूह।

तिनकना—िक. श्र. [हिं. चिनगारी, चिनगी या श्रनु.] चिड्डिचड़ाना, चिढ्ना, भल्लाना, बिगड़ना।

तिनका—संज्ञा पुं. [सं. तृण] सूखी घास का दुकड़ा।
मुहा,—तिनका दाँतों में दबाना (पकड़ना,
लेना)—क्षमा या कृषा के लिए विनती करना।
तिनका तोड़ना—(१) संबंध तोड़ना। (२) (बच्चे
को नजर से बचाने के लिए माता का तिनका तोड़कर) बलेया लेना। तिनका चुनना—पागल या बावला
होना। तिनका चुनवाना—(१) पागल बना देना।
(२) मोहित कर लेना। सिर से तिनका उतारना—
(१) थोड़ा सा भ्रहसान करना। (२) थोड़ा काम करके
उपकारी बनना।

तिनकी—सर्व. [हं. तिन] 'तिसकी' शब्द का बहुवचन, उनकी। उ.—हरि-चरनारबंद तिज लागत अनित कहूँ तिनकी मित काँची—१-१८।

संशा स्त्री. [हिं. तिनका का ग्रल्प.] छोटा तिनका।
महा.—तिनकी तोड़ना—संबंध तोड़ना। तिनकी
तोर करहु जिनि हम सों—हमसे संबंध मत तोड़ो,
हमसे संबंध बनाये रहो। उ.—ितनकी तोर करहु
जिनि हम सों एक बीस की लाजिन बहिबो—३४१६।
तिनक—सर्व. [हिं. तिनका—उनका] उनके।

संज्ञा पुं. बहु. [हिं. तिनका = तृण] घास के दुकड़े।

मुहा.—तिनके चुनना—पागल का सा काम करना।
तिनके चुनवाना—(१) पागल या बावला बनाना।
(२) मोहित करना। तिनके का सहारा—(१) थोड़ा
सा सहारा। (२) ऐसी बात जिससे थोड़ा धोरज बंधे। तिनके को पहाड़ करना—छ हो सी बात को बहुत बड़ी कर बेना। तिनके को पहाड़ कर दिखाना—
जरा सी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहना। तिनके

की श्रीट पहाड़—छोटी सी बात में किसी बड़ी बात को छिपाना।

तिनकों—सर्व, [हिं, तिन + कों (प्रत्य,)] 'तिस' सर्व-नाम के बहुबचन 'तिन' का विभिक्तयुक्ति रूप; उनको। उ.—जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनकों राजा-राय कहें—१-५३।

तिनगना—कि, आ, [हिं. तिनका] बिगड़ना, भल्लाना। तिनगरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक प्रकार का पकवान। उ.—पेठापाक जलेबी कौरी। मोंदपाक, तिनगरी, गिंदौरी—३६६।

तिनपहल, तिनपहला—वि. [हिं. तीन + पहल ] जिसमें तीन पहल हों, तिपहला।

तिनि—[हिं. तिन] उन्होंने। उ.—जोइ जोइ माँग्यो जिनि, सोइ सोइ पायो तिनि, दीजे सूरदास दर्स भक्तिन बुलाइके—६४६।

तिनुका—संशा पुं. [हिं. तिनका] घास का दुकड़ा, तृण।
मुहा,—ितिनुका तोरि—संबंध विच्छेद करके, नाता
तोड़कर। उ.—(क) कापर नैन चढ़ाए डोलित,
ब्रज में तिनुका तोरि—१०-३१०। (ख)—भाई बंधु
कुदुंब सहोदर सब मिलि यहै विचारथी। जैसे कर्म,
लहो फल तैसे, तिनुका तोरि उचारथी—१-३३६।
तिनका सों तोरथो—बड़ी सरलता से त्याग दिया।
उ.—लोक-बेद तिनुका सों तोरथो—१२०१।

तिन्ह—सर्व. [हं. तिन ] उनके। उ.—(क) सुत कुबेर के मत्त-मगन भए बिष-रस नेनिन छाए (हो)। सिन सराप ते भए जमलतक तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)—१-७। (ख) दुखित जानिक सुत कुबेर के, तिन्ह लगि आपु बँधाए—१-१२२।

तिन्हें—सर्व. [हि. तिन ] उन्हें, उनको । उ.—इनके पुत्र एक सौ मुए। तिन्हें बिसारि मुखी ये हुए-१-२८४। तिपति—संज्ञा स्त्री. [सं. तृष्ति ] संताष।

तिपल्ला—वि. [हिं. तीन + पल्ला] तीन पर्ती का।
तिपाई—संज्ञा जी. [हिं. तीन+पाया] तीन पायों की चौकी।
तिपाइ—मंज्ञा पुं. [हिं. तीन + पाइ] (१) को तीन पाट जोड़कर बनाया गया हो। उ.—दिच्छिन चीर तिपाइ को लहँगा। पहिर विविध पट मोलन

महँगा। (२) जिसमें तीन पल्ले हों। (३) जिसमें तीन किनारे हों।

तिबारा—िव [हिं. तीन + बार ] तीसरी बार ।
संज्ञा पुं. [हिं. तीन + बार ] तीन द्वार की कोठरी ।
तिबासी—िव [हिं. तीन + बासी ] तीन दिन का बासी ।
तिमां जिला वि. [हिं. तीन + ग्र. मं ज़िल ] तीन खंडों का ।
तिम — संज्ञा पुं. [हिं. डिंडिम ] नगारा, डंका, द्रंडुभी ।
तिमाना—िक स. [देश.] भिगोना, तर करना ।
तिमि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समुद्र का एक बड़ा जंतु ।
(२) समुद्र । (३) रतौंधी नामक रोग ।

श्रव्य.—[सं. तद् + इमि] उस प्रकार, वंसे।
तिमित—वि. [सं.] (१) निश्चल। (२) श्राद्रं।
तिमिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रंधकार । (२) रतों भी
नामक रोग। (३) एक पेड़ ।

तिमिरहर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) दीपक। तिमिरारि—संज्ञा पुं. [सं. तिमिर + अरि] (१) ग्रंध- कार का शत्रु। (२) सूर्य। (३) दीपक।

तिमिरारी—संज्ञा स्त्री, [सं. तिमिराली] ग्रॅंधेरा।
संज्ञा पुं. [सं. तिमिरारि] (१) सूर्य। (२) दोपक।
तिमिराविल — संज्ञा स्त्री. [सं.] ग्रंधकार का समूह।
तिय, तिया— संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री, हिं. तिय] स्त्री।
(२) पत्नी, भार्या। उ.—ग्रस्मय-तन गौतमितया को साप नसावै—१-४।

तियला—संज्ञा पुं.[हिं.तिय + ला]स्त्रियों का एक पहनावा। कि. त्र.—बाल सफेद होना।

तिरक्ता—िक. श्र. [श्रनु.] तड़क्ता, फट जाना।
तिरक्स—िव. [सं. तिरस] जो सीधा न हो, टेढ़ा।
ति खा संका स्त्री. [सं.तृषा] प्यास।
तिरख्ता—ित्रि. [स. तृषित ] प्यासा।
तिरख्टा—िव. [हिं. तिख्टा] तीन कोने का।
तिरगुन—संका पुं. [सं. त्रिगुण ] प्रकृति के तीन गुण—संख, रज और तम।

तिरछई—संज्ञा स्ना. [हिं. तिग्छा ] तिरछापन। तिरछा—विं. [सं. तिरश्चीन ] जो न बिलकुल खड़ा हो धीर न बिलकुल घाड़ा। घी,—बाँका तिरछा—छैल-छबीला। मुहा.—तिरछा वाक्य या वचन—ग्रिप्रय बात। तिरछाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. तिरछा + है] तिरछापन। तिरछाना—कि. ग्र. [हिं. तिरछा] तिरछा होना। कि. स.—तिरछा करना।

तिरछापन—संशा पुं. [हिं. तिरछा + पन (प्रत्य.)] तिरछा होने का भाव।

तिरछी—िव. स्त्री. [हं. तिरछी] जो बिलक्त सीधा या श्राड़ा न हो। उ.—मनो एक सँग गंग जमुन नभ तिरछी धार बहावत—१३५०।

मुहा.—तिरछी चितवन (नजर)—टेढ़ी दृष्टि या निगाह, कटाक्ष । तिरछी जात—ग्रिप्रय या कटु बात । तिरछे—वि. [हिं. तिरछा] जो बिलकुल ग्राड़ा या सीधा न हो । उ.—ग्रब कैसे निकसत सुन ऊधौ तिरछे हैं जो ग्रड़े—३१५१।

मुहा,— तिरछे हो जाना—सीधे या लाभदायक न रह जाना। तिरछे भये—खोटे, बुरे, दुखदायी या हानिकारक हो गये। उ.—तिरछे भये कर्म कृत पहिले बिधि यह ठाठ बनायौ—२५१३।

तिरछें—वि. [हिं, तिरछा] तिरछे होकर, टेढ़े-टेढ़े। उ.— पौढ़ि रहे घरनी पर तिरछें बिलखि बदन मुरकायौ—३५६।

तिरछो, तिरछो-—वि. [हिं. तिरछा] जो सीधा या ग्राड़ा न हो, तिरछा।

मृहा.—तिरछो भयो—दुखदायो या हानिकारिक हो गया। उ.—तिरछो करम भयो पूरव को प्रीतम भयो पाइ की बेरी—८०७।

तिरछोहाँ—वि. पुं. [हिं. तिरछा + श्रोहाँ (प्रत्य.)] जो कुछ-कुछ तिरछा हो।

तिरछोहीं—िव. स्त्री. [हिं. तिरछोहाँ] कुछ-कुछ तिरछो। तिरछोहें—िक. वि. [हिं. तिरछोहाँ] कुछ-कुछ तिरछेपन के साथ, तिरछापन लिये हुए, वक्रता से।

तिरितराना—कि. श्र. [श्रनु, ] बूँद-बूँद टपकना। तिरना—कि. श्र. [सं. तरण] (१) पानी के ऊपर उत-राना। (२) तैरना, पैरना। (३) पार होना। (४) तर जाना, मुक्त हो जाना।

तिरनी—संज्ञा स्त्री, [देश, ] (१) नीवी, घंघरिया की

डोरी। (२) स्त्रियों की घँघरिया या घोती का भाग जो नाभि के नीचे पड़ता है। उ.—बेनी सुभग नितं-बनि डोलत मंदगामिनी नारी। सूथन जघन बाँधि नाराबँद तिरनी पर छिब भारी।

तिरप—संशा स्त्री. [सं. त्रि ] मृत्य में एक ताल। उ.—
तिरप लेति चपला सी चमकित भमकित भूषन श्रंग।
तिरपट—ित्र. [देश.] (१) तिरछा। (२) कित्न।
तिरपटा—ित्र. [देश.] तिरछा ताकनेवाला, भिगा।
तिरपन—संशा पुं. [सं. त्रिपंचाशत्, प्रा. तिपण्ण] पचास से तीन श्रधिक की संख्या।

तिरपाल—संशा पुं. [ सं. तृर्ण + हिं. पालना=बिछाना ] फूस या सरकंड़ के पूले जो छाजन में बिछाये जाते हैं। तिरपित—वि. [ सं. तृष्त ] संतुष्ट । तिरबेनी—संशा पुं. [ सं. त्रिवेगी ] गंगा, यमुना श्रीर सरस्वती का संगम।

तिश्मिरा — तंशा पुं [सं. तिमिर] (१) दुर्बलता से दृष्टि के सामने चिनगारियाँ छूटना। (२) चकाचौंध। संशा पुं, [हिं. तेल + मिलना] पानी श्रादि द्रवों पर घी-तेल के तैरनेवाले छींटे।

तिरिमराना—कि. ग्र. [हिं. तिरिमरा] (श्रांख का) भपना या चौंधियाना।

तिरलोक—संज्ञा पुं. [सं. त्रिलोक] स्वर्ग, मर्त्य ग्रौर पाताल—ये तीनों लोक।

तिरलोकी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिलोकी ] स्वर्ग, मर्त्यं श्रीव पाताल-—ये तीनों लोक।

तिरवराना—क्रि. श्र. [हिं. तिरमिराना ] चौंधियाना। तिरवाह—संज्ञा पुं. [सं. तीर+वाह] नदी-तीर की भूमि। तिरसठ—संज्ञा पुं. [सं. त्रिषिठ, प्रा. तिसिंड] वह संख्या जो गिनती में साठ से तीन श्रिधक हो।

तिरसूल—संज्ञा पुं. [सं. त्रिस्ल] तीन फाल का एक ग्रस्त्र जो शिव जी को प्रिय माना गया है।

तिरस्कर—संज्ञा पु. [सं.] परदा करनेवाला।
तिरस्करी —संज्ञा पुं. [सं. तिरस्करिन्] परदा।
तिरस्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनादर, अपमान। (२)
डाँट-फटकार। (३) अनादर के साथ त्याग।
तिरस्कृत—वि. [सं.] (१) जिसका अनादर या तिरस्कार

किया गया हो, श्रपमानित । (२) जिसका श्रनादर पूर्वक त्याग किया गया हो । (३)परदे में स्त्रिपा हुन्ना। तरस्क्रिया— संज्ञा स्त्री. [सं. (१) ग्रनादर। (२) वस्त्र। तिरानवे—संज्ञा पं. [सं. त्रिनवति, प्रा. तिन्नवइ ] वह संख्या जो गिनती में नब्बे से तीन श्रधिक हो। तिराना—कि, स. [हि. तिरना] (१) पानी पर ठहरना। (२) तैरना । (३) पार करना। (४) उबारना। तिरास— संशा पुं. [ सं. त्रास ] (१) डर। (२) कष्ट। तिरासना—कि. स. [सं. त्रासन ] डराना। तिरासी—संज्ञा पुं. [ सं. न्यशीति, पा. तियासीति ] वह संख्या जो गिनती में श्रस्सी से तीन ज्यादा हो। तिर हा - संशा पुं. [हिं. तीन + राह ] वह स्थान जहाँ से तीन श्रोर को रास्ते गये हों। तिरिन-संज्ञा पुं. [सं. तृरा ] तिनका, तून। तिरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री. ] स्त्री, ग्रीरत। यौ, — तिरिया चरित्तर — स्त्रियों का रहस्य। तिरीछा तिरछौ—वि. [हिं. तिरछा] तिरछा, टेढ़ा, श्राड़ा। मुहा. -- तिरीछौ होई- म्राड़े म्राना, कठिनाई में सहायक होना, संकट के समय काम श्राना । उ.— हरि सौं मीत न देख्यों कोई। बिपति काल सुमिरत, तिहिं श्रीसर श्रानि तिरीछी होई--१-१०। तिरोधान-संशा पुं, [सं, ] अंतद्धीन। तिरोधायक—संशा पुं. [ सं. ] छिपानेवाला । तिरोभाव-संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रन्तर्भाव। (२) छिपाव। तिरोभूत—वि, [सं.] गुप्त, छिपा हुन्ना, अदृष्ट। तिरोहित—वि. [सं. १) अदृष्ट। (२) हका हुआ। तिरौंछी—वि. [हिं. तिरछा ] तिरछो, टेढ़ी, ग्राड़ी। उ. - कठिन बचन सुनि स्वन जानकी सकी न बचन सम्हार। तृन ख्रांतर दै हिष्ट तिरौंछी (तरौंधी) दई

नैन जलधार—१-७६।
तिर्पित—वि. [सं. तृप्त ] संतुष्ट, प्रसन्न।
तिर्यक्—वि. [सं. ] तिरछा, ग्राड़ा, टेढ़ा।
तिर्यक्ता—संज्ञा स्त्री. [सं. ] तिरछापन, ग्राड़ापन।
तिल —संज्ञा पुं. [सं. ] (१) एक ग्रनाज जो दो प्रकार का होता है-काला ग्रोर सफेद। उ.—तिल चाँवरी, बतासे मेवा, दियो कुँवरि की गोद—१०-७०४।

मुहा,—तिल की श्रोभल (श्रोट) पहाड़—छोटी
बात के भीतर बड़ा रहस्य। तिल का ताड़ करना—
छोटे से मामले को बहुत बढ़ा देना। तिल-भर-थोड़ा
थोड़ा, जरा सा। निल धरने की जगह न होना—
जरा सी भी जगह खाली न होना। तिल न
रहित चित चैन—जरा भी शांति नहीं मिलती।
ड. मृदु भुसुक्यांन इरथी मन की मिन, तब
तैं तिल न रहित चित चैन—७४२। तिल भर—
(१) जरा सा, थोड़ा सा। (२) क्षण भर, थोड़ी देर।
(२) काले रंग का छोटा सा दाग जो शरीर पर

(२) काले रंग का छोटा सा दाग जो शरीर पर होता है। (३) गाल या ठोंढ़ी पर छोटा सा गोदना। (४) श्रांख की गोल बिंदी।

तिलक—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंदन, केसर श्रादि का टीका। (२) राज्याभिषेक। (२) विवाह-संबंध स्थिर करने की एक रीति जिसमें वर के टीका करके भेंट देते हैं। (४) माथे का एक गहना। (५) श्रेष्ठ व्यक्ति। उ.—सूर समुिक, रघुवंस-तिलक दोउ उतरे सागर तीर—६-११५। (६) ग्रंथ की टीका।

संज्ञा पुं, [तु. तिरलीक का संचि. रूप] (१) मुसलमान स्त्रियों का ढीला ढाला कुरता। (२) खिलग्रत।

तिलकना—कि. श्र. [हिं. तड़कना ] मिट्टी की सतह का सूखकर दरकना।

तिलक मुद्रा—संशा स्त्री. [सं.] चंदन स्नावि का टीका या शंख-चक्र स्नावि की छाप जिसे भक्तजन लगाते हैं। तिलकहरू, तिलकहार—संशा पुं. [हिं. तिलक + हार (प्रत्य.)] व्यक्ति जो वर को तिलक चढ़ान जाय। तिलका—संशा पुं. [सं.] (१) कंठ का एक गहना। (२) एक वृत्त।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तीन + लड़] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है। तिलकालक—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर पर तिल की तरह का काला चिह्न।

तिलकुट—[हिं, तिल + कूटना] कूटे हुए तिल जो शकर या गुड़ में पकाये गये हों। तिलछना—क्रि. श्र. [श्रनु.] बेचेन रहना। तिलिमल — संशास्त्री. [हिं. तिरिमर ] चकाचौंध। तिलिमलाना—संशा स्त्री. [हिं. तिरिमराना] चौंबियाना । तिलरी— संज्ञा स्त्री. [हिं. तिलड़ी ] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है। उ.—कंठ-सिरी धुलरी तिलरी उर मानिक मोती हार रंग की--१०४२। तिलहन—संशा पुं. [हिं. तेल + धान्य ] तिल, सरसों म्रादि के पौधे जिनके बीजों से तेल निकलता है। तिलांजिल, तिलांजिली - संज्ञा स्त्री. [सं.] एक संस्कार जिसमें मृतक को फूंकने के पश्चात स्नान करके भ्रँगुली भर जल में तिल डालकर उसके नाम पर छोड़ते हैं। मृहा.—तिलां जली देना—बिलकुल त्याग देना। तिलिस्म – संज्ञा पुं. [ यू. टेलिस्मा ] (१) जादू । (२) श्रद्भुत व्यापार या चमत्कार। तिलिस्मी—वि. [हिं. तिलिस्म ] तिलिस्म से संबंधित। तिलोक—संशा पुं. [सं. त्रिलोक ] तीन लोक। ति ोकनाथ, तिलोकपति —संशा पुं. [ सं. त्रिलोक+नाथ, पति ] (१) विष्णु। (२) परमेश्वर। तिलोकी—संशास्त्री. [सं. त्रिलोकी ] तीन लोक। तिलोचन-संशा पुं. [ सं. त्रिलोचन ] शिव, महादेव। तिलोत्तमा—संशा स्त्री. [सं.] एक परम रूपवती ग्रप्सरा जिसकी रचना ब्रह्मा ने संक्षार के समस्त उत्तम पदार्थीं का एक-एक तिल ग्रंग लेकर की थी। इसे देखकर संद श्रौर उपसुंद नामक दो दैत्य, जो हिरण्याक्ष के पुत्र थे श्रौर जिन्हें श्रापस में लड़कर ही मर सकने का वरदान था, परस्पर लड़कर मर मिटे थे। तिल दक-संज्ञा पं. [ सं. तिल+उदक ] तिलांजली। तिलौंछना—कि. स. [हिं. तेल+श्रौंछना ] तेल लगाकर चिकना करना, चिकनाना । तिलोंछा-वि. [हं. तेल + श्रौंछना ] जिसमें तेल का मेल, स्वाद, गंध या रंगत हो। तिलौरीं, तिलौरी — संशास्त्री. [देश.] एक तरह की मैना। संशा स्त्री, [हिं, तिल + बरी] उर्द, मूँग धौर तिल की नमकीन बरी जो तलकर खायी जाती है। तिल्ला—संग्रा पुं. [ अ. तिला ] (१) कलाबत्तू श्रादि का काम। (२) कपड़ा जिस पर कलावत्तू का काम हो।

तिल्ली — संज्ञा स्त्री, [तं, तिलक]पेट का एक भीतरी श्रवपव। संज्ञा स्त्री. िसं तिल तिल या तेलहन। तिवई—संशा स्त्री. [सं. स्त्री. ] स्त्री, तिय। तिवान-संशा पुं. [देश.] विता, फिक । तिवारी—संज्ञा पं. [ सं. त्रिपाठी ] त्रिवेदी । तिवास—संशा पं. [ सं. त्रिवासर ] तीन दिन । तिष्टना-कि. स. [ सं. सृष्टि ] रचना, बनाना। तिष्ठना -- क्रि. श्र. [सं. तिष्ठ ] ठहरना। तिष्य—संज्ञा पुं. [ सं. ै] (१) पुष्य नक्षत्र । (२) पूस का महीना। (३) कलियुग। (४) मंगलकारी बात। तिष्पन—वि. [सं. तीच्ए ] तीखा, तेज। तिस—सर्व. [सं. तस्मिन्, पा. तिस्से] 'ता' का विभिषत-रहित एक रूप। मुहा.—तिस पर—(१) उसके बाद। (२) इतना होने पर भी। तिसना—संज्ञा स्त्री. [सं. तृष्णा] (१) लोभ। (२) प्यास। तिसरा—वि. [हिं. तीसरा ] तीसरा। तिसराय-कि. वि. हिं. तीसरा ] तीसरी बार। तिसाना—िक. श्र. [सं. तृषा ] प्यासा होना। तिहत्तर—संशा पुं. [ सं. त्रिसप्तति, पा. तिसत्ति, पा. तिहत्तरि ] सत्तर से तीन भ्रधिक की संख्या। तिहरा-वि. [हिं, तीन + हरा ] तीन परत का। तिहराना-कि. स. [हिं. तेहरा] (किसी काम या बात को वो बार करने के बाद ) तीसरी बार फिर करना। तिहरी—संशा स्त्री. [हिं.तोन + हार] तीन लड़ों की माला। तिहवार—संज्ञा पुं. [हिं. त्योहार ] उत्सव का दिन। तिहवारी — संज्ञा स्त्री. [हिं. त्योहारी] त्योहार के उपलक्ष में नौकरों या सेवकों को दिया जानेवाला धन। तिहाई—संशा स्त्री. [सं. त्रि+भाग ] तीसरा भाग। तिहाउ-संज्ञा पं. [हिं. तिहाव] (१) कोध। (२) वर। तिहारा-सर्व. [हिं. तुम्हारा ] तुम्हारा । तिहारी—सर्व. हिं. तुम्हारी ] तुम्हारी । उ.--(क) श्रब सिर परी ठगोरी देव। ताते बिबस भयी करनामय, छाँ इ तिहारी सेव - १-४६ । (ख) ऋब आयो हौं सरन तिहारी-१-१७८।

तिहारे—सर्व. [हिं. तुम्हारे ] तुम्हारे। उ.—(क) कहा

गुन बरनों स्याम, तिहारे—१-२५ । (ख) तिहारे आगें बहुत नच्यो—१-१७४।

तिहारें—सर्व. [हिं.तिहारा] तुम्हारे, तेरे । उ.--(क) महा-पतित कबहूँ नहिं आयी, नैंकु तिहारें काज—१-१०८। (ख) अगनित गुन हरिनाम तिहारें, अजी अपुनपी धारी—१-१५७।

तिहारो, तिहारो—सर्व. [हिं. तिहारा ] तुम्हारा। उ.— श्रजामील तौ बिप्र तिहारो, हुतौ पुरातन दास— १-१३२।

तिहाव—संज्ञा पुं. [हिं. तेहा] (१) कोध। (२) बिगाड़। तिहिं—सर्व. [हिं. तेहिं] उसे, उसको।

वि.— उसके। उ.— सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाइ— १-१।

यौ.—जिहिं तिहिं—किसी भी प्रकार से, कोई भी उपाय करके, केसे भी। उ.—ग्रब मैं उनको ज्ञान सुनाऊँ। जिहिं तिहिं बिधि बैराग्य उपाऊँ—१-२८४। तिहीं—बि. [हिं. तेहि ] वसे (हो), उसी (तरह)। उ.— सुक नृपति पाँहिं जिहिं बिधि सुनाई। सूरजनहूँ तिहिं भाँति गाई—८-११।

तिहुँ, तिहूँ—वि. [हिं. तीन + हुँ (प्रत्य.)] तीनों। उ,— (क) बलि बल देखि, ऋदिति-सुत कारन, त्रिपद ब्याज तिहुँ पुर फिरि ऋाई—१-६। (ख) ऋखिल ब्रह्मांड पति तिहुँ भुवनपति नीरपति पवनपति ऋगमबानी—१५२२। (ग) कौरव जीति जुधिष्ठिर राजा, कीरति तिहूँ लोक मैं माँची—१-१८।

तिहैया—संज्ञा पुं. [हं. तिहाई] तीसरा भाग या ग्रंजा। ती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री ] (१) स्त्री (२) पत्नी। तीस्रत—संज्ञा स्त्री. [सं. तृणांत] ज्ञाक, भाजी, तरकारी। तीकरा—संज्ञा पुं. [देश.] ग्रंकुर, ग्रंखुग्रा। तीक्रर—संज्ञा पुं. [हंं. तीन+कूरा = ग्रंश] तिहाई ग्रंज्ञ। तीक्षण, तीक्षन, तीक्ण—वि. [सं. तीक्ण] (१) तेज नोक या धारवाला। (२) तेज, तीव्र, प्रखर। (३) उग्र, प्रचंड, तीखा। (४) तेज या चरपरे स्वाद का। (४) ग्रप्रिय या कर्णकटु (वाक्य या बात)। (६) जिसे ग्रालस्य न हो। (७) ग्रात्मत्यागी। (८) जो सहा न जा सके, ग्रसह्य।

संज्ञा पुं.—(१) गरमी। (२) विष। (३) युद्ध। (४) मृत्यु। (४) महामारी। (६) योगी। तीच्रगता--संज्ञा स्त्री.[सं.] तीक्ष्ण होने का भाव, तीवता। तीच्णदृष्टि - वि. [ सं. ] सूक्ष्म बातों को देखनेवाला । तीच्याधार--वि. [सं. ] जिसकी धारा बहुत तेज हो। संशा पुं. — तलवार। तीच्गाबुद्धि—वि. [ सं. ] बहुत बुद्धिमान। तीच्णरिम, तीच्णांशु—संशा पुं. [सं.] सूर्य। तीच्एाप्र-वि. [सं.] तेज नोकवाला। तीख, तीखन, तीखा—वि. [ सं. तीच्ण] (१) तेज नोक या घारवाला। (२) तेज, तीव। (३) उग्र, प्रचंड। (४) उग्र स्वभाव का। (५) चरपरे स्वाद का। (६) श्रिय या कटु (वाक्य या कथन)। (७) बढ़िया। तीख़ुर, तीख़ुल—संशा पुं [सं, तबद्दीर] एक पौधा जिसकी जड़ का सत बढ़िया मैदे की तरह का होता है। तीछन, तीछा—वि. [सं. तीदण] (१) तेज । उ.— तिहिं काटन कौं समरथ हिर की तीछन नाम-कुठार-१-६८ । (२) प्रखर, तीव्र । (३) उग्र, प्रचंड । (४) कर्ण कटु, कठोर या श्रप्रिय।

तीछनता—संशास्त्री. [सं. तीचणता] तीवता, तेजी।
तीज—संशास्त्री. [सं. तृतीया] (१) प्रत्येक पक्ष की
तीसरी तिथि। उ.—रंग महल में जहँ नँदरानी
खेलिति सावनी तीज सुहाय—२२६०। (२) भावों
सुदो की हरतालिका तृतीया।

तीजा—संशा पुं. [हिं. तीज ] मरने से तीसरा विन। वि.—तीसरा, तुतीय।

तीजे—संज्ञा पुं. [हिं. तोज] तीसरा, तृतीय। उ.—-(क) तिन्हें कह्यों संसार में असुर होहु अब जाइ। तीजे जनम बिरोध करि मोकों मिलिहों आइ—३-११। (ख) तीजे मास हस्त पग होहिं—३-१३।

तीत, तीता—वि. [सं. तिक्त, हिं. तीता ] (१) धरपरे स्वाद का। (२) कड़ग्रा, कटु।

वि.—भोगा हुन्ना, ग्रार्ड, नम । तीतर, तीतुल—संज्ञा पुं. [सं. तित्तिर] एक पक्षी । तीन—संज्ञा पुं. [सं. त्रिणि] दो ग्रीर चार के बीच की संख्या, दो में एक के जोड़ से बननेवाली संख्या।

महो, —तीन-पाँच करना हुज्जत या करना। तीन तेरह करना -- तितिर-बितर करना। न तीन में न तेरह में -- जिसे कोई भी न पूछता हो। तीनलड़ी-संशा स्त्री. [हिं,तीन+लड़ी]तीन लड़ की माला। तीनि—संज्ञा पुं. [हिं. तीन ] तीन की संख्या। तीनो, तीनो-वि. [हिं, तीन] पूरे तीन। उ.-(क) तीनौ पन ऐसें हीं खोए-१-७३। (ख) तीनौ पन मैं भिक्त न कीन्हीं--१-१७८। तीन्यौ—वि. [हिं. तीन] तीनों। उ.—तीन्यौ पन मैं श्रोर निबाहे, यहै स्वाँग कों काछे--१-१३६। तीमारदारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] रोगी की सेवा। तीय, तीया—संज्ञा स्त्री. [ सं. स्त्री. ] स्त्री, ग्रौरत। तिरंदाज—संज्ञा पुं. [फ़ा. ] तीर चलानेवाला। तीरंदाजी—संज्ञा स्त्री, [फ़ा,] तीर चलाने की कला। तीर—संज्ञा पुं. [ सं.] (१) नदी-सागर का किनारा, तट, कूल । उ, - (क) भवसागर में पैरि न लीन्ही । "। ऋति गंभीर, तीर नहिं नियरें, किहिं बिधि उतरथौ जात-१-१५। (ख) सागर-तीर भीर बनचर की-६-८४। (ग) जमुना तीर कियो रथ ठाढ़ो--रप्रूर्३। (२) निकट, समीप। उ.—(क) सारँग इक सारँग हैं लोट्यो, सारँग ही कें तीर—१-३३। (ख) तुम्हें पहिचानति नाहीं बीर । इन नैनिन कबहूँ नहिं देख्यो, रामचंद्र कें तीर—१-८६ । (ग) भँखत जसोदा-जननी तीर-१०-१६१। (घ) हृदय रुचिर

संशा पुं. [ फ़ा. ] वाण, शर।

मुहा.—तीर चलाना (फेंकना)—युक्ति भिड़ना।
तीरथ — संजा पं. सं. तीर्थ ] (१) ऐना पुण्य स्थान जहां
धर्मभाव से लोग जाते हों। उ. — (क) चल्यों तीरथ
क् मुंड उघारी—१-२८४ । (ख) जोग जज्ञ जप
तप तारथ जत काजत हे जिह लोगा—२५६६ । (२)
कोई पवित्र स्थान।

मोतिन की माला नख रेखा तेहिं तीर-२६६१।

तीरवर्ती—वि. [सं.] (१) तट या किनारे पर रहनेवाला। (२) सर्वाप रहनेवाला, पड़ोसी।

तीरस्थ—संज्ञा पुं. [ सं. ] १) नदा के तीर पर पहुंचा हुन्ना। (२) मरणासन्त व्यक्ति जिसे नदी के किनारे

पहुँचा दिया गया हो। तीरा—संज्ञा पुं. [हिं. तीर] (१) किनारा। (२) निकट। तीर्ण-वि. [सं.] (१) जो पार हो गया हो। (२) जो सीमा को पार कर चुका हो। (३) भीगा हुआ। तीर्थंकर—संशा पुं. [ सं. ] जैनियों के चौबीस देवता। तीर्थे—संशा पुं. [ सं. ] (१) वह पवित्र स्थान जहाँ भक्त-जन स्नान या दर्शन के लिए जाते हैं। (२) कोई पवित्र स्थान । (३) हाथ के कुछ विशिष्ट स्थान । तीर्थक - वि. [सं. ] (१) ब्राह्मण । (२) तीर्थंकर । (३) तीर्थों की यात्रा करनेवाला। तीर्थपति—संज्ञा पुं. [ सं. ] प्रयाग । तीर्थयात्रा—संज्ञा स्त्री, [सं. ] तीर्थ स्नान को जाना । तीर्थराज—संशा पं. [ सं. ] प्रयाग । तीर्थराजी — संशा स्त्री. [सं.] काशी जिसमें सब तीर्थ हैं। तीथोटन—संज्ञा पुं. [ सं. ] तीथों की यात्रा। तीली—संशा स्त्री. [फा. तीर=वाण] (१) सींक। (२) किसी घातु की सींक। (३) सींकों की कूँची। तीवन-संजा पुं. [सं. तेमन = व्यंजन ] (१) पकवान, व्यंजन। (२) रसेदार तरकारी। तीवर-संशा पुं. [ सं. ] (१) समुद्र । (२) बहेलिया । (३) मछुश्रा। (४) एक वर्णसंकर श्रंत्यज जाति। तीत्र—वि. [ सं. ] (१) श्रत्यंत, श्रधिक । (२) तीक्ष्ण, तेज। (३) बहुत गरम। (४) बेहद, बहुत श्रधिक। (५) कड़ुश्रा। (६) जो सहान जा सके (७) प्रचंड। (८) बहुत वेगवाला । (६) ऊँचा स्वर।

(इ) बहुत वेगवाला । (६) ऊँचा स्वर । तीत्रगति—संशा स्त्री. [सं. ] वायु, हवा । तीत्रता—संशा स्त्री. [सं. ] तेजी, तीखापन । तीस - ति. [सं. तिशति, पा. तीसा जो दसका तिगुना हो । उ.—एके चित एके वह मूरित पलन लगे दिन तीस—३१३० ।

यो.—तीस दिन—सदा। तीस मार खाँ—बड़ा बहादुर (व्यंग्य)।

संज्ञा पु.— इस की तिगुनी संख्या। तीसर, तीसरा—िव. [१इ. तीन + सरा (४२४.)] (१) कम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला। (२) जिसका प्रसंग से कोई संबंध न हो।

तौसरें—िव. [हिं. तीसरा] तोसरा, जो दो के उपरांत हो। उ.—देवधामी करत, द्वार द्वारें परत, पुत्र द्वे, तीसरें यहै बारी—६९६।

तीसवाँ—वि, [हिं, तीस + वाँ ] जो कम में उनतीस के बाद पड़े, तीस के स्थान में पड़नेवाला।

तीसी — संज्ञा स्त्री. [सं. श्रातसी] श्रालसी नामक तेलहन।
संज्ञा स्त्री. [हिं, तीस + हे] तीस चीजों का समूह।

तीहा—संज्ञा पुं. [[सं. तृष्टि ?] तसल्ली, ग्राइवासन। संज्ञा पुं. [हिं. तिहाई] तिहाई भाग।

तुंग—िव. [सं. (१) उन्नत, ऊँचा। उ.-पीन भुजलीन जे लिच्च रंजित नील घन सीत तनु तुंग छाती— २६७०। (२) उग्न, प्रचंड। (३) प्रधान, मुख्य। संज्ञा पुं.—(१) पहाड़। (२) नारियल। (३)

कमल का केसर।(४) शिव।(५) बुधग्रह।(६) ग्रहों की उच्च राशि।

तुंगता—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] ऊँचाई।
तुंगनाथ—संज्ञा पुं. [ सं. ] हिमालय पर एक शिवलिंग।
तुंगारएय, तुंगारस्र—संज्ञा पुं. [ सं. ] बेतवा नदी का एक जंगल जहाँ एक मंदिर है श्रीर मेला लगता है।

तुंगी—संशा स्त्री. [सं.] (१) रात । (२) वन तुलसी। तुंगीपति—संशा पुं. [सं.] चंद्रमा।

तुंड--संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुँह। (२) चोंच। (३) थूथन। (४) तलवार का श्रगला भाग। (४) शिव।

तुंडि—संशा स्त्री, [सं,] (१)मुँह। (२)चोंच। (३) विबफल

या उसकी डोंड़ी (४) नाभि, तोंदी। तुंडिका—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) टोंटी। (२) चोंच। तुंडिल—वि. [सं.] (१) तोंद या बड़े पेटवाला। (२)

उभरी नाभिवाला। (३) बकवादी। (४) सूँड़बाला। तुंडी—वि. [स. तुःडन्] (१) मुँहवाला। (२) घोंच-वाला। (३) थूथनवःला। (४) सूँड़वाला।

संशा पुं.--गणेश जी।

संशा स्ना.—नाभि, तोंदी, ढोंढ़ी।

सुंद्—संज्ञा पुं. [ सं ] पेट, उदर। वि. [ फ्रा. ] तेज, घोर, प्रचंड।

तुदिक, तदिल-वि. [सं. ] तिबब ला, तीवियल। तुदैल, तुदैला-वि. [सं. तुदिल] तीवियल। तुं ब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लौकी। (२) सूखी लौकी। तुं बा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कड़ ग्रा कद्दू। (१) कड़ इंश लौकी। (३) सूखे कद्दू का पात्र।

तुंबी, तुंबिका—संज्ञा स्त्री. [सं. तुबी] (१) छोटा कड्डुग्रा कद्दू। (२) छोटी कड़ुई लौकी। (३) सूखी लौकी या कद्दू का पात्र, तूंबी।

तुंबुर, तुंबुरु—संशा पुं. [सं. तुंबुरु] एक गंधवं जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं। ये विष्णु के प्रिय पार्श्वचर श्रीर संगीत विद्या में श्रति निपुण माने जाते हैं। उ.—रजनी मुख श्रावत, गुन गावत, नारद तुंबुर नाऊ — ६-१७२।

तुश्र— सर्व. [ हिं. तुव ] तुम्हारा ।

तुश्रना—िक, श्र. [हिं. चूना] (१) चूना, टपकना। (२) गिर पड़ना। (३) गर्भपात होना।

तुइ, तुई—सर्व. [हिं. तू] तू, तुम।

तुक—संज्ञा स्त्री. [हिं. दूक = डुकड़ा] (१) किसी पद्य या गीत का टुकड़ा। (२) पद्य की पंक्तियों के ग्रंतिम ग्रक्षर । (३) पद्य की पंक्तियों के ग्रंतिम ग्रक्षरों की मंत्री या सम स्वरता।

मुहा.—तुक जोड़ना—भव्दी कविता बनाना।
तुकवंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं, तुक + फ़ा, बंदी] (१) भव्दी
कविता। (२) भव्दी कविता बनाने का काम।

तुकांत—संशा पुं. [हिं. तुक+श्रंत ] पद्य की दो पंक्तियों के श्रंतिम श्रक्षरों का मेल, श्रंत्यानुश्रास।

तुका—संशा पुं. [ फ़ा. ] बिना गाँसी का तीर ।-

तुकार, तुकारी, तुकारी—िक्र. वि. [हिं. तू + सं. कार = तुकार] 'तू तू' करके, क्षुब्रता या श्रिकाष्ट्रता सूचक ढंग से। उ.—वारों हो वे कर जिन हिर को बदन छुवी, वारों रसना सो जिहिं बोल्यों है तुकारि—३६२।

तुकारना—कि, स. [हिं, तुकार ] तू-तू करके ग्रपमान-जनक रीति से संबो- धन करना।

संशा पुं, [हिं, तुक + श्रक्कड़ ] तुक जोड़ जोड़कर भव्दी कविता करनेवाला।

तुका—संशा पुं. [फा. द्वक: ] (१) बिना नोंन का तीर। (२) हीला। (३) सीधी खड़ी धस्तु।

मुहा,—तुका सा—सीधा खड़ा ठंठ सा।
तुख—संज्ञा पुं. [सं. तुष] (१) भूसी, छिलका। (२)
भ डे का छिलका।

तुखार—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) एक प्राचीन देश । (२) इस देश का निवासी। (३) इस देश का घोड़ा। संज्ञा पुं. [ सं. तुषार ] वर्फ, पाला।

तुख्म—संज्ञा पुं. [ ऋ तुख्म ] बीज।

तुच, तुचा — संज्ञा स्त्री. [सं. त्वचा] वमड़ा। उ. — कानमुद्रा भस्म कंथा मृग तुचा त्रासन उहै — २४६०।

तुच्छ—वि. [सं.] (१) खोखला, क्षुद्र, निःसार। उ.— परम कुबुद्धि, तुच्छ रस-लोभी, कोड़ी लगि मग की रज छानत—१-११४। (२) होन। (३) श्रोछा, खोटा। (४) श्रल्प, थोड़ा, कम। उ.—तुच्छ श्रायु परिश्रम करत—१२-३।

संज्ञा. पुं.— छिलका, भूसी।

तुच्छता—संश स्त्री. [सं.] (१) हीनता, नीचता। (२) . नीस्सारता, खोखलापन। (३) ग्रोछापन। (४) ग्रल्पता। तुच्छत्व—संश पुं. [सं.] (१) हीनपन। (२) ग्रोछा-पन। (३) खोखलापन। (४) ग्रल्पता, कमी।

तुच्छातितुच्छ—वि. [सं. ] बहुत होन या क्षुद्र।

तुजी—संज्ञा स्त्री. [ डिं. ] कमान, धनुष। तुभा—सर्व. [सं. तुभ्यम्, प्रा. तुज्भं] 'तू' शब्द का वह रूप

भा—सव, [स. तुभ्यम्, प्रा. तुज्यां तू शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा ग्रौर षष्ठी के ग्रातिरिक्त ग्रौर विभ-क्तियां लगने के पहले प्राप्त हीता है।

तुमो--सर्व. [हिं. तुमा] 'तू' का कर्म और संप्रदान रूप।
तुट-वि. [सं. तुट = टूटना] दुकड़ा, जरा सा।
तुट्टना-कि. स. [सं. तुष्ट, प्रा. तुट] राजी करना।
तुड़वाना-कि. स. [हं. तोड़ना का प्रे.] दूसरे को

तुड़ाई—संशास्त्री, [हिं. तुड़ानां] तोड़ने या तुड़ाने की किया, भाव या मजदूरी।

तुड़ाना—क्रि. स. [हिं. तोड़ना का प्रे.] (१) तोड़ने का काम करना, तोड़ने देना। (२) बंधन छड़ाना। (३) संबंध-विच्छेद करना। (४) रुपया ग्रादि भुनाना। (४) दाम कम कराना।

तुड़ म—संशा पुं. [ सं. तूर ] तुरही, बिगूल।

तुतरा— वि. [हं. तोतला] तुतलानवाला।
तुतराइ—कि. वि. [हं. तुतलाना] तुतलाकर, ग्रस्पष्ट
स्वर से। उ.—तनक मुख की तनक बतियाँ, बोलत
हें तुतराइ—१०-१६६।

तुतरात—िक. ग्र. [हं. तुतलाना] तुतुलाकर, तुतलाते हं, ग्रस्पच्ट बोलते हें। उ.—(क) सवन सुनन उत्कंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री—१०-१३६। (ख) बिल-बिल जाउँ मुखारबिंद की ग्रामिय बचन बोली तुतरात—१०-१५६।

तुतराना—कि. श्र. [हिं. तुतलाना] साफसाफ न बोलना। तुतरानी— कि. श्र. [हिं. तुतलाना] तुतलाकर बोलती है, श्रस्पट्ट स्वर निकालती है। उ.—श्रचरज महरि तुम्हारे श्रागें, श्रबे जीभ तुतरानी—१०-३११।

तुतरों हाँ—वि. [हिं. तोतला] तुतलानेवाला।
तुतरों ही — वि. स्त्री. [हिं. तोतली] तोतली, श्रस्पष्ट स्वर
वाली। उ.—बोलत हैं बितयाँ दुतरोहीं, चिलि
चरनिन सकात—१०-२६४।

तुतलाना—कि. श्र. [हिं. तोता] रक-रककर प्रस्पट्ट स्वर में बोलना।

तुतली—िव. स्त्री. [हिं. तोतली ] तुतलानेवाली। तुतुई, तुतुही—संश्रा स्त्री. [सं. तुंड ] टोंटीदार घंटी। तुदन—संशा पुं. [सं.] (१) कष्ट या पीड़ा देने की किया। (२) पीड़ा, व्यथा।

तुनक—वि. [फ़ा.] (१) दुर्बल। (२) नाजुक।
यौ.—तुनक भिजाज—जल्दी रूठनेवाला।
वनवनी—संज्ञा स्त्री [ अत्र ] (१) एक बाजा। (१)

तुनतुनी—संशा स्त्री. [ श्रानु. ] (१) एक बाजा । (२) सारंगी।

तुनीर—संज्ञा पुं. [सं. त्णीर] तूण, निषंग, तरकश। उ.—श्रतख श्रमंत श्रपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तुनीर—६-२६।

तुन्न—वि. [सं.] कटा-फटा, छिन्न-भिन्न।
नुपक—संशा स्त्री. [तु. तोप] छोटी तोप, बंदूक।
नुफंग—संशा स्त्री. [तु तोप] (१) हवाई बंदूक।
(२) लंबी नली जिसमें फूँक से गोलियाँ चलायी जाती हैं।

तुफान—संशा पुं. [ श्र. तूफान ] श्रांधी, तूफान

तुभना—कि. ग्र. [सं. स्तोभन] स्तब्ध या ठक रह जाना, ग्रबल हो जाना।

तुभी—कि. श्र. [हिं. तुभना ] स्तब्ध था ठक रह गयी।
उ.—टरित न टारे वह छित्र मन में चुभी। स्याम
सधन पीतांबर दामिनि, श्राँखियाँ चातक हो जाइ
तुभी—१४४६।

तुम—सर्व [सं. त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन। इसका प्रयोग शिष्टता की दृष्टि से एकवचन में भी होता है। तुमड़ी—संशा स्त्री. [सं. तुंबिनी] (१) कड़ ए कद्दू का सूबा फल। (२) इस फल से बना पात्र जो प्रत्यः साध्यों के पास रहता है। (३) इस फल से बना मंगेरों का बाजा।

तुमरा—सर्व. [हि.तुग्हारा] तुम्हारा।
तुमरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुमङी ] (१) कड़ आ कद्दू।
(२) इससे बना पात्र। (३) इससे बना दाजा।

सर्व. [हिं. तुम्हारी ] तुम्हारी।

तुमरे— सर्व. [हि. तुम्हारा ] तुम्हारे । उ.—तुमरे कुल कौ बेर न लागे, होत भस्म संवात—६-७७।

तुमरी—सर्व. [हिं. तुम्हारा ] तुम्हारे। उ.—श्रहो महिर पालागन मेरी, मैं तुमरी सुत देखन श्राई—१०-५१। तुमाना—क्रि. स. [हिं. तूमना का प्रे.] दक्षी हुई रुई की पुलपुली करके फैलाने के लिए नुचवाना।

तुमुर, तुमुल--संज्ञा पुं. [सं. तुमुल ] (१) सेना की धूम या कोलाहल। (२) सेना की मुठभेड़ या भिड़ंत।

तुम्ह्—सर्व. [हिं. तुम | तुम । तुम्ह्रा, तुम्हारा—सर्व. [हिं. तुम, तुम्हारा ] 'तुम' का

तुम्हरा, तुम्हारा—सर्वे. [हि. तुम, तुम्हारा ] 'तुम' का संबंधकारक में प्रयुक्त होनेवाला रूप।

तुम्हरी तम्हारी—सर्व. [हिं. तुम्हारा] 'तुम' के संबंध-कारक स्त्रीलिंग रूप 'तुम्हारी' का व्रजभाषा तथा प्रविधी का मिश्रित प्रयोग। उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुल बिसरावै—१-४२।

तुम्हरे, तुम्हरो, तुम्हरो, तुम्हारे, तुम्हारो, तुम्हारो-सर्व.
[हिं. तुम] 'तुम' के संबंधकारक रूप 'तुम्हारे' का वजभाषा भौर भवधो का मिश्रित प्रयोग। उ. —सूर-दास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु, जैसें सूकर-स्वान-सियार —१-४२।

तुम्हरें—सर्व. [हिं. तुम] 'तुम' के संबंधकारक क्रिंप 'तुम्हारे' का निश्चयार्थक स्रजभाषा प्रयोग, तुम्हारा हो। उ.— तुम्हरें भजन सबहिं सिगार। जो कोउ प्रीति करें पद- श्रंबुज, उर मंडत निरमोलक हार—१-४१।

तुम्हें—सर्व. [हिं, तुम] 'तुम' का कर्म ग्रौर संप्रदान में प्रयुक्त विभिक्तयुक्त रूप।

तुरँग, तुरंगम, तुरंगा—वि. [सं. तुरंग] जल्दी चलनेवाला, शोध्रगामी।

संशा पुं. [सं.] (१) घोड़ा । उ.—(क) सत जोजन मग एक दिवस में तुरँग जाइ पहुँचायौ— १०३-२७ । (ख) चत्रे नगर के लोग साजि रथ तरल तुरंगा—१० उ.-१०५ । (ग) श्रंतरित्ततें दे रथ उपजे श्रायुध तुरँग समेत—सारा. ५६६ । (२) चित्त ।

तुरंगशाला, तुरंगसात्त, तुरंगसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. तुरंग + शाला ] घोड़े बांधने का स्थान, घुड़साल। तुरंत—क्रि. वि. [सं. तुर=वेग, जल्दी ] भटपट। तुर—क्रि. वि. [सं. ] शीझ, जल्दी।

वि.—वेगवान्, शोघ्र चलनेवाला।

तुरई—संशा स्त्री. [सं. तूर=तुरही नामक बाजा] एक बेल जिसके लंबे फलों की तरकारी बनती है।

मुहा.—तुरई का सा फूल—चटपट खर्च या समाप्त हो जानेवाली चीज।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरही ] फूंककर बजाने का एक बाजा। उ.—तुरई बाजिन बीना ताजिन चपल चपला सेहरी—१० उ. २४।

तुरकान, तुरकाना—संशा पुं. [फ़ा. तुर्क] तुर्कों की बस्ती। तुरग—वि. [सं.] तेज चलनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) घोड़ा । उ.-रोवें बृषभ, तुरंग ऋह नाग—१-२८६ । (२) वित्त ।

तुरगदानव—संज्ञा पुं. [सं.] केशी नामक देत्य जो कंस की श्राज्ञा से घोड़े का रूप घर कर ब्रज में श्राया था श्रीर श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था।

तुरगी—-संज्ञा स्त्री. [ सं. ] घोड़ी। संज्ञा स्त्री. [ सं. तुरगिन् ] घुड़सवार।

तुरत-श्रव्य. [सं. तुर ] शोघ्र, चटपट, तत्क्षण। उ,-

सूरं तुरंत मध्बन पग घारे घरनी केहितकारी-२४३३। तुरतुरा, तुरत्रियो—वि. [ सं. त्वरा ] (१) तेज, जल्द-बाज। (२) जंत्दी बोलने या बात करनेवाला। तरते, तूरते — अव्य. [हिं, तुरत ] श्रीघ्र ही, तत्क्षण। उ. — (क) भात पताइ रोहिनी ल्याई। घृत सुगंधि तुरते दे ताई--३६६ ! (ख) ले ले लकुट ग्वाल सब घाये करत सहाय उठे हैं तुरते—६६२। त्रपइ, तुरपन — संशा स्त्री. [हिं. तुरपना] मोटी सिलाई। तुरपना-कि. स. [हिं, तोपा | सिलाई करना। तुरय—संज्ञा पुं, [ सं, तुरग ] घोड़ा । उ.—सायक चाप तुरय बनि जाति हो लिये सबै तुम जाहु। त्रसी—संशा स्त्री. [हिं. तुलसी ] तुलसी की पत्ती। महा.—तुरसी की पती मुँह में लेना— सच बोलने का अमाण देना । मुँह में लही तुरसी—सच बोलकर उसको प्रमाणित करोगे । उ.—बातें कहत सबै साँची सी मुँह मैं लेही तुरसी—३१६८। त्रही-संश स्त्री. [सं. तूर] फूँक से बजाने का एक बाजा। त्रा—संज्ञा स्त्री. [सं. त्वरा ] जल्दी, शोघ्रता। संशा पुं. [सं. तुरग] घोड़ा, तुरंग। त्राई-संश स्त्री. [सं. तूलिका = गद्दा] रुई भरा हुग्रा गद्दा, तोशक । उ.—दसरथ राज बाजि गज लैकै सबहीं सौज तुराई—सारा. २२६। कि. स. [ हिं. तुड़ाना ] तुड़ाकर, बंधन छड़ाकर। संशा स्त्री, [सं. त्वरा] शीव्रता, जल्दी। त्राद-संशा पुं. [ सं. तूरंग ] घोड़ा। त्राना-कि. अ. [ सं. तुर ] घबराना, भ्रातुर होना। कि. स. [हि. तुहाना ] बंधन प्रादि खुड़ाना। त्रावत् , तुरावान् - वि. [ सं. त्यरावत् ] वेगवाला । तरावती—ाव. स्त्रा. [सं. त्वरावती ] भोके के साथ बहने-वाली, बंगवती। स.रत--वि. [ सं. त्वरित ] जल्दी चलनेवाला। कि. वि. - शीघ्रतापूर्वक, जल्दी से। तरिया, त्री. त्रोय-- व. [सं. तुरीय] चतुर्थ, चौथा। संज्ञा स्त्री — (१ वाणी की वह स्थित जब वह मूँह से उच्चरित होती है। (२) चार अवस्थाओं में से षंतिम, मोक्षा

संशा पुं.-निर्गृण ब्रह्म । त्री-वि. खी. [सं.] बेगवती, तेज। संशा स्त्री. [अ. तुरय] (१) घोड़ा। (२) लगाम । संशा पुं.—घुड़ वार, श्रश्वारोही। संशा स्त्रो. [ श्र. तुर्री ] मोती या फूल का गुच्छा । संशा स्त्री. [ हिं. तुरही न तुरही नामक बाजा। वि. [हिं. तोड़ना] तोड़नेवाला। त्रैया—संशास्त्री. [हिं. तुरई | तुरई नामक तरकारी। त्क-संज्ञा पुं. ं सं. तुरुष्क [ मुसलमान, तुकिसतानी । त्यं—वि, [सं.] चौथा, चतुर्य। तयो—संशा स्त्री. [सं.] ज्ञान जिसमें मुक्ति हो जाती है। त्याश्रम—संज्ञा पुं. [सं.] चौथा संन्यासाश्रम। त्री—संशा पुं. [अ.] (१) घुँघराले बालों की लट। (२) पगड़ी में खोंसने का पर, फूँदना या बादले का गुच्छा। मुहा .-- तुरी यह कि - ऊपर से इतना श्रीर। किसी बात पर तुर्री होना—सच्ची बात में कुछ भीर बात मिलाना। (३)पक्षियों के सिर पर परों का गुच्छा या चोटी। (४) किनारा, हाशिया। (५) मकान का छुज्जा। वि. [ फ़ा. ] अनोखा, अद्भुत । तश—वि. [फा.] खट्टा। तशई, तशी—संशा स्त्री. [फा.] खटाई, खट्टापन। तशोना - कि. अ. [ फा. ] खट्टा हो जाना। तुल - वि. [सं. तुल्य] समान, सद्श। तुलत - कि. श्र. [हि. तुलना] तुल्य है, समान (होता) है। उ.—मोहिं स्नम भयौ सखी उर श्रपनै, चहुँ दिसि भयी उजयारी री। जी गुंजा सम तुलत सुमेरहिं, ताह तै त्राति भारौ री--१०-१३५। तुलना—क्रि. ग्र. [सं. तल] (१) तौला जाना। (२) तौल या मान में बराबर उतरना। (३) ग्रस्त्र ग्रादि का सधना। (४) अंदाज हो जाना। (५) भर जाना। (६) तैयार होना, उतारू होना। संज्ञा स्त्रो. [ सं. ] १) मिलान । (२) समता, बराबरी। (३) उपमा। (४) तील। (४) गणना। तुलनात्मक—वि. [सं.] जिसमें ग्रन्य किसी के साथ

तुलना करते हुए विचार किया गया हो।

तुलवाई—संशा स्त्री. [हिं. तौलना] तौलने की किया, भाव या मजदूरी।

तुलवाना—िक. स. [हिं. तौलना ] तौल कराना।
तुलसी—संशा स्त्री. [सं.] एक छोटा पौधा जिसे वैष्णव
प्रत्यंत पवित्र मानते हैं । उ.—(क) सरवस प्रभु
रीभि देत तुलसी कें पाता—१-१२३। (ख) बात
करत तुलसी मुख मेलें नयन सयन दे मुख मटकी—
१३०१। (ग) तुलसी को कहा नीम प्रगट कियो
मोही ते करि वोहनि—२०१४।

तुलसीदल—संज्ञा पुं. [सं.] तुलसीपत्र जिसे वैश्णव ग्रत्यंत पवित्र मानते हैं।

तुलसीदाना—संशा पुं. [हिं. तुलसी + दाना] एक गहना।
तुलसीदास—संशा पुं.— हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि!
तुलसीपत्र—संशा पुं. [सं.] तुलसी की पत्ती।
तुलसीवन—संशा पुं. [सं.] वृंदावन।

तुला—स्त्री. [सं.] (१) तुलना, मिलान । (२) तराजू, कांटा। उ.—तुला विच लों केस तौले गरुश्र श्रानन गोर—१७०३। (३) मान, तौल। (४) नापने का बरतन, भांड। (४) पांच मन की एक पुरानी तौल। (६) ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि जिसमें चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती श्रौर विशाखा के श्राद्य ४४-४४ दंड होते हें। उ.—छठऐं सुक्र तुला के सुनि जुत सन्नु रहन नहिं पैंहैं—१०-८६। तलाई—संशा स्त्री. [सं. त्ल=रुई] बोहरा कपड़ा जिसमें रुई भरी हो, दुलाई।

संशा स्त्री. [हि. तुलना] तौलने का काम, भाव या मजदूरी।

तुलादान—संजा पं. [सं.] मन्ह्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान।

तुनाधार — संग प. [ सं. ] (१) तुला राशि (२) तराजू की रस्सी जिसमें पलड़े बंधते हैं। (३) विचा।

वि.—तुला या तराजू धारण करनेवाला।
तुलाना—कि. श्र. [हि. तुलना = तौल में बराबर होना]
(१) निकट या समीप श्राना। २) पूरा उतरना।
कि. श्र. [सं. तुल्य] समान था बराबर होना।
कि. स. [हिं. तुलवाना] तौलने का काम कराना।

तलानी—कि. श्र. [हिं. तुलाना] (१) बरावर हुई, पूर्ण हुई, समाप्त हुई। उ.—(क) रे दसकंघर, श्रंघमति, तेरी श्रायु तुलानी श्रानि—६-७६। (ख) सूर न मिटे भाल की रेखा, श्रल्प मृत्यु तुव श्राइ तुलानी—६-१६६। (२) समीप श्रायो, श्रा पहुँची। उ.—करुना करित मँदोदिर रानी। ""। चोरी करी, राजहूँ खोयी, श्रल्प मृत्यु तव श्राइ तुलानी—६-१६०।

तुलानो, तुलानो—कि. श्र. [हिं. तुलाना] श्रा पहुँचा, समीप श्राया। उ.—(क) कहाँ। लंकेस दे ठेस पग की तबै, जाहि मित-मूढ़. कायर, डरानौ। जानि श्रसरन-सरन, खूर के प्रभु कौं, तुरत हीं श्राइ द्वारें तुलानौ—६-२११। (ख) श्रव जिनि होहि श्रधीर कंस जम श्राइ तुलानो—२६२५।

तुलामान—संशा पुं. [सं.] तौलने का बाँट।
तुलि—संशा स्त्री. [सं.] चित्र बनाने की कूँची।
तुलित—वि. [सं.] (१) तुला हुआ। (२) समान।
तुल्य—वि. [सं.] (१) बराबर। (२) सदृश।
तुल्यता—संशा स्त्री. [सं.] (१) बराबरी। (२) सादृश्य।
तुल्योगिता—संशा स्त्री. [सं.] एक काव्यालंकार।

तुवर—िव. [सं.] बिना दाढ़ी-मूछ वाला।
तुव—संशा पुं. [सं.] (१) श्रनाज के ऊपर का छिलका,
भूसी। (२) श्रंडे के ऊपर का छिलका।
तुवान न संशा पुं. [मं.] (१) घास फूम की श्राग। (२)
इस श्राग में भस्म होने की किया जो प्रायदिवत के

तुषार—संग्रा पुं. [सं.] (१) जाड़ा, पाला, सरदी। उ.—
(क) सिलल ते सब निकास आवहु बृधा महिते
तुषार—७८६। (ख) माघ-तुषार जुर्वात अकुलाहीं—
७६६। (२) हिम, बरफ। (३) एक तरह का कपूर।
(४) हिमालय के उत्तर का एक देश जहां के घोड़े

लिए की जातो है।

प्रसिद्ध थे। (४) इस देश में बसनेवाली जाति। वि. — छुने में बरफ की तरह ठंडा। तवारकर, तुवारमूर्ति, तुवाररिम, तूवारांशु—संज्ञा पं. [ सं. ] चंद्रमा । तुषारपाषाग् - संशा पुं. [सं.] (१) भ्रोला। (२) बरफ। तुषाराद्रि—संशा पुं. [ सं. ] हिमालय पर्वत । त्दट—िव. [सं.] (१) तृप्त। (२) प्रसन्न। त्रष्टता—संशास्त्री. [सं.] (१) तुष्टि । (२) प्रसन्नता । तुष्टना—कि. श्र. [सं. तुष्ट ] प्रसन्न होना। कि. स.—संतुष्ट या प्रसन्न करना। तुष्टि—संशा सी. [सं.] (१) संतोष। (२) प्रसन्नता। तुस—संशा पूं. [सं.] श्रव का छिलका, भूसी। उ.— जी लीं मन कामना न छुटै। ती कहा जोग-जज्ञ-्वत की नहें, बिनु कन तुस कों कूटै-- २-१९। तुसार—संशा पुं. [ सं. तुषार ] (१) पाला । (२) हिम । तुसी—संशा स्त्री. [सं. तुष ] श्रन्न के ऊपर का छिलका, भूसी । उ. — ऐसी को ठाली बैठी है तोसौं मूड़ पिरावै। भूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न ग्रावै- ३२८७ । त्रत—संज्ञा स्त्री. [सं. ] धूल, गर्द। तुहार—सर्व. [हिं. तुम्हारा ] तुम्हारा । तुहिं, तुही—सर्व. [हिं. तू + हीं (प्रत्य.)] (१) तू ही, केवल तु । उ. -- भगरिनि तैं हों बहुत खिभाई। कंचन-हार दिएं निहं मानति, तुहीं अनोखी दाई— १०-१६। (२) तुभको। तहिन-संशा पुं. [ सं. ] (१) पाला, कोहरा । (२) हिम, बरफ। (३) चाँदनी। (४) शीतलता, ठंढक। तुहें - सर्व. [हिं. तुम्हें ] तुम्हें, तुमको। तूं — सर्व. [ सं. त्वम् . हि तू ] मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम, तू । उ - रे मन, छाँ इ विषय की रॅनिबो। कत त् होत सुवा सेमर की, श्रंतहि कपट न बचिबो ---१-५६ ।

तूँशी—संज्ञास्त्री. [देश.] (१) पृथ्वी। (२) नाव।

तूँ बड़ा — संशा पुं. [हिं. तूँ बा] साधु श्रों का कमंडल।

तूँ बना - कि. स. [हिं. तूनना, रुई उध इकर पोली करना।

त्बा - संशा पं. [सं. तुबक] (१) कड़ श्रा गोल कद्दू

या घीया। (२) इससे बना साधुओं का कमंडल। तूँ बी-सं हा स्त्री. [हिं. तूँ बा ] (१) कड़ आ गोल कद्दू या घीया। (२) इससे बना छोटा कमंडल। तू—सर्व. [सं. त्वम्] मध्यमपुरुष एकवचन सर्वनाम। मुहा. - तू तड़ाक (तू तकार या तू-तू मैं-मैं) करना—कहा सुनी या गाली-गलीज करना। संज्ञा स्त्री. यनु. ] कृतों को धुलाने का शब्द। तूख—संज्ञा पं. [ सं. तुष = तिनका ] तिनका, सींक या खरका जिसे पत्ते में छेद कर 'दोना' बनाते हैं। तूखना—िक. स. [सं. तोषण ] तुष्ट या प्रसन्न करना। कि. अ.—तुष्ट या प्रसन्न होना। तूटना-क्रि. श्र. [हिं. टूटना ] टूट जाना। तूटी — कि. अ. [हिं. टूटना ] टूटी, अलग हुई। तूठना—कि. श्र. [ सं. तुच्ठ, पा. तुह ] (१) संतुष्ट होना, श्रवाना। (२) प्रसन्न या राजी होना । (३) घमंड से फुलना। तूरे-कि. च. [हिं. तूठना] संतुष्ट या प्रसन्न हुए। उ.-लालच लागि कोटि देवन के, फिरत कपाटिन खोलत । एकनि कौं जिय-दिल दे पूजे, पूजत नैंकु न त्ठे-१-१७७। तूगा—संज्ञा पुं. [ सं. ] तीर रखने का चौगा, तरकश। तूग्यस्वेड़—संशा पुं. [सं. ] बाण, तीर। तूणी—संश स्त्री. [ सं. ] बाज रखने का चोगा, तरकश। वि. [सं. तू शिन्] जो तरकश लिये हो। तूणीर—संज्ञा पुं. [सं. ] तूण, निषंग, तरकश। तूती—संश स्त्री. [फ़ा. (१) छोटी जाति का तोता। (२) एक छोटी सुंदर चिड़िया। (३) मटमैले रंग की चिड़िया जो प्यारी बोली के लिए पाली जाती है। मुहा. - किसी की तूरी बोलना - किसी की खूब चलना, किसी का प्रभाव जमना । नकारखाने में तूनी की आवाज कौन सुनता है—(१) बहुत शोरगुल में एक प्रादमी की बात पर कोई ध्यान नहीं देता। (२) बड़ों के समाज में छोटों की बात पर कोई ध्यान नहीं देता। (४) मुंह से बजाने का एक बाजा या खिलीना।

तूदा—संशा पुं. [ फा. ] (१) राशि। (२) हदबंदी।

तृन—संशा पुं. [ सं. त्या ] तरकश, तूणीर । उ.—कटि तट तून, हाथ सायक-धनु सीता-बंधु समेत—६-३६ । संशा पुं, [ सं. तृया ] तिनका, सींक । तृना—िक अर. [ हिं. चूना ] (१) चूना, टपकना । (२) खड़ा न रहना, गिरना ।

तूनीर—संज्ञा पुं. [ सं. तूणीर ] तरकश, तूण।
ंड.—कटि तट पट पीतांबर काछे, धारे धनु-तूनीर—
६-४४।

तूफान—संज्ञा पुं. [ अ. तूफान ] (१) बहुत बड़ी बाढ़। (२) ग्रांघी, ग्रंघड़। (३) ग्राफत, ग्रापत्ति। (४) हल्ला-गुल्ला। (४) भगड़ा-बखेड़ा। (६) भूठा कलंक जिससे ग्राफत खड़ी हो जाय।

त्फानी—वि. [फा. त्फ़ान ] (१) भगड़ालू, उपद्रवी।

(२) भूठा कलंक लगानेवाली। (३) उग्र, प्रचंड। तूमड़ी, तूमरी—संशास्त्री. [हिं. तूँवा + डी (प्रत्य.)]

(१) तूँबी, कमंडल। (२) सँपेरों का बाजा।
तूमतड़ाक—संज्ञा स्त्री. [फा.] तड़क-भड़क, ठसक।
तूमना—िक. स. [सं. स्तोम = देर + ना] (१) रुई को उधेड़कर पोला करना। (२) धज्जी उड़ाना। (३) मसलना। (४) भेद खोलना।

तूमार—संशा पुं. [ श्र. ] बात का व्यर्थ बढ़ाना।
तूर—संशा पुं. [ सं. ] एक प्रकार का बाजा। उ.—(क)
जागी महरि, पुत्र मुख देख्यी श्रानँद-तूर बजायी—
१०-४। (ख) दसएँ मास मोहन भए (हो) श्राँगन
बाजै तूर—१०-४०। (ग) चंदन श्राँगन लिपाइ,
मुतियनि चौकें पुराइ, उमँगि श्राँगनि श्रानंद सौं
तूर बजावी—१०-६५।

संज्ञास्त्र'. [स. तुवरी] ग्ररहर।

तूरज्ञ—संज्ञा पुं. [सं. तूर्य ] तुरही नामक बाजा।
तूरण, तूर्न — कि. वि. [सं. तूर्ण ] कोझ, जल्ही।
तूरना—कि. सं. [हिं. तोइना ] भग करना।
संज्ञा पुं. [सं. तूर ] तुरही नामक बाजा।
तूरी—संज्ञा पु [सं. तूर ] तुरही नामक बाजा।
तूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. ] धतूरे का पेड़।
तूरो—कि. वि. [सं. ] कोझ, तुरत, चटपट।
तूरो—कि. वि. [सं. ] तुरंत, कोझ, तत्काल।

तूर्य—संशा पुं. [सं. ] तुरही नामक बाजा।
तूर्व--कि. वि. [सं. ] तत्काल, तत्क्षण, तुरंत।
तूल —संशा पुं. [सं. ] (१) कपास या सेमर के डोडे के
भीतर का घूत्रा, रुई। उ.—(क) सेमर-फूल सुरँग
श्रति निरखत मुदित होत खग-भूप। परसत चोंच
तूल उघरत मुख परत दु:ख के कूप—१-१०२।(ख)
ब्याकुल फिरत भवन बन जहँ तहँ तूल श्राक उघ
राइ। (२) रुई की बत्ती जो दीपक में जलती है।
उ.—गृह दीपक, धन तेल, तूल तीय, सुत ज्ञाला
श्रति जोर। मैं मित-हीन मरम निहं जान्यी, परयौं
श्रिषक करि दौर—१-४६। (३) शहतूत।(४) ध्राकाश।
संशा पुं. [हिं. तून=एक पेड़] (१) गहरा लाल
रंग। (२) गहरे लाल रंग का सूती कपड़ा।

वि. [सं. तुल्य] तुल्य, समान । उ.—(क) मैं अपराधी ब्रज बधू सों कहे बचन बिष तूल—१०उ.-१०४। (ख) काम अवतार लीन्हों बिदित बात यह तासु सम तूल निहं रूप दोऊ—१० उ. ७६। तूलता—संज्ञा स्त्री. [सं. तुल्यता] समानता, बराबरो। तूलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. तूल] रुई। उ.—बन-बन फिरे अर्क-तूलन ज्यों बास बिराटहिं कीन्हों —सारा. ७७८।

तूनना—िक. स. [हिं. तुलना] पहिए की धुरी में तेल देना, चिकनाना।

तूला—संज्ञा स्त्री. [सं.] कपास।
तूलिका, तूनो—संज्ञा स्त्रो. [सं.] वित्रकारों की कूँची।
तूले—ित्र. [सं. तुल्य, हिं. तून] तुल्य या समान होती है।
उ.—स्त्रुति-कंडल छिति रित नहि तूल दसन-दमकदुति दामिन भूले—७६।

तूपरक—संता पुं. [सं.](१, बिना सींग का बैल। (२) बिना दादी का मनुष्य।

तूष्णी—ित. [सं. तृष्णाम् (ग्रव्यः)] मौन, चुप।
संज्ञा स्त्री.— मौन, खामोक्षी, चुप्पी।
तूष्णीक—ित. [सं.] मौन साधनेवाला।

तूस—संज्ञा पुं. [सं. तुष] भूसो, भूसा।
संज्ञा पु. [तिब्बती-थास] एक तरह का ऊन।
तूसना—कि. स. [सं. तुष्ट] (१) संतुष्ट या तुष्त

करना। (२) प्रसन्न या राजी करना।
तूसी—वि. [हिं. तूस ] स्लेटी रंग का।
तूस्त—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) धूल, रज। (२) भ्रणु,
कण। (३) जटा। (४) धनुष, चाप।
तृखा—संज्ञा स्त्री. [सं. तृषा ] ध्यास।
तृज्ञग—वि. [सं. तियक ] तिरस्त्रा, श्राड़ा।
तृगा—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) दूब, कुज श्रादि घास। (२)
तिनका, सूली घास-फूस।

मुहा.—तृण गहना (पकड़ना) —हीनता दिखाना, गिड़गिड़ाना । तृण गहाना (पकड़ाना ) —हीन बनाना, वश में करना । किसी वस्तु पर तृण टूटना—संदर चीज (पुत्र ग्रादि) को नजर से बचाने के लिए टोटके के रूप में तिनका टूटना । तृण बराबर (तृणवत् या समान)—ितनके के बराबर, बहुत ही मामूली । तृण तोड़ना—(१) संदर चीज (पुत्र ग्रादि) को नजर से बचाने के लिए टोटके के रूप में तिनका तोड़ना । (२) संबंध या नाता तोड़ना ।

तृण्चर—िव. [सं.] घास चरनेवाला (पशु)।
तृण्मय—िव. [सं.] घास का बना हुग्रा।
तृण्शय्या, तृण्शया—संज्ञा स्त्री. [सं.] चटाई, साथरी।
तृण्गवत्त—संज्ञा पं. [सं.] (१) बवंडर, ग्रंथड़। (२)
एक देत्य जो कंस के भेजने पर बवंडर-रूप में गोकुल

श्राया श्रोर श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था। तृतिय, तृतीय—वि. [सं. तृतीय] तीसरा। तृतीयांश—संज्ञा पुं. [सं. तृतीय + श्रंश] तीसरा भाग। तृतीया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रत्येक पक्ष का तीसरा

दिन, तीज। (२) करणकारक (व्याकरण)।
तृतीयाश्रम—संज्ञा पुं. [सं. ] वानप्रस्थ ग्राश्रम।
तृन —संज्ञा पुं. [सं तृण] (१) कुज्ञ, मूंज, घास। उ.—
(क) जन के उपजत दुख किन काटत १ जैसें प्रथम ग्रासाढ़ ग्राँज तृन, खेतिहर निरिष्ट निपाटत—१-१००। (ख) ज्यों सौरम मृग-नारि बसत है द्रुम-तृन सूँघ फिल्यों—२-२६। (१) तिनका, सूखी घास। उ.—(क) कबहुँक तृन बूङै पानी मैं, कबहुँक सिला तरैं—१-१०५। (ख) सुखे पात श्रोर तृन

खाइ--१-३।

मुहा, — तृन गहना (पकड़ना) — होनता दिखाना, गिड्गिड्ना। तृन गहाना (पकड़ाना)—नम्र करनी, विनीत बनाना, वश में करना। तृन गहाय कै--नम्र करके, वश में करके। उ.—कही तां ताकीं तृन गहाय के जीवत पायन पारीं—१-१०८ । (किसी) वस्तु पर तृन टूटना—(किसी सुंद्र चीज जैसे पुत्र-पुत्री को) नजर लगने से बचाने के लिए टोटके-रूप में तिनका ट्रना। तृन बराबर (वत् या समान)— तिनके के बराबर तुच्छ या हीन, बहुत ही साधारण, कुछ भी नहीं। (किसो वस्तु पर) तृन तोइना— (किसी सुंदर चीज जैसे पुत्र-पुत्री को) नजर से बचाने के लिए टोटके-रूप में तिनका तोड़ना। डारत है तृन तोर-नजर से बचाने के लिए तिनका तोड़ते हैं। उ.—(क) सूर अंग त्रिभंग संदर छिब निरिख तृव तोर-१३३५। (ख) पीवत देखि रोहिनी जसुमति डारत हैं तृन तोरे—सारा. ४४२। तृन तोड़ना—संबंध या नाता तोड़ना । तोरि तृन—नाता तोड़कर। उ.—भुना छुड़ाइ तोरि तृन ज्यों हित करि प्रभु निदुर हियो। गयो तृन तोर—संबंध तोड़ गया। उ.—ऊधो नंद को गोपाल गिरिधर गयो तृन जो तोर—३३८३। बूड़त ज्यों तृन गहियत—डूबते को तिनके का सहारा होता है, बड़ी मुसीबत में पड़े व्यक्ति के लिए थोड़ी सहायता या सांत्वना बहुत महत्व की होती है। उ.—फिरि फिरिवहइ अवधि श्रवलंबन बूड़त ज्यों तृन गहियत—३३००। तृन दंत गहि—दांत में तिनका दबाकर, नम्र होकर, श्रधीन हीने की कामना लेकर। उ.—जाइ मिलि श्रंध दसकंध, गहि दंत तृन, तौ भलें मृत्यु-मुख तैं उबार---१२६।

तृनावृत, तृनावृत, तृनावृत—संज्ञा पृं. [सं.
तृणावर्त ] एक राक्षस जो कस की आज्ञा से बवंडरह्रिप में गोकुल आया था और श्रीकृष्ण द्वारा मारा
गया था। उ.—(क) जिन हित संकट प्रलंब तृनावृत
इंद्र प्रतिज्ञा टाली—२५६७। (ख) तृना केसी संकट
बकी बक अधासुर, बाम कर राखि गिरि ज्यौं

उबारयो—५६६। (ग) बकी, बकासुर, सकट, तृनाब्रत, श्रघ, प्रलंब, बृष्मास—४८७।
तृपति—संशा स्त्री. [सं. तृष्ति ] संतोष, प्रसन्नता।
तृषित, तृष्त—वि. [सं. तृषि ] संतुष्ट, प्रसन्न।
तृषिता—संशा स्त्री. [सं. तृषि ] संतोष, तृष्ति। उ.—
श्र चवत श्रादर लोचन पुट दोउ भनु निहं तृषिता पावै—२३६०।

नृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा पूरी होने पर ज्ञांति, ग्रानंद या संतोष। उ.—(क) फिरत बृथा भाजन श्रवलोकत, सूनै सदन श्रजान। तिहि लालच कबहूँ कैसेंहूँ, तृति न पावत प्रान—१-१०३। (ख) जनम तै एकटक लागि श्रासा रही, बिषम-बिष खात निहं तृष्ति मानी—११०। (ग) सोभा कहत कही निह श्रावै। श्रचवत श्रित श्रातुर लोचन-पुट मन न तृष्ति को पावै—४७८।

तृषा— संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्यास । उ.—भूखे भये भोजन ज उदर कों, तृषा तोय पट तन कों—१-६। (२) इच्छा, श्रभिलाषा। (३) लोभ, लालच।

तृषालु—वि. [ सं. ] प्यासा, तृषित ।

तृषावंत, तृषावान् वि. [सं- तृषावान् का बहु.]
प्यासे। उ. — तृषावंत सुरभी बालकगन, कालीदह
श्रवयौ जल जाइ — ५०१।

तृषित—वि. [सं.] (१) श्रभिलाषी, इच्छुक। (२) प्रामा। उ.—(क) तृषित हैं सब दास कारन चतुर चातक दास—१०-२१६ (ख) तृषित भए सब जान मोहन सखिन टेरत बेनु। बोलि ल्यावहु सुरभि-गन, सब चलौ जमुन-जल-देनु—४२७।

तृष्ण—िव. [सं.] (१) जिसे तृषा या प्यास हो, प्यासा। (२) श्रभिलाषा या कामना रखनेवाला। तृष्णा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लोभ। (२) प्यास। तृष्णालु—िव. [सं.](१) लोभी। (२) प्यासा। तृष्णा—संज्ञा स्त्री. [सं. तृष्णा] (१) प्राप्ति के लिए विकल करनेवाली इच्छा, लोभ। उ.—श्रव में नाच्यो बहुत गुपाल। ""। तृष्ना नाद करित घर भीतर नाना बिधि दै ताल—१-१५३। तें—प्रत्य. [सं. तस् (प्रत्य.)] (१) से, द्वारा। (२) से,

श्रिक । उ.—(क) नैना तेरे जलज तें हैं खंजन तें श्रुति नाचें। (ख) चपला तें चमकत श्रुति प्यारी कहा करौगी स्यामहिं। (३) किसी काल या स्थान से। तेंतालिस, तेंतालिस—संज्ञा पुं. [सं. त्रिचत्वारिशत्, पा. तिंचत्तालीस ] चालीस से तीन श्रधिक की संख्या। तेंतालीसवाँ—वि. [हिं. तेंतालीस+वाँ (प्रत्य.)] कम में तेंतालीस के स्थान पर पड़नेवाला।

तेंतिस, तेंतीस—संज्ञा पुं.—[सं. जयस्त्रिशत, पा. तिति-सति. प्रा. तितीसा] तीस से तीन श्राधिक की संख्या। तेंतीसवाँ—वि. [हिं. तेंतीस+वाँ (प्रत्य.)] जो अस में तेंतीस के स्थान पर पड़े।

तें दुश्रा—संशा पुं. [देश.] एक हिसक पशु ।
ते—सर्व. [सं. ते] (१) वे, वे लोग । उ.—(क) जे जन
सरन भजे बनशरी । ते ते राखि लिये जग-जीवन,
जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी—१-२२। (ख) मेरी
देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं । लै लै
ते हथियार श्रापने, सान घरा र त्यौं—१-१५१। (ग)
(२) उन्हें, उनको । उ.— श्रष्टिसिद्ध बहुरौ तहँ
श्राईं। रिषभदेव ते मुँह न लगाईं—५-२।

वि.—वे। उ.—ते बेली कैसें दिहयत हैं जे अपनें रस भेइ—१-२६०।

प्रत्य. [सं. तस, हिं. तें] (१) से, द्वारा । उ.— स्रदास श्रक्र कृपा ते सही बिपति तन गाड़ी—२५३। तेइ—सर्व. [हिं. ते+ई] वे, उसे । उ.—श्रपुने कों को न श्रादर देइ। ज्यों बालक श्रपराध कोटि करै, मातुन मानै तेइ—१-२००।

तेई—सर्व. [हिं. ते+ई (प्रत्य.)] वे ही, वे लोग ही। उ.—(क) सूरदास तेई पद-पंक्रज त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे—१-६४ । (ख) जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि धिनैहें—१-८६ ।

तेईस—संज्ञा पुं. [ सं. त्रिविंशति, पा. तेवीसति, पा. तेवीस ति, पा. तेवीस ति, पा. तेवीस ति, पा. तेवीस ति, पा.

तेईसवाँ—वि. हिं. तेईस+वाँ (प्रत्य.) ] कम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला।

तेड—संज्ञा पुं. [हिं. तेज ] (१) तेज। (२) ग्रग्नि। तेड, तेऊ—सर्व. [सं. ते+हिं, ऊ (प्रत्य.)] वे भी, वे लोग भी। उ.—तेक चाहत कृपा तुम्हारी जिनकें बस श्रानिमिष श्रानेक गन श्रानुचर श्राज्ञाकारी—१-१६३। तेखना—िक. श्रा. [सं. तीच्ए, हिं. तेहा] नाराज होना। तेखि—िक. श्रा. [हिं. तेखना] श्राप्तस्त्र या कृद्ध होकर। तेखियो—िक. श्रा. [हिं. तेखना] श्राप्तस्त्र या कृद्ध हो (श्राज्ञार्थक)। तेखी—िक. श्रा. [हिं. तेखना] श्राप्तस्त्र हो। तेग—संज्ञा स्त्री. [श्रा. तेग़] तलवार, खड़ग। तेगा—संज्ञा पुं [श्रा. तेग़] (१) खांडा, खड़ग। (२) मेहराव के नीचे का भाग बंद करने का कामा। तेज—संज्ञा पं [सं तेजन) (१) दीदिन, कांति समक

तेज—संग्ञा पुं. [सं. तेजन्] (१) दीष्ति, कांति, चमक, आभा। उ.—कह्या, पुरोहित होत न भलौ। विनित्त जात तेज-तप सक्लौ—६-५। (२) पराक्रम, जोर, खल। (३) वीर्य। (४) सार, तत्व। (५) ताप, गर्मी। (६) तेजी, प्रचंडता। (७) प्रताप, रोष। (६) पांव तत्वों में से तीसरा, भ्राग्न। उ.—पृथ्वी अप तेज वायु नम संग्रा शब्द परस श्रव गंव—सारा. ६।

वि. [फ़ा. तेज़] (१) पैनी धार का । (२) शीघ्र चलनेवाला । (३) फुरतीला । (४) तीखा, भालदार । (४) महँगा। (६) उग्र, प्रचंड । (७) श्रमर या प्रभाववाला। (६) तीक्षण बुद्धि का। (६) बहुत चपल या चंचल।

तेजधारी—ित्र. [सं. तेजधारिन् ] तेजस्वी, प्रतापी।
तेजन—संज्ञा पुं.[सं.] तेज उत्पन्न करने की किया या भाव।
तेजना—िक. स. [हिं. तजना ] स्थाग देना।
तेजनो—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूर्ख। (२) तेजबल।
तेजपत्ता, तेजपत्र, तेजपात—संज्ञा पुं. [सं. तेजपत्र]

एक पेड़ का पता जो बहुन सुंधित होता है।

तेज-पुंत—नंग पुं. [स. तेनस् + पुंज=सन्ह ।]

दाध्त-निशि, कांति निधि, श्राभापुंज । उ.—तिइत-वान-सम्मन्त तेज पुज तन को नास —
१-६६।

तेज न — गंग पुं. [मं.] चातक, पपीहा।
तेज गंन, तेज चान — गि. [स. तजीवान] (१) तेज युक्त,
तेज हो । (२) वीर्यवान। (३) बली, बलवान्। (४)
समकीला, चमकदार।

तेजस् —संग्रा पुं. [सं.] (१) कांति, प्रामा। (२) बीर्व।

(३) प्रताप तेज।
तेजसी—ित्र. [हिं. तेजस्त्री] तेज से पूर्ण।
तेजस्कर—ित्र. [सं.] ग्रपना तेज बढ़।नेवाला।
तेजस्वन्—ित्र. [सं.] तेजस्वी, तेज से युक्त।
तेजस्वी—ित्र. [सं. तेजस्विन् (१) जिसमें तेज या कांति

हो। (२) प्रतापी। (३) प्रभावशाली।
तेजा--संज्ञा पुं. [फ़ा. तेज] महँगी, तेजी।
तेजाब-संज्ञा पुं. [फ़ा. तेज़ाब] किसी क्षार पदार्थ का
प्रम्लसार जो बहुत तेज होता है।

तेजायतन — संज्ञा पुं. [सं. तेज+त्रायतन] परम तेजस्वी। तेजिष्ठ — वि. [सं.] तेजस्वी, तेजी से युक्त। तेजी — संज्ञा स्त्रा. [फ़ा. तेजी] (१) तेज होने का भाव।

(२) प्रवलता । (३) उप्रता, प्रचंडता । (४) शीघ्रता । (५) महंगी ।

तेजोमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यं, चंद्रमा ग्रादि के चारो ग्रीर का ग्राकाश-मंडल।

तेजोमय-वि. [सं.] जिसमें खूब कांति या तेज हो। तेजोरूय-संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्म । (२) जो ग्राम्न-

रूप हो।
ते जोहत —ि [सं.] जिसका तेज नष्ट हो, श्रीहत।
तेज्यो —ि कि. स. [हिं. तजना ] त्याग दिया।
तेतना, तेता —ि वि. [हिं. तितना] उतना, उसके बराबर।
तेतिक —ि वि. स्त्री, [हिं. तेता ] उतना, उसके बराबर।

उ.—धर्म कहें सर-सयन गंग-सुत ते तक नाहिं सँतोष—१-२१४।

तेतो—ि। स्री. [हि. तेता] उतनी, उसके बराबर। उ.-(क) प्रभु जू यों कीन्हीं हम खेती। बंतर भूरि, गाउँ हर जाते, त्रारु जेती की तती—१-१८५। (ख) सेत्रा तुम जेती करी पुनि देही तेती—२६१६।

तेते —ित पुं. बड़. [हिं. तता ] उतने, उसी प्रमाण के। इहिं शिंध इहिं डहके सबें, जल-था-नम-तिय जे रे (हो) । चतुर-सिरोमनि नंद-सुत, कहीं कहीं लिंश तेते (हो)—१४४।

तेनो, ते गौ—ित पुं [हिं तेता] उतना।
तेपि—पद [हिं ते+अपि ] वे भी।
तेमन—संशा पुं [ सं ] पका हुआ भोजन, व्यंजन।

तेरवाँ, तेरहवाँ—िव. [हिं. तेरह + वाँ (प्रत्य.)] क्रम में तेरह के स्थान में पड़नेवाला।

तेरस — संज्ञा स्त्रो. [सं. त्रयादशी] पक्ष की तेहरवीं तिथि। तेरह—संज्ञा पुं. [सं. त्रयोदश, प्रा. तेदह, श्रद्धमा, तेरस] दस ग्रौर तीन की संख्या।

तेरहीं—संज्ञा स्त्री, [हिं, तेरह] मृत्यु के दिन से तेहरवां दिन जब पिडदान और ब्राह्मण-भोजन करके मृतक के घरवाले शुद्ध होते हैं।

तेरा—सर्व. [सं. तव] त का संबंधकारक-रूप।
तेरिय—सर्व. [हिं. तेरी + ही] तेरी ही। उ.—बैठत
उठत चलत गउ चारत तेरिय लीला गावै—२०३२।
तेरी—सर्व. स्त्री. [हिं. पुं. तेरा] त का संबंधकारक
स्त्रीलिंग रूप।

मुहा.—तेरी सी—तेरे लाभ या मतलब की। तेरुस—संज्ञा पुं. [हिं. त्योरुस ] (१) बीता हुआ तीसरा वर्ष। (२) ब्रानेवाला तीसरा वर्ष।

तेरे—ितः [हिं. तेरा] तुम्भः संबंधित । उ.—कैसँ कहीं-सुनौं जस तेरे—१-२०६ । श्रव्य. [हिं. ते] से ।

तेरैं—वि. [हिं. तेरा] तुभक्ते संबंधित। उ.—द्वार परयौ है तेरैं—१-२०६।

तेरी, तेरयों—िव. [हिं. तेरा ] तेरा । उ.— (क) प्रभु तेरी बचन भरोसी साँची — १-३२ । (ख) मूँदन ते नैन कहत कीन ज्ञान तेरयी—३०५७।

तेल संज्ञा पुं. [सं. तैल ] (१) बीजों-ब्रनस्पतियों से निकलनेवाला चिकना तरल पदार्थ, रोगन।(२) विवाह की एक रीति जिसमें वर को वधू का नाम लेकर तेल चढ़ या जाता है। इसके पश्चात विवाह-संबंध पक्का समभा जाता है।

मुहा. — तेल उठा (चढ़ाना) — तेल की रस्म होना।
तेल इटाना (चढ़ाना) — तेल की रस्म पूरी करना।
तेलवई — संज्ञा पुं. [हि. तेल + वाई (प्रत्य.)] (१)
हानीर में तेल लगाना या मलना। (२) विवाह में
कन्दा पक्षवालों की भोर से वर पक्ष वालों को तेल
अंजने की रस्म। (३) वर, बधू को तेल चढ़ाये जाते
समय नाई को वी जानेवाली निद्यावर।

तेलहन—संशा स्त्री. [हं, तेल ] व बीज (जैसे तिल, सरसों) जिनसे तेल निकलता है।
तेलहा—वि. पुं. [हं, तेल ](१) जिसमें से तेल निकले।
(२) तेल संबंधी। (३) जिसमें चिकनाहट हो।
तेला—संशा पुं. [हं.तीन+बेला] तीन दिन का उपवास।
तेलिन—संशा स्त्री. [हं. तेली ] तेली की स्त्री।
तेलिया—वि. [हं. तेल ] तेल सा चिकना-चमकीला।

संज्ञा पुं. [हिं. तेल+इया (प्रत्य.)] (१) काला, विकना श्रौर चमकीला रंग। (२) इस रंग का पशु, पक्षी या पदार्थ।

तेली—संशा पुं. [हिं. तेल + ई (प्रत्य.)] एक शूद्र जाति जो प्राय: तेल पेरने का व्यवसाय करती है। मुहा.—तेली का बृष (बैल)—हर समय काम में जुटा रहनेवाला ग्रादमी। उ.—महा मूढ़ श्रशान

तिमिर महँ, मगन होत सुख मानि । तेली के बृष लौं नित भरमत, भजत न सारँगपानि—१-१०२। तेवन—संशा पुं. [सं. श्रंतेवन] (१) क्रीड़ा, केलि, विनोद। (२) क्रीड़ास्थल।

तेवर—संज्ञा पुं. [सं. त्रिक्टी, पु. हिं. तेउरी] (१) कांध की दृष्टि।

मुहा,—तेवर चढ़ना— दृष्टि से कोध प्रकट होना।
तेवर बदलना (बिगड़ना) (१) मुहब्बत न करना।
(२) अप्रसन्न होना। (३) मृत्यु की छाया या चिह्न
प्रकट होना। तेवर बुरे दिखायी देना (नजर
प्राना)—प्रेम में अंतर पड़ना। तेवर मैले होना—
दृष्टि से दुख, कोध या उदासीनता प्रकट होना।
(२) भौंह, भुकूटी।

(२) भाह, भृषुटा।
तेवराना—कि. श्र. [हिं. तेवर + श्राना] (१) विता
या संदेह में पड़ना।(२) चिकत होना। ३) मूछित होना।
तेवान—संज्ञा पुं. [देश.] चिता, सोच, विचार।
तेवाना—कि. श्र. [देश.] सोचना, विता करना।
तेइ—नंशा पुं. [हिं. देलाा] (१) कोध, गुस्सा।
(२) घमंड, श्रहंकार। (३) तेजी, प्रचंडता।
तेदर—संज्ञा स्ना, [सं. त्रि + हार] तीन लड़ों की जंजोर।
तेदर—वंज्ञा स्ना, [सं. तिन + हरा] (१) तीन परत
का। (२) एक साथ तीन तीन। (३) तीसरी बाद

किया हुन्ना। (४) तिगुना। तेहराना—कि. स. [हिं. तेहरा] (१) तीन परतों का।

(२) तीसरी बार दोहराना। तेहा-संज्ञा पुं. [हिं. तेह] (१) कोध। (२) घमंड।

तेही, तेही सर्व. [सं. ते] उस, वे। उ.—श्रमी सहस किंकर-दल तेहि के, दौरे मोहिं निहारि—१-१०४। तेही—संशा पुं. [हिं. तेहा] (१) कोधी। (२) घमंडी। तेहेदार, तेहेबाज—वि. [हिं. तेहा + फ़ा. दार, बाज़]

(१) गुस्सेल। (२) श्रिभमानी, शेली बघारनेवाला।
तैं—िक्ति, वि. [हिं. ते ] से। उ.—(क) लच्छा-ग्रह
तें काढ़ि के पांडव ग्रह ल्यावे—१-४। (ख) भीर
के परे तें धीर सबहिनि तजी खंभ तें प्रगट हो जन
छुड़ायौ—१-५। (ग) ब्रह्म-श्रस्त्र तें ताहि बचायौ।
.....। तुव सराप तें मिरिहै सोइ—१-२६०।

सर्व. [सं. त्वं] तू, तूने। उ.—तें श्रज्ञान करी सत्राई। उनकी महिमा तें नहिं पाई—४-५।

तेंतिस, तेंतीस—ि [हि. तेंतीस] तीस भ्रौर तीन, तेंतीस। उ.—तेंतीस कोटि देव बस की है, ते तुमसों क्यों हारे—६-१०५।

तै— कि. वि. [सं. तत्] उतना, उस मात्रा का। संज्ञा पुं. [त्र्रा.] (१) निबटेरा, फैसला। (२) पुरा करना। (३) तह, परत।

वि.— (१) निबटाया हुग्रा। (२) समाप्त किया हुग्रा। तैजास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमकीला पदार्थ। (२) घी। (३) वीर मनुष्य। (४) भगवान्। (४) राजस ग्रवस्था में प्राप्त ग्रहंकार।

वि.—तेज से उत्पन्न, तेज-संबंधी।
तैतिरि—संशा पुं, [सं, ] एक ऋषि।
तैतिरीय—संशा स्त्रो, [सं,] कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा।
तैनात—वि. [श्र. तपश्रय्युन ] नियत, नियुक्त।
तैनातो —संश स्त्रों, [हिं, तैनात ] नियुक्त।
तैयार—वि. [श्र. ] (१) ठीक या कामलायक।

मुहा .- तैयार होना - ग्रन्यास से मँज जाना।

(२) उद्यत, तत्पर, मुस्तैद। (३) उपस्थित, मौजूद। (४) मोटा-ताजा। तैयारी— संज्ञा स्त्री, [हि, तैयार] (१) ठीक या दुरुस्त होने की किया या भाव। (२) तत्परता, मुस्तैवी। (३) मोटाई। (४) धूमधाम, सजावट।

तैये—िक. श्र. [हिं, तयना ] संतप्त हुए, पीड़ित हुए। उ.—गौतम-रूप बिना जो जैये। ताके साप श्रामि सौं तैये—६-८।

तैयो—कि. वि. [हिं. तक ] तो भी, तिस पर भी।
तैरना—कि. श्र. [सं. तरण] (१) पानी पर ठहरना
या उतराना। (२)हाथ-पैर चलाकर पानी में पैरना।
तैराई—संज्ञा की. [हिं. तैरना + श्राई (प्रत्य.)] तैरने
की किया, भाव या मजदूरी।

तैराक—वि. [हिं. तैरना + श्रांक (प्रत्य.)] तैरने मं कुशल।

तैराना—कि. स. [हिं. तैरना का प्रे.] (१) तैराने में दूसरे को लगाना। (२) घुसाना, धँसाना। तैर्थ—वि. [सं.] तीर्थ से संबंधित।

संज्ञा पुं. — वह कार्य जो तीर्थ में किया जाय।
तैलंग — संज्ञा पुं. [सं. त्रिक लिंग] दक्षिण भारतीय
एक देश।

तैलंगी—संज्ञा पुं. [ सं. तैलंग ] तैलंग देश का निवासी। संज्ञा स्त्री,—तैलंग देश की भाषा।

वि.— तैलंग देश से संबंधित।
तैलयंत्र—संशा पुं. [सं.] तेल पेरने का कोल्हू।
तैलिक—संशा पुं. [सं.] तेली।

वि.—तेल-संबंधी।
तैलिक जंत्र (यंत्र)—संज्ञा पुं. [सं. तैलिक यंत्र] को तृह्र तैश—संज्ञा पुं. [ अ. ] कोधावेश, गुस्सा।
तैष—संज्ञा पुं. [ सं. ] चांद्र पौष मास।
तैस, तैसा—वि. [ सं तादृश, प्रा. ताइस ] उस प्रकार का, 'वैसा' का पुराना रूप।

तैसि, तैसी—वि. [हिं. तैस] तैसी, दैसी ही, उसी प्रकार की। उ.—देखियत नहिं भदन माँभा, जैसोइ तन तिस साँभा, छल ो व्हा करत फरत महार को जिटेरी—१०-२७६।

तैं[सयै—िव. [हि. तैसा ] तैसी ही, उसी प्रकार की। उ.—(क) त्यों-त्यों मोहन नाचे ज्यों ज्यों रई-घमर की होइ (री)। तैसियै किंकिनि-धुनि पग-नूपुर, सहज मिले सुर दोइ (री)—१०-१४८। (ख) अर तैसिय गाल मसूरी। जो खातिहं सुख-दुख दूरी— १०-१८३।

तैसे—कि. वि. [हिं, तैसा देसे, उसी प्रकार से। तैसेइ—ि. [हिं, तैसा + ही ] तंसे ही, वंसे ही। उ.— उ.—तेन्द्र हरि, तेन्द्र सब बालक, कर भौरा-चकरिनि की डोरी— ६६६।

तेसें— कि, वि, हि, तसा देसे हो। उ.—जहाँ-जहाँ सुमिरे हरि जिहि विधि तह तैसें उठि धाए (हो)—१-७।

तैसो—वि. [हिं, तैसा ] वैसा. उसी प्रकार का। उ.— लूट लूट दिंध खात सखन सँग वेसो स्वाद न पाई— ८६४ सारा.।

तैसोइ— वि. [हिं. तैसा + ही (प्रत्य.)] वैसा हो। उ.--जैसेइ बंहये तैसोइ लुनए, कर्मन भोग श्रमागे—१६१।

तों-कि. वि. [हिं, त्यों ] स्यों।

ताद्—संज्ञा स्त्रं. [सं. तृड] पेट का बढ़ा हुम्रा फुलाव। मुहा.—तृद पचना—(१) पेट का फुलाव घटना,

मोटापा दूर होना। (२) उमंड या शे तो निकल जाना।
तोंदल, तोंदिल — वि. [हि. तोंद] तोंदवाला।
तोंदी — संशा स्त्रो, [सं. तुंड] नाभी, ढोंडी।
तोंदो — मंशा स्त्रो, [हि. तुंबो] (१) कड़ आ कहू या

घीया। (२) इससे बना साधुग्रों का पात्र। तोंहका — मर्व. [हिं. तुम ] तुम्हें।

हो - हर्व. [स. तत्र] तेरा, तुम्हारा।

वि.—तेरे। उ.—(क) के श्रधर्म तो ऊपर होत-१२६०। (ख) रे कपि, क्यों पितु-बैर बिमारयो। तं समनुल कन्या विन उपजी, जो कुल-सत्र न मारयो — ६-१३४।

श्रव्य.— [सं. तद् तिब, उस दशा में।
श्रव्य. [सं. तु, एक श्रव्यय जिसका व्यवहार प्रायः
किसी बात पर जोर देने के लिए किया जाता है।
सर्व. [हिं, तू] 'तू' का वह रूप जो उसे विभक्ति
साने के समय प्राप्त होता है।

कि, श्र. [हि, हतो ] था।

तोइ—संज्ञा पुं [सं तोय ]पानी। सोई—संज्ञा स्त्रो. [देश, ](१) पट्टी, गोट। (२) नेफा। संक—संज्ञा पुं, [सं ](१) श्रीकृष्ण का एक सखा।

(२) शिशु, संतान।
तोख—संशा पुं. [सं. तोप] मंतोष।
तोटका—संशा पुं. [हिं, टोटका] टोना-ट्टका।
तोड़—संशा पुं. [हिं, तोइना] १) तोइने की किया
या भाव। (२) जल का तेज बहाव। (३) प्रभाव
को नष्ट करने का पदार्थ या काम। (४) दहीं का

पानी। (५) बार, दफा। (६) दांव. पेंच।
तोड़ना—िक. स. [हि. टूरना] (१) टुकड़े करना।
(२) नोच कर ग्रलग करना। (३) खंडित या भंग
करना। (४) सेंघ लगाना। (५) बल, प्रभाव, महत्व
ग्रादि घटाना। (६) दाम कम करना। (७) संगठन
या स्यवस्था नष्ट करना। (८) नियम या निश्चय
स्थिर न रखना। (६) मिटा देना, बना न रहने
देना। (१०) दृढ़ या कायम न रहन देना।

तोड़वःना—कि. स. [हि. तोड़ना का प्रं.] तोड़ने में लगाना, तुड़ाना।

तोड़ा—संज्ञा पुं. [हि. तोडना ] (१) संन-चाँदो की जंजीर। (२) हजार रुगए का थैलो। (३) नदो का किनारा। (४) घाटा, कमी।

संज्ञा पुं, [सं. तुंड या टोंटा] फलोता, पलीता।
तोण—संज्ञा पुं. [सं. तूण] तरक्या, तूगीर।
तोत—संज्ञा पुं. [फ्रा. तोदः](१) समूह। (२) खेल।
तोतई—वि. [हिं, तोता + ई] तोते के रंग का।

संज्ञा पुं. — ताते का सा धानी रंग।

तोनक—संज्ञा पुं. [ हि, तोता ] पयोहा ।
तोनर, तोनरा तोतल, तोतना — वि. [हिं. तोतना ]

(१ तुनलानेवाला। (२) ग्रस्पष्ट स्वर या उच्चारण। तोताना, तोतलाना—िक. ग्र. [हि. तुनकाना] तुतला-कर बोलना ग्रस्पष्ट स्वर में बोलना।

तोतरी—िन, स्त्री. [हिं, तोतला, तुतली ] ग्रस्पष्ट,
स्त्रतली। उ.—(क) मन-मोहनी तोतरी बोलिन,
मुनि-मन हर्रान सु हँसि मुमुक नियाँ—१०-१०६।
(ख) बोलत स्याम तोतरी बतियाँ हँसि-हँसि दित्याँ

दुमै—१०-१४७।
तोतरे—वि. [हि. तुतले] (१) ग्रस्पच्ट, तोतले। उ.—
(क) कबहुँ तोतरे बोल बोला, कबहुँ बोलत
तात—१०-१००। (ख) कल बल बनन तोतरे
बौलें—१०११७। (ग) गोद लिए ताकों हलरावें,
तोतरे बैन बुलावे—१०१३०। (घ) तब जो
खिलायो गोद मैं बोलि तोतरे बैन—३४४३।
(२) तुतलानेवाले।

तोतरें—ित्र [हि. तोतला] ग्रस्पच्ट, जो (वचन) स्पच्ट न हो। उ.—कब दें दाँत दूध के देखीं, कब तोतर मुल बचन भरें—१०७६।

तोता—संज्ञा पुं. [फ़ा, ] (१) एक पक्षी, कीर, सूग्रा।
मुहा,— तोता पालना—किसी दोष, रोग या
दुर्धसन को जान बुभकर बढ़ाना।

तोता वश्म, तोते चसम—संज्ञा पुं. [फा. तोतः चश्म] तोते की तरह श्रांख फेर लेनेवाला, बेमुरव्वत श्रादमी। तोता चशमी, तोते चसमी—संज्ञा स्त्री. [फा. तोता चश्म] बेमुरव्वती, बेवफाई।

तोती—संज्ञास्त्री. [हिं. तोती] (१ तोते की मादा। (२) उपपत्नी, रखेल।

तोते—सजा पुं. बहु. [हिं. तोता ] कई तोते।

मुहा — हाथों के तोते उड़ जाना—सहसा किसी

अनिष्ट के कारण बहुत घबरा जाना। तोते की तरह

आंख फेरना (बदलना)—बहुत बेमुरव्वत होता।

तोद्-संज्ञा पुं. [सं. ] व्यथा, पीड़ा।

त्रि, पीड़ा देनेवाला।

तोदन—संज्ञा पं. [ सं. ] (१) कोड़ा। (२) कष्ट। तोप—संज्ञा स्त्रं. [ तु. ] एक ग्रस्त्र जिसमें पलीता लगाकर बड़े बड़े गोने चलाये जाते हैं।

तोपनी — संग्रा पुं. [ श्रा. तोप + ची तोप चलानेवाला। तोपना — क्रि. स. [ सं. छंपन ] नीचे दर्शना, गाड़ना। तोपवाना — क्रि. स. [ हिं. तोपना का प्र. ] नीचे दब-वाना, ढॅकवाना, छिपवाना।

तोपा— संका पुं. [हि. तुरपना] एक टांके की सिलाई। तोपाई—संका स्त्री. [हिं, तोपना तोपने की किया, भाव या मजदूरी।

तोपाना—कि, स. [हिं, तोपना ] नीचे दहवाना। तोफगी—संज्ञान्त्री, [फ़ा. तोहफ़ा ] खूबी, अच्छापन। तोफा—वि. [फ़ां. तोहफा ] बढ़िया।

संजा पं — भेंट, सौगात, उपहार ।
तोबड़ा—संज्ञा पुं [फ़ा. तोबर:] थेली या पात्र जिसमें
दाना भर कर घोड़े के मुंह पर बांध दिया जाता है।
तोबा—संज्ञा स्त्री. [त्रा. तोब:] श्रतुवित कार्य भविष्य में

पुनः न करने की दृढ प्रतिज्ञा। तोम—संशा पुं. [सं स्तोम] समूह, हैर। तोमड़ा, तोमरि, तोमरी—संशा स्त्री. [हिं. तूँबड़ा] कड़ ई घीया या लोकी। उ.—फलन मांभ ज्यों करुई

तोमिर रहत हुरे पर डारी—-३०३४। तोमें—सर्व. [हिं. तो + मैं (प्रत्य.)] तुममें। उ.— जमुना तोहिं बह्यों क्यों भावे। तोमें कृष्ण हेलुवा खेले, सो सुरत्यी नहिं आवे—५६१

तोय-संज्ञा पुं. [सं] जल, पानी।
तोयडिंग-संज्ञा पुं. [सं.] श्रोला, पत्थर।
तोयद-संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेघ, बादल। (२) घी।
(३) जल-दान करनेवाला।

वि. — जल देनेवाला।
तोयधर, तोयधार — संजा पुं. [सं.] मेच, बादल।
तोयधि, तोयिनिधि — संज्ञा पुं. [सं.] समृद्ध, सागर।
तोर — वि. [हिं. तेरा] तेरा। उ. — पावक परों, सिंधु
महं बूडों, निहं मुख देखों तोर — ६-८३।

संज्ञा पुं, [हिं, तोड़ ] तोड़ने की किया या भाव। कि. स. [हिं, तोड़ना ] तोड़कर। संज्ञा पुं, [सं, तुवर] श्ररहर।

तोशा—संज्ञा पं सं.] (१) घर या नगर का मंडपाकार सजाया हुया फाटक। (२) सजावट के लिए लटकायी गयी बंदनवार। (३) गला, धीवा। है जिवजी। तोरित —िकि. स. [हि. तोड़ना] तोड़ती है। उ.—प्रभु बरप-गाँठि जोरित, वा छिब तर तृन तेरित, सर श्रास-परसनि—१०-६६।

तोरन, तोरना—संज्ञा पुं. [सं.तोरण] मालाएं, बंदनवार। उ.—(क) प्रति प्रांत-ग्रह ते।रन-ध्वजा-धूप। सजे सुजल कलस श्रव कंदलि-यूप—१-१६६।(ख) बाजन

बाजें गहगहे (हो), बाजें मंदिर मेरि। मालिनि बाँधे तोरना (रे) श्राँगन रोपें केरि—१०-४०। संज्ञा स्त्री. [हिं, तोड़ना] तोड़ने की किया या भाव, तोड़ने को। उ.—श्रपने भुजबल तोलत तोरन धनुष पुरार—सारा. २१८।

तोरना—कि. स. [हिं. तोड़ना] भंग करना, तोड़ना। तोरा—सर्व. [हिं. तेरा] तुम्हारा।

कि. स. [हिं. तोड़ना ] तोड़ने में लगाना।
तोराना—कि. स. [हिं. तुड़ाना ] तोड़ने में लगाना।
तोरावान—वि. [सं. त्वरावत ] वेगवान, तेज।
तोरि—कि. स. [हिं. तोड़ना](१) तोड़कर, ग्रलग करके।
ड.—िकन त्र्यकास तें तोरि तरैया त्र्यान धरी घर
माई—३३४३।(२) संबंध विच्छेद करके। उ.—
कहा लाइ तें हिर सों तोरी १ हिर सों तोरि कौन
सों जोरी—१-३०३।

तोरी—संश स्त्री. [हिं. तुरई] तुरई की बेल या फल।

कि. स. [हिं. तोड़ना] (१) तोड़ दी, प्रलग की।

दुकड़े दुकड़े की। उ.—(क) किठन जु गाँठि परी

माया को तोरी जाति न भटकें—१-२६०। (ख)

नवल छवीले लाल तनी चोली की तोरी—३२०८।

मृहा.—डारतिं तृन तोरी—नजर से बचाने के

लिए टोटके के रूप में तिनका तोड़ती हैं। उ.—सूरदास प्रभु हँ सि हँ सि खेलत, ब्रज बनिता डारतिं
तुन तोरी—६६६।

(२) संबंध विच्छेद किया। उ.—(क) कहा लाइ तें हरि सौं तोरी ? हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी— १-३०३। (ख) स्रदास प्रभु प्रीति रीति कत ते तुम सब ग्रब रहे तोरी—२८६०।

सर्व. [हिं. तेरा] तेरी । उ.—सूर-स्थाम सौं कहित जसोदा, दूध पियहु बिल तोरी—७१२।

तोरे — कि. स. [हिं. तोइना ] तोड़, तोड़ दिये, तोड़ता है। उ.— (क) देखि सरूप न रही कछू सुधि, तोरे तबहिं कंठ ते दाम—१०-१५७। (ख) तोरे पात पलास, सरस दोना बहु ल्याए—४३७। (ग) अंचल चीरि अभूषन तोरे—७७१।

सर्व. [हिं. तेरा ] तेरे, तुम्हारे।

वि.—तोड़े हुए।

महा.— एक डार के से तोरे— एक ही गुज, प्रकृति या स्वभाव के, एक ही यंली के से चट्टे- बट्टे। उ.—जोइ जोइ आवत वा मथुरा तें एक डार के से तोरे— ३०५६।

तोरेड — कि. स. [हिं. तोडना] तोड़ा, टुकड़े टुकड़ किया। उ.—तब मुनि कहेड धनुप क्यों तोरड रद्र परम गुरु मोरे—सारा. २३७।

तोरें—कि. स. [हिं. तोडना] नष्ट-भ्रष्ट करें, तहस-नहस करें। उ.—सूरदास प्रभु लंका तोरें, फेरे राम-दुहाई—६-११७।

तोरै—िकि. स. [हिं. तोइना] (१) दूर करे, मिटा दे, बना न रहने दे। उ.—-मन मैं डरी, कानि जिनि तोरें, मोहिं अबला जिय जानि। नख-सिख-बान सँभारि, सकुच गहिं पानि—६-७६। (२) तोइता है, खंड खंड करता है। उ.—हार तोरें चीर फारे नन चलें चुराइ—७८०

तोरो—सर्व. [हं. तेरा] तेरा। उ.—गनिका तरी आपनी करनी, भयी नाम प्रभु तोरी—१-१३२।

कि. स. [हं. तोइना] (१) तोड़ा। उ.— स्रदास प्रेम फॅद तोरी नहि जाइ—२८८०। (२) तोड़ दिया। उ.—कठिन निर्दय नंद के सुत जोरि

तोरो नेह—३२७४।

तोरयो — कि. स. भूत. [हिं. तोइना] (१) तोड़ दिया, खंड खंड किया। (२) मिटाया, नष्ट किया। उ.— (क) पग सों चौंपि घींच बल तोरयो — ५५७।

(ख) लोक-बेद तिनुका सो तोरथी—१२०१।

तोल—संशा स्त्री. [हिं. तौल] भार, तौल। वि. [सं. तुल्य] तुल्य, समान, बराबर।

तोलत — कि. स. [हि. तोलना] तोलते हैं, ग्रंदाज लगते हैं। उ. — ग्रंपने ग्रंपने भुजबल तोलत तोरन धनुष पुरारि — सारा. २१८।

तोलन—संशा पुं. [सं.] (१) तोलने की किया या भाव। (२) उठाने की किया या भाव।

संशा स्त्री. [सं. उत्तोलन] सहारे की लकड़ी, चाँड़। तोलना—कि. स. [हिं. तौलना] (१) वजन करना। (२) लक्ष्य साधना। (३) मिलान करना। (४) पहिये में तेल देना, चिकनाना।

तोला—संज्ञा पुं, [सं, तोलक] महिंगी चीजें तौलने की बारह माशे की एक तौल।

तोले—कि. स. [हिं. तोलना] ग्रंदाज लगाये, पता लगाये, छान-बीन किये, जाने। उ.—-यह सुनि लछिमन भये क्रोध-जुत विषय बचन यों वोले। स्रज-वंस नृपित भूतल पर जाके बल बिनु तोले—सारा.—२२३।

तोलें —िक. स. [हिं. तौलना ] तोलते हैं। उ.—कुबिजा भई स्थाम-रॅग-राती, तातें सोभा पाई। ताहि सबै कंचन सम तोलें श्रम् श्री निकट समाई—१-६३।

तोलै — कि. स. [हि. तौलना] (१) तौलता है, वजन करता है। उ. — कंचन काँच कपूर कटु खरी एक हिं सँग क्यों तोलै — ३२६४। (२) परखता है, जांचता है। उ. — प्रीति पुरातन पोरी उनसों नेह कसौटी तोलै — ३०६१। (३) लक्ष्य या निशाना साधता है। उ. — लोचन मृग जुभग जोर राग-रूप भये भोर भौंह धनुष सर कटाच्छ सुरति व्याध तोलै री — १५५३।

तोश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिसा। (२) हिसक। तोशक—संज्ञा स्त्री, [तु.] गुदगुदा बिछोना।

तोशल—संशा पुं, [सं.] कंस का एक मल्ल जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—श्रीर मल्ल मारे शल तोशल बहुत गये सब भाज—सारा, ५२३।

तोशा, तोसा—संज्ञा पुं. [फा. तोशः] (१) खाने-पीने की चीज। (२) यात्रा के लिए भोजन, पाथेय।

संशा पुं. [देश,] गंवारू स्त्रियों का एक गहना।
तोष, नोस — संशा पुं. [सं. तोष] (१) सतोष, तुष्टि,
तृष्टित । उ.—भयी तोष दसरथ के सुत की, सुनि
नारद की शान लखायी—६-१४१। (१ प्रसन्नता,
ग्रानंद । उ.—परम स्वाद सबही सु निरंतर श्रमित
ताष उप जावे—१-२। (३) श्रीकृष्ण का एक सला।

तेषक तोसक —िति. [सं. ] संतुष्ट करनेवाला।
स षण, तोषन — संज्ञा पुं. [सं. ] सृष्ति संतोष, प्रानंद।
स.पना —िकि, स. [सं. तोष] संतुष्ट या प्रसम्म करना।
कि. श्र. — संतुष्ट, तृष्त या प्रसन्न होना।

तोषल—संशा पुं, [ सं, ] कंस का एक मल्ल जिसे धनुर्यंश में श्रीकृष्ण ने मारा था।

तोषित—िव. [सं.] तृप्त, सुद्ध, संतुद्ध, प्रसन्त ।
तोष्यी—िक्त. स. [हिं. तोषना ] संतुद्ध, तृप्त या प्रसन्त
किया । उ.—वैसी आपदा ते राख्यो, तोष्यो, पोष्यो,
जिय दयो, मुख-नासिका-नयन-स्नीन-पद-पानि-१-७७ ।
तोसी—सर्व. [हिं. तो + सी (प्रत्य.) ] तेरे समान, तेरी

सी। उ.—लरिकिनी सबनि घर, तोसी नहिं कोड निडर, चलति नभ चितै, नहिं तकति धरनी-६९८।

तोसौं—सर्व. [ हिं. ता = तेरा+सौं (प्रत्य.) ] तुमसे। उ.—सतगुरु कह्यो, कहौं तोसौं हों, राम-रतन धन सँचिबौ—१-५६।

तोहफा—संज्ञा स्त्री. [श्र. तोहफा + फ़ा,्गी] भलापन। तोहफा—संज्ञा पुं. [श्र.] भेंट, उपहार, सौगात।

वि.—ग्रच्छा, बिह्रया, उत्तम।
तोहमत—संशा स्त्री. [ श्र. ] भूठा कलंक या दोष।
तोहार, तोहारा—सर्व. [ हिं. तेरा ] तेरा, तुम्हारा।
तोहिं, तोहीं—सर्व [हं. तू या तैं] तुभ्रे, तुभको। उ.—
नर को नाम पारगामी हो, सो तोहिं स्याम
दयौ—१-७८।

तोंस—संज्ञो स्त्री, [सं, ताप + हिं, ऊमस ] वह प्यास जो धूप खा जाने पर लगती है श्रीर पानी पीने पर भी शांत नहीं होती।

तौंसना—िक, श्र. [हिं, तौंस] गरमी से भुलस जाना। तौंसा—संज्ञा पुं. [हिं, तौंस] कड़ी गरमी।

तो — कि, वि, [सं, तद्, हिं, तो ] उस दशा में, तब।

कि, वि, [सं, तु, हिं, तो ] एक अव्यय जिसका
व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिए अथवा
यों ही किया जाता है।

कि. श्र. [पु. हिं. हतो ] था। वि. [सं. तत्र ] तेरा, तुम्हारा।

तौड़-कि, वि. [हि, तब + ऊ (प्रत्यय.)] तो भी, तिस पर भी, तब भी, तथापि। उ.—जैसें जननि-जठर-स्रातरगत सुत स्रापराध करें। तीऊ जतन करें स्रद प्रषे, निक्रसे संक भरें - १-११७।

तीक—संज्ञा पुं. [ आ. तीक ] (१) हंसुली की तरह गर्ने

का एक गहना। (२) इसी तरह की लोहें की बहुत भारी पटरी जो कैदियों के गले में पहनायी जाती है। (३) हंसुनी की तरह का पक्षियों के गने का चिन्ह। (४) गोल घेरा। तीचा --संबा पुं. [देश.] देहाती स्त्रियों का एक गहना। तौतिक --संशा पुं. [सं. ] मोती, मोती की सीप। तीन-सर्व. [सं. ते ] वह, सो। उ.-(क) रोकनहारी नंदमहर मुत दान्ह नाम जाको है तौन-११७२। (ख) ननदी तौन दिये बिनु गारी नैकहूँ न रहति-१४६२। तौनी - संज्ञा स्त्रो. [हिं. तवा का अल्पा.] छोटा हल्का तवा। सर्व. स्त्री. [हिं. तीन] वह, सो। तौर—संज्ञा पुं. [ श्र. ] (१) चालढाल, चाल-चलन। (२) दशा, श्रवस्था।(३) तर्ज, तरीका। (४)प्रकार, भौति। संज्ञा पुं, [ देश, ] मथानी मथने की रस्सी। तौरि-संज्ञा स्त्री. [हि. ताँवरि ] घुमेर, घुमरी, चक्कर। तोर्य-संज्ञा पुं. [सं. ] ढोल मंजीरा ग्रादि बाजे। तौल—संशा पुं. [सं. तोलन] (१) तराजू । (२) तुला राशि। संशा स्त्रो.—(१) किसी चीज का भार, वजन। (२) तौलने की किया या भाव। तौलना--क्रि. स. [सं. तोलन] (१) वजन करमा। (२) लक्ष्य भेदने के लिए ग्रस्त्र साधना । (३) तूलना या मिलान करना। (४) पहियो में तेल देना। तौलवाई, तोलाई—संज्ञा. स्त्री. [ हिं. तौलना +वाई, आई (प्रत्य.) ] तौताने की किया, भाव या मजदूरी । तौलवाना, तौलाना—कि. स. [हिं. तौलना का के.] तौलने का काम दूसरे से कराना। तौजा—संग पं [हिं. तौजना ] (१) दूध नापने का बड़ा बरतन । (२) ग्रनाज तौलनेवाला मनुष्य। तौली—संजा स्त्रा. [दश. ] चौड़े मुंह का बरतन। तों ले - कि. स. [हिं. तौलना ] वजन करे । उ-तुला बिच लो केस तीले गरुश्र श्रानन गोर-1960३। तोली-क्रि. स. [हिं तौलना] लक्ष्य भेदने के लिए प्रस्त्र साधता है। उ.—लोचन मृग सुभग जोर राग-रूप भये भार भीह घनुष सर कटा हु सुरिष ब्याध तीलै री। सौलैया—संज्ञा पुं. [हिं. तौतनः + ऐया ] तौतनेवाता ।

तौलों — कि. वि. [हिं. तो + लों = तक] तब तक, उस समय तक । उ — (क) श्रामिष रुधिर-श्रक्ति श्राम जोलों, तौलों कोमल चाम — १-७६ । (म्व) जब लिंग जिय घट-श्रंतर में रें. को सरवरि करि पावे । चिरं जीव दुरजोधन तौलों जियत न पकरयो श्रावे — १-२७५ । तौषार — संज्ञा पुं. [सं. ] तुषार या पाने का जल। तौसना — कि. श्र. [हिं. तौस] गरमी से व्याकुल होना। कि. स.—गरमी पहुंचाकर व्याकुल करना। तौहीन, तौहीनी — संज्ञा स्त्री. [श्र. तौहीन ] श्रपमान। तौहीन, तौहीनी — संज्ञा स्त्री. [श्र. तौहीन ] श्रपमान। तौहू — कि. वि. [हिं. तौ + हू (प्रत्य.)] तिसपर भी। उ.— खोजत नाल कितो जुग गयो। तौहू में कञ्ज मरम न लयो — २-२७। त्यागा या छोड़ा हुग्रा।

त्यक्त—िव, [सं.] त्यागा या छोड़ा हुग्रा।
त्यक्ता—िव, [सं.] जिसने त्याग किया हो।
त्यजन—संज्ञा पुं. [सं.] त्यागने का काम या भाव।
त्यजनीय—िव, [सं.] जो त्यागने के योग्य हो।
त्यहि—िव. [हि. तेहि] उस। उ.—यह सुनि कैसे सबन को बंधन दीनों है त्यिह काल —सारा, ४८००।
त्याग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी पदार्थ या पद को श्रपने से ग्रलग करने की किया, उत्सर्ग। (२) किसी बात को छोड़ने की किया। (३) संबंध न रखने की किया। (४) संसार से विरक्त होकर विषयों को छोड़ने की किया।

त्यागना – कि. स. [सं. त्याग] छोड़ना, तजना।
त्यागपत्र — संशा पुं. [सं.] इस्तीफा।
त्यागवान् — वि. [सं.] जो त्याग करे, त्यागी।
त्यागि — कि. स. [हिं. त्यागना] छोड़कर, तजकर।
ड.—(६) श्रासंकर बहु रनन त्यागि के, बिषहि कंठ घरि लेइ—१२००। (त्र) का ज-श्रवि पूरन भई जा दिन, तनहूं त्यागि सिधारयै — १-३३६।
त्यागी — वि. [सं. त्यागिन्] जिसने सर्वस्व त्याग दिया हो, विरक्त।

कि. स. स्त्री, भूर. [हिं, त्यागना ह्याग दी। त्यागूँ—कि. स. [हिं, त्यागना खोड़ दूँ, संबंध न रखूँ। उ.—सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी तीको कबहुँ न त्यागूँ—सारा, १३३।

त्यागे—कि. स. [हिं. त्यागना ] त्याग विये, छोड़ विये, तजे। उ.—श्रीर देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहुत श्रनेरे—१-१७०।

त्यागै—िक. स. [हिं. त्यागना] (१) त्याग वे, छोड़ दे। उ.—सूर जो दें रंग त्यागे, यहै भक्त सुभाइ—१-७०। (२) त्याग देता है, संबंध नहीं रखता। उ.—सत्य पुरुष सो दीन गहत है, श्राभिमानी कों त्यागे—१-२४४।

त्याग्यौ—कि. स. [हिं. त्यागना ] त्याग दिया। उ.— करि संकल्प अन्न-जल त्याग्यौ-१-३३१।

त्याज--क्रि. स. [हिं. तजना ] त्याग कर, छोड़कर । उ.—दुखिरा द्रौपदी जानि जगतपति आए खगपति त्याज-१-२६६।

त्याजन—कि. स. [हिं, त्यागना ] त्याग करना।
त्याज्य—िव. [सं. ] त्यागने या छोड़ने लायक।
त्यार—िव. [हिं, तैयार ] प्रस्तुत, किटबद्ध।
त्याँ, त्यों—िकि. वि [सं. तत् + एवम्] (१) उसी
प्रकार, उस तरह। (२) उसी समय, तत्काल।
संज्ञा पुं.—ग्रोर, तरफ।
ग्रान्य,—ग्रोर, तथा।

त्योंही—कि. वि. [हिं. त्यों+ही (प्रत्य.)] उसी प्रकार, उसी तरह, उसी भाँति । उ.— जैसें सुक नृप कों समुक्तायों। सरदास त्यों ही कहि गायों—१०-२। त्योरस, त्योरुस—संज्ञा पुं. [हिं, ति (तीन) + बरस]

(१) पिछला तीसरा वर्ष । (२) ग्रागे का तीसरा वर्ष । त्योराना—कि. अ. [हें, ताँवर] सर में चक्कर ग्राना । त्योरी—संज्ञा स्त्री. [हें. त्रिकुटी ] दृष्टि, निगाह ।

मुहा.—त्योरी चढ़ना (बदलना, में बल पड़ना)— क्रोध से भ्रांखें लाल होना। त्योरी चढ़ाना (बदलैना, में बल डालना) — क्रोध से भ्रांखें या भौंह चढ़ाना। त्योहार—संज्ञा पुं. [सं. तिथि + वार] धार्मिक या जातीय उत्सव मनाने का दिन, पर्व।

त्योहारी—संज्ञा स्त्री. [हि. त्योहार ] स्योहार के उपलक्ष में नौकरों भ्रादि को दिया जानेवाला धन या भोजन। स्यों—क्रि. वि. [हिं. त्यो ] (१) उस तरह। (२) उसी समय। त्योनार—संज्ञा पुं. [हिं, तेवर] ढंग, तर्ज।
त्योर—संज्ञा पुं. [हिं, त्योरी] दृष्टि, नजर।
त्योराना—कि. श्र. [हिं, तौंवर] सर में चक्कर श्राना।
त्र—'त' श्रोर 'र' से बना एक संयुक्ताक्षर जो शब्द के श्रंत
में प्रत्यय-रूप में जुड़कर 'एक स्थान पर किया या लाया हुश्रा' का श्रर्थ देता है।

त्रपा—संज्ञा स्त्री [ सं. ] (१) लाज, शर्म। (२) दुरा-चारिणी स्त्री। (३) कीर्ति, यश।

त्रपा, त्रिपत—ि [सं.] लिजत, र्जामंदा। त्रय—ि वि. [सं.] (१) तीन। उ.—दीन जन क्यों करि श्रावै सरन १ भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग, मुनहु ताप-त्रय-हरन—१-४८। (२) तीसरा।

त्रयताप—संशा पुं. [सं.] देहिक, देविक श्रोर भौतिक, तीन प्रकार के कष्ट ।

त्रयताप-हरन—संज्ञा पुं. [सं. त्रयताप+हिं. हरना] तीनों प्रकार के — देहिक, देविक भ्रोर भौतिक—कष्ट दूर करनेवाला, ईश्वर । उ.—सुनु त्रयताप-हरन करना-मय, संतत दीनदयालु—१-२०१।

त्रयो-संशा स्त्री. [सं.] तीन वस्तुग्रों का समूह।
त्रयोदश-िं. [सं.] तेरह।
त्रयोदशी—संशा स्त्री. [सं.] पक्ष की तेरहवीं तिथि।
त्रष्टा—संशा स्त्री. [सं. तष्टा] तश्तरी।
त्रस—संशा पुं. [सं.] (१) जंगल। (२) चर (जीव)।
त्रसन—कि. श्र. [हि. त्रसना] डरता है।
त्रसन—संश पुं. [सं.] (१) भय, डर। (२) ग्रावेश।
त्रसन—कि. त्र. [सं.] (१) भय, डर। (२) ग्रावेश।
त्रसना—कि. त्र. [सं.] त्रसना] भय से कांपना, डरना।
त्रसाना कि. स. [हिं. त्रसना] डराना, धमकाना।
त्रसायो—कि. स. [हिं. त्रसाना] डराया, धमकाया,
भय दिखाया। उ.—सूर स्थाम बैठे ऊखल लिंग,

माता डर तन श्रातिहिं त्रसायी—३६६ । त्रसावत—कि. स. [हिं. त्रसाना ] डराता धमकाता है, भय दिखाता है। उ.—गौरी-पति पूजाते ब्रजनारि । "" । सरन र दि लीजे सिव सं हर तनहिं त्रसा-वत मार—७६६ ।

त्रसावै कि. स. [हिं. त्रसाना] डराती(डराता) है। उ.- जाकी सिव ध्यावत निसि बासर सहसानन जेहि गावै

हो । सो हरि राघा बदन चंद को नैन चकोर त्रसावै हो—२५६०।

त्रसित—वि. [ सं. त्रस्त ] (१) डरा हुग्रा, भयभीत। (१) दुली, पीड़ित, सताया हुग्रा।

त्रसुर—वि, [सं, ] कायर, डरपोक, भीर ।

त्रसे—िक, त्र. [हिं. त्रसना ] डरता या भयभीत होता है। उ.—मदन त्रसे तुम त्रागे—१८६६।

त्रस्त—िव, [सं.] (१) भयभीत, डरा हुआ। (२) दुखित, पीड़ित। (३) चिकत, विस्मित।

त्राटक—संशा पुं, [सं.] योग का एक साधन जिसमें एकटक किसी विंदु पर दृष्टि जमायी जाती है। त्राण, त्रान—संशा पुं. [सं.] रक्षा। रक्षा का साधन।

त्राणक—संज्ञा पुं. [सं. ] रक्षक ।

त्राता, त्रातार—संशा पुं. [सं. त्रातृ] रक्षक, बचानेवाला । उ.—तौ को श्रम त्राता जु श्रपुन करि, कर कुठाँव पकरैगौ—१-७५।

त्रास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डर, भय । उ.—(क) कर्म लिख त्रास त्रावे—१-११०। (ख) कहा मल्ल चानूर कुबिलया श्रव जिय त्रास नहीं तिन नैको—२५५८। (२) कष्ट, तकलीफ । उ.—गरभ-बास श्राति त्रास, श्रघोमुख, तहाँ न मेरी सुध बिसरी—१-११६। (३) मणि का एक बोष।

त्रासक—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) डरानेवाला, भयभीत करनेवाला।(२) दूर करनेवाला, निवारक।

त्रासत—िक. स. [ हिं. त्रासना ] डरांता है, भय दिखाता है। उ.— (क) कौर-कौर कुबुद्धि जड़ किते सहत त्रापमान। जह जह जात तहीं तिह त्रासत ग्रासम, लकुट,पद-त्रान—१-१०३। (ख) गोप-गाइ-गोसुत जल-त्रासत, गोबर्धन कर घारथौ—१-१५८।

त्रसति—िक. स. स्त्री. [हिं. त्रासन ] डराती है, धमका कर, त्रास देकर । उ.— (क) सुनौ सूर ग्वालिनि की बातें, त्रासित कान्ह जु मोर—१०-३२० । (क) त्राहो जसोदा कत त्रासित हो यह कोख की जायो—३५६।

त्रासन—संज्ञा पुं. [ सं. ] डराने की किया का भाव। त्रासना—कि, स. [ सं. त्रास ] डराना, भय दिखाना। त्रासमान—वि. [सं. त्रास+मान ] डरा हुआ, भयभीत। त्रासित—वि. [सं. ] (१) डरा हुआ, भयभीत। (२) दुखी, पीड़ित, त्रस्त।

त्रासी—िव [ सं. ] बुबी, पीड़ित । उ.— (क) इतनो सँदेसो किहियो ऊधौ कमल नैन बिनु त्रासी—३४२२। (ख) प्रेम न मिले धेनु दुर्बल भई स्याम बिरह की त्रासी—३४३६।

त्रासे—िक. स. [हिं. त्रासना] भयभीत करता है, उराता है। उ.—तिइत-बसन घन-स्याम-सहस तन, तेज-पुंज तम कों त्रासे—१-६६।

त्रास्यौ—कि. स. [हिं. त्रासना ] डराया, भय विखाया, उ.—काहे को कलह नाध्यौ, दारुण दाँवरि बाँध्यो, कठिन लकुट ले त्रास्यो मेरो भैया।

त्राहि-श्रव्य, [सं.] बचाग्रो, रक्षा करो।

महा.—त्राहि करी—हारी मान ली, परेशान हो
गये। उ,—िचत्रगुप्त जम-द्वार लिखत हैं मेरे पातक
भारि। तिनहूँ त्राहि करी सुनि श्रोगुन कागद दीन्हे
डारि-१-१६७। त्राहि-त्राहि करी (पुकारी, भाख्यो)
दया या श्रभयदान के लिए गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की।
उ.—(क) त्राहि त्राहि द्रीपदी पुकारी गई बैकुंठ
श्रवाज खरी—१-२४६। (ख) त्राहि त्राहि कहि
नंद पुकारथी देखत ठीर गिरे भहराई—५४४। (ग)
त्राहि त्राहि हरि सौं सब भाख्यो दूर करो सब सोक।

त्रिंश-वि. [सं. ] तीसवां। त्रिंशत-वि. [सं. ] तीस।

त्रि—वि. [सं. ] तीन।

त्रिए—संज्ञा स्त्री. [हिं. त्रिया ] स्त्री, युवती । उ.—(क) सूरदास प्रभु नवल रसीले वोऊ नवल त्रिए—१७६६। (ख) सूर प्रभु रति रंग राँचे देख रीभी त्रिए—२०६६।

त्रिकंट, त्रिकंटक—संज्ञा पुं. [ सं. ] त्रिशूल।

वि.—जिसमें तीन नोकें या कांटे हों। —संज्ञा पं िसं वितेन बस्तक्षों का समह

त्रिक—संशा पुं. [सं.] तीन वस्तुश्रों का समूह। त्रिककुद्—संशा पुं. [सं.] (१) त्रिकूट पर्वत। (२) विष्णु। त्रिकाल—संशा पुं. [सं.] (१) तीनों समय-भूत, वर्तमान,

भविष्य। (२) तीनों समय--प्रातः, मध्याह्न, सायं। त्रिकालज्ञ-संज्ञा पुं. [सं.] भूत, वर्तमान ग्रौर भविष्य की बात जाननेवाला।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा पुं. [सं.] भूत, वर्तमान ग्रोर भविष्य की बात जानने की शक्ति या भाव।
त्रिकालदर्शक, त्रिकालदर्शी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूत, वर्तमान ग्रोर भविष्य की बात जाननेवाला।
त्रिकालदर्शिता—संज्ञा स्त्री, [सं.] भूत, वर्तमान ग्रोर भविष्य की बात जानने की शक्ति या भाव।
त्रिकुट—संज्ञा पुं. [सं. त्रिकूट] एक पर्वत।
त्रिकुटो—संज्ञा स्त्रो. [सं. त्रिकूट] दोनों भाँहों के बीच के कुछ अपर त्रिकृट चक्र का स्थान। उ.—(क) त्रिकुटी संगम अभूगंग तराटक नैन लागि लागे—२२१४।
(ख) त्रिकुटी संगम ब्रह्मदार भिदि यों मिलिहें वनमाली—२४६२।

त्रिकुल — संशा पुं. [ सं ] पितृ, मातृ ग्रीर श्वसुर-कुल। त्रिकूट —संशा पुं. [ सं.] (१) पर्वत जिसकी तीन चोटियां हों। (२) वह पर्वत जिस पर लंका बसी थी भ्रौर जहाँ भगवती निवास करती मानी गयी हैं। (३) एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु का पुत्र माना गयां है घौर जिसकी तीन चोटियों में एक सोने की है ग्रौर दूसरी चौदी की। (४) एक पर्वत । सूरदास के अनु-सार भगस्त्य के ज्ञाप से राजा इंद्रद्युम्न इस पर्वत के रूप में हो गये थे। कालांतर में वे गज हुए श्रीर ग्राह से युद्ध होने पर नारायण ने इनका उद्धार किया। उ.—राजा इंब्रद्युम्न कियी ध्यान । अपये अगस्य नहीं तिन जान । दियौ साप गर्जेंद्र तू होहि । कह्यौ नुप, दया करौ रिषि मोहिं। " भयौ त्रिकूट पर्वत गज सोइ— ५-२। (४) योग में मस्तक के छः कल्पित चन्नों में पहला जो दोनों भौंहों के बीच कुछ अपर की स्रोर माना गया है। (६) सेंघा नमक।

त्रिकोगा—संज्ञा पुं. [सं.] तीन कोने का क्षेत्र। त्रिखा—संज्ञा स्त्री. [सं. तृषा] (१) प्यास। (२) इच्छा। त्रिगुण, त्रिगुन—संज्ञा पुं. [सं. न्रिगुण] प्रकृति के सत्व, रज और तम नामक तीनं गुण।

वि.—तीन गुना, तिगुना।
निगुणात्मक —वि. [सं.] सत्व, रज और तम, तीनों
गुणों से युक्त । उ.—माया को त्रिगुणात्मक जानो।

सत-रज-तम ताके गुन मानौ—३-१३।
त्रिचच ु—संशा पुं. [सं. त्रिचच स्त्रा महादेव, शिव।
त्रिजग—संशा पुं. [सं. तिर्यक श्राड़ा चलनेवाला जीव।
संशा पुं. [सं. तिर्यक श्राड़ा चलनेवाला जीव।
संशा पुं. [सं. तिर्यक ते श्राड़ा चलनेवाला जीव।
त्रिजट—संशा पुं. [सं. ] शिव, महादेव।
त्रिजटा, त्रिजटो — संशा स्त्री. [सं. ] विभोषण की बहन जो सीता जी के पास श्रशोकवाटिका में रहती थी।
संशा पुं. [सं. त्रिजट ] शिव, महादेव।
त्रिजामा—संशा स्त्री. [सं. त्रियामा ] रात, रात्रि।
त्रिज्या—संशा स्त्री. [सं. ] वृत्त का श्रद्धं व्यास।
त्रिण—संशा पुं. [सं. तृण ] तिनका, घासकूस।
त्रितय—संशा पुं. [सं. ] धर्म, ग्रर्थ श्रीर काम।
त्रिताप—संशा पुं. [सं. ] धर्म, ग्रर्थ श्रीर काम।

भौतिक ताप या कष्ट ।

त्रिदश, त्रिदस—संज्ञा पुं. [सं. त्रिदश] देवता, सुर ।

ड.—(क) त्रिदस-तृपति, रिषि ब्योम बिमाननि,
देखत रह्यो न धीर । त्रिभुवननाथ दयालु दरस दे,
हरी सबनि की पीर—६-१६। (ख) जानों हो बल तेरी रावन। """। दारुन कीस सुभट बर सनमुख, लेहों संग त्रिदस-बल पावन—६-१३२।

(ग) निरखत बरखत कुसुम त्रिदसजन सूर सुमति मन फूल। (घ) त्रिदस कोटि श्रमरन को नायक जानि-बूिभ इन मोहिं भुलायो—६३२।

त्रिद्शगुरु—संज्ञा पुं, [सं. ] देवगुरु, वृहस्पति।
त्रिद्शगृपति—संज्ञा पुं [सं. ] देवराज, इंद्र ।
त्रिद्शपति, त्रिद्सपति—संज्ञा पुं, [सं. त्रिद्शपति ] इंद्र ।
ड.—चतुर्मुख त्रिदसपति बिनय हिर सौं करी. बिल अमुर सौं सुरिन दुःख पायौ—दःदः।
त्रिद्शावधू—संज्ञा स्त्री. [सं. ] अप्सरा।
त्रिद्शांकुश, त्रिद्शायुध—संज्ञा पुं. [सं. ] वज् ।
त्रिद्शांकुश, त्रिद्शायुध—संज्ञा पुं. [सं. ] वज् ।
त्रिद्शांत्य—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) स्वर्ग । (२) सुमेर ।
त्रिद्शालय—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) स्वर्ग । (२) स्राकाञ्च ।
त्रिद्श—संज्ञा पुं. [सं. ] (१) स्वर्ग । (२) स्राकाञ्च ।

त्रिदेव—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा, विष्णु धौर महेश। त्रिदोष—संज्ञा पुं. [सं.] (२) वात, पित्त धौर कफ के

दीष। (२) वात, पिल श्रीर कफ-जिनत रोग, सन्निपात। उ.—ज्यों त्रिदोष उपजे जक लागत बोलित बचन न सूघो—३६१३।

त्रिदोषज—संज्ञा पुं. [सं.] सन्निपात रोग।
त्रिदोषना—क्रि. श्र. [सं. त्रिदोष] (१) वात, पित्त
श्रीर कफ का दोष होना। (२) काम, क्रोध श्रीर
लोभ के फेर में पड़ना।

त्रिधा—कि. वि. [सं.] तीन प्रकार या तरह से। वि.—तीन प्रकार या तरह का।

त्रिधातु—संज्ञा पुं [ सं. ] सोना, चाँबी ग्रौर ताँबा। त्रिधाम—संज्ञा पुं. [ सं. त्रिधामन् ] (१) विष्णु। (२)

शिव। (३) ग्रन्ति। (४) मृत्यु। (५) स्वर्ग। त्रिधामृति—संज्ञा पुं. [सं.] परमेश्वर।

त्रिधारा—संज्ञा स्त्री [सं.] स्वर्ग, पृथ्वी भ्रौर पाताल में बहनेवाली गंगा नदी।

त्रिन—संशा पुं. [ सं. तृण ] तिनका, घास-फूस।
त्रिनयन, त्रिनेत्र—संशा पुं [ सं. ] शिव, महादेव।
त्रिपथ—संशा पुं. [ सं ] कर्म, ज्ञान श्रीर उपासना।
त्रिपथगा, त्रिपथगामिनी—संशा स्त्री [सं. ] स्वर्ग, पृथ्वी
श्रीर पाताल लोक में बहनेवाली गंगा।

त्रिपद-संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिपाई । (२) त्रिभुज।

(३) वह जिसके तीन पद या चरण हों। (४) तीन कदम या पग।

त्रिपद्व्याज—संज्ञा पुं. [सं. त्रिपद+व्याज ] तीन पग (नापने) के बहाने उ.—बिल बल देखि, श्रादिति सुत कारन त्रिपदव्याज तिहुँ पुर फिरि श्राई—१-६। त्रिपाठी—संज्ञा पुं. [सं.](१) तीन वेदों का जाननेवाला।

(२) ब्राह्मणों की एक जाति, त्रिवेदी।

त्रिपिंड—संशा पुं. [ सं. ] श्राद्ध में पिता, पितामह श्रीर प्रपितामह के उद्देश्य से दिये गये पिंड।

त्रिपिटक—संशा पुं, [सं.] गौतमबुद्ध के उपदेशों का संग्रह जो बौद्ध-धर्म का प्रधान ग्रंथ है।

त्रिपितात—िक. श्र. [हिं. तृप्ति-श्राना] तृष्त होता (होती) या श्रधाता (श्रधाती) है। उ.—जैसे तृषावंत जल श्रधवत वह तो पुनि ठहरात। यह श्रातुर छिबि लै उर धारति नेकु नहीं त्रिपितात—१६६२। (ख) जे षट्रस सुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खात। सुनो सूर लोचन हरि रस तिज हम सों क्यों त्रिपि-तात—ए. ३३३। (ग) तक कहूँ त्रिपितात नाहीं रूप-रस की देरि—ए. ३३४।

त्रिपिताना — कि. श्र. [सं. तृप्ति + हिं. श्राना (प्रत्य.)] तृप्त होना, श्रधाना।

त्रिपंड, त्रिपुंड, संशा पुं, [सं, त्रिपुंड,] भस्म की तीन श्राड़ी रेखाओं का तिलक जो शेव-शाक्त लगाते हैं।

त्रिपुटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] तीन वस्तु स्रों का समूह।
त्रिपुर—संज्ञा पुं. [सं,] (१) तीन नगर जो तारकासुर
के तीन पुत्रों—तारकाक्ष, कमलाक्ष स्रौर विद्युन्माली
के लिए मयदानव ने बनाये थे। इनमें पहला सोने
का स्वर्ग में था, दूसरा चांदी का संतरिक्ष में था स्रौर
तीसरा लोहे का मर्त्यलोक में। शिव जी ने एक ही
वाण में इन तीनों को नष्ट कर दिया था। उ.—
तब मय दीन्ही कोट बनाई। लोह तरें, मिंघ रूपा
लायों। ताके उत्पर कनक लगायों। जह ले जाइ
तहाँ वह जाइ। त्रिपुर नाम सो कोट कहाइ—७७। (२) वाणासुर का एक नाम। (३) तीनों लोक।
(४) संदेरी नगर।

त्रिपुरध्नं, तिपुरदहनं—संज्ञा पुं. [सं.] शिव। त्रिपुरारि—संज्ञा पुं. [सं.] जिव, महादेव।

त्रिफला—संशा पुं. [सं.] हड़, बहेड़ा और आंवले का समूह या चर्ण।

त्रिवलि, त्रिवली—संज्ञा स्त्री, [सं.] पेट पर पड़नेवाले तीन बल जिनकी गणना स्त्री के सौंदर्य में होती है। त्रिविध—वि. [सं. त्रिविध] तीन प्रकार का। उ.— उ.—स्रदास तेई पद-पंकज त्रिविध-ताप-दुख-हरन हमारे—१-६४।

त्रिबिक्रम—संज्ञा पुं. [सं. त्रिविक्रम] (१) विष्णु। (२) वामन का अवतार।

त्रिबेनी—संशा स्त्री. [सं. त्रिवेणी] (१) तीन निदयों का संगम। (२) गंगा, यमुना स्त्रोर सरस्वती का संगम। त्रिभंग—वि. [सं.] तीन जगह से टेढ़ा या बलदार। ड.—(क)तन त्रिभंग, सुभग श्रंग, निरिष्त लजत श्रिति श्रमंग, ग्वाल बाल लिए संग, प्रभुदित सब हिये—

४६०। (ख) तनु त्रिभंग, जुग जानु एक पग, ठाढ़े इक दरसाए—६३१। (ग) लित बर त्रिभंग सु तनु, बनमाला सोहै—६६२।

संशा स्त्री.—टेढ़ापन लिये खड़े होने की मुद्रा। त्रिभंगी—िवि. [सं.] तीन जगह से टेढ़ा, तीन मोड़ का, त्रिभंग।

संशा स्त्री.—टेढ़ापन लिये खड़े होने की मुद्रा। संशा पुं. [सं.] त्रिभंग मुद्रा को खड़े होनेवाले श्रीकृष्ण। उ.—कहा कूबरी सील-रूप-गुन १ बस भए स्थाम त्रिभंगी—१-२१।

त्रिभू — वि. [ सं. ] जिसमें तीन नक्षत्र हों। त्रिभु ज — संशा पुं. [ सं. ] तीन रेखाश्रों से घरा क्षेत्र। त्रिभुवन — संशा पुं. [ सं. ] तीनों लोक — स्वर्ग, पृथ्वी श्रीर पाताल।

त्रिभुवननाथ — संज्ञा पुं, [ सं, ] त्रिलोक के स्वामी।
त्रिभुवनराइ, त्रिभुवनराई, त्रिभुवनराय— संज्ञा पुं. [ सं. त्रिभुवन + हिं, राय ] तीनों लोक के स्वामी। उ.— विप्रान ग्रस्तुति विविध सुनाई। पुनि कह्यौ सुनियै त्रिभुवनराई— ५-२।

त्रिमद्—संज्ञा पुं. [सं.] कुल, धन और विद्या का घमंड। त्रिमधु, त्रिमधुर—संज्ञा पुं. [सं.] घी, शहद और चीनी। त्रिमूर्ति—संज्ञा पुं. [सं.] बह्मा, विष्णु और शिव। त्रिय, त्रिया, त्रियो—संज्ञा छी. [सं. छी.] स्त्री, औरत। उ.—(क) सुत-धन-धाम-त्रिया हित और लद्यो बहुत विधि भारौ—१-२१३। (ख) ऐसी कृपा करी नहिं, जब त्रिय नगन समय पित राखी—५६६। (ग) सूरदास प्रभु भौंह निहारत चलत त्रिया के रंग—१७७८। (घ) सूरस्याम प्रभु के बहुनायक मोसी उनके कोटि त्रियो—१६४६।

त्रियाचरित्र—संशा पुं. [हिं. त्रिया + सं. चरित्र] सित्रयों का छल-कपट पूर्ण ध्यवहार जिसे समभने में बड़े-बड़े बुद्धिमान प्रायः चूक जाते हैं।

त्रियामक—संज्ञा पुं. [सं.] पाप। त्रियामा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) यमुना नदी। त्रियुरा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) वसंत, वर्षा श्रीर शर्व ऋतुएँ। (३) सध्ययुग, त्रेता श्रीर द्वापर।

त्रिरत्न—संज्ञा पुं. [ सं. ] बुद्ध, धर्म ग्रीर संघ का समूह। त्रिरेख—संज्ञा पुं. [ सं. ] शंख।

वि.—जिसमें तीन रेखाएँ हों।
त्रिलोक—संशा पुं. [सं.] स्वर्ग, मर्त्य ग्रोर पाताल लोक।
त्रिलोकनाथ, त्रिलोकपति, त्रिलोकीनाथ, त्रिलोकीपति—संशा पुं. [सं.](१) तीनों लोकों का स्वामी, ईश्वर।
(२)राम। (३)कृष्ण। (४) विष्णु का कोई ग्रवतार।
त्रिलोकी—संशा स्त्रो. [सं. पुं. त्रिलोक] स्वर्ग, मर्त्य ग्रोर पाताल लोक।

त्रिलोचन—संशा पुं. [सं. ] शिव, महादेव।
त्रिलोचना, त्रिलोचनी—संशा स्त्री. [सं. ] दुर्गा।
त्रिवर्ग—संशा पुं. [सं. ] (१) अर्थ, धर्म और काम।
(२) वृद्धि, स्थिति और क्षय। (३) सत्व, रज और तम। (४) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य।
तिविल, त्रिविलका, त्रिविली—संशा स्त्री. [स. त्रिबली] पेट पर पड़नेवाले तीन बल जो स्त्री के सौंदर्थ में

गिने जाते हैं। त्रिविक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वामन। (२) विष्णु। त्रिविद्—संज्ञा पुं. [सं.] तीनों वेदों का ज्ञाता। त्रिविध—वि. [सं.] तीन प्रकार या तरह का।

कि. वि.—तीन प्रकार या तरह से ।
तिवृत्त—वि. [सं. ] तीन गुना, तिगुना ।
तिवेगी, त्रिवेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. त्रिवेगी ] (१) तीन निव्यों या धाराग्रों का संगम । (२)गंगा, यमुना ग्रौर सरस्वती निवयों का संगम जो प्रयाग में है । उ.— सुभ कुरुत्तेत्र ब्राजोध्या मिथिला प्राग त्रिवेनी न्हाये— सारा. ८२८ । (३) इड़ा, पिंगला ग्रौर सुषुम्ना नाड़ियों का संगम-स्थान ।

त्रिवेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऋक्, यजु और सामबेद ।
(२)इन वेदों में विणित कर्म ।(३)इन वेदों का ज्ञाता ।
त्रिवेदी—संज्ञा पुं. [सं. त्रिवेदिन्] (१) ऋक्, यजु और सामवेदों का ज्ञाता ।(२)ब्राह्मणों की एक जाति ।
त्रिशंकु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक सूर्यवंशी राजा जो सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे; इंद्र ने उन्हें पृथ्वी की छोर ढकेला, परंतु विश्वामित्र ने अपने तप-बल से रोक लिया । तबसे ये अधर में उलटे लटके माने जाते

है। (२) एक तारा जो त्रिश्चंकु के रूप में प्रसिद्ध है। त्रिशंकुज— संज्ञा पुं. [ सं. ] त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र । त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] (१) इच्छा, ज्ञान श्रौर क्रिया रूपी शक्तियाँ। (२) बुद्धितत्व। त्रिशिर, त्रिशिरा—संज्ञा पुं. [ सं. त्रिशिरस् ] (१) रावण का एक भाई जो खरदूषण के साथ दंडकवन में रहता

था। (२) एक राक्षस। त्रिशूल—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) महादेवजी का तीन फल का एक अस्त्र। (२) देहिक, देविक और भौतिक दुल। त्रिशूली—संशा पुं. [सं. त्रिशूलिन् ] शिवजी। त्रिश्टंग—संज्ञा पुं [ सं, ] (१) त्रिक्ट पर्वत जिस पर लंका बसी थी। (२) तीन शृंगों का पर्वत। (३) त्रिकोण। त्रिसंगम—संशा पूं. [सं. ] (१) किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल। (२) तीन धाराश्रों या निदयों का संगम । उ. जय जय जय जय माधव बेनी । """ जनुता लगितरवारि त्रिबिक्रम, धरि करि कोप उछैनी। मेरु मूठि, बरबारि पाल-छिति, बहुत बित्त की लैनी। सोभित श्रंग तरंग त्रिसंगम, घरी घार श्रति पैनी--६-११।

त्रिसंध्य—संज्ञा पुं. [सं,] प्रातः, मध्याह्न श्रौर सायंकाल। त्रिसर्ग - संज्ञा पुं. [ सं. ] सत्व, रज और तम-इन तीनों गुणों से बनी सृष्टि।

त्रिस्रोता—संशा पुं. [सं. त्रिस्रोतस् ] गया तीर्थ। त्रिसूल—संशा पुं. [ सं. त्रिशूल ] शिव जी का अस्त्र । त्र टि, त्रुटी—संशा स्त्री. [सं. त्रुटि] (१) कमी, कसर।

(२) श्रभाव। (३) भूल-चूक। (४) वचन-भंग। त्रृदिस-वि. [सं. ] (१) दूटा हुआ। (२) घायल। त्रेता, त्रेतायुग-संशा पुं. ] सं. ] चार युगों में से दूसरा जो १२६६००० वर्ष का माना जाता है।

त्रे—वि. [ सं. त्रय ] तीन। त्र कालिक—वि. [ सं. ] तीनों कालों में होनेवाला। त्र गुएय—संशा पुं. [सं.] सत्य, रज श्रौर तम—इन तीनों गुणों का भाव या धर्म।

त्रीपद-संज्ञा पुं. [ सं. त्रिपद ] तीन पैरों में नापने की का बनाया हुआ हथियार, वन्त्र। (३) चित्रा क्रिया या भाव। उ.—(क) जिहिं बल-बलि बंदन नक्षत्र।

(ख) कबहुँ करत बसुधा तब नैपद, कबहुँ देहरी उलँघि न जाइ—४६७। त्रे मासिक—वि, [सं.] तीसरे महीने होनेवाला। त्रेलोक, त्रेलक्य-संज्ञा पुं. [सं. ] स्वर्ग, मर्त्य भ्रोर पाताल-ये तीनों लोक। त्रेलोकनाथ-संज्ञा पुं. [सं. ] तीनों लोक के स्वामी श्रीकृष्ण। उ, —नाचत त्रैलोकनाथ माखन के कालै

---१०-१४६ । त्रेवार्षिक-वि. [सं. ] तीन वर्षों में होनेवाला । त्र विक्रम—संशा पुं. [ सं. ] (१) वामन । (२) विष्णु । त्रोटि-संशा स्त्री, [सं.] (१) चोंच। (२) एक चिड़िया। त्रोटी—संशा स्त्री. [ सं. ] (१) चोंच। (१) टोंटी। त्रोग्-संशा पुं. [सं. ] तरकश, तूणीर। उयंबक-संशा पुं, [सं, ] (१) शिव। (२) एक रव। त्वक्—संशा पुं. [ सं. ] (१) छिलका, छाल । (२) त्वचा, खाल । (३) एफ ज्ञानेंद्री जो शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है, जिसके द्वारा गरम, ठंडे आदि का जान होता है और जिसका देवता वायु मान गया है।

त्वच, त्वचा—संशास्त्री. [सं. त्वचा ] चमड़ा, त्वचा। उ.—(क) तन तें त्वच भई न्यारी—१-११८ । (ख) गड चटाइ. मम त्वचा उपारौ—६-५ ।

त्वदीय-सर्व. [सं. ] तुम्हारा । त्वरा, त्वरि—संज्ञा स्त्री. [ सं. त्वरा ] जी घ्रता, जल्दी। त्वरावान-वि. [हिं. त्वरा] शोघ्रता करनेवाला । त्वरित—वि. [सं. ] तेज।

कि. वि.—शीव्रता से।

त्वष्टा—संज्ञा पुं. [सं, त्वष्ट] (१) बुत्रासुर के पिता जिन्होंने विश्वरूप नामक पुत्र के मारे जाने पर ऋद्ध होकर एक जटा से वृत्रामुर को उत्पन्न किया था। उ.— त्वष्टा बिस्वरूप को बाप। दुखित भयो सुनि सुत-संताप-६-४। (२) विश्वकर्मा । (३) महादेव। (४) एक प्रजापति ।

त्वाष्ट्र—संज्ञा पुं. [ सं. ] (१) वृत्रासुर । (२) विश्वकर्मा

करि पठयौ, बसुधा त्रेपद करी प्रमाम—१०-३२७। त्वाष्टी—संज्ञा स्त्री. [ सं. ] विश्वकर्मा की कत्या।

थ—देवनागरी वर्णमाला का सत्रहवाँ श्रीर तवर्ग का दूसरा व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान दंत हैं। थंडिल—संज्ञा पुं, [सं, स्थंडिल] यज्ञ की वेदी। थंब, थंभ—संज्ञा पुं, [सं, स्तंभ] (१) खंभा। उ,—जंघन को कदली-सम जाने। श्रथवा कनक थंभ सम माने। (२) सहारा, टेक।

थंबी—संज्ञा स्त्री. [ सं. स्तंभी ] सहारे की बल्ली, चाँड़। थंभन—संज्ञा पुं. [ सं. स्तंभन ] (१) रुकावट। (२)तंत्र-मंत्र का प्रयोग जिसके द्वारा जल-प्रवाह, वर्षा ग्रादि को रोक दिया जाय।

थकन, थकर—संज्ञा स्त्री, [हिं, थकना ] थकावट।
थकना—कि, स्रा, [सं, स्था + क्र, प्रा, थक्कन ] (१)
परिश्रम से शिथिल या क्लांत होना। (२) ऊबना,
हैरान हो जाना। (३) बुढ़ावे के कारण शक्तिहीन या
शिथिल होना। (४) धीमा या मंद पड़ना। (५)
मुख या मोहित होकर ठक रह जाना।

थकाई—कि. आ. [हि. थकना ] मोहित हो गये, लुभा-कर ग्रचल रह गये। उ.—मोहे थिर, चर, बिटप बिहंगम, ब्योम बिमान थकाई—६२६।

थकान—संज्ञा स्त्री. [हिं, थकना ] थकावट, शिथलता। थकाना—क्रि. स. [हिं, थकना ] (१) परिश्रम कराते-कराते शिथल कर डालना। (२) हराना, परे-शान या हलकान करना।

थकाने,थकानो—कि. ग्र. [हिं. थकना] थके, शिथल हुए। थका-माँदा—वि. [हिं. थकना माँदा] बहुत शिथल। थकायो—कि. ग्र. [हिं. थकना] ग्राश्चर्य से स्तब्ध रह ग्या या ग्रचल हो गया। उ.—सुनि धुनि चंचल

पवन थकायो—१८६० |
थकार—संशा पुं. [सं.] 'थ' ग्रक्षर या इसकी ध्वति ।
थकाव—संशा पुं. [हिं. थकना ] थकावट, शिथिलता ।
थकावट, थकाहट—संशा स्त्री. [हिं. थकना ] थकने का
भाव, शिथिलता, क्लांतता ।

थिक—िक. ग्र. [हिं. थकना ] थककर, क्लांत या श्रांत होकर। उ.—गज बल किर के थिक रह्यों—८-२। थिकत—िव. [हिं. थकना ] (१) थका हुग्रा, श्रांत, शिथल। उ.—(क) ऐसे बीते बरस दिन, थिकत भये बिधि पाइ—४६२। (२)उदास, खिन्न, ग्रशकत। उ.—ग्रधोमुख रहित ऊरध निहं चितवित ज्यों गथ हारे थिकत जुग्रारी—३४२५। (३) मोहित, मुग्ध। उ.—(१) (क) थिकत भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह ग्रचेत—१-२६। (ख) थिकत भई गोपी लिख स्यामिहं। (ग) बरनो बाल-बेस मुरारि। थिकत जित तित ग्रमर-मुनिजन नंद-लाल निहारि—१०-१६६।

निहारि-१०-१६६। थिकया—संज्ञा स्त्री. [हिं. थका ] गाढ़ी चीज की तह। थके-कि. श्र. [हि. थकना ] थक गये, हार गये। उ.—(क) नारदादि सुकदादि मुनिजन थके करत उपाइ-१-५६। (ख) थके किंकर-जूथ जमके-१-१०६। थकैनी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. थकावट ] शिथलता । थकोहाँ—वि. [हिं. थकना ] थका-माँदा, शिथल। थकोहीं-वि. स्त्री. [हिं, पुं. थकौहाँ ] थकी हुई। थका—संज्ञा पुं, [सं, स्था + क ] गाढ़ी चीज की तह। थक्यौ-कि. ग्र. [हिं, थकना ] (१) थका, थक गया। उ.—(क) हिरनकसिपु परहार थक्यो, प्रहलाद न नैंकु डरै-१-३७। (ख) दुख-समुद्र जिहिं वार-पार निहं तामैं नाव चलाई। केवट थक्यो, रही अधबीचिह कौन श्रापदा श्राई—६-१४६। (२) मुग्ध होकर भ्रचल रह गया। उ.—वैसेहि दसा भई जमुना की वैसेहि गति जति पवन थक्यौ-१८३३।

थगित—वि. [हिं. थिकत ] (१) ठहरा या रुका हुआ। (२) शिथल, थका-माँदा। (३) मंद, घीमा।

थड़ा-संशा पुं. [हिं. थिकत ] बठक । चबूतरा । थति—संज्ञा स्त्री, [हिं, घाती ] घरोहर। थतिहार-संज्ञा पं. [हिं. थाती+हार (प्रत्य.)] वह व्यक्ति जिसके पास घरोहर रखी जाय। थत्ती—संज्ञा स्त्री, [हिं, थाती ] ढेर, राशि। थन-संशा पूं. [ सं. स्तन ] चौपायों के स्तन । थनी--संज्ञा स्त्री, [हिं, थन ] बकरियों के गले की थन की भाकृति की थैलियाँ जिनमें दूध नहीं होता। थनु—संज्ञा पुँ, [हिं, थन] थन, चौपायों के स्तन। ड, -- श्रानद-मगन धेनु सबैं थनु पय-फेनु, उमॅग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के-१०-३०। थपकना-कि. स. [ अनु. अथपथप ] (१) प्यार या दुलार से घीरे-घीरे थपथपाना । (२) घीरे-घीरे ठोंकना। (३) दिलासा देना, पुचकारना। (४) क्रोध श्रादि शांत करना। थपकी, थपथपी—संज्ञा स्त्री. [ हिं. थपकना ] (१) प्यार-दुलार से थपथपाने की किया या आघात (२) धीरे-घीरे ठोंकने की किया। (३) थापी, मुँगरी। थपड़ी—संज्ञा स्त्री. [ त्रानु, थपथप ] (१) हथेलियों से बजायी गयी ताली। (२) ताली का शब्द। थपन—संज्ञा पुं. [ सं. स्थापन ] दिकाना, जमाना। थपना — कि. स. [ सं. स्थापन ] (१) बैठाना, जमाना, ठहराना। (२) स्थापित या प्रतिष्ठित करना। कि. श्र.—जमना, गड़ना। प्रतिष्ठित होना। थपरा—संज्ञा पू [ हिं. थप्पङ ]तमाचा, थप्पड़ । थपाना-क्रि. स. [हिं. थपना | स्थापित कराना । थापि-कि, स. [हिं, थपना ] प्रतिष्ठित करके। उ.-सूर प्रभु मारि दसकंध, थपि बंधु तिहिं, जानकी छोरि जस जगत लीजौ-- ६-१३६। थापिहौं - कि. स. [हिं. थपना ] प्रतिष्ठित करूँगा। उ .- जब लौं हों जीवों जीवन भर, सदा नाम तब जिपहों। द्विन्श्रोदन दोना भरि देहों, श्रक भाइनि मैं थिपहों-- ६-१६४। थपुत्रा—संज्ञा पूं. [हिं, थपना ] चौड़ा-चिपटा खपड़ा।

थपेटा, थपेड़ा—संज्ञा पुं. [श्रनु. थपथप] आघात, टक्कर।

थप्पड़—संशा पुं. [ श्रनु. थपथप ] (१) तमाचा, भापड़,

हथेली का थपेड़ा। (२) धक्का, टक्कर। थम—संज्ञा पुं. [ सं. स्तंभ, प्रा. थंभ ] (१) खंभा, स्तंभ, थनो। (२) केलों की पेड़ी। (३) पूजा की सोहाली। थमकारी-वि. [सं. स्तंभन ] रोकनेवाला। उ.-मन बुधि चित ऋहंकार दरसै इंद्रिष प्रेरक थमकारी। थमना-कि. श्र. [सं. स्तंभन ] (१) रकना, ठहरना। (२) बंद हो जाना, चालून रहना। (३) घीरज धरना, उतावला न होना। थर--संशास्त्री, [सं. स्तर] तह, परत। संज्ञा पुं. [ सं. स्थल ] (१) थल, जगह, ठिकाना । उ.—एहि थर बनी कीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्ति गाई--१-६। (२) बाघ की मांव। थरकना-कि. श्र. [ श्रनु, थरथर+करना ] कांपना। थरकाना-कि. स. [हिं. थरकना ] डर से कॅपाना। थरथर—संज्ञा स्त्री. [ त्रानु. ] डर से कांपने की मुद्रा। उ.-मंडपपुर देखे उर थरथर करै-१०३-१४। कि. वि.—डर से कांपते हुए। थरथरात--कि. श्र. [हिं. थरथराना ] कांपती है,थर थराती है। उ.—सँटिया लिए हाथ नदरानी, थर-थरात रिस गात-१० ३४१। थरथराना—कि. श्र. [श्रनु. थरथर] (१) डर के कारण काँपना, थर्राना। (२) काँपना। थरथराने -- कि. श्र. [हिं. थरथराना ] इर से कांपने . लगे। उ. -- सैल से मल्ल वै धाइ आये सरन को उ भूले लागे तब गोड़ पर थरथराने --- २५६५। थरथराय-कि. श्र. [हिं. थरथराना ] कांपकर । उ. --तब मैं थरथराय रिस कॉंप्यो-१०६३। थरथराहट, थरथरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. थरथराना] कॅपकॅनी या कंपनी जो डर के कारण हो। थरना--कि. स. [ हिं. थुरना ] चोट या श्राघात करना। थरमना-कि. श्र. [हिं. त्रसना ] (१) पीड़ित होना, कष्ट भोगना। (२) बहुत डर जाना। थरिस-क्रि. श्र. [हिं. थरसना ] बहुत भयभीन होकर। उ. — हो डरपों, काँपों ऋर रोवों, कोउ नहिं धीर

घराऊ। थरिस गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात

श्रगाऊ—४८१।